दृष्टिकोण

कला, मानविकी एवं वाणिज्य की मानक शोध पत्रिका

प्रधान संपादक

डॉ. अश्विनी महाजन

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक

प्रो. प्रसून दत्त सिंह

महात्मा गांधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी

डॉ. फूल चन्द

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

दृष्टिकोण प्रकाशन

वर्ष : 18 अंक : 1 ❑ जनवरी–फरवरी, 2026

दृष्टिकोण

संपादक मंडल

डॉ. अरुण अग्रवाल
ट्रेन्ट विश्वविद्यालय, पीटरबरो, ओंटारियो
डॉ. दया शंकर तिवारी
दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. आनंद प्रकाश तिवारी
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय, वाराणसी
डॉ. प्रकाश सिन्हा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डॉ. दीपक त्यागी
दीन दयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर
डॉ. अरुण कुमार
रांची विश्वविद्यालय, रांची
डॉ. महेश कुमार सिंह
सिद्धू कान्हू विश्वविद्यालय, दुमका
डॉ. हरिश्चन्द्र अग्रहरि
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
डॉ. पूनम सिंह
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. एस. के. सिंह
पटना विश्वविद्यालय, पटना
डॉ. अनिल कुमार सिंह
जे.पी. विश्वविद्यालय, छपरा
डॉ. मिथिलेश्वर
वीर कुंअर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
डॉ. अमर कान्त सिंह
तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
डॉ. ऋतेश भारद्वाज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. स्वदेश सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
डॉ. विजय प्रताप सिंह
छत्रपति साहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

संपादकीय सम्पर्क:
220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–I, दिल्ली–110091

©Editorial India
Editorial India is a content development unit of Permanence Education Services (P) Ltd.

ISSN 0975-119X

नोट: पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार अपने हैं। उसके लिए पत्रिका/संपादक/संपादक मंडल को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। पत्रिका से सम्बंधित किसी भी विवाद के निपटारे के लिए न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

सम्पादकीय

विपक्ष को वीबी-ग्रामजी की उपयोगिता और प्रावधानों पर बहस करनी चाहिए। नाम से परे जाकर सोचना चाहिए।

विपक्षी दल इस तर्क पर अड़े हुए हैं कि सरकार ने जानबूझकर एम.के. गांधी का नाम अधिनियम से हटा दिया है। विधेयक के वास्तविक प्रावधानों पर तो नाममात्र की चर्चा हो रही है।

एमजीएनआरईजीए या महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम एक अधिकार-आधारित ग्रामीण रोजगार योजना है। 2005 में अधिनियमित और फरवरी 2006 से लागू, यह भारत के प्रत्येक ग्रामीण परिवार को राज्य से सवैतनिक कार्य की मांग करने का कानूनी अधिकार प्रदान करता है।

इस अधिनियम के तहत, ग्रामीण परिवारों का 18 वर्ष या उससे अधिक आयु का कोई भी वयस्क सदस्य काम के लिए आवेदन कर सकता है। सरकार प्रत्येक वित्तीय वर्ष में प्रति परिवार 100 दिनों तक अकुशल शारीरिक श्रम उपलब्ध कराने के लिए कानूनी रूप से बाध्य है। यदि लिखित या मौखिक मांग के 15 दिनों के भीतर काम उपलब्ध नहीं कराया जाता है, तो सरकार को बेरोजगारी भत्ता देना होगा। एमजीएनआरईजीए केवल एक कल्याणकारी योजना नहीं है, बल्कि एक कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार है।

इतने व्यापक दायरे और कानूनी ढांचे वाला रोजगार अधिकार कार्यक्रम दुनिया में कहीं और मौजूद नहीं है। यह योजना करोड़ों ग्रामीण नागरिकों को कवर करती है और उन्हें रोजगार का वैधानिक अधिकार प्रदान करती है। सूखे, कृषि संकट और यहां तक कि कोविड-19 महामारी जैसे आर्थिक संकटों के दौरान, इसने लाखों प्रवासी श्रमिकों के अपने गांवों में लौटने पर एक आर्थिक सुरक्षा कवच के रूप में काम किया।

इस योजना में बड़े बदलावों का प्रस्ताव करते हुए, विकसित भारत-रोजगार एवं आजीविका मिशन (ग्रामीण), 2025 (VB-GRAMG) विधेयक 16 दिसंबर को संसद में पेश किया गया। पारित होने पर यह MGNREGA की जगह ले लेगा। सरकार इस नए विधेयक को विकसित भारत की परिकल्पना के अनुरूप सुधार के रूप में प्रस्तुत कर रही है, जबकि विपक्ष इसका कड़ा विरोध कर रहा है।

विपक्षी दलों का तर्क है कि सरकार एम.के. गांधी का नाम कानून से हटाकर जानबूझकर राजनीति कर रही है। इसके अलावा, विधेयक का संक्षिप्त नाम वी.बी.ग्रामजी या बोलचाल की भाषा में 'विकसित भारत जी राम जी' हो जाएगा, जिसे विपक्ष आपत्तिजनक मानता है। विधेयक को लेकर बहस जुबानी जंग में तब्दील हो गई है, जबकि विधेयक के वास्तविक प्रावधानों पर न के बराबर चर्चा हो रही है।

हमें विधेयक की विस्तृत समझ की आवश्यकता है-इसके प्रावधान वास्तव में क्या हैं और इससे देश और इसकी ग्रामीण आबादी को क्या लाभ या हानि हो सकती है।

राज्यों की भूमिका

एमजीएनआरईजीए के पीछे का विचार ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी के कारण उत्पन्न गरीबी से लोगों की रक्षा करना था। इसने उन्हें आय की गारंटी दी और साथ ही जल संरक्षण परियोजनाओं, सिंचाई नहरों, सड़कों, बाढ़ नियंत्रण संरचनाओं और भूमि विकास गतिविधियों जैसे ग्रामीण विकास कार्यों को सुगम बनाया।

यह समझना आवश्यक है कि यह योजना मांग-आधारित है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार, हालांकि इस योजना के तहत मजदूरी दरें वर्षों से बढ़ाई गई हैं, फिर भी काम के लिए पंजीकरण कराने वाले लोगों की संख्या में गिरावट आई है। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रामीण लोग अब रोजगार के ऐसे वैकल्पिक स्रोत खोज रहे हैं जो एमजीएनआरईजीए से अधिक आकर्षक हैं।

2005 से ग्रामीण आबादी की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। और विकसित भारत का हिस्सा बनने का संकल्प दिन-प्रतिदिन मजबूत होता जा रहा है। इसलिए, सरकार का मानना है कि एमजीएनआरईजीए कानून में मूलभूत बदलाव भी आवश्यक हैं।

यद्यपि विधेयक में गारंटीकृत रोजगार को 100 दिनों से बढ़ाकर 125 दिन करने और आदिवासी क्षेत्रों में 150 दिनों तक करने का प्रस्ताव है, लेकिन इसका वित्तपोषण अब केवल केंद्र सरकार की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। राज्य सरकारें भी इसमें भूमिका निभाएंगी।

यह उल्लेखनीय है कि 2005 में केंद्रीय राजस्व में राज्यों का हिस्सा केवल 32 प्रतिशत था। बाद में 14वें वित्त आयोग ने 2015-2020 की अवधि के लिए इसे बढ़ाकर 42 प्रतिशत कर दिया। राज्यों का हिस्सा इसलिए बढ़ाया गया ताकि वे कल्याणकारी योजनाओं का भार वहन कर सकें। चूंकि राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (एनआरईजीए) पहले ही लागू हो चुका था, इसलिए उस समय राज्यों पर यह भार नहीं डाला जा सका था।

एनआरईजीए से एमजीएनआरईजीए तक

यद्यपि एनआरईजीए 2005 में पारित हुआ और 2006 में लागू हुआ, लेकिन यूपीए सरकार ने 2009 में इसका नाम बदलकर महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम कर दिया। अब जब देश के विकसित भारत बनने के संकल्प के संदर्भ में संसद द्वारा इस योजना के एक नए स्वरूप का प्रस्ताव रखा गया है, तो नाम में परिवर्तन स्वाभाविक था।

संयोगवश, नया नाम राम के नाम से मिलता-जुलता है, जो देश में कई लोगों द्वारा पूजे जाने वाले देवता हैं। विपक्ष इसी पहलू पर आपत्ति जता रहा है।

श्रम उपलब्धता

एमजीएनआरईजीए का उद्देश्य बेरोजगारी के दौर में आय सुरक्षा प्रदान करना था। हालांकि, बुवाई और कटाई के मौसम में, श्रमिक अक्सर एमजीएनआरईजीए की ओर आकर्षित होते थे, जिससे खेतों में श्रम की कमी हो जाती थी। इस कमी के कारण मजदूरी की लागत बढ़ जाती थी और कृषि की प्रतिस्पर्धात्मकता कम हो जाती थी।

नए विधेयक में इस समस्या का समाधान करते हुए यह प्रावधान किया गया है कि कृषि गतिविधियों के लिए रोजगार गारंटी कार्यक्रम को 60 दिनों तक निलंबित रखा जाएगा। इसके अतिरिक्त, कार्यक्रम के अंतर्गत कार्यों की प्रकृति को भी वर्तमान आवश्यकताओं के अनुरूप अद्यतन किया गया है, जिसमें जल सुरक्षा, ग्रामीण और आजीविका संबंधी अवसंरचना और चरम मौसम की घटनाओं से बचाव शामिल हैं। इन कार्यों को प्रधानमंत्री गति शक्ति राष्ट्रीय मास्टर प्लान से भी जोड़ा गया है।

भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना

एमजीएनआरईजीए की सबसे बड़ी खामी यह थी कि तमाम प्रयासों के बावजूद भ्रष्टाचार पर पूरी तरह से अंकुश नहीं लगाया जा सका। ग्राम पंचायत और ब्लॉक स्तर पर व्यापक भ्रष्टाचार के कारण सार्वजनिक धन का बड़े पैमाने पर दुरुपयोग हुआ। अक्सर, परियोजनाएं केवल कागजों पर ही मौजूद रहती थीं।

नए विधेयक में लेन-देन के लिए बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, योजना और निगरानी के लिए भू-स्थानिक प्रौद्योगिकी, वास्तविक समय की निगरानी के लिए मोबाइल एप्लिकेशन-आधारित डैशबोर्ड और साप्ताहिक सार्वजनिक प्रकटीकरण प्रणाली जैसी तकनीकों के उपयोग का प्रावधान है। प्रधानमंत्री आवास योजना में प्रौद्योगिकी के उपयोग से भ्रष्टाचार पर पहले ही अंकुश लग चुका है। रोजगार गारंटी कार्यक्रम के लिए भी ऐसा ही किया जा सकता है।

देश के विश्लेषक लंबे समय से एमजीएनआरईजीए का दीर्घकालिक दृष्टिकोण से विरोध करते रहे हैं, उनका तर्क है कि इससे कृषि और उद्योग में श्रम की कमी होती है। हालांकि नए अधिनियम ने कृषि में श्रम की कमी को दूर करने का प्रयास किया है, लेकिन इसमें औद्योगिक क्षेत्र और कृषि से संबंधित गतिविधियों में श्रम की कमी का ध्यान नहीं रखा गया है। योजना के नाम पर ही अटके रहने के बजाय, यदि विपक्ष ने ऐसे उपयोगी प्रावधानों को शामिल करने के लिए सार्थक बहस की होती, तो एमजीएनआरईजीए के नए स्वरूप में और भी सुधार किए जा सकते थे। दुर्भाग्य से, ऐसा नहीं हुआ।

– संपादक

इस अंक में

GST Reforms 2.0 और इसका भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल 1

बिहार की कृषि समस्याएं और समाधान: एक समीक्षा–देव नारायण महतो; डॉ० नवल किशोर बैठा 4

शहरी झुग्गी-झोपड़ियों के लिए आजीविका और आर्थिक विकास–श्रीमती अनुप्रिया कुमारी; डॉ० नवल किशोर बैठा 8

सामाजिक दर्शन की प्रकृति: एक विमर्श–डॉ० संजीव कुमार सुधांशु 11

माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन –डॉ० संजीव कुमार तिवारी; राकेश कुमार यादव 15

सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन –डॉ० संजीव कुमार तिवारी; शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय 22

विकसित भारत@2047 तथा दिल्ली के मंदिरों का पर्यटन भविष्य: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–अनु सिंह; आलोक कुमार; प्रो० कुमार आशुतोष 29

भारत में विपक्ष की राजनीति–डॉ० रमाकान्त पाण्डेय 32

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन–डॉ० अनिल कुमार शुक्ला; रेखा सिंह 36

बिहार से श्रमिक प्रवासन: कारण, स्वरूप और आर्थिक प्रभाव–डॉ० जयनेंद्र कुमार मोनू 43

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी की भूमिका–सुमन चातोम्बा 48

उत्तरी बिहार में निचली कोसी नदी में सतत गाद प्रबंधन: एक विस्तृत अध्ययन–डॉ० मो० रफत परवेज 50

मोबाइल बैंकिंग का उदय और पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं पर इसका प्रभाव–सोमेश कुमार 54

शिक्षा का बाजारीकरण और ग्रामीण-शहरी विभाजन–डॉ० कादम्विनी कुमारी 60

समकालीन कवयित्रियों की रचनाओं में स्त्री-विमर्श–नंदनी देवांगन; डॉ० राजकुमार पाण्डेय 64

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:- त्रिभाषा सूत्र का महत्व और चुनौतियां–क्रिस्टियान डॉ० लतिका 68

हिंदी उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक स्वरूप का अवलोकन–मोहित गौड़; प्रो० प्रभात शर्मा 70

मोहन राकेश के नाटको में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ–राम कुंवर; प्रो० दर्शन पांडेय 76

डॉ. अंबेडकर के राष्ट्रवाद पर विचार: एक अवलोकन–सविता कुमारी 79

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का योगदान–वंदना कुमारी 84

महिलाओं की शिक्षा में कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (सीएसआर) कार्यक्रमों का योगदान: छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में–हुमप्रभा साहू; प्रो० एल.एस. गजपाल 87

कमार जनजातियों के लोक व्यंजन पर वैश्वीकरण के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन–कविता सोम; डॉ० हेमलता बोरकर वासनिक 91

''छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति एवं आदिवासी जीवन''–डॉ० रश्मि पाण्डेय 94

राजनीतिक दलों की चुनावी नीतियों का मतदाताओं के निर्णय पर प्रभाव का अध्ययन–अलोक तिर्की 99

भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएं–डॉ० अजय गोयल 104

वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं पर कोविड-19 महामारी का प्रभाव–दीक्षा सिंह 106

वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय संस्कृति: एक समीक्षात्मक अध्ययन–प्रशांत कुमार 110

कवर्धा रियासत: साहित्य, संस्कृति और मानवीय मूल्यों का अध्ययन–देवलाल उइके, शशिकला सिन्हा 113

शिवराजविजय की भाषा शैली एवं काव्यवैशिष्ट्य–डॉ० तबस्सुम 117

भारतीय दर्शन में नारी की स्थिति और सशक्तिकरण की अवधारणा–डॉ० पवन पाठक 119

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक वैषम्य की अभिव्यक्ति–डॉ० मुकेश कुमार महतो 121

ललित निबंधों की परम्परा और कुबेरनाथ राय–डॉ० आलोक यादव 124

आधुनिक साहित्य में समाहित लोक-दृष्टि–डॉ० देवेन्द्र शुक्ल 127

बिहार में कृषि ऋण सहकारी समितियां: योगदान एवं प्रभाव–सुभय कुमार; प्रो० (डॉ.) रविन्द्र कुमार चौधरी 131

कहानी साहित्य में नारी-प्रश्न: सैद्धांतिक अवधारणाएँ और व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ–डॉ० गीता 136
महादेवी के साहित्य में विरह-वेदना–डॉ० तानाबाई पाटिल 140
कुँवर नारायण के काव्य में मानवीय मूल्य–तारकेश्वर; डॉ० आर. के. पाण्डेय 144
कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका (छत्तीसगढ़ राज्य के गरियाबंद जिले के विशेष सन्दर्भ में)–डॉ० मनीषा महापात्र; वेणु कुमार साहू 148
भारतीय लोकतंत्र में सूचना के अधिकार का प्रभाव: एक अवलोकन–डॉ० मो० शर्फुद्दीन 151
सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन–निमेष कुमार सिंह; डॉ० निशात परवीन 155
मैथिली साहित्य में लोकसंगीत–डॉ० हेमलता कुमारी 161
विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (1929) का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव–अक्षय कुमार अंजनी 165
भारत में वस्तु एवं सेवा कर–शांति पुरती 168
हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों में नाथ-संप्रदाय: साधना, समाज और संस्कृति का अंतर्संबंध–दीपिका; डॉ० संजीव कुमार 170
डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा-शैली: तत्सम, तद्भव और देशज का समन्वय–शान देवी; डॉ० संजीव कुमार 174
संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता: एक तुलनात्मक अध्ययन–सोमबीर सिंह; डॉ० बाबू राम 178
दलित आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ और दलित चेतना–डॉ. बबीता काजल; प्रियंका 182
वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार का समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार सोनकर; दया शंकर 184
"राजपूत चित्रकला और मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्य धारा के सम्बन्धों का विवेचनात्मक अध्धयन"–ज्योति सिन्हा; प्रो० उमेश कुमार 187
श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवन दर्शन एवं योग शिक्षा दर्शन की उपयोगिता–अखिलेश चन्द्र यादव; डॉ० विभा सिंह 191
"ईश्वर और बाजार": जसिंता केरकेट्टा की रचना का समीक्षात्मक अध्ययन–डॉ० ज्योति गौतम 197
नगरीय सुशासन व्यवस्था उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में–प्रो० नन्द लाल भारती; मुदित कुमार सिंह 203
स्त्री पक्ष की प्रभावशाली दलील है 'तिरियाचरित्तर'–डॉ० पंकज कुमार झा 206
महिला शिक्षा और कौशल आधारित आत्मनिर्भरता : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा (SDGs) के संदर्भ में एक अध्ययन–अनु शर्मा 209
सूचना क्रांति तथा दूरस्थ शिक्षा बिहार के सन्दर्भ में: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० अरविन्द कुमार पूर्वे 215
उच्च शिक्षा में छात्राओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियों और समाधान का समाजशास्त्रीय अध्ययन (कौशाम्बी जिले के सन्दर्भ में)–डॉ० सन्तेश्वर कुमार मिश्र; क्रीती सिंह 219
"समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था का रूपांतरण: उभरती चुनौतियाँ एवं संभावनाओं का विश्लेषण"–डॉ० अजीत सिंह 222

GST Reforms 2.0 और इसका भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल

विभागाध्यक्ष, लेखा एवं विधि विभाग (वाणिज्य संकाय) एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0)

सारांश-

1 जुलाई 2017 से लागू वस्तुकर एवं सेवाकर (GST) ने भारत की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में उल्लेखनीय सुधार किया। तदुपरांत GST का mafly की 56वीं बैठक की सिफारिशों के फलस्वरूप 22 सितम्बर 2025 से GST Reforms 2.0 (या Next Generation GST) लागू किया गया। इसका उद्देश्य कर दरों का सरलीकरण, कर अनिश्चितताओं व अनुपालन-भार को घटाना, उपभोक्ताओं के लिये राहत तथा राजस्व-प्रणाली की दक्षता बढ़ाना है। इस शोध-पत्र में GST Reforms 2.0 के प्रमुख तत्त्वों की रूपरेखा, इसके तात्कालिक तथा मध्य-कालिक आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण, MSME/उपभोक्ता/निर्यातकों पर पड़ने वाले प्रभाव और नीतिगत निहितार्थों का विवेचन किया गया है। प्रमुख निष्कर्ष यह हैं कि GST 2.0 ने दर-सरलीकरण और डिजिटलाइजेशन के माध्यम से उपभोग को प्रोत्साहन देने तथा कर-आधार विस्तारित करने की क्षमता दिखाई है, किन्तु राज्य-राजस्व संतुलन, ITC-अनुपालन जटिलताएँ और संक्रमण-कालीन असर अभी भी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं।

मुख्य शब्दः GST Reforms 2.0, दर-सरलीकरण (Rate Rationalisation), ई-इनवॉइसिंग, इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC), राजस्व स्थिरता, MSME, डिजिटल अनुपालन।

1. प्रस्तावना

GST (CGST/SGST/IGST) ने 2017 में कई केंद्रीय व राज्य स्तर के अप्रत्यक्ष करों को प्रतिस्थापित कर "एक राष्ट्र, एक कर" का लक्ष्य दिया। समय के साथ GST में कई तकनीकी और नीति-सुधार हुए। 2025 में प्रधानमंत्री के संबोधन और बाद में हुई GST Council की 56वीं बैठक में 'Next-Generation GST" के रूप में व्यापक दर-सरलीकरण व प्रशासनिक सुधारों की अनुशंसा की गयी और उनके अनुपालन हेतु नोटिफिकेशन्स/FAiQs जारी की गयीं, जिनके अंतर्गत 22 सितंबर 2025 से कई दर-परिवर्तन और नियम प्रभावी किये गए। इन सुधारों का उद्देश्य कर-सिस्टम को और सरल, नागरिक-हितैषी तथा व्यवसाय-मैत्रीपूर्ण बनाना था।

2. GST Reforms 2.0 - अर्थ तथा प्रमुख घटक

GST Reforms 2.0 का अर्थ केवल दर-परिवर्तन नहीं, बल्कि चार प्रमुख आयामों का समेकित सुधार है।

1. दर-सरलीकरण (Rate Rationalisation): कई स्लैबों (5 प्रतिशत, 12 प्रतिशत, 28 प्रतिशत) को घटाकर सरल स्लैब (5 प्रतिशत एवं 18 प्रतिशत) बनाना और अनावश्यक उच्च दरों को कम करना कुछ "लक्सरी/सिन" वस्तुएँ अधिक दर(40 प्रतिशत) पर बनाए रखना। इस बदलती दर-तालिका का औपचारिक नोटिफिकेशन (Notification No- 09/2025-CT(Rate)) जारी हुआ।
2. डिजिटल अनुपालन का विस्तार: ई-इनवॉइसिंग का व्यापक विस्तार, पंजीकरण-सुधार और फेशलेस/ऑटोमैटेड रिटर्न-प्रोसेसिंग के और उन्नयन। FAiQ और CBIC/ GST-Council के दिशानिर्देशों से स्पष्ट किया गया कि डिजिटल-माध्यम पर जोर रहेगा।
3. राजस्व-वितरण व क्षतिपूर्ति (State-Centre Fiscal Measures): राज्यों के राजस्व-वित्त पर प्रभाव का ध्यान रखते हुए मुआवजा/फेज-इन नियम और ट्रांजिशन अलाउंस की रूपरेखा तैयार की गयी। (GST Council press release में इन बिंदुओं पर बल दिया गया)।
4. योजनात्मक छूट/बंदिशें एवं सिस्टम-क्लीन-अप: फर्जी आईटीसी, इनवॉइस-फ्रॉड आदि पर संबन्धित निगरानी व डेटा-एनालिटिक्स का उपयोग कर कर-लीकेज रोकने के उपाय तेज किए गए।

3. साहित्य-समीक्षा

1. Dr. Balaji NP (2025)- Impact of GST 2.0 Reforms on the Indian Economy- इस शोध पत्र में GST 2.0 को 2017 के बाद सबसे महत्वपूर्ण कर सुधार बताया गया है। इस अध्ययन में मुख्य रूप से GST के स्लैव संरचना को सरल करते हुये दो मुख्य स्लैब (5 प्रतिशत और 18 प्रतिशत) और कुछ चयनित वस्तुओं के लिए 40प्रतिशत डिमेरिट रेट लागू करने का अर्थव्यवस्था पर प्रभाव देखा गया है। यह शोध पत्र बताता है कि इससे

उपभोक्ता कर बोझ कम होगा, खपत में वृद्धि होगी और कई क्षेत्रों जैसे थ्डब्ळ, मोटर, हाउसिंग, हेल्थकेयर आदि में विकास को बढ़ावा मिलेगा। हालांकि मध्यावधि में राजस्व जोखिम को भी रेखांकित किया गया है।

2. Dr. M. Reddi Naik - Dr. E. Gipi (2025) - Analysis of Impact of GST 2.0 and Tax Reforms- इस अध्ययन में GST 2.0 को कीमतों में कमी, व्यवसायों की प्रतिस्पर्धात्मकता में वृद्धि और नये उद्योगों के लिए अनुकूल माहौल उत्पन्न करने वाला बताया गया है।
3. Dr. M. Yamuna Kilaru & Dr. G Steeven Raju- GST 2.0 Reforms for a New Generation- इस शोध पत्र में बताया गया है कि कर दरों का तर्किकरण कम कीमतों से गृहस्थी की बचत और इसे व्यवसायों तथा डैडम् के विकास से अर्थव्यवस्था को बल मिलेगा।
4. Dr. Rajashree Upadhyay & Dr. Mahesh Kumar Kurmi- GST 2.0 and Consumer Welfare- इस शोध पत्र में GST 2.0 के अर्थव्यवस्था के विभिन्न घटकों जैसे कराधान उपभोग और सामाजिक आर्थिक संकेतकों पर विस्तृत प्रभाव का विश्लेषण किया गया है। इस शोध पत्र में उपभोक्ता की जेब पर राहत की व्याख्या प्रमुख रूप से की गई है।
5. Dr. Dilip Kumar A. Ode-Impact of the New GST Structure 2025 - इस शोध पत्र का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि GST 2.0 से मुद्रा स्फीति में कमी होगी एवं जीडीपी को प्रोत्साहन मिलेगा।

4. अध्ययन के उद्देश्य

1. GST Reforms 2.0 के प्रमुख प्रावधानों का व्यवस्थित विवेचन करना।
2. इन सुधारों के उपभोक्ता-मूल्य, विनिर्माण/खुदरा मांग, MSME अनुपालन और निर्यात प्रतिस्पर्धा पर प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. राजस्व संग्रह व राज्य-वित्त पर संभावित प्रभाव का आकलन करना।
4. संक्रमण-कालीन चुनौतियाँ और दीर्घकालिक अवसर चिन्हित कर नीतिगत सुझाव देना।

5. अनुसंधान-पद्धति

शोध विधि: मिश्रित-विधि (Mixed Methods)- द्वितीयक आँकड़ों का मात्रात्मक तथा गुणात्मक विश्लेषण। प्रमुख स्रोतों में GST Council/PIB press release, Notification 09/2025, CBIC वेबसाइट व प्रमुख कर-विश्लेषण पोर्टल शामिल हैं। प्राथमिक विशेषज्ञ-राय (CA/Tax professional) व मीडिया-इंटरव्यू के संक्षेपित निष्कर्षों का भी उपयोग किया गया है।

6. विश्लेषणात्मक अध्ययन (Analytical Study)

6.1 दर-सरलीकरण

2025 के निर्णयों में कई वस्तुओं की दरें नीचे लाई गयीं और कुछ स्लैबों का समेकन किया गया- उदाहरण के लिए छोटी-उपभोक्ता वस्तुओं (सोप, टूथपेस्ट, शैम्पू) पर दरों में कमी की गयी जिससे इन वस्तुओं पर आधिकारिक तौर पर कर भार कम हुआ और उपभोक्ता- शक्ति में बृद्धि की आशा जताई गयी। आधिकारिक नोटिफिकेशन व GST-Council FAiQs में यह स्पष्ट है कि संशोधित दरें 22 सितंबर 2025 से लागू कर दी गयीं।

इकोनॉमिक तर्क: दरों में कटौती शॉर्ट-टर्म में उपभोग को प्रोत्साहित कर सकती है- विशेषकर नॉन-ड्यूरेबल्स पर-जिससे मांग-समर्थन मिलेगा। Reuters तथा सरकारी प्रेस-नोट के मुताबिक सरकार ने इसका प्रभाव घरेलू मांग बढाने के इरादे से बताया।

6.2 राजस्व प्रभाव

सरकार का दृष्टिकोण है कि कर-कटौती के बावजूद कर-आधार का विस्तार और उच्च अनुपालन से शीघ्र ही राजस्व रिकवरी सम्भव है। आधिकारिक च्ठ्ठ प्रेस-नोट और GST Council रिपोर्ट में राजस्व-प्रक्षेपण तथा फेज-इन मैकेनिज्म का उल्लेख है ताकि राज्यों को राजस्व का बड़ा झटका न लगे।

6.3 MSME और अनुपालन

MSME-समूहों के लिये दोहरे प्रभाव हैं: (अ) दर-सरलीकरण से कुछ उत्पादों में आसान बिक्री और मांग वृद्धि, पर (ब) डिजिटल अनुपालन/ई-इनवॉइसिंग के विस्तार से शुरुआती तकनीकी/प्रशासनिक बोझ बढ़ सकता है। GST FAiQs में स्पष्ट किया गया कि कुछ छूट/सरलीकरण MSME-मैत्रीपूर्ण बनाए जाएँगे किन्तु वास्तविक प्रभाव पोर्टल-प्रशिक्षण और क्रेडिट-मैनेजमेंट पर निर्भर करेगा।

6.4 इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) एवं आपूर्ति-श्रृंखला प्रभाव

दर-परिवर्तन के साथ ITC-रिवर्सल, आईटीसी समायोजन और इनवॉइस-मैचिंग से संबंधित अनुभव महत्वपूर्ण है। GST Council FAiQs ने ITC के रिवर्सल के मामलों को स्पष्ट किया है; व्यवसायों को ITC-रिवर्सल व अपडेशन के नियमों का पालन करना होगा-यहाँ प्रशासनिक क्षमता की आवश्यकता है।

6.5 उपभोक्ता-मूल्य पर प्रभाव (Impact on Consumer Prices)

सरकार के लक्ष्य के अनुरूप रोज-मर्रा के उपभोग्य वस्तुओं पर कर कटौती का मतलब सीधे तौर पर उपभोक्ता-मूल्य में कमी है- जिससे घरेलू माँग बढ़ सकती है। मीडिया रिपोर्ट्स व सरकारी प्रेस-नोट में यह तर्क दिया गया कि इससे लगभग 2 लाख करोड़ का प्रवाह अर्थव्यवस्था में आयेगा (सरकार के अनुमान/आइडिया के रूप में)। पर वास्तविक प्रभाव विदेशी आयात/आपूर्ति-श्रृंखला व मूल्य-वृद्धि पर निर्भर करेगा।

6.6 अंतर-राज्यीय व्यापार व लॉजिस्टिक्स (Inter-State Trade - Logistics)

GST 2.0 के साथ डिजिटल ट्रैकिंग (ई-वे बिल/ई-इनवॉइस) में सुधारों ने लॉजिस्टिक्स दक्षता को और बढ़ाया है, जिससे ट्रक टर्नअराउंड टाइम और चेक-पोस्ट समय घटने की उम्मीद रहेगी- यह निर्यात-प्रतिस्पर्धा में सहायक होगा। पूर्व के अनुभवों से पता चला है कि इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम से लॉजिस्टिक्स लागत घटती है; 2025 के सुधार इसे और मजबूती दे सकते हैं।

7. विश्लेषणात्मक निष्कर्ष (Analytical Findings)

1. दर-सरलीकरण से उपभोग को मजबूत करने का तात्कालिक प्रभाव सम्भव- विशेषकर नॉन-ड्यूरेबल्स में। सरकार के अनुमान और Reuters/मीडिया रिपोर्ट्स इस नीति-लक्ष्य का समर्थन करते हैं।
2. राजस्व-प्रभाव मिश्रित रहेगा: शॉर्ट-टर्म में कुछ राजस्व-छूटें दिख सकती हैं, पर मध्यम अवधि में अनुपालन व कर-आधार विस्तार से रिकवरी सम्भव है- GST Council ने इसी आधार पर फेज-इन व्यवस्था प्रस्तावित की।
3. MSME पर संक्रमण-लागत मौजूद है, पर दीर्घकाल में बाजार व विक्रय-विकास से लाभ भी मिलेगा। डिजिटल समर्थन और प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है।
4. ITC-समस्या व इनवॉइस-मैचिंग पर सतत् निगरानी आवश्यक है; डेटा-एनालिटिक्स और फेशलेस असेसमेंट से फर्जी बिलिंग घट सकती है पर सिस्टम-इम्प्लीमेंटेशन महत्वपूर्ण है।
5. राज्य-वित्तीय संतुलन का मुद्दा सेंट्रल नीति के लिये महत्वपूर्ण चुनौती- इसे फेज-इन तथा केंद्रीय-राज्य समन्वय से मैनेज करना होगा।

8. नीतिगत सुझाव (Policy Recommendations)

1. ट्रांजिशन-फंड/फेज-इन मिकैनिज्म का स्पष्ट रोडमैप: राज्यों को शॉर्ट-टर्म राजस्व-विरोध से बचाने हेतु फेज-इन मैकेनिज्म व केंद्र-राज्य सहमति का निरन्तर पालन किया जाना चाहिए।
2. MSME-सपोर्ट पैकेज: ई-इनवॉइस पोर्टल, ट्रेनिंग, सॉफ्टवेयर सब्सिडी और छोटे करदाताओं के लिये त्वरित हेल्प-डेस्क की व्यवस्था होनी चाहिए।
3. ITC-रूलिंग और स्पष्ट निर्देश: ITC रिवर्सल के मामले स्पष्ट किये जाने चाहिए और व्यवहारिक मार्गदर्शन जारी किये जायें ताकि ट्रांजरैक्शन कन्फ्यूजन घट सके।
4. डाटा-एनालिटिक्स व एनफोर्समेंट: फर्जी बिलिंग पर सख्ती के साथ-साथ प्रोएक्टिव ट्रेनिंग और प्रो-कम्प्लायंस उपाय अपनाएं।
5. सार्वजनिक-प्रमुखता व संवाद: व्यापारी, उद्योग और प्रौद्योगिकी प्रदाताओं के साथ लगातार संवाद कर नीति-समायोजन करें।

9. निष्कर्ष (Conclusion)

GST Reforms 2.0 ने भारतीय अप्रत्यक्ष कर ढांचे में एक नयी दृष्टि और त्वरित बदलाव का मार्ग प्रशस्त किया है। दर-सरलीकरण व डिजिटल अनुपालन के संयुक्त प्रयास से उपभोग-वृद्धि, कर-आधार विस्तार और व्यापार-सुगमता में सुधार संभव है। परन्तु उपलब्ध आधिकारिक निर्देशों और तात्कालिक आँकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट है कि प्रशासनिक कार्यान्वयन, राज्य-वित्तीय समन्वय और MSME-समर्थन नीतियाँ तय करने के लिये सतत् प्रयास आवश्यक हैं। दीर्घकालिक सफलता के लिये GST 2.0 का पूरी तरह प्रभावी, पारदर्शी और सहयोगात्मक क्रियान्वयन आवश्यक है।

Bibliography:- प्रमुख संदर्भ

1. Dr. Balaji NP(2025) Impact of GST 2.0 Reforms on the Indian Economy- International Jouran for Novel Research in Economics, Finance and Management.
2. Dr. M.Reddi Naik & Dr. E. Gopi (2025)- Analysis of Impact of GST 2.0 and Tax Reforms on Difference Sectors- International Education and Research Journal.
3. Dr. Yamuna Kilaru and Dr. G. Steeven Raju- GST 2.0 Reforms for a New Generation: Lighter on the Pocket, Brighter for the Future, International Joural of Multidisciplinary Research.
4. Dr. Raj Shree Upadhyay and Dr. Mahesh Kumar Kurmi- GST 2.0 and Consumer Welfare : Assessing the Affordability Dividend, International Journal for Research in Applied Sciene and Engineering Technology.
5. Dr. Dileep Kumar A. Ode (2025)- Impact of the New GST Structure 2025- on the Indian Economy- International Journal of Social Impact.
6. Recommendations of the 56th Meeting of the GST Council (Press Release), Ministry of Finance / PIB (03 Sept 2025).
7. Press Release: GST Reforms 2025 - Next-Generation GST (PIB documents and FAQs).
8. Notification No- 09/2025-Central Tax (Rate) - (G.S.R. 641(E)) (Central Rate Notification PDF).
9. GST Council FAQs on decisions of the 56th meeting (FAQ PDF).
10. Tax analysis and consolidated HSN-wise lists: TaxGuru /ClearTax/ Tax portals (September 2025 coverage).
11. CBIC Official GST Portal - updates and Helpline information-
12. Reuters report: "India cuts consumption tax to spur domestic demand" (03 Sept 2025).

बिहार की कृषि समस्याएं और समाधानः एक समीक्षा

देव नारायण महतो

शोध छात्र, अर्थशास्त्र, स्नातकोत्तर विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० नवल किशोर बैठा

एसोसिएट प्रोफेसर/प्राचार्य, एस. एन. एस. महाविद्यालय, मोतिहारी

सारांश

कृषि, बिहार की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। 2011 की जनगणना के अनुसार, बिहार में लगभग 74% कार्यबल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों पर निर्भर है। बिहार की लगभग 88.7% आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, इसलिए कृषि क्षेत्र राज्य की अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2017–18 में बिहार के सकल राज्य मूल्य संवर्धन (जीएसवीए) में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 20% रहा।बिहार की कृषि रोजगार के अवसर पैदा करने, गरीबी कम करने और आजीविका में सुधार लाने में सहायक है। वर्ष 2000 में बिहार के विभाजन के कारण, अधिकांश खनिज संसाधन वर्तमान में झारखंड में हैं। परिणामस्वरूप, बिहार में कृषि ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें सबसे अधिक संभावनाएं हैं।

मूल शब्दः कृषि, कृषि–जलवायु, बिहार की अर्थव्यवस्था, राष्ट्रीय किसान आयोग, राष्ट्रीय भंडारण निगम, समस्याएं, समाधान

प्रस्तावना

बिहार भारत के पूर्वी भाग में स्थित है। यह राज्य उत्तर में नेपाल, पूर्व में पश्चिम बंगाल, पश्चिम में उत्तर प्रदेश और दक्षिण में झारखंड से घिरा हुआ है। पूर्वी और उत्तरी भारत के विशाल बाजारों से निकटता, कोलकाता और हल्दिया जैसे बंदरगाहों तक पहुंच और पड़ोसी राज्यों से कच्चे माल के स्रोतों और खनिज भंडारों की उपलब्धता के कारण राज्य को एक अनूठा भौगोलिक लाभ प्राप्त है।[1]

बिहार के सकल राज्य घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) में 2015–16 से 2019–20 के बीच 13.27% की वार्षिक वृद्धि दर (सीएजीआर) दर्ज की गई। प्रति व्यक्ति शुद्ध राज्य घरेलू उत्पाद (एनएसडीपी) में भी मजबूत वृद्धि देखी गई है। वर्तमान कीमतों पर, राज्य के प्रति व्यक्ति एनएसडीपी में 2016 से 2021 के बीच 13.41% (रुपये में) की सीएजीआर वृद्धि हुई।

बिहार, कृषि प्रधान राज्यों में से एक है। बिहार में कृषि उत्पादन में कार्यरत जनसंख्या का प्रतिशत लगभग 80% है, जो राष्ट्रीय औसत से कहीं अधिक है। यह भारत में सब्जियों का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक और फलों का आठवां सबसे बड़ा उत्पादक है। खाद्य प्रसंस्करण, डेयरी, चीनी, विनिर्माण और स्वास्थ्य सेवा राज्य के कुछ तेजी से विकसित हो रहे उद्योग हैं। राज्य ने शिक्षा और पर्यटन जैसे अन्य क्षेत्रों के विकास के लिए भी योजना बनाई है और सूचना प्रौद्योगिकी और नवीकरणीय ऊर्जा के लिए प्रोत्साहन भी प्रदान करता है।[2]

बिहार को देश में दूसरी हरित क्रांति का केंद्र माना जाता है। राष्ट्रीय किसान आयोग सहित कई रिपोर्टों में देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए पूर्वी भारत में कृषि के तीव्र विकास की आवश्यकता पर बल दिया गया है। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम ने कृषि को बिहार की मुख्य क्षमता बताया था।[3]

बिहार में कृषि और संबद्ध क्षेत्र सकल घरेलू उत्पाद (जीएसडीपी) में 18.9 प्रतिशत का योगदान करते हैं। कृषि जोत छोटी और बिखरी हुई हैं। लगभग 1.61 करोड़ कृषि जोत हैं, जिनमें से 91 प्रतिशत सीमांत कृषि हैं। बिहार का जल क्षेत्र कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 3.9 प्रतिशत है। बिहार फल और सब्जी उत्पादन में अग्रणी राज्य है।

कृषि बिहार की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। 2011 की जनगणना के अनुसार, बिहार में लगभग 74% कार्यबल प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और उससे संबंधित गतिविधियों पर अपनी आजीविका के लिए निर्भर है। बिहार की लगभग 88.7% आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, इसलिए कृषि क्षेत्र राज्य की अर्थव्यवस्था के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[4]

2021–22 में बिहार के सकल राज्य मूल्य संवर्धन (जीएसवीए) में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 26% रहा। बिहार की कृषि रोजगार सृजन, गरीबी उन्मूलन और आजीविका में सुधार लाने में सहायक है। वर्ष 2000 में बिहार के विभाजन के कारण, अधिकांश खनिज संसाधन वर्तमान में झारखंड में स्थित हैं। परिणामस्वरूप, बिहार में कृषि ही एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जिसमें अपार संभावनाएं हैं।[5]

बिहार में कृषि-जलवायु क्षेत्र

मिट्टी की संरचना, वर्षा, तापमान और स्थलाकृति के आधार पर बिहार में चार कृषि-जलवायु क्षेत्र हैं। ये कृषि-जलवायु क्षेत्र निम्नलिखित प्रकार के हैं-

- जोन-1: उत्तर-पश्चिम जलोढ़ मैदान।
- जोन-2: उत्तर-पूर्वी जलोढ़ मैदान।
- जोन-3 (ए): दक्षिण-पूर्व जलोढ़ मैदान।
- जोन-3 (बी): दक्षिण-पश्चिम जलोढ़ मैदान।

बिहार के चार कृषि-जलवायु क्षेत्रों में से, क्षेत्र-1 और 2 गंगा नदी के उत्तर में स्थित हैं। वहीं, क्षेत्र-3 पूरी तरह से गंगा के दक्षिण में स्थित है। हालांकि, बिहार में आने वाली बाढ़ से उत्तरी कृषि-जलवायु क्षेत्र यानी क्षेत्र-1 और 2 को भारी नुकसान होता है।

वर्षा की दृष्टि से, जोन-3 में सबसे कम वर्षा होती है, जबकि कृषि-जलवायु जोन-1 और 2 में क्रमशः मध्यम और अधिक वर्षा होती है। हालांकि, मानसून के दौरान जोन-2 में वर्षा सबसे अधिक (1105.9 मिमी) होती है।[6]

कृषि-जलवायु क्षेत्र-1

स्थलाकृति के अनुसार, जोन-1 दक्षिण-पूर्व दिशा की ओर ढलान वाला है, जिसमें बहुत कम ढलान वाले जलोढ़ मैदान हैं। इस जोन में स्थित सारण, वैशाली और समस्तीपुर नदियाँ जलमग्न हैं। इस जोन का पश्चिमी भाग अध्वारा नदी प्रणाली के प्रभाव में है, जैसे गंडक, बूढ़ी गंडक और घाघरा। भूवैज्ञानिक दृष्टि से, इस जोन में चूनायुक्त पिंड पाए जाते हैं। इस जोन के छह प्रमुख मृदा समूह निम्नलिखित हैं।

- उप-हिमालयी और वन मृदा
- हाल की जलोढ़ तराई मिट्टी
- युवा जलोढ़ चूनायुक्त मिट्टी
- युवा जलोढ़ चूनायुक्त खारी मिट्टी
- युवा जलोढ़ गैर-चूनायुक्त, गैर-खारी मिट्टी
- हाल ही में निर्मित जलोढ़ चूनायुक्त मिट्टी

कृषि-जलवायु क्षेत्र-2

यह कृषि-जलवायु क्षेत्र कोसी, गंगा, महानंदा और उनकी सहायक नदियों द्वारा लाए गए तलछट से निर्मित जलोढ़ मैदानों से चिह्नित है। साथ ही, यह क्षेत्र कोसी नदी के कारण आने वाली बाढ़ों से भी प्रभावित है। स्थलाकृति के अनुसार, मैदानों का सामान्य ढलान दक्षिण-पूर्व की ओर है।

कृषि-जलवायु क्षेत्र-1 के विपरीत, इस क्षेत्र की मिट्टी में कैल्शियम की मात्रा कम होती है, लेकिन यह अम्लीय खनिजों से भरपूर होती है। सहरसा, पूर्णिया के पश्चिमी भाग और कटिहार जिले में लवणता और क्षारीयता अधिक पाई जाती है। इस क्षेत्र की मिट्टी के तीन प्रमुख समूह निम्नलिखित हैं।

कृषि-जलवायु क्षेत्र-3

इस क्षेत्र के मैदानी इलाकों में गंगा नदी और दक्षिण से आने वाली छोटीनागपुर पठार की नदियों द्वारा निर्मित जलोढ़ और लाल एवं पीली मिट्टी पाई जाती है। यह क्षेत्र-3 बक्सर से भागलपुर तक फैले ताल नामक बैकवाटर से चिह्नित है। स्थानीय रूप से, ताल भूमि को दियारा भूमि के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र में मिट्टी के मुख्य समूह निम्नलिखित हैं।

- हाल ही की जलोढ़ चूनायुक्त मिट्टी।
- तली मिट्टी, हल्की धूसर, गहरी धूसर मध्यम से भारी बनावट वाली मिट्टी।
- प्राचीन जलोढ़ लाल-पीली, पीली-भूरी शताब्दी की मिट्टी।
- पुरानी जलोढ़, धूसर-पीली, भारी बनावट वाली और दरार पड़ने वाली मिट्टी।
- हाल ही में निर्मित जलोढ़ भूगर्भीय मिट्टी, पीले से लाल-पीले रंग की, गैर-चूनायुक्त और गैर-खारी मिट्टी।
- पहाड़ियों की तलहटी की पुरानी जलोढ़ पीली से लाल-पीली मिट्टी।
- पुरानी जलोढ़ खारी और खारी-क्षारीय मिट्टी।
- जिला स्तर पर भूमि उपयोग का स्वरूप

कैमूर, जमुई, पश्चिम चंपारण, गया, रोहतास और नवादा जैसे जिलों में मिलाकर कुल 5.06 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र है, जो बिहार के कुल वन क्षेत्र के 80% से अधिक है।

बिहार की कृषि को बहुआयामी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। बिहार में कम उत्पादकता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं।[7]

बिहार की कृषि के सामने प्रमुख चुनौतियाँ

अनियमित मानसून: हालांकि बिहार के जल संसाधन प्रचुर मात्रा में हैं और यहां औसतन 999 मिमी वर्षा होती है, फिर भी मानसून के आगमन में वर्ष-दर-वर्ष होने वाली भिन्नता के कारण बिहार में बाढ़ और सूखे जैसी स्थिति एक साथ उत्पन्न होती है।

जल की बर्बादी: बिहार में बाढ़ सिंचाई की वर्तमान विधि से लगभग 35% जल की बर्बादी होती है। सिंचाई के लिए मोड़े या पंप किए गए जल का लगभग 60% अपवाह, वाष्पोत्सर्जन, रिसाव और रिसने के माध्यम से बर्बाद हो जाता है।

तकनीकी कारक: राज्य में दो कृषि विश्वविद्यालय, पाँच कृषि महाविद्यालय, एक बागवानी महाविद्यालय, एक कृषि अभियांत्रिकी महाविद्यालय, एक दुग्ध प्रौद्योगिकी महाविद्यालय और एक पशु चिकित्सा महाविद्यालय हैं। सभी 38 जिलों में कार्यरत कृषि विज्ञान केंद्र (केवीके) हैं। आईसीएआर की भी उपस्थिति है, जिसका पूर्वी राज्यों का क्षेत्रीय मुख्यालय पटना में है। इसके अलावा, राज्य में लीची और मखाना के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान केंद्र स्थापित हैं। हालांकि, किसानों द्वारा आधुनिक तकनीकों को अपनाने की धीमी गति के कारण राज्य की उत्पादकता कम बनी हुई है। फसल पद्धति में अनाजों का प्रभुत्व राज्य की कृषि की निर्वाह प्रकृति को दर्शाता है। संस्थागत विस्तार प्रणाली के सामने किसानों के खेतों तक नवीनतम तकनीकों को पहुंचाने की चुनौती है। भूमि का छोटा आकार : बिहार में भूमि का आकार बहुत छोटा है, जो छोटे किसानों को सहायक व्यवसाय का सहारा लेने के लिए विवश करता है। 90% से अधिक भूमि जोत सीमांत जोत की श्रेणी में आती है, जिनका कृषि क्षेत्र 1 हेक्टेयर से कम है।[8]

कृषि में निवेश में गिरावट: कृषि-जलवायु क्षेत्रों में उच्च जोखिम और अनिश्चितता, कीमतों, उत्पादकता आदि के कारण कृषि क्षेत्र में वित्तपोषण एक समस्या बन गया है। किसान क्रेडिट कार्ड के धीमे कार्यान्वयन से छोटे किसान गैर-संस्थागत ऋण स्रोतों पर अत्यधिक निर्भर हो जाते हैं। साहूकार अत्यधिक ब्याज दर वसूलते हैं और किसान भारी कर्ज के जाल में फंस जाते हैं।

खरपतवार: खरपतवार सीधे तौर पर मिट्टी के पोषक तत्वों और नमी को कम कर देते हैं, जिससे फसल की पैदावार घट जाती है।

बीज संबंधी समस्याएं: बीजों की अत्यधिक कीमतों के कारण, अधिकांश किसान, विशेषकर लघु एवं सीमांत किसान, अच्छी गुणवत्ता वाले बीजों से वंचित हैं। यूरिया की स्थिर कीमत और पोटाश एवं फास्फोरस की बढ़ती कीमतों के कारण किसान पोटाश एवं फास्फोरस की तुलना में अधिक यूरिया का उपयोग करते हैं।

अपर्याप्त विपणन और प्रसंस्करण: खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों और विपणन सुविधाओं की कमी के कारण, किसान अपनी फसलों को कम कीमतों पर बेचने के लिए मजबूर होते हैं।

बाढ़ और सूखा: बिहार में बाढ़ और सूखा दोनों एक साथ पड़ते हैं। बिहार में बाढ़ के बारे में पूरा लेख पढ़ने के लिए यहां क्लिक करें।

भूमि संबंधी समस्याएं: 91 प्रतिशत से अधिक जोत 1 हेक्टेयर से कम क्षेत्रफल वाली सीमांत जोतों की श्रेणी में आती हैं। ऐसी प्रत्येक जोत छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटी हुई है। भूमि संबंधी अभिलेख अप्रचलित हैं, जिससे किसी भी प्रकार का संस्थागत निवेश लगभग असंभव हो जाता है। लघु कृषि से पैमाने की अर्थव्यवस्था के लिए गंभीर समस्याएं उत्पन्न होती हैं।[9]

वर्षा आधारित कृषि: राज्य की कृषि अभी भी मानसून पर बहुत अधिक निर्भर है। पिछले 5 वर्षों में लगातार चार वर्षों तक सूखा या सूखे जैसी स्थिति रही है। खरीफ की फसलें लगभग एक जुआ हैं, जिससे महंगे इनपुट में निवेश की संभावना बहुत कम रह जाती है। नहरों से सिंचाई बहुत कम होती है। सिंचाई मुख्य रूप से (70%) डीजल आधारित ट्यूबवेल पर निर्भर है। डीजल आधारित सिंचाई की उच्च लागत इसे रबी फसलों के लिए भी एक बहुत ही मुश्किल विकल्प बना देती है।

बुनियादी ढांचे की कमी: राज्य में कृषि क्षेत्र के त्वरित विकास के लिए सड़क संपर्क, भंडारण गोदाम और बिजली की उपलब्धता अपर्याप्त है।[10]

संस्थागत ऋण की कमी: किसान क्रेडिट कार्ड के कार्यान्वयन की धीमी गति के कारण बड़ी संख्या में किसान उच्च लागत वाले गैर-संस्थागत ऋण स्रोतों पर निर्भर हैं, जिससे आधुनिक कृषि इनपुट के उपयोग और आधुनिक प्रौद्योगिकी को अपनाने में गंभीर बाधा उत्पन्न हो रही है।

Agro-climatic Zones of Bihar

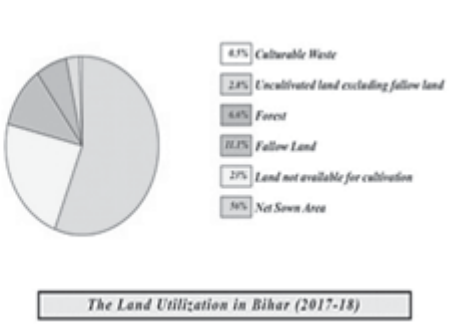

The Land Utilization in Bihar (2017-18)

राज्य भण्डारण निगम

राष्ट्रीय भंडारण निगम के राज्यों 19 सहयोगी भंडारण निगम हैं। 31.03.2022 की स्थिति अनुसार केन्द्रीय भंडारण निगम का कुल निवेश, जो राज्य भंडारण निगमों की ईक्विटी पूंजी में 50 प्रतिशत का हिस्सेदार है, 64.82 करोड़ रूपये का रहा है। 01.10.2022 की स्थिति के अनुसार देश में राज्य भंडारण निगम

कुल 387.53 लाख मीट्रिक टन की कुल क्षमता के साथ 2426 भंडार गृहों को संचालित कर रहे थे। भण्डागार विकास एवं विनियामक प्राधिकरण, भण्डागारण (विकास और विनियमन) अधिनियम, 2014 के अंतर्गत 28.10.16 को गठित किया गया है। इसका मुख्य कार्य देश में समुचित भण्डागार प्रणाली को कार्यान्वित करना, प्रत्यायन एजेसियों को पंजीकृत करना, पर्याप्त सुविधाओं और रक्षापायों वाले भण्डागारों जो मानदण्डों को पूरा करते हैं तथा पंजीकरण करना है जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में नकदी को बढ़ाने एवं सप्लाई चेन को बढ़ावा देने के लिए जमाकर्ताओं और बैंकों के विश्वास में सुधार लाया जा सके। भाण्डागार प्राधिकरण ने एक विशेष परिवर्तन योजना आरंभ की है जिसमें कार्यो हेतु डिजिटल प्रणालियों को लागू की व्यवस्था की गई। राज्य में भंडारण के आभाव में प्रति वर्ष करोड़ों की फसले, फल और सब्जियों का नुकसान होता है। बिहार के ग्रामीण इलाकों में अच्छे भंडारण की सुविधाओं की कमी है। ऐसे कृषकों पर अतिशीघ्र अपना फसल का सौदा करने का दबाव होता है और कई बार किसान औने-पौने दामों में अपने उत्पादों का सौदा कर लेते हैं। भंडारण सुविधाओं को लेकर न्यायालय ने भी कई बार केंद्र और राज्य की सरकारों को डांट भी लगाई है लेकिन जमीनी स्थिति और भंडारण के अभाव में कृषकों की जीवन पद्धति में विशेष बदलाव नहीं आया है।[11]

निष्कर्ष

राज्य सरकार ने बिहार में कृषि गोदामों के कमी को दूर करने के लिए बिहार राज्य गोदाम योजना 2022 प्रारंभ की गई है, जिसके अंतर्गत राज्य सरकार कृषकों को अनाज भंडारण करने के लिए गोदाम बनाने में 5 से 9 लाख रूपए तक का अनुदान देने की बात कही है। इस योजना को प्रारंभ करने का प्रमुख उद्देश्य कृषकों द्वारा उत्पादित अनाज को सुरक्षित भंडारण करना है।

बिहार में कृषि उत्पादन क्षमता में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं है परंतु उत्पादों को व्यवस्थित रूप से रखने के लिए गोदामों में काफी कमी है। इस योजना के अंतर्गत मिलने वाला अनुदान का लाभ बिहार राज्य के 35 से 45 प्रतिशत कृषकों को मिल सकेगा। योजना का मुख्य उद्देश्य कृषकों के हेतु भंडारण सुविधा बढ़ाना है, जिससे उत्पाद सुरक्षित रह सके। राज्य में 2022 में बहुत कम बारिश हुई है जिससे बिहार में बारिश कम होने से सूखे के हालात पैदा हो गए थे। फलतः कृषक इस वर्ष खेतों में धान की बुआई नहीं कर पा सके हैं। इससे किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ा। बिहार के 32 जिले हैं, जहां आवश्यकता से काफी कम बारिश हुई है। बिहार कृषि इनपुट अनुदान उन जिलों के नामों को देखते हुए बिहार सरकार के द्वारा यह संभव हो सकता है कि राज्य कृषि इनपुट अनुदान 2022-23 के तहत कृषकों को लाभ दिया जाए। यदि किसी जिले का नाम इस सूची में है तो इस योजना का लाभ मिलेगा।

संदर्भ

1. चौधरी, (1999), द इण्डियन इकोनॉमी, विकास पब्लिशिंग, हाउस, नई दिल्ली। पृ0 सं.- 116 - 28
2. कुमार (2001), भारतीय कृषि विपणनः एक अध्ययन एस. चाँद एण्ड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. संख्या 317-21
3. प्रसाद (2016), नव बिहार एक भविष्य निरूपण, पटेल, फांउडेशन, पटना, पृ0 संख्या 114-18
4. मैमोरिया एवं दशोरा (1994), मानव संसाधन प्रबंध, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ0 सं. 213-216
5. राय, (1994) भारतीय कृषि विपणन नियमित बाजार के संदर्भ में, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली पृ0 सं. 97-109
6. www-agribusiness-com
7. दत्त एवं सुन्दरम (2006) भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली पृ0 सं. 312-326
8. शर्मा (2015) भारतीय अर्थवयवस्था, संस्कार प्रकाशन मुंबई पृ0. 144-162
9. पीटर, (2010) मार्केटिंग रिसर्चः एनालीसिस एण्ड मैनेजमेंट, मेग्राहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क पृष्ठ संख्या 279-81
10. जैन सी. (2015), विपणन शोध प्रबंध, रमेश बुक डिपो, नई दिल्ली पृ0 सं. 163-178
11. www.bihagri.gov.in

शहरी झुग्गी-झोपड़ियों के लिए आजीविका और आर्थिक विकास

श्रीमती अनुप्रिया कुमारी

शोध छात्रा, अर्थशास्त्र विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० नवल किशोर बैठा

एसोसिएट प्रोफेसर/प्राचार्य, एस. एन. एस. महाविद्यालय, मोतिहारी

सारांश

विश्व की एक विशाल आबादी शहरी झुग्गी-झोपड़ियों में दयनीय जीवन स्थितियों में रहती है, जो सतत विकास के लिए एक बड़ी चुनौती है। अत्यधिक भीड़भाड़, खराब अवसंरचना और सुरक्षित पानी, स्वच्छता और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाओं की अनुपलब्धता इन बस्तियों की पहचान है। शहरी झुग्गी-झोपड़ियाँ स्थानीय और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं के लिए महत्वपूर्ण हैं, विशेष रूप से अनौपचारिक आर्थिक गतिविधियों के लिए जो लाखों लोगों को आजीविका प्रदान करती हैं। अनौपचारिक क्षेत्र के कार्य जैसे सड़क पर सामान बेचना, कचरा संग्रहण और घरेलू श्रम झुग्गी-झोपड़ियों में आजीविका का मुख्य आधार हैं और निवासियों के साथ-साथ व्यापक शहरी अर्थव्यवस्था को भी सहारा देते हैं। फिर भी, इनमें से अधिकांश आजीविकाएँ अक्सर असुरक्षित होती हैं और औपचारिक रोजगार द्वारा प्रदान की जाने वाली सुरक्षा से वंचित होती हैं। इस समीक्षा में, शहरी झुग्गी-झोपड़ियों में आजीविका को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों, जिनमें गरीबी, बेरोजगारी और बुनियादी ढाँचे की कमी शामिल है, का विश्लेषण किया गया है। अनौपचारिक बाजारों और समावेशी विकास नीतियों की आवश्यकता के विशेष संदर्भ में, झुग्गी-झोपड़ियों द्वारा आर्थिक विकास के लिए प्रदान किए जाने वाले अवसरों और चुनौतियों का पता लगाया गया है। यह लेख झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्रों में आजीविका में सुधार और आर्थिक विकास को बढ़ावा देने में सरकारी नीतियों, सामुदायिक नेतृत्व वाली पहलों और सूक्ष्म वित्त जैसे हस्तक्षेपों की भूमिका पर भी प्रकाश डालता है। इन चुनौतियों को कम करना शहरी झुग्गी-झोपड़ियों को टिकाऊ और समृद्ध समुदायों में बदलने के लिए महत्वपूर्ण है, जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मुख्य शब्दः झुग्गी-झोपड़ियाँ, आजीविका, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था, गरीबी, अवसंरचना, सतत विकास, शहरीकरण, आर्थिक विकास, शहरी झुग्गी-झोपड़ियाँ, अनौपचारिक क्षेत्र, झुग्गी-झोपड़ी उन्नयन।

प्रस्तावना

भारत में शहरी गरीबी एक गंभीर समस्या है जो लाखों लोगों को प्रभावित करती है। यह तीव्र शहरीकरण, रोजगार के अवसरों की कमी और अपर्याप्त बुनियादी ढांचे सहित विभिन्न कारकों से उत्पन्न होती है। शहरी गरीबी के मूल कारणों और प्रभावों को समझना इस चुनौती से निपटने के लिए प्रभावी नीतियों और पहलों को विकसित करने हेतु आवश्यक है।

शहरी झुग्गी-झोपड़ियों में आजीविका और आर्थिक विकास के लिए अनौपचारिक अर्थव्यवस्था (जैसे छोटे व्यवसाय, हस्तशिल्प, टिफिन सेवा) महत्वपूर्ण है, जिसे शिक्षा, कौशल विकास (जैसे तकनीकी ज्ञान) और सूक्ष्म-वित्त के माध्यम से औपचारिक बनाने की जरूरत है, साथ ही सरकार द्वारा पक्के मकानों, बुनियादी सुविधाओं और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं (जैसे NULM, प्रधानमंत्री आवास योजना) के जरिए झुग्गी उन्नयन और समावेशी विकास की आवश्यकता है, ताकि निवासियों को सुरक्षित आवास और बेहतर आर्थिक अवसर मिलें और वे शहरी अर्थव्यवस्था में पूरी तरह योगदान कर सकें।[1]

यह लेख भारत में शहरी गरीबी की प्रकृति, इसके कारणों, प्रभावों और इसे कम करने में सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका का विश्लेषण करता है।

आजीविका और आर्थिक विकास के पहलूः

- अनौपचारिक क्षेत्रः झुग्गी-झोपड़ियों के निवासी अक्सर छोटे, अनौपचारिक व्यवसायों (रेडिमेड कपड़े, ब्यूटी पार्लर, टिफिन सेवा, मोटर रिवाइंडिंग) में लगे होते हैं, जो शहरी अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा हैं।
- कौशल और शिक्षाः तकनीकी ज्ञान और कौशल से छोटे व्यवसायों को बड़ा करने और आय बढ़ाने में मदद मिलती है; शिक्षा गरीबी के चक्र को तोड़ने की कुंजी है।
- उद्यमिताः झुग्गीवासियों को सूक्ष्म-व्यवसाय शुरू करने और चलाने के लिए सहायता (जैसे ICECD द्वारा) उनकी आर्थिक स्थिति सुधारती है।

सरकारी पहल और समाधानः

- शहरी नियोजन और उन्नयनः झुग्गी-झोपड़ियों को बेहतर बनाना, उन्हें पक्के मकानों (जैसे 'जहां झुग्गी, वहीं मकान') और बुनियादी सुविधाओं (पानी, स्वच्छता) से लैस करना, जो सार्वजनिक आवास से सस्ता और प्रभावी है।
- कौशल विकास और ऋणः कौशल प्रशिक्षण और किफायती आवास ऋण (ISHUP) के जरिए शहरी गरीबों को सक्षम बनाना।
- संस्थागत समर्थनः स्वयं सहायता समूहों (SHGs) और उनके संघों (federations) के जरिए वित्तीय प्रबंधन और बैंक लिंकेज में मदद करना।
- समावेशी नीतियांः नियमित रूप से झुग्गियों को अधिसूचित करना और शहरी रोजगार गारंटी अधिनियम (न्तइंद म्उचसवलउमदज ळनंतंदजमम ।बज) लागू करना।[2]

चुनौतियांः

- खग्रामीण-शहरी पलायनः ग्रामीण बेरोजगारी के कारण शहरों में आबादी का बढ़ना और झुग्गी बस्तियों का विस्तार।
- अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर निर्भरताः कई लोग औपचारिक रोजगार के अभाव में अनौपचारिक क्षेत्र पर निर्भर रहते हैं, जिससे उन्हें कम वेतन और असुरक्षा का सामना करना पड़ता है।
- नीतिगत अंतरालः जनसंख्या वृद्धि के साथ रोजगार के अवसर न बढ़ पाना और अनौपचारिक बस्तियों को मुख्यधारा में लाने के लिए पर्याप्त उपायों की कमी।[3]

ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन और झुग्गी-झोपड़ियों का विकास

विकासशील देशों में विश्व की कामकाजी उम्र की आबादी का अधिकांश हिस्सा निवास करता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प-रोजगार और बेरोजगारी ने शहरों की ओर बड़े पैमाने पर पलायन को बढ़ावा दिया है, जहां अनौपचारिक अर्थव्यवस्था ने अब तक संकटग्रस्त लोगों को कुछ हद तक आजीविका प्रदान की है।[4]

हालांकि, इन अर्ध-कुशल और अकुशल आबादी को मुख्यधारा के औपचारिक क्षेत्र में शामिल करने के लिए पर्याप्त उपायों के अभाव में, शहरी गरीबों के एकत्रीकरण से झुग्गी-झोपड़ीनुमा बस्तियों के निर्माण की समस्या बढ़ती जा रही है। नीतिगत दृष्टिकोण के अभाव के कारण यह समस्या धीरे-धीरे एक प्रवृत्ति के रूप में उभर रही है।

बिहार एक तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला राज्य है, लेकिन इसमें शहरीकरण और गैर-कृषि रोजगार की चुनौती है। कृषि पर निर्भरता कम करते हुए, शहरी विकास और समावेशी आर्थिक नीतियों (जैसे रोजगार और कौशल विकास) के माध्यम से झुग्गी-झोपड़ी के निवासियों को शामिल करना महत्वपूर्ण है, जो राज्य की वृद्धि का लाभ उठा सकें।[5]

बिहार के शहरों में मलिन बस्तियों की अर्थव्यवस्था

बिहार के शहरों की मलिन बस्तियों की अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से अनौपचारिक क्षेत्र (प्दवितउंस मबजवत) पर टिकी है, जहाँ लोग कम मजदूरी वाले, असुरक्षित और अस्थाई कामों जैसे सड़क पर सामान बेचना, निर्माण कार्य, घरेलू काम, और दिहाड़ी मजदूरी करते हैं, जिससे उन्हें रोजी-रोटी मिलती है लेकिन कोई सामाजिक सुरक्षा नहीं होती; ये बस्तियाँ गरीबी और खराब बुनियादी ढांचे (जैसे पानी, स्वच्छता, और आवास) से जूझती हैं, जबकि सरकारी योजनाएँ (जैसे च्ड।ल) इन्हें सुधारने का प्रयास कर रही हैं, लेकिन भूमि स्वामित्व और कार्यान्वयन की चुनौतियाँ बनी हुई हैं।[6]

मुख्य आर्थिक गतिविधियाँः

- अनौपचारिक श्रमः अधिकांश निवासी निर्माण स्थलों पर मजदूर, घरेलू सहायक, रिक्शा चालक, या छोटे-मोटे फेरीवाले के रूप में काम करते हैं।
- छोटे व्यवसायः चाय-स्टॉल, ठेले, और अन्य छोटे-मोटे स्थानीय व्यापार अर्थव्यवस्था का हिस्सा हैं, खासकर फ्लाईओवर के नीचे जैसे स्थानों पर।
- दैनिक मजदूरीः कई लोग रोजाना कमाने-खाने वाले होते हैं, जिन्हें रोजगार की कोई गारंटी नहीं होती।

आर्थिक चुनौतियाँः

कम आय और असुरक्षाः काम कम और मजदूरी भी कम होती है, जिससे परिवार का गुजारा मुश्किल होता है और भविष्य की कोई सुरक्षा नहीं होती।

- गरीबी की उच्च दरः बिहार में शहरी गरीबी की दर अधिक है, और मलिन बस्तियों के लोग इसका सबसे ज्यादा खामियाजा भुगतते हैं।
- बुनियादी सुविधाओं का अभावः पानी, स्वच्छता, और पक्की सड़कों जैसी सुविधाओं की कमी से जीवनयापन और भी कठिन हो जाता है।
- शिक्षा और स्वास्थ्य की कमीः बच्चों को शिक्षा नहीं मिल पाती और वे कम उम्र में काम करने लगते हैं, जिससे सामाजिक गतिशीलता रुक जाती है।

सरकारी हस्तक्षेप और भविष्यः

- योजनाएँः प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) जैसी योजनाएँ घर उपलब्ध कराने की कोशिश कर रही हैं, और राशन कार्ड जैसी सुविधाएँ भी मिलती हैं।
- सुधार की आवश्यकताः इन बस्तियों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए शिक्षा, रोजगार के अवसर और बेहतर बुनियादी ढांचे पर ध्यान देना जरूरी है।

संक्षेप में, बिहार की मलिन बस्तियों की अर्थव्यवस्था गरीबी, अनौपचारिक श्रम और अपर्याप्त सुविधाओं से जूझ रही है, लेकिन सरकारी योजनाओं और स्थानीय प्रयासों से धीरे-धीरे सुधार की उम्मीद है।[7]

भविष्य की योजनानाएँ

शहरीकरण के संचालन के तरीके में बदलाव आना शुरू हो गया है। इसका कारण यह है कि सरकारी संरचनाओं और नियोजन के प्रभारी प्राधिकरण विकेंद्रीकरण कर रहे हैं। और, वे कई गैर-सरकारी एजेंसियों, निजी भागीदारों और परोपकारियों को शामिल करते हुए एक स्थानीय सहयोगात्मक प्रयास बनने की कोशिश कर रहे हैं।

इसलिए भविष्य की दिशा तय करने के लिए केवल पिछली शहरीकरण नीतियों पर शोध करना ही पर्याप्त नहीं है। समस्याओं का सक्रिय रूप से समाधान करने के लिए हम व्यवस्था की पिछली असफलताओं को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

परिवर्तन को अपनाना महत्वपूर्ण है, लेकिन इसे सही तरीके से किया जाना चाहिए। आर्थिक विचारों पर आधारित परिवर्तन के कारक, जो कल्याणकारी प्रावधानों की स्थापित प्रणालियों को बाधित करने का प्रयास करते हैं, उन्हें केवल प्रासंगिक सहायक उपायों के साथ ही किया जाना चाहिए। इससे यह सुनिश्चित होगा कि इस प्रक्रिया में मानवाधिकारों और व्यापक सतत विकास लक्ष्यों से समझौता न हो।[8]

निष्कर्ष

शहरीकरण, वह प्रक्रिया जिसके द्वारा शहर और कस्बे बढ़ते और विकसित होते हैं, ने अपने साथ कई तरह के दुष्परिणाम भी उत्पन्न किए हैं। इनमें से सबसे अधिक स्थायी दुष्परिणाम गरीबी और बदहाली के उन इलाकों का निर्माण है, जिन्हें विकास संबंधी अधिकांश लेखों में 'झोपड़पट्टी' कहा जाता है।

जैसे-जैसे शहरीकरण की पहल निवासियों के कल्याण से सीधे तौर पर जुड़े घरों पर केंद्रित होने लगी, झुग्गी-झोपड़ियों की भयावह स्थितियों को अधिक पहचाना जाने लगा और प्रमुख चुनौतियों को स्पष्ट रूप से सामने रखा गया।

इन झुग्गी-झोपड़ियों में व्याप्त असमानताओं का गहन अध्ययन करने पर पता चला कि ये झुग्गी-झोपड़ियाँ दशकों से गरीबी और बदहाली के दुष्चक्र में फंसी हुई हैं। गरीबी के इन क्षेत्रों के विकास के कुछ निश्चित पैटर्न दिखाई दिए, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम झुग्गी-झोपड़ियों के जन्म और विकास के इतिहास का पता लगाएं, तो शायद हमें इस बात के सुराग मिल सकें कि शहरी विकास किस प्रकार एक विकसित और टिकाऊ जीवनशैली की आवश्यकता को पूरा करने में विफल रहा है।

बिहार में शहरी झुग्गी-झोपड़ियों के लिए आजीविका और आर्थिक विकास के लिए कौशल विकास, सूक्ष्म-वित्त, औपचारिक अर्थव्यवस्था में एकीकरण, बुनियादी सुविधाओं तक पहुंच, और शहरी रोजगार गारंटी जैसे कार्यक्रमों की आवश्यकता है, ताकि अनौपचारिक क्षेत्र पर निर्भरता कम हो और आर्थिक गतिशीलता बढ़े, जो राज्य की तेजी से बढ़ती लेकिन कृषि-निर्भर अर्थव्यवस्था के संदर्भ में महत्वपूर्ण है।

संक्षेप में, भारत में शहरी गरीबी एक गंभीर समस्या है जिसके कई कारण हैं, जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर तीव्र पलायन, कौशल की कमी और बुनियादी सेवाओं तक अपर्याप्त पहुंच शामिल हैं। शहरी गरीबों के प्रतिशत को कम करने में कुछ प्रगति के बावजूद, मौजूदा चुनौतियों के कारण उनकी कुल संख्या लगातार बढ़ रही है। राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन जैसी सरकारी पहलों का उद्देश्य बेहतर रोजगार के अवसर और आवश्यक सेवाएं प्रदान करके इन समस्याओं का समाधान करना है। हालांकि, शहरी गरीबों को आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए और भी बहुत कुछ करने की आवश्यकता है। समावेशी विकास और प्रभावी नीतियों पर ध्यान केंद्रित करके, भारत शहरी गरीबी को कम करने और अपने नागरिकों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने की दिशा में काम कर सकता है।

सन्दर्भ

1. दास गुप्ता, ए. और अंकलेसरिया,(2015) प्रधानमंत्री जन धन योजना, केपीएमजी रिपोर्ट। डेलावंडे,ए. रोहवेडर,ए. और स्लाविस आरजे; (2008)।
2. सेवा निर्विती, वित्तीय साक्षरता, और संज्ञानात्मक संसाधनों की तैयारी। मिशिगन रिसर्च सेंटर रिसर्च पेपर; (2008.190)।
1. CHAUDHARY, D. K. (2021). UNEMPLOYMENT STATUS IN VAISHALI DISTRICT OF BIHAR-A SOCIO- ECONOMIC PERSPECTIVE.
2. Kumar, A., & Kumar, M. (2020). Marginalised Migrants and Bihar as an Area of Origin. Kerala Exp, 55, 21.
3. Sabreen, M., & Behera, D. K. (2020). Changing Structure of Rural Employment in Bihar: Issues and Challenges. The Indian Journal of Labour Economics, 63(3), 833-845.
4. Chakravorty, B., & Bedi, A. S. (2019). Skills training and employment outcomes in rural Bihar. The Indian Journal of Labour Economics, 62(2), 173-199.
5. Sinha, J. K. Economic impact of unemployment and inflation on output growth in Bihar during 1990-2019. Statistical Journal of the IAOS, (Preprint), 1-10.
6. Deshwal, A. (2017). Economic Growth and Poverty Reduction in Bihar During 2004-05 to 2011-12: Examining the Contradictions. Available at SSRN 3009234.
7. Bagheri, M., (2012): "The challenges of Slums: Socio-economic Disparities", International
8. Journal of Social Science and Humanity, Vol.2, No.5, Sept.2012, pp.410-414.
9. Bane, R & Rawal, A.,(2002): "Slums-A case Study of Anand City", Indian Cartographer,
10. 2002, MMLP-06, pp.314-318.

सामाजिक दर्शन की प्रकृतिः एक विमर्श

डॉ० संजीव कुमार सुधांशु

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, राम जयपाल कॉलेज, छपरा

सारांश

सामाजिक दर्शन, अनुभवजन्य संबंधों के बजाय नैतिक मूल्यों के संदर्भ में समाज और सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन और व्याख्या है। सामाजिक दार्शनिक राजनीतिक, कानूनी, नैतिक और सांस्कृतिक प्रश्नों के लिए सामाजिक संदर्भों को समझने और सामाजिक सत्तामीमांसा से लेकर देखभाल नैतिकता तक, लोकतंत्र, प्राकृतिक कानून, मानवाधिकार, लैंगिक समानता और वैश्विक न्याय के विश्वव्यापी सिद्धांतों तक, नए सैद्धांतिक ढाँचों के विकास पर जोर देते हैं।

सामाजिक दर्शन और नीतिशास्त्र या मूल्य सिद्धांत द्वारा संबोधित प्रश्नों में अक्सर काफी समानता पाई जाती है। सामाजिक दर्शन के अन्य रूपों में राजनीतिक दर्शन और न्यायशास्त्र शामिल हैं, जो मुख्य रूप से राज्य और सरकार के समाजों और उनके कामकाज से संबंधित हैं।

सामाजिक दर्शन, नीतिशास्त्र और राजनीतिक दर्शन, ये सभी सामाजिक विज्ञान और मानविकी के अन्य विषयों से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं। बदले में, सामाजिक विज्ञान स्वयं सामाजिक विज्ञान के दर्शन के लिए केंद्र बिंदु हैं।

मूल शब्दः समाज दर्शन, विधियाँ, मानव, जगत, विकास, दृष्टिकोण, समाज।

प्रस्तावना

सामाजिक दर्शन की प्रकृति मानव समाज, उसकी संरचनाओं, मूल्यों और संस्थाओं का दार्शनिक अध्ययन है, जो यह समझने की कोशिश करता है कि समाज कैसे काम करता है और इसे कैसे सुधारा जा सकता है; यह नैतिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रश्नों से जुड़ा है, जो नस्ल, लिंग, वर्ग, न्याय, लोकतंत्र और मानवाधिकार जैसे मुद्दों पर केंद्रित है, और इसका लक्ष्य सामाजिक वास्तविकता की गहरी समझ के साथ-साथ एक बेहतर सामाजिक दुनिया का निर्माण करना है, जैसा कि में बताया गया है।[1]

समाज एवं समाज दर्शन का अर्थ

समाज दर्शन दर्शनशास्त्र विषय की एक शाखा है, परन्तु समाजशास्त्र जैसे स्वतंत्र विषय में भी समाज का अध्ययन विस्तार से किया जाता है, जिसके लिये समाजशास्त्री तथ्यात्मक दृष्टिकोण एवं वैज्ञानिक विधियों अर्थात् निरीक्षण, वर्गीकरण एवं सत्यापन का प्रयोग करके समाज क्या है? समाज की कार्यप्रणाली क्या है? मानव समाज में होनें वाली विभिन्न घटनाओं का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है? आदि प्रश्नों का समाधन करता है।[2]

वहीँ समाज दार्शनिक भी समाज का विस्तृत रूप से अध्ययन करता है, परन्तु वह इस अध्ययन में दार्शनिक दृष्टिकोण एवं दार्शनिक विधियों अर्थात् आगमन, निगमन, आध्यात्मिक, विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक आदि की सहायता लेता है और समाज के विभिन्न मूल्यों एवं आदर्शों की खोज करके स्थापना करता है। समाज का अध्ययन समाजशास्त्र भी करता है और समाज दर्शन भी, तो अब प्रश्न उठता है कि समाज क्या है?

समाजशास्त्र की दृष्टि से समाज मानव के सामाजिक सम्बंधों का ताना-बाना है, मैकाइवर एण्ड पेज ने समाज का यह अर्थ अपनी पुस्तक 'सोसाइटी' में बताया है। परन्तु समाज दर्शन की दृष्टि से इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये हमें, सर्वप्रथम मनुष्य को जानना होगा कि मनुष्य क्या है?

इसके उत्तर में हमें यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू द्वारा प्रतिपादित मानव की परिभाषा मिलती है कि, ''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अर्थात् सामाजिकता मनुष्य का अनिवार्य स्वभाव है, जिसके कारण वह समाज से अलग नहीं रह सकता, यही कारण है कि अरस्तू मनुष्य की परिभाषा को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि,'' यदि कोई मनुष्य समाज से अलग रहता है तो या तो वह देवता है या पशु, अर्थात् यदि कोई मनुष्य है तो वह समाज बनाकर ही रहेगा, समाज से अलग रहना उसका स्वभाव नहीं है। अब प्रश्न उठता है कि मानव का स्वभाव सामाजिक क्यों हैं?[3]

इसके उत्तर में हमें पूरे ब्रह्माण्ड का अध्ययन करना पड़ता हैं। दार्शनिकों, विकासवादी दार्शनिकों एवं मानवशास्त्रियों के अध्ययन एवं अनुसंधान के आधार पर हमें पूरे ब्रह्माण्ड के चार जगत् मिलते हैं- जड़ जगत, वनस्पति जगत, पशु जगत् एवं मानव जगत् और इनके क्रमशः उत्पन्न स्वभाव। कहने का अर्थ यह है कि ब्रह्माण्ड में जब सर्व प्रथम जड़ जगत् उत्पन्न हुआ तो उसके स्वभाव-शान्ति एवं स्थिरता के साथ और विकास की प्रक्रिया में जब इस जड़ जगत् के बाद वनस्पति जगत् की उत्पत्ति हुई तो जड़ जगत् के स्वभाव शान्ति एवं स्थिरता वनस्पति जगत् में स्थानान्तिरित हो जाते है, परन्तु इस नये वनस् जगत् में नये स्वभाव समूह, वृद्धि, विकास एवं संवेदना विकसित हो जाते है, विकास के इस क्रम में वनस्पति जगत् के बाद पशु जगत् का जन्म होता है, जिसमें पीछे के दोनों जगतों के स्वभाव रहते हैं, परन्तु इस जगत् में और नये स्वभावों का विकास होता है, जैसे क्षुधा (भूख लगने का स्वभाव), प्रजनन (सन्तानोत्पत्ति),पालन-पोषण, सुरक्षा, संघर्ष, सहयोग आदि।

यह जगत् विकास क्रम में चार्ल्स डार्विन के दो सिद्धान्तों (अस्तित्व के लिये संघर्ष एवं सर्वोत्तम की विजय) को अपनाता हुआ मानव जगत् को विकसित करता है जिसमें पिछले तीन जगत् के स्वभाव के साथ-साथ नवीन स्वभाव जैसे विवेकशीलता, परस्पर निर्भरता, सम्बंधों की चेतना अथवा समूह में रहने वाले सदस्यों के प्रति एक विशेष प्रकार की मनोवैज्ञानिक दशा, परिवार की चेतना और जैसे-जैसे मानव जगत् का समूह बढ़ता गया तो मानव जगत् की आवश्यकतायें भी बढ़ती चली गयी, जिसकी पूर्ति के लिये मानव ने अनेक प्रकार की संस्थाओं का निर्माण किया। इस प्रकार विकास क्रम में समाज का एक व्यवस्थित प्रत्यय हमारे सामने आता है, जो निरन्तर परिवर्तनशील एवं प्रगतिशील अवस्था में हमारे समाने है।[4]

परिवर्तनशीलता एवं प्रगतिशीलता के आधार पर ही हमें समाज दर्शन के अध्ययन एवं अनुसंधान की विभिन्न विधियाँ मिलती है, जिनका वर्णन निम्नलिखित है।

सामाजिक दर्शन की मुख्य प्रकृति (Characteristics):

- मूल्याधारित और आदर्शवादी: यह केवल तथ्यों का वर्णन नहीं करता, बल्कि 'क्या होना चाहिए' (what ought to be) पर केंद्रित है, जैसे आदर्श सामाजिक संबंध, न्याय और समानता।
- आलोचनात्मक विश्लेषण: यह सामाजिक संरचनाओं, शक्ति संबंधों और पहचानों (जैसे नस्ल, लिंग) का गहन विश्लेषण करता है, उनकी उत्पत्ति और प्रभावों की पड़ताल करता है।
- मानव-केंद्रित: मनुष्य को केंद्र बिंदु मानता है, जो एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर ही अपने लक्ष्यों को प्राप्त करता है।
- नैतिक और राजनीतिक जुड़ाव: सामाजिक न्याय, मानवाधिकार, लोकतंत्र, कानून और शासन जैसे राजनीतिक और नैतिक मुद्दों से गहरा जुड़ाव रखता है।
- अनुभवजन्य और अमूर्त का संगम: यह सामाजिक अनुभवों (घटना विज्ञान) और ज्ञान (Kkuehekalk) पर आधारित होता है, लेकिन अमूर्त दार्शनिक सिद्धांतों (जैसे प्राकृतिक कानून) का भी उपयोग करता है।
- परिवर्तनकारी दृष्टिकोण: इसका लक्ष्य केवल समझना नहीं, बल्कि सामाजिक समस्याओं (जैसे नस्लवाद, लैंगिक असमानता) को हल करना और एक बेहतर समाज बनाना है।
- विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से संबंध: समाजशास्त्र (तथ्यों का अध्ययन) और राजनीतिशास्त्र (शासन) से भिन्न होते हुए भी उनसे जुड़ा है, क्योंकि यह उनके निष्कर्षों की दार्शनिक व्याख्या करता है।

उदाहरण:

- न्याय और समानता: यह समझना कि न्याय क्या है और सभी के लिए समान अवसर कैसे सुनिश्चित किए जाएं (जैसे मार्टिन लूथर किंग जूनियर के विचार)।
- पहचान की राजनीति: नस्ल, लिंग, वर्ग जैसे सामाजिक प्रकारों का अस्तित्व और उन पर आधारित भेदभाव का अध्ययन।
- लोकतंत्र का स्वरूप: लोकतांत्रिक समाजों में नागरिक समाज की भूमिका और सामाजिक पूंजी का विश्लेषण (जैसे रॉबर्ट पुटनाम)।

संक्षेप में, सामाजिक दर्शन समाज के 'क्यों' और 'कैसे' का गहन चिंतन है, जिसका उद्देश्य मानव जीवन को सार्थक और समाज को अधिक न्यायपूर्ण बनाना है।

समाज दर्शन के विभिन्न रूप

आधुनिक पाश्चात्य समाजदर्शन आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में अनेक समाज दार्शनिकों ने समाज के सम्बन्ध में अपनी-अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये है। उनमें से महत्त्वपूर्ण समाज दार्शनिकों के विचार निम्नलिखित है:-

जे. एस. मैकेन्जी के विचार आधुनिक समाज दार्शनिक जे. एस. मैकेन्जी ने अपनी पुस्तक 'समाज दर्शन की रूपरेखा' में समाजदर्शन के बारे अपने विचार व्यक्त करते हुए, दार्शनिक प्रणाली से सामाजिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयास किया।

उसने सामाजिक व्यवस्था के दार्शनिक आधारों की व्याख्या की। उसने विश्व में मानव के स्थान का विवेचन किया और मनुष्य की परिभाषा करते हुये, मानव जीवन के तीन मुख्य पहलुओं की ओर संकेत किया। उसने मनुष्य की सामाजिक प्रकृति की व्याख्या की ओर इस सामाजिक प्रकृति को ही मानव समाज का आधार बतलाया। मैकेन्जी ने मानव की प्रकृति, मानव समुदाय एवं साहचर्य के प्रकारों के आधार पर सामाजिक व्यवस्था के आधारों की विवेचना की। देश की सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था की विवेचना करते हुए उसने परिवार, शैक्षिक संस्थाओं, औद्योगिक संस्थाओं, राज्य, न्याय और सामाजिक आदर्शों का विवेचन किया। विश्व व्यवस्था के विवेचन में उसने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, मानव जीवन में धर्म के स्थान, सामाजिक जीवन में संस्कृति का महत्त्व और मानव जीवन के लक्ष्य के रूप में संस्कृति की चर्चा की। मैकेन्जी के अनुसार समाजदर्शन का लक्ष्य सामाजिक एकता के नियम के अनुसार समाज की व्याख्या करना है और उसमें सामाजिक जीवन के अर्थ का निश्चय करना है। इसमें समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की सहायता लेता है।

मनुष्यों के सामाजिक व्यवहार पर समाजदर्शन का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्यों कि उससे हमें कार्य करने के कुछ सामान्य सिद्धान्त मिलते है। मैकेन्जी का समाजदर्शन उसके आध्यात्मिक और नैतिक विचारों से प्रभावित है।[5]

मोरिस गिन्सवर्ग का समाजदर्शन

समकालीन पाश्चात्य दर्शन में मोरिस गिन्सवर्ग के समाज दार्शनिक विचारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

गिन्सवर्ग के अनुसार समाजदर्शन का लक्ष्य मानव व्यवहार के सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करना हैं। परन्तु ये सामान्य सिद्धान्त प्रकट करते समय हमें सामाजिक तथ्यों पर नजर रखनी चाहिए। अर्थात् समाज दर्शन अनुभवादी पद्धति पर आधारित होना चाहिये। उसमें सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों की सहायता लेना

आवश्यक हैं। समाज दार्शनिक इन निष्कर्षों की समीक्षात्मक विवेचना करता है और दूसरी ओर इनके समन्वय से एक पूर्ण व्यवस्था प्रकट करने का प्रयास करता हैं। इस प्रकार समाज दार्शनिक एक ओर समीक्षात्मक और दूसारी ओर रचनात्मक कार्य करता है।

समीक्षात्मक कार्य में वह सामाजिक विज्ञानों की मान्यताओं और विधियों की समीक्षा करता है। रचनात्मक पहलू में वह सामाजिक आदर्श की विवेचना करता है और विभिन्न सामाजिक आदर्शों के आधार पर आदर्श समाज का रूप प्रकट करने का प्रयास करता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक विज्ञानों और समाजदर्शन में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध हैं। समाज की मौलिक समस्याओं को समझने के लिए इन दोनों के सहयोग की आवश्यकता हैं। जहाँ एक ओर समाज विज्ञान हमें सामाजिक तथ्यों को समझने में सहायता देते हैं, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक मूल्यों को समझने के लिए समाजदर्शन की सहायता अनिवार्य हैं। इस प्रकार सामाजिक विज्ञानों और समाजदर्शन दोनों के सहयोग से ही सामाजिक समस्याओं को समझा जा सकता हैं। एक दूसरे से पृथक कार्य करते हुये दोनों ही अपूर्ण रहते हैं, इस प्रकार ये दोनों ही परस्पर पूरक है।[6]

पी. ए. सोरोकिन का समाज दर्शन

समकालीन पाश्चात्य दर्शन में सोरोकिन एक ऐसे समाज दार्शनिक है, जिन्होंने सामाजिक घटनाओं पर समाज दार्शनिकों के विचारों का महत्त्व दिखलाया हैं।

दूसरी ओर समाज दर्शन सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्षों की अवहेलना नहीं कर सकता। इस प्रकार हम कह सकते है कि समाज दर्शन को समाजशास्त्रीय अध्ययनों पर आधारित होना चाहिये। समाजशास्त्र और समाजदर्शन के सम्बन्ध को लेकर गिंसवर्ग एवं सोरोकिन के विचारों में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता हैं। गिंसवर्ग के अनुसार समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की विधियों के तर्क का निश्चय करता है। इस प्रकार समाजदर्शन सामाजिक विज्ञानों की समीक्षा करता हैं। दूसरी ओर सोरोकिन के अनुसार समाजदर्शन समाजशास्त्र के आधीन है और समाजशास्त्र ही समाजदर्शन की मान्यताओं की प्रमाणिकता की जांच करता हैं। इस प्रकार समाजशास्त्र और समाजदर्शन के परस्पर सम्बन्ध ने समाजशास्त्र को अधिक महत्व दिया। समाजिक मूल्यों और सामाजिक तथ्यों दोनों की समीक्षा और विवेचना का कार्य करने के कारण समाजदर्शन की स्थिति सामाजिक विज्ञानों से अधिक होती हैं। इस सम्बन्ध में गिंसवर्ग के विचार, सोरोकिन की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देते है।[7]

बर्टेण्ड रसेल का समाज दर्शन

समकालीन पाश्चात्य समाजदर्शन की श्रंखला में बर्टेण्ड रसेल के समाज दार्शनिक विचारों की विवेचना करना भी अतिआवश्यक है, क्यों कि आधुनिक समाज दार्शनिकों में संभवत: रसेल के विचारों ने ही सबसे अधिक व्यापक-प्रभाव डाला है। उनके अनुसार हमें एक ऐसे समाज की रचना करनी चाहिये, जिसमें मनुष्य की रचनात्मक प्रवृत्तियों को, मानव प्रेम और सहानुभूति को अधिक से अधिक विकसित होने का अवसर मिले। मानव जीवन स्वभाविक प्रवृत्तियों और सामान्य प्रयोजनों से परिचालित होता है। परिवार, विवाह, शिक्षा, राज्य इत्यादि सामाजिक और राजनैतिक संस्थायें, इस तरह की होनी चाहियें कि वे मनुष्य के स्वभाविक विकास को किसी भी तरह से कुँठित न कर सकें, अपितु उसे अधिक से अधिक स्वतन्त्रता देते हुये, अधिक से अधिक विकास का अवसर दें। इसी तरह की संस्थायें ऐसे नर-नारियों का निर्माण कर सकती है, जो संसार को भावी महायुद्ध से बचा सकते हैं। रसेल ने अपने ग्रन्थों में वर्तमान परिवार, विवाह, शिक्षा और राज्य की संस्थाओं का सूक्ष्म विश्लेषण करके यह दिखलाया है कि वे जिन प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए बनाई गई थी, उनको कहां तक सन्तुष्ट कर रही है।[8]

रसेल ने इन संस्थाओं को एक ऐसा रूप भी देने का प्रयास किया है, जिनमें स्त्री-पुरूष का अधिकतम स्वाभाविक विकास हो सके।

रसेल अपने समाज दार्शनिक विचारों में आगे बताते है कि हमारी सामाजिक, आर्थिक, औद्योगिक एवं राजनैतिक संस्थायें सत्ता अथवा शक्ति पर नहीं, अपितु परस्पर सहयोग पर आधारित होनी चाहियें। आधुनिक काल की नवीन परिस्थितियों के अनुसार इन संस्थाओं के प्राचीन रूप में परिवर्तन लाने की आवश्यकता है। ऐसा न करने से ये मानव विकास में बाधक ही सिद्ध होती है और सृष्टि का भी सर्वकालिक नियम है-परिवर्तन, इसलिये भी परिवर्तन आवश्यक हैं। परिवर्तन न करने पर मनुष्य-मनुष्य में एकता बढ़ने के स्थान पर विरोध बढ़ता जाता है। रसेल समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था विवाह को स्त्री-पुरूष के परस्पर प्रेम पर आधारित करना चाहते हैं और दूसरी महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार में विभिन्न सदस्यों में परस्पर सहयोग को अधिक से अधिक बढ़ानें की वकालत करते है। इनके अलावा आर्थि क संस्थाओं में वे पूँजीवाद की आलोचना करते हुये भी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का पूरी तरह से अपहरण उचित नहीं मानते और राजनैतिक संस्थाओं में वे जनतन्त्र के समर्थक है। रसेल युद्ध के घोर विरोधी है और मानव समाज को युद्ध से दूर रखने के लिए, आधुनिक सभ्यता और संस्कृति में ऐसे परिवर्तन आवश्यक मानते है, जिनके द्वारा युद्ध को उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियाँ, शान्ति की पोषक प्रवृत्तियाँ बन जायें। वे धर्म को व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित करना चाहते हैं। हमें ऐसे शैक्षिक परिवेश का निर्माण करना है, जिसमें बालक की प्रवृत्तियों का स्वतंत्र विकास हो और इसके लिए अति आवश्यक है कि शिक्षा को राज्य के अधीन नहीं होना चाहिये क्यों कि शिक्षा राज्य के अधीन होने से शैक्षिक लक्ष्य राजनैतिक लक्ष्यों के आधीन हो जाते हैं। विश्व शान्ति के उपायों के बारे में संकेत करते हुए, रसेल ने यह दिखाया है कि लीग ऑफ नेशन्स अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं के नियमों से नहीं, अपितु स्त्री पुरूष की प्रेम और सहानुभूति की प्रवृत्तियों से ही विश्व शान्ति की स्थापना की जा सकती है। इस प्रकार रसेल मानव जीवन को विवेक से अधिक मूल प्रवृत्तियों का रूपान्तरण जरूरी समझते है।[9]

भारतीय समकालीन दार्शनिक श्री अरविन्द, गाँधी तथा अन्य समकालीन विचारकों के साथ-साथ रसेल ने भी मानव प्रकृत्ति के रूपांतरण की संभावना पर जोर दिया है और इस दिशा में शिक्षा के महत्त्व की ओर धर्मशास्त्रों का समाज दर्शन उपरोक्त विवेचन के अलावा प्राचीन भारतीय समाज दर्शन में मनु के धर्मशास्त्र में भारतीय समाज दर्शन की विवेचना मिलती है, परन्तु मनु का समाज दर्शन कहाँ तक कितना समीचीन है, इसका फैसला पाठक पर छोड़ दिया जाता है। मनु अपने समाज दर्शन में राजा को शासन करने का दैवीय अधिकार देते है। मनु के अनुसार समाज हित के लिए ही स्त्री एवं पुरूषों को राजा

की अधीनता में रहना चाहिये। जिसके लिये राज्य की स्थापना की गयी है। मनु मानव प्रकृति को मूल रूप से नैतिक नहीं मानते है और इसलिए दण्ड का भय दिखाकर समाज में व्यवस्था बनाये रखने का समर्थ न करते है। मनु ने अपने धर्मशास्त्र में सभी वर्णों को समान अधिकार नहीं दिये है। उन्होंने स्त्री एवं पुरूष को परिवार की संस्था की गाड़ी के दो पहिये माना है। मनु स्मृति में राजनीति, धर्म-नीति, समाज-नीति और अर्थ नीतियों पर प्रकाश डाला हैं। मनु के समय में आर्या वर्त विभिन्न जनपदों में बँटा हुआ था, यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से वह एक ही था।

राजा के आधीन समुदाय के सरदार सामन्त कहलाते थे, वे राजा को सहायता देते थे और उसकी आज्ञा का पालन किया करते थे। तत्कालीन समाज में दो प्रकार के लोग थे-एक आर्य एवं दूसरे अनार्य। आर्य लोग वर्णा श्रम व्यवस्था को मानते थे और अनार्य समतावादी व्यवस्था का पालन करते थे। इस समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरूष के समान नहीं थी। उनको वेद पढ़ने की अनुमति नहीं थी और शूद्रों की सामाजिक स्थिति भी अन्य वर्णों से नीची थी। समाज में ऐसी उंची-नीच क्यों और कैसे उत्पन्न हुई, इसकी जाँच-पडताल के लिए मनु के धर्मशास्त्र मनुस्मृति को पढ़ना आवश्यक है। मनु के पश्चात् कौटिल्य के धर्मशास्त्र में समाज के विभिन्न पहलुओं के विषय में विस्तृत विवेचना मिलती है।

इस प्रकार धर्मशास्त्रों के समाजदर्शन में यथार्थ को आदर्श की ओर ले जाने, उससे जोड़ने तथा आदर्श और यथार्थ में एकता स्थापित करने के लक्ष्य को विशेष महत्त्व दिया गया है। यह समाज-दर्शन न तो समाज एवं व्यक्ति को पूर्ण एवं स्वतंत्र मानकर उसको अपनी इच्छा पर छोड़ देता है और न उसे हमेशा अपूर्ण मानता है। यह समाज-दर्शन मानव तथा मानव समाज को अपूर्णता से पूर्णता की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, भोग से अपवर्ग की ओर, पवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। जिससे यथार्थ की हानि नहीं होती। बल्कि वह परिमार्जित, परिशोधन एवं विकसित होकर आदर्श की ओर अग्रसर होता हुआ, आदर्श के साथ एकीभूत हो जाता है। मानव में मानवता या पशु शरीर में देवत्व की प्राप्ति ही इस समन्वय का अन्तिम लक्ष्य है।

इसके अलावा धर्मशास्त्रों में सामाजिक-व्यवस्था, सामाजिक संस्थाएं, व्यक्ति एवं समाज का सम्बन्ध आदि उसके व्यापक दार्शनिक सिद्धान्त अथवा पूर्वमान्यताओं पर आधारित एवं प्रतिष्ठित है।[10]

निष्कर्ष

सामाजिक दर्शन हमारे सामाजिक जगत का गहन अध्ययन करता है और उसमें निहित पहचानों, संबंधों और सत्ता संरचनाओं का विश्लेषण करता है। कुछ सामाजिक दर्शन इस बात पर केंद्रित है कि हमारा सामाजिक जगत किन चीजों से बना है - जैसे कि नस्ल, लिंग या वर्ग जैसे सामाजिक प्रकार क्या हैं। सामाजिक दर्शन यह भी जांचता है कि सामाजिक संबंध या सत्ता की गतिशीलता हमारे स्वयं और दुनिया के अनुभवों (घटना विज्ञान), ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रियाओं (सामाजिक ज्ञानमीमांसा), भाषा और अवधारणाओं (भाषा का अनुप्रयुक्त दर्शन), या हमारी संज्ञानात्मकता के विशिष्ट सामाजिक पहलुओं (हम सामाजिक प्रकारों के बारे में कैसे सोचते हैं या सामाजिक मानदंडों का पालन कैसे करते हैं) को कैसे प्रभावित करती है। इसमें यह भी शामिल है कि ये सभी पहलू सामाजिक संरचनाओं के साथ कैसे परस्पर क्रिया करते हैं, चाहे वे अनौपचारिक संरचनाएं हों, जैसे कि मित्रता समूह या पारिवारिक संरचनाएं, या औपचारिक संरचनाएं हों, जैसे कि कार्यस्थल या विवाह जैसी संस्थाएं। बहुत से सामाजिक दर्शन इस बात पर केंद्रित होते हैं कि हम अपने सामाजिक जगत को बेहतर बनाने के लिए चीजों को कैसे बदल सकते हैं (नस्लवाद-विरोधी और नारीवादी दर्शन में लगे सिद्धांतकारों का अक्सर यही लक्ष्य होता है)। प्रस्तुत शोध पत्र के विवेचन से स्पष्ट होता है कि दर्शन की एक शाखा होते हुए भी समाज दर्शन ने अपने अध्ययन एवं अनुसंधान के हेतु किस प्रकार से अनेक महत्वपूर्ण विधियों को जन्म दिया, जिनके बिना हम मानव एवं उसके समाज की संरचना को ठीक प्रकार से नहीं समझ सकते। अतः इन विधियों के प्रयोग से समाज दर्शन के क्षेत्र में एक उत्तम शोध कार्य सम्पन्न किया जा सकता है और वर्तमान समय में जिस तरह से विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध कार्य एवं कोर्स वर्क सम्पन्न किये जा रहे है, उनके लिये ऐसे शोध पत्र आदर्श का काम करते है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. पिताम्बरदास, सामाजिक पुनर्निर्माण में डॉ. भगवानदास के धर्म-दर्शन का योगदान, विश्वज्ञान अध्ययन संस्थान एवं अ ंकित प्रकाशन, मडाँव, रोहनिया, वाराणसी, वर्ष-2.14
2. प्रो. अशोक कुमार वर्मा, प्रारम्भिक समाज एवं राजनीति दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, वर्ष-2..6
3. जगदीश सहाय श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष -2..2
4. डॉ. शिवभानु सिंह, समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, वर्ष-2..1
5. डॉ. रामनाथ शर्मा, समाज दर्शन, केदारनाथ रामनाथ एण्ड क., मेरठ, वर्ष -1998
6. डॉ. बी. एन. सिन्हा, समाज दर्शन-सामाजिक व राजनीतिक दर्शन, सपना अशोक प्रकाशन, रामनगर, वाराणसी।
7. राहुल सांकृत्यायन,मानव-समाज, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष -2.12
8. जे. एस. मेकेन्जी, समाज-दर्शन की रूपरेखा, रूपान्तरकार, डॉ. अजीत कुमार सिन्हा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, वर्ष-1962
9. संगम लाल पाण्डेय, समाज दर्शन की एक प्रणाली, इलाहाबाद।
10. डॉ. हृदय नारायण मिश्र, समाज दर्शन-सैद्धांतिक एवं समस्यात्मक विवेचन, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष-2..9

माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार तिवारी

प्राध्यापक-शिक्षाशास्त्र,शासकीय शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय,रीवा (म0प्र0) सम्बद्ध अ0 प्र0 सिंह विश्वविद्यालय, रा (म0 प्र0)

राकेश कुमार यादव

शोध छात्र-शिक्षाशास्त्र,लाइफ लॉन्ग लर्निंग विभाग,अ0 प्र0 सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन का उद्देश्य माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी विषयों से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में यह जानने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक-आर्थिक सीमाओं के बावजूद वंचित वर्ग के विद्यार्थी विभिन्न विषय क्षेत्रों के प्रति किस प्रकार की रुचि रखते हैं तथा उनकी अभिरुचि को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन-कौन से हैं। अध्ययन में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते हुए चयनित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों से मानकीकृत शैक्षिक अभिरुचि प्रश्नावली के माध्यम से आँकड़े एकत्रित किए गए। प्राप्त निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में विषयों के प्रति अभिरुचि में विविधता पाई जाती है, जहाँ कुछ विद्यार्थी विज्ञान एवं तकनीकी जैसे रोजगारोन्मुखी विषयों की ओर अधिक आकर्षित हैं, वहीं मानविकी एवं गृह विज्ञान के प्रति भी उल्लेखनीय रुचि देखने को मिलती है। यह अध्ययन शैक्षिक योजनाकारों, शिक्षकों एवं नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी है, क्योंकि इसके निष्कर्ष वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की रुचि के अनुरूप पाठ्यक्रम निर्माण, मार्गदर्शन एवं व्यावसायिक परामर्श की दिशा में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालय, वंचित वर्ग, विद्यार्थी, गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान एवं तकनीकी, मध्यमान, शैक्षिक अभिरूचि, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात इत्यादि।

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध अध्ययन "माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन" वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक है। शिक्षा किसी भी समाज के सर्वांगीण विकास का आधार होती है, किंतु वंचित वर्ग के विद्यार्थियों को सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक असमानताओं के कारण समान अवसर प्राप्त नहीं हो पाते। माध्यमिक स्तर वह महत्वपूर्ण चरण है जहाँ विद्यार्थियों की रुचियाँ, अभिरुचियाँ एवं भविष्य की शैक्षिक दिशा स्पष्ट होने लगती है। गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान एवं तकनीकी जैसे विषय न केवल विद्यार्थियों के बौद्धिक विकास में सहायक हैं, बल्कि उन्हें जीवनोपयोगी कौशल, तार्किक चिंतन, सामाजिक समझ तथा आधुनिक तकनीकी दक्षताओं से भी जोड़ते हैं। वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की इन विषयों के प्रति शैक्षिक अभिरुचि को समझना इसलिए आवश्यक है ताकि उनकी वास्तविक रुचियों, क्षमताओं एवं आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियाँ एवं मार्गदर्शन सेवाएँ विकसित की जा सकें। यह अध्ययन शिक्षकों, शैक्षिक योजनाकारों एवं नीति निर्माताओं को यह समझने में सहायक होगा कि किस प्रकार विषय चयन, संसाधन उपलब्धता एवं शैक्षिक वातावरण वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की अभिरुचि को प्रभावित करते हैं, जिससे समावेशी एवं समानतामूलक शिक्षा को प्रभावी रूप से सुदृढ़ किया जा सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व

माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी से संबंधित शैक्षिक अभिरुचि का अध्ययन वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। वंचित वर्ग के विद्यार्थी सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक सीमाओं के कारण प्रायः अपनी वास्तविक रुचियों एवं क्षमताओं को पहचान नहीं पाते, जिससे उनके शैक्षिक एवं व्यावसायिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है। इस शोध अध्ययन के माध्यम से विभिन्न विषय क्षेत्रोंकृगृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान एवं तकनीकीकृके प्रति विद्यार्थियों की अभिरुचि का विश्लेषण कर यह स्पष्ट किया जा सकेगा कि वे किन विषयों

की ओर अधिक आकृष्ट हैं और किन क्षेत्रों में उन्हें अतिरिक्त मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन की आवश्यकता है। यह अध्ययन पाठ्यक्रम नियोजन, विषय चयन, व्यावसायिक मार्गदर्शन तथा शैक्षिक परामर्श को अधिक प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध होगा। साथ ही, यह नीति-निर्माताओं, शिक्षकों एवं प्रशासकों को वंचित वर्ग के विद्यार्थियों के लिए समावेशी, रुचि-आधारित एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा योजनाएँ विकसित करने हेतु तथ्यपरक आधार प्रदान करेगा। इस प्रकार, यह शोध अध्ययन न केवल शैक्षिक समानता एवं अवसरों के विस्तार में सहायक होगा, बल्कि वंचित वर्ग के विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास एवं आत्मनिर्भरता की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली-भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है।

सम्बंधित साहित्य-

अग्रवाल निधि, सत्तार अब्दुल, जैन मनीषा (2020) ने "पारिवारिक वातावरण के सन्दर्भ में उच्चतर माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रूचि एवं मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन" करना। उद्देश्य- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं के पारिवारिक वातावरण का उनकी शैक्षिक रूचि एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव का अध्ययन करना। शोध विधि- प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। उपकरण- प्रस्तुत शोध कार्य में सर्वेक्षण पारिवारिक वातावरण ज्ञात करने हेतु हरप्रीत भाटिया और एन. के. चड्ढा द्वारा निर्मित पारिवारिक वातावर ण मापनी। शैक्षिक रूचि ज्ञात करने हेतु एस.पी. कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित शैक्षिक रूचि मापनी। मानसिक स्वास्थ्य ज्ञात करने हेतु सुषमा तलेसरा और अख्तर बानो द्वारा निर्मित मानसिक स्वास्थ्य मापनी का प्रयोग किया गया है द्यनिष्कर्ष- उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के छात्र एवं छात्राओं की पारिवारिक वातावरण का उनकी शैक्षिक रूचि एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पाया गया।

गोस्वामी, सरिता (2021) ने चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ में शिक्षाशास्त्र विषय में शोध हेतु मेरठ जिले के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों 100 (50 छात्र व 50 छात्राओं) की विभिन्न व्यावसायिक रूचियों का तुलनात्मक अध्ययन किया, जिसके निष्कर्ष में बताया छात्र एवं छात्राओं की व्यावसायिक रूचियों के अधिकांश क्षेत्रों में कोई सार्थक अन्तर नही पाया जाता है।

सिंह, ममता (2021) ने "रीवा जिले के माध्यमिक स्तर पर छात्र - छात्राओं के शैक्षिक रूचि का तुलनात्मक अध्ययन" किया। उद्देश्य - शहरी व ग्रामीण अंचल में माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक रूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना द्य शोध विधि- प्रस्तुत शोध में सर्वेक्षण व सांख्यिकी विधि का प्रयोग किया गया। उपकरण- एस.पी. कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित शैक्षिक रूचि प्रपत्र की सहायता ली गई। निष्कर्ष- विद्यालय का शैक्षिक एवं घरेलू वातावरण छात्र-छात्राओं की शैक्षिक रूचि को प्रभावित करती है। अत: माध्यमिक स्तर पर छात्र व छात्राओं की शैक्षिक रूचि में अन्तर है। इस प्रकार शहरी व ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रूचि में सार्थक अन्तर पाया गया।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इस प्रकार है-

सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान,मानविकी,विज्ञान एवं तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं- प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएं निम्नवत हैं -

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।
2. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।
3. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।
4. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक अनुसन्धान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या- प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के सरकारी व गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों को जनसंख्या के रूप में चुना गया है।

न्यादर्श- शोध में शोधकर्ता ने सम्भाव्य विधि के अंतर्गत आने वाले सरल यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के दो विकासखंड कुण्डा व लालगंज अझारा में स्थित क्रमश: 5-5 सरकारी व 5-5 गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 10 में अध्ययनरत वंचित वर्ग के 400 विद्यार्थियों (200 छात्र तथा 200 छात्राओं) का चयन किया गया है।

शोध उपकरण- डॉ0 एस0 पी कुलश्रेष्ठ द्वारा निर्मित एवं प्रमाणीकृत शैक्षिक अभिरुचि मापनी का प्रयोग किया गया है।प्रस्तुत मापनी डॉ0 एस0 पी कुलश्रेष्ठ (शिक्षा विभाग), डी0ए0वी0 कॉलेज देहरादून (1978) द्वारा निर्मित की गयी है।

शोध से प्राप्त परिणामों का सारणीबद्ध व उनकी व्याख्या अग्रवत है-

परिकल्पना 1- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है ।

तालिका1- गृह विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विवरण

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
सरकारी	200	8.36	1.48	398	3.57	सार्थक अंतर है
गैर सरकारी	200	7.71	2.11			

तालिका संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि का परीक्षण करने पर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 8.36 और मानक विचलन 1.48 है एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 7.71 और मानक विचलन 2.11 है। इन दोनों मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 3.57 है, जो सार्थकता स्तर 0.05 के सारणी मान 1.96 से अधिक है।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में सार्थक अन्तर है। अर्थात् शोधकर्ता की इस शून्य परिकल्पना को सार्थकता स्तर 0.05 पर अस्वीकृत किया जाता है।

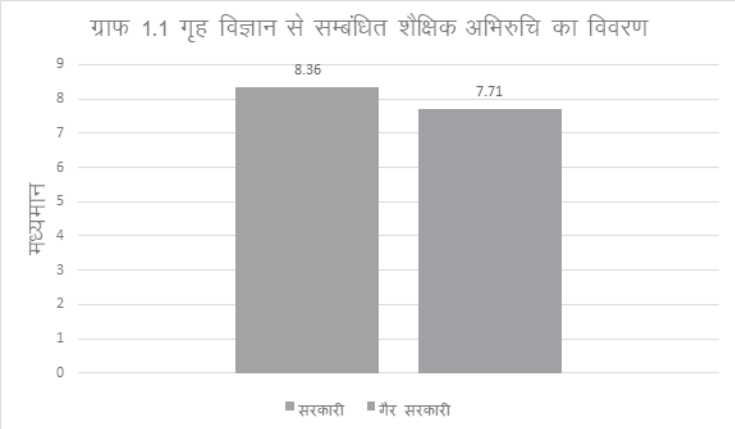

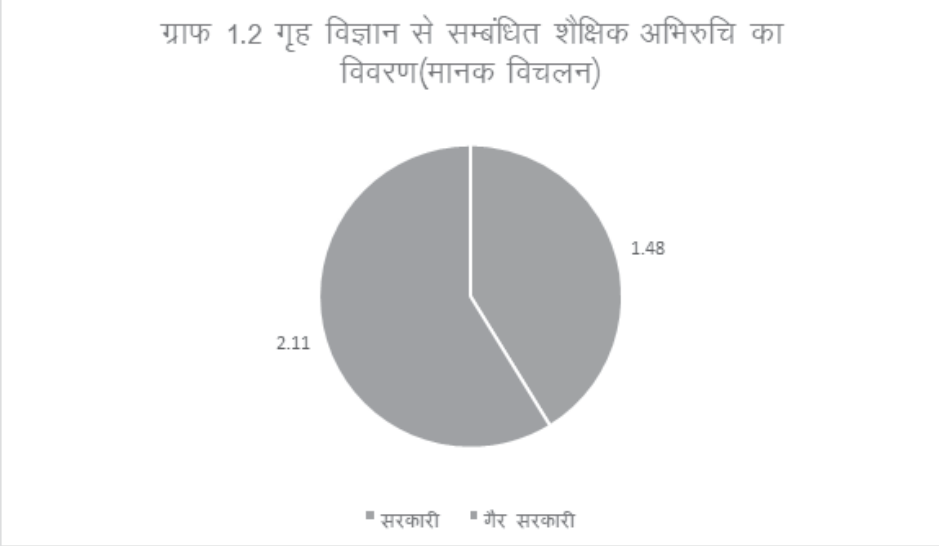

परिकल्पना 2- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है ।

तालिका 2- मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विवरण

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
सरकारी	200	7.80	1.45	398	3.24	सार्थक अंतर है
गैर सरकारी	200	8.25	1.32			

तालिका संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि का परीक्षण करने पर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 7.80 और मानक विचलन 1.45 है एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 8.25 और मानक विचलन 1.32 है। इन दोनों मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 3.24 है, जो सार्थकता स्तर 0.05 के सारणी मान 1.96 से अधिक है।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में सार्थक अन्तर है। अर्थात् शोधकर्ता की इस शून्य परिकल्पना को सार्थकता स्तर 0.05 पर अस्वीकृत किया जाता है।

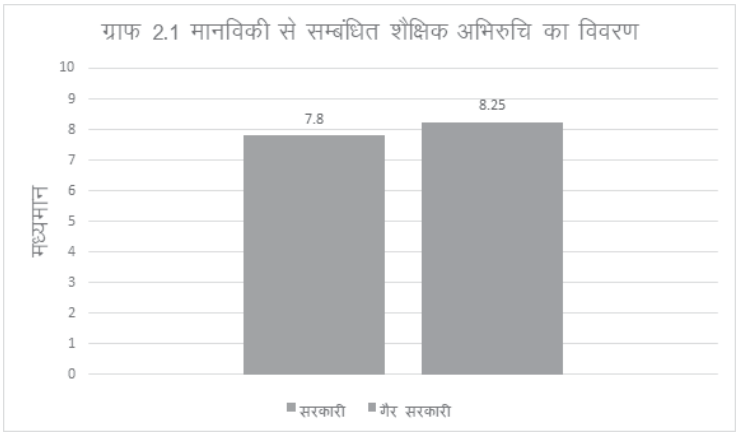

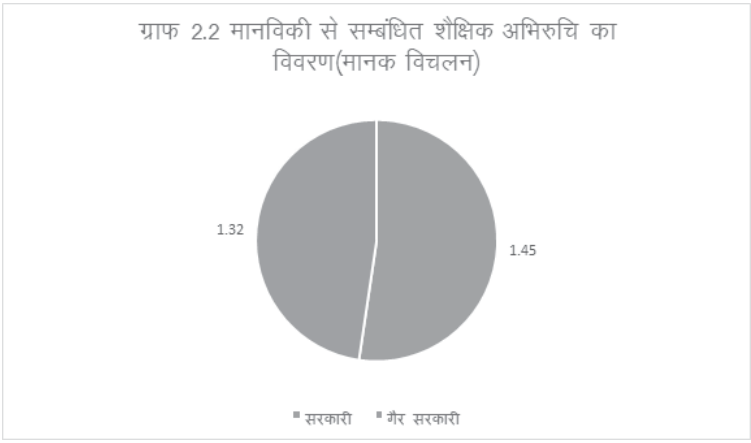

परिकल्पना 3- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।

तालिका 3- विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विवरण

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
सरकारी	200	9.25	1.37	398	8.61	सार्थक अंतर है
गैर सरकारी	200	7.83	1.88			

तालिका संख्या 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि का परीक्षण करने पर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 9.25 और मानक विचलन 1.37 है एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 7.83 और मानक विचलन 1.88 है। इन दोनों मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 8.61 है, जो सार्थकता स्तर 0.05 के सारणी मान 1.96 से अधिक है।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में सार्थक अन्तर है।अर्थात् शोधकर्ता की इस शून्य परिकल्पना को सार्थकता स्तर 0.05 पर अस्वीकृत किया जाता है।

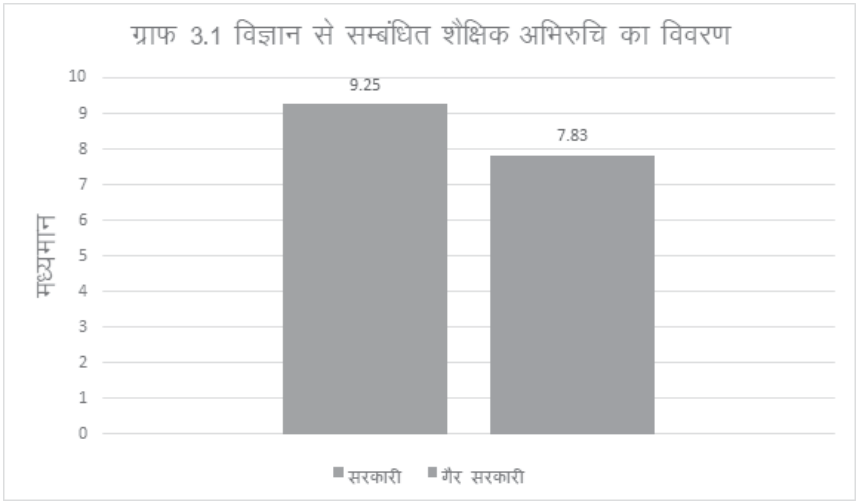

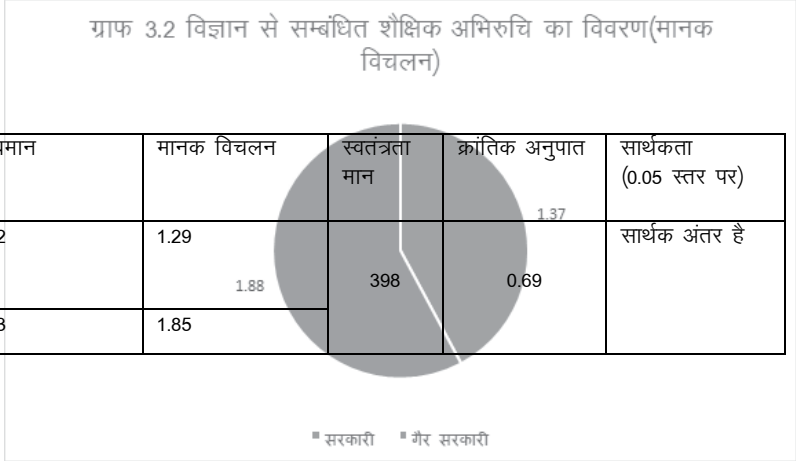

विद्यार्थी	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
सरकारी	200	8.22	1.29			सार्थक अंतर है
गैर सरकारी	200	8.33	1.85			

परिकल्पना 4- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नही है।

तालिका 4- तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विवरण

तालिका संख्या 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि का परीक्षण करने पर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 8.22 और मानक विचलन 1.29 है एवं गैर सरकारी विद्यार्थियों के प्राप्तांको का मध्यमान 8.33 और मानक विचलन 1.85 है। इन दोनों मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रान्तिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 0.69 है, जो सार्थकता स्तर 0.05 के सारणी मान 1.96 से कम है।

अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरूचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है। अर्थात् शोधकर्ता की इस शून्य परिकल्पना को सार्थकता स्तर 0.05 पर स्वीकृत किया जाता है।

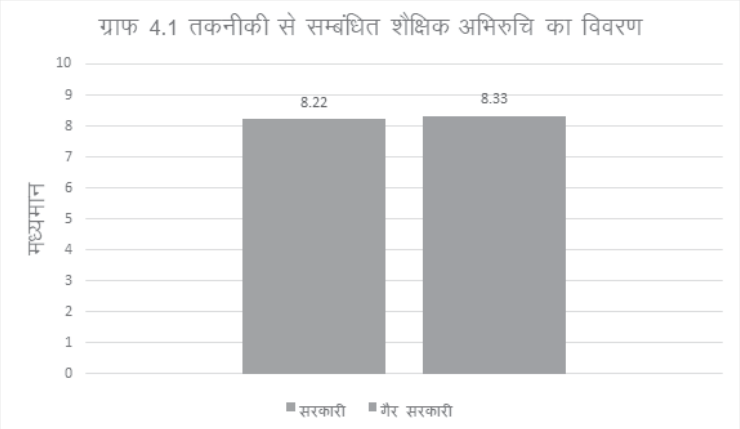

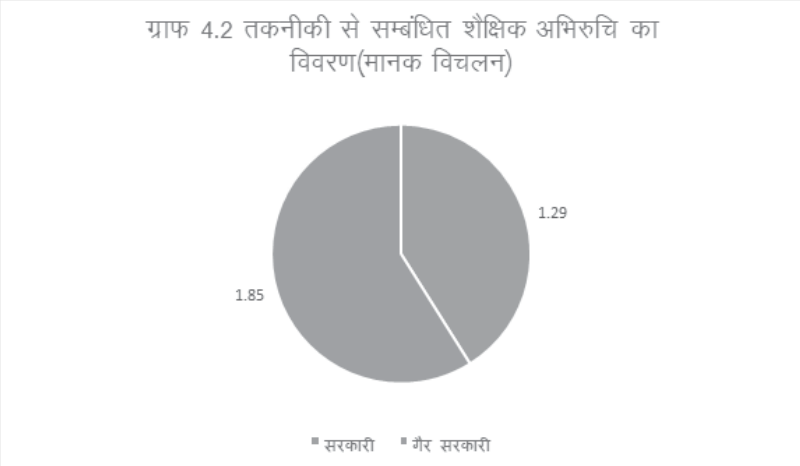

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध अध्ययन में यह परिकल्पना रखी गई थी कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान से संबंधित शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर है। सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान के प्रति अभिरुचि में वास्तव में सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शोध की परिकल्पना सत्यापित हुई। यह निष्कर्ष संकेत करता है कि विद्यालय के प्रकार, उपलब्ध शैक्षिक संसाधन, शिक्षण वातावरण तथा सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ विद्यार्थियों की गृह विज्ञान विषय के प्रति रुचि को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर है, सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर स्वीकृत पाई गई। अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट होता है कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी विषयों के प्रति रुचि में उल्लेखनीय भिन्नता विद्यमान है। यह अन्तर विद्यालयी वातावरण, शिक्षण संसाधनों की उपलब्धता, शिक्षकों की प्रेरणात्मक भूमिका तथा शैक्षिक अवसरों में असमानता जैसे कारकों के कारण उत्पन्न हुआ हो सकता है। अत: यह कहा जा सकता है कि विद्यालय का प्रकार वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की मानविकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है।

प्रस्तुत अध्ययन में "सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर है" नामक परिकल्पना की जाँच की गई। प्राप्त आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की विज्ञान विषय में शैक्षिक अभिरुचि में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अन्तर पाया गया। अत: शोध की परिकल्पना स्वीकृत की जाती है। यह अन्तर विद्यालयी संसाधनों, शिक्षण विधियों, प्रयोगशाला सुविधाओं तथा शैक्षिक वातावरण में भिन्नता के कारण उत्पन्न हो सकता है।

प्रस्तुत अध्ययन में यह परिकल्पना स्थापित की गई थी कि सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी से संबंधित शैक्षिक अभिरुचि में कोई सार्थक अंतर नहीं है। आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण के उपरांत यह पाया गया कि दोनों प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों की तकनीकी विषयों के प्रति रुचि में अंतर अत्यंत न्यून एवं असार्थक है। प्राप्त परिणामों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की तकनीकी शैक्षिक अभिरुचि पर विद्यालय के प्रकार का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता। अत: शोध परिकल्पना स्वीकार की जाती है।

शैक्षिक उपयोगिता- प्रस्तुत शोध अध्ययन, जो माध्यमिक विद्यालयों के वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की गृह विज्ञान, मानविकी, विज्ञान तथा तकनीकी से सम्बंधित शैक्षिक अभिरुचि का विश्लेषण करता है, शैक्षिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। इस अध्ययन से विभिन्न विषयों के प्रति वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की रुचियों, प्रवृत्तियों एवं प्राथमिकताओं की स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है, जिसके आधार पर विद्यालय स्तर पर पाठ्यक्रम नियोजन, विषय चयन परामर्श तथा शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं को अधिक प्रभावी एवं विद्यार्थी-केन्द्रित बनाया जा सकता है। शोध निष्कर्ष शिक्षकों को यह समझने में सहायता प्रदान करते हैं कि किस विषय में विद्यार्थियों की अभिरुचि अधिक या कम है तथा किन कारणों से उनकी रुचि प्रभावित होती है, जिससे वे उपयुक्त शिक्षण विधियों, शिक्षण-सामग्री एवं प्रेरक रणनीतियों का चयन कर सकें। साथ ही, यह अध्ययन शैक्षिक प्रशासकों एवं नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि इसके माध्यम से वंचित वर्ग के विद्यार्थियों हेतु विषय-विशेष सहयोग, संसाधन उपलब्धता, व्यावसायिक मार्गदर्शन एवं समान शैक्षिक अवसर सुनिश्चित करने से सम्बंधित योजनाएँ विकसित की जा सकती हैं। इस प्रकार यह शोध अध्ययन शैक्षिक समानता, समावेशी शिक्षा तथा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- राय, पारस नाथ (2008):अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- अग्रवाल, जे. सी. (2014): शैक्षिक मनोविज्ञान, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- कुलश्रेष्ठ, एस. पी. (2015): शैक्षिक अनुसंधान की पद्धतियाँ, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- मिश्रा, एस. एन. (2016): शैक्षिक अभिरुचि एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- भटनागर, आर. पी., एवं भटनागर, मीना. (2016): शिक्षा एवं समाज, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
- शुक्ला, पी. डी. (2017): भारतीय शिक्षा प्रणालीरू समस्याएँ एवं समाधान,न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ।
- सिंह,अरूण कुमार (2017):मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, पटना।
- वर्मा, एल. के. (2018): विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा का समन्वय, राज पब्लिशर्स, जयपुर।
- शर्मा, आर. ए. (2018): शिक्षा में व्यक्तिगत भिन्नताएँ, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- शुक्ला, आर. (2018):शैक्षिक अभिरुचि एवं विद्यार्थी विकास, एपीएच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन, नई दिल्ली।
- पाण्डेय, आर. एस. (2019): वंचित वर्ग एवं शिक्षा, अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
- कुमार, एस., एवं वर्मा, पी. (2019):माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की विषयगत अभिरुचि का अध्ययन, न्यू रॉयल बुक कंपनी, लखनऊ।
- त्रिपाठी, के. एन. (2020): माध्यमिक शिक्षा के आयाम, साहित्य भवन, प्रयागराज।
- मिश्रा, डी. (2020):वंचित वर्ग के विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याएँ एवं संभावनाएँ। भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 15(2), 45-52।
- यादव, आर. के. (2021) तकनीकी शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (2021):माध्यमिक शिक्षा में पाठ्यचर्या एवं विद्यार्थी अभिरुचि, एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
- यादव, एम. (2022):सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन। समकालीन शिक्षा विमर्श, 10(3), 89-96।

सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० संजीव कुमार तिवारी

प्राध्यापक-शिक्षाशास्त्र, शासकीय शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0) सम्बद्ध अ0 प्र0 सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0 प्र0)

शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय

शोध छात्र-शिक्षाशास्त्र, लाइफ लॉन्ग लर्निंग विभाग,अ0 प्र0 सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

सारांश

प्रस्तुत शोध अध्ययन "सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन" का उद्देश्य दोनों प्रकार के विद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता के स्तर का तुलनात्मक विश्लेषण करना था। इस अध्ययन में उपयुक्त प्रतिदर्श का चयन कर मानकीकृत सृजनात्मकता परीक्षण के माध्यम से आँकड़े एकत्र किए गए। प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर यह जानने का प्रयास किया गया कि सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर है अथवा नहीं। अध्ययन के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हुआ कि शैक्षिक वातावरण, शिक्षण विधियाँ, संसाधनों की उपलब्धता तथा सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर प्रभाव पड़ता है। कुछ आयामों में गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता अपेक्षाकृत अधिक पाई गई, जबकि कुछ क्षेत्रों में दोनों वर्गों के विद्यार्थियों में समानता भी देखी गई। यह शोध अध्ययन शिक्षा योजनाकारों, प्रशासकों एवं शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि इसके निष्कर्षों के आधार पर दोनों प्रकार के विद्यालयों में सृजनात्मकता के विकास हेतु प्रभावी शैक्षिक कार्यक्रम एवं नवाचारी शिक्षण रणनीतियाँ विकसित की जा सकती हैं।

मुख्यशब्द- सरकारी एवं गैरसरकारी, माध्यमिकविद्यालय, विद्यार्थी, सृजनात्मकता, मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात इत्यादि।

प्रस्तावना

वर्तमान युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान का संप्रेषण न होकर विद्यार्थियों में सृजनात्मकता, नवाचार, समस्या-समाधान क्षमता तथा स्वतंत्र चिंतन का विकास करना भी है। सृजनात्मकता वह मानसिक क्षमता है, जिसके माध्यम से व्यक्ति नवीन विचारों, मौलिक समाधान तथा नवीन अभिव्यक्तियों को जन्म देता है। माध्यमिक स्तर का विद्यार्थी विकास की उस अवस्था में होता है जहाँ उसकी कल्पनाशक्ति, विचार-स्वतंत्रता और सृजनात्मक अभिव्यक्ति को उचित दिशा प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। विद्यालयी वातावरण, शिक्षण-विधियाँ, शैक्षिक संसाधन, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध तथा सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ विद्यार्थियों की सृजनात्मकता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक माने जाते हैं।

भारत की शिक्षा व्यवस्था में सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों की संरचना, शैक्षिक सुविधाओं, प्रबंधन प्रणाली, अनुशासन, पाठ्यक्रम क्रियान्वयन तथा शिक्षण-अधिगम वातावरण में पर्याप्त भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। सरकारी विद्यालयों में समान अवसर, सामाजिक विविधता तथा सरकारी योजनाओं के माध्यम से शैक्षिक प्रोत्साहन उपलब्ध होते हैं, जबकि गैर सरकारी विद्यालय अपेक्षाकृत बेहतर भौतिक संसाधनों, नवीन शिक्षण तकनीकों, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण के लिए जाने जाते हैं। इन भिन्न परिस्थितियों का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह एक महत्वपूर्ण शैक्षिक प्रश्न है।

इसी संदर्भ में सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है। यह अध्ययन दोनों प्रकार के विद्यालयों में उपलब्ध शैक्षिक वातावरण, शिक्षण प्रक्रियाओं तथा अवसरों के प्रभाव को समझने में सहायक होगा तथा यह स्पष्ट करेगा कि कौन-से कारक विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता के विकास में अधिक प्रभावी भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत शोध अध्ययन न केवल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु उपयोगी सिद्ध होगा, बल्कि नीति-निर्माताओं, शिक्षकों तथा विद्यालय प्रबंधकों को सृजनात्मकता के विकास हेतु उपयुक्त शैक्षिक योजनाएँ एवं कार्यक्रम तैयार करने में भी मार्गदर्शन प्रदान करेगा।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि सृजनात्मकता को आज ज्ञान आधारित समाज में नवाचार, समस्या-समाधान तथा व्यक्तित्व विकास का आधार माना जाता है। माध्यमिक स्तर वह अवस्था है जहाँ विद्यार्थियों की बौद्धिक, भावनात्मक एवं कल्पनात्मक क्षमताएँ तीव्र गति से विकसित होती हैं। सरकारी एवं गैर सरकारी विद्यालयों में उपलब्ध शैक्षिक संसाधन, शिक्षण-अधिगम वातावरण, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, शिक्षक-शिक्षण शैली तथा मूल्यांकन पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव विद्यार्थियों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति पर पड़ता है। अतः दोनों प्रकार के विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करने में सहायक होगा कि किस प्रकार का शैक्षिक वातावरण सृजनात्मक चिंतन को अधिक प्रोत्साहित करता है।

इस प्रकार का अध्ययन नीति-निर्माताओं, शैक्षिक प्रशासकों एवं शिक्षकों के लिए विशेष महत्व रखता है, क्योंकि इसके निष्कर्षों के आधार पर पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं सहशैक्षिक गतिविधियों में सुधार किया जा सकता है। यह अध्ययन सरकारी विद्यालयों में सृजनात्मकता के विकास में आने वाली बाधाओं की पहचान करने तथा गैर सरकारी विद्यालयों की प्रभावी प्रथाओं को अपनाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही, यह शोध शैक्षिक समानता की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है, जिससे सभी विद्यार्थियों को उनकी सृजनात्मक क्षमताओं के पूर्ण विकास के समान अवसर प्रदान किए जा सकें। इस प्रकार, सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन शिक्षा की गुणवत्ता संवर्धन एवं राष्ट्र के सृजनशील मानव संसाधन निर्माण की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी एवं सार्थक है।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली-भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है।

सम्बंधित साहित्य-

एस0सी0 गक्खर एवं धर्मेन्द्र (2013) ने प्राथमिक विद्यालय स्तर पर बुद्धियुक्त व बुद्धिहीन घटक का गणितीय सृजनात्मकता के साथ सम्बन्ध का अध्ययन किया। अध्ययन हेतु कक्षा 7 के 221 लड़के व 219 लड़कियों से विवरणात्मक सर्वे द्वारा प्रदत्त एकत्रीकरण किया। प्रदत्तों का विश्लेषण सहसम्बन्ध गुणांक तथा टी- परीक्षण के प्रयोग से किया। निष्कर्ष में पाया कि पब्लिक व परम्परागत विद्यालयों के विद्यार्थियों की गणितीय सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर था। बौद्धिक चर गणितीय सृजनात्मकता के साथ सार्थक व सकारात्मक रूप से सम्बन्धित है तथा लड़के-लड़कियों की गणितीय सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है।

वाधवा एवं यादव (2013) ने क्रियेटिविटी एण्ड अकेडमिक एचीवमेंट ऑफ एडोलसेन्ट स्टडीइंग इन इंग्लिश एण्ड हिन्दी मीडियम स्कूल्स ए कम्प्रेटिव स्टडी पर हाईस्कूल के 200 छात्र-छात्राओं का न्यादर्श लेकर अध्ययन किया। शोधकर्ता ने सांख्यिकी गणनोपरांत निम्नलिखित परिणाम प्राप्त किये- हिन्दी तथा अंग्रेजी माध्यम के छात्र एवं छात्राओं की सृजनात्मक क्षमता में सार्थक अन्तर पाया गया। इसी प्रकार हिन्दी माध्यम के छात्र- छात्राओं की सृजनात्मकता में भी सार्थक अन्तर पाया गया। इसी प्रकार हिन्दी माध्यम के छात्रों की सृजनात्मक क्षमता छात्राओं की सृजनात्मक क्षमता से अधिक पायी गयी।

अग्रवाल (2013) ने उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता का सांवेगिक बुद्धि के सन्दर्भ में कक्षा-11 के सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के छात्रों पर अध्ययन किया। शोधकर्ता ने न्यादर्श के रूप में 200 विद्यार्थियों का चयन किया था। शोधकर्ता ने सांख्यिकी गणनोपरांत निष्कर्ष में पाया कि सी0बी0एस0ई0 बोर्ड के उच्च माध्यमिक स्कूल के निम्न एवं उच्च सांवेगिक बुद्धि वाले विद्यार्थियों की सृजनशीलता एवं उसके घटक प्रवाहशीलता, विविधता एवं मौलिकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

बागड़ा, रेखा (2014) ने सृजनशीलता को प्रोत्साहनरू एक आधारभूत प्रयास विषय पर अध्ययन किया। इसके उद्देश्य निम्न प्रकार से है- वनस्थली विद्यापीठ में अध्ययनरत प्रथम कक्षा के विद्यार्थियों का सृजनात्मक स्तर का मूल्यांकन। विद्यार्थियों के सृजनात्मक स्तर को बढ़ाने हेतु सृजन क्रियाऐं विकसित करना। विद्यार्थियों के सृजनात्मक स्तर को बढ़ाने हेतु कार्यशाला आयोजन करना। कार्यशाला के प्रभाव का मूल्यांकन करना। इस अध्ययन हेतु न्यादर्श के लिए कार्यक्षेत्र वनस्थली में अध्ययनरत प्रथम कक्षा के दोनों लिंग के 25 विद्यार्थियों का चयन किया जिनकी उम्र 6-7 वर्ष है। अध्ययन पद्धति वैयक्तिक अध्ययन, प्रायोगिक विधि बाकर मेंहदी का अशाब्दिक व शाब्दिक व टोरन्स का सृजनात्मक मापन के आधारों पर आवश्यकता और उद्देश्यों का ध्यान रखते हुए मापन किया गया। आँकड़ों का निष्कर्ष ग्राफ द्वारा प्रदर्शित किया। निष्कर्ष में पाया गया कि यदि विद्यार्थियों को उत्प्रेरक वातावरण प्रदान किया जाये तो उनमें आवश्यक सृजनशीलता के गुणों को उच्चतम सीमा तक विकसित किया जा सकता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य-प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार है-

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं- प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएं निम्नवत हैं -

1. सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
3. ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक अनुसन्धान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या- प्रस्तुत शोध में उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को जनसंख्या के रूप में चुना गया है।

न्यादर्श- प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने सम्भाव्य विधि के अंतर्गत आने वाले सरल यादृच्छिक न्यादर्शन विधि का प्रयोग किया है। इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद के सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के 400 विद्यार्थियों (200 छात्र तथा 200 छात्राओं) का चयन किया गया है।

शोध उपकरण- माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सृजनात्मकता के परीक्षण हेतु प्रो0 बी0के0 पासी द्वारा निर्मित पासी सृजनात्मकता परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

शोध से प्राप्त परिणामों का सारणीबद्ध व उनकी व्याख्या अग्रवत है-

परिकल्पना 1-सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 1-सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	200	56.47	3.18	398	4.41	सार्थक अंतर है
गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	200	55.20	2.53			

तालिका संख्या 1 में सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण दिया गया है। प्रथम समूह सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 56.47 एवं 3.18 है जबकि दूसरा समूह गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 55.20 एवं 2.53 है। दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रांतिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 4.41 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 से अधिक है, अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक है अर्थात सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना 1 असत्य सिद्ध होती है।

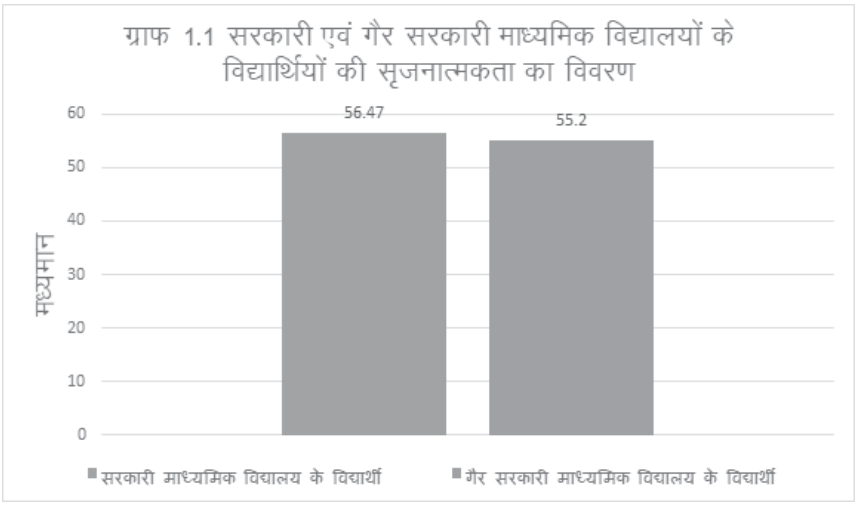

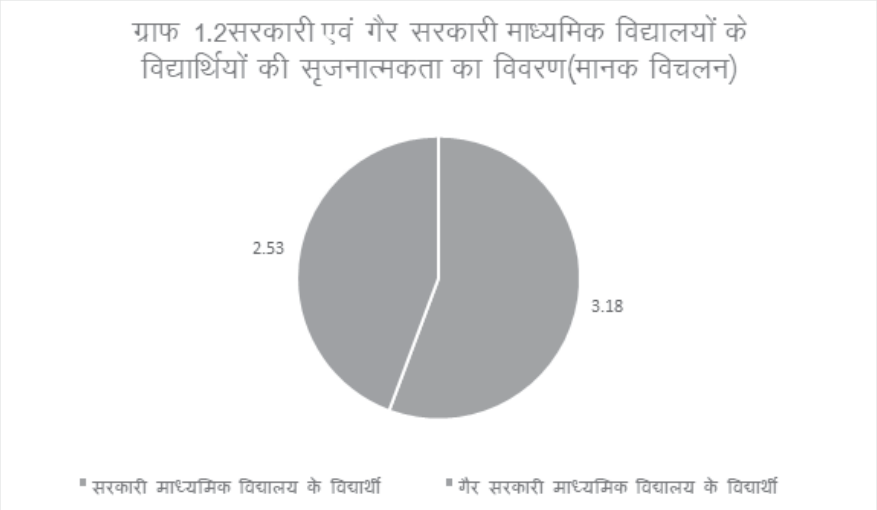

परिकल्पना 2-ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 2-ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
ग्रामीण सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	100	54.70	2.09	198	9.45	सार्थक अंतर है
शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	100	58.23	2.63			

तालिका संख्या 2 में ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण दिया गया है। प्रथम समूह ग्रामीण सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 54.70एवं 2.09 है जबकि दूसरा समूह शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 2.09 एवं 2.63 है। दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रांतिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 9.45 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 से अधिक है, अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक है अर्थात ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना 2 असत्य सिद्ध होती है।

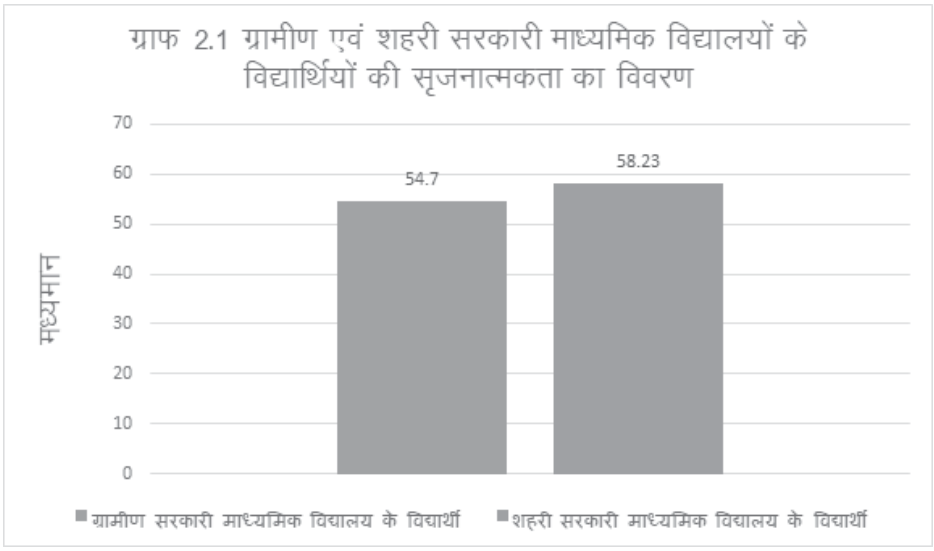

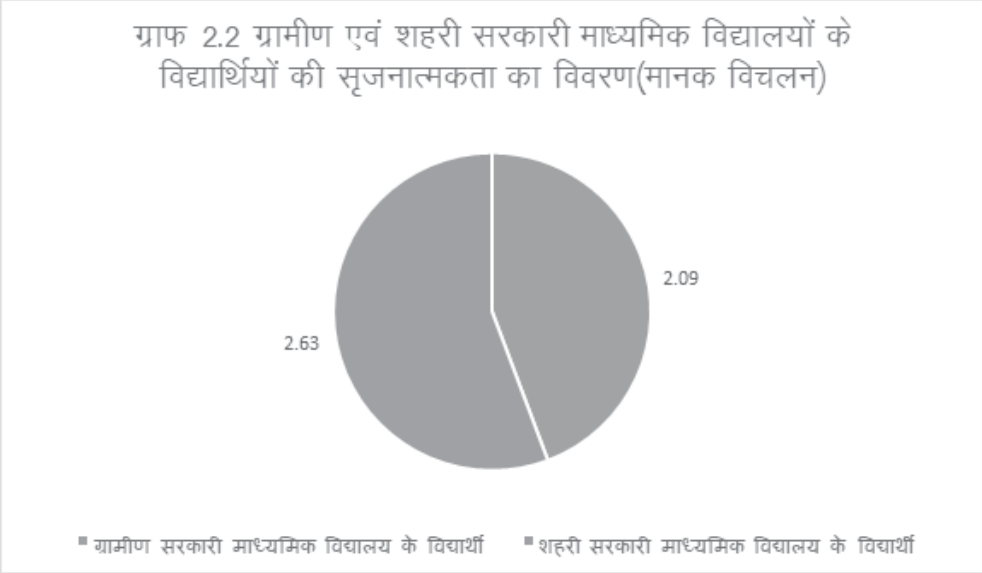

परिकल्पना 3-ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 3-ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण

समूह	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	स्वतंत्रता मान	क्रांतिक अनुपात मान	सार्थकता (0.05 स्तर पर)
ग्रामीण गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	100	54.38	2.14	198	8.04	सार्थक अंतर है
शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थी	100	56.02	2.62			

तालिका संख्या 3 में ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का विवरण दिया गया है। प्रथम समूह ग्रामीण गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 54.38एवं 2.14 है जबकि दूसरा समूह शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों का है जिनका मध्यमान एवं मानक विचलन क्रमशः 56.02 एवं 2.62 है। दोनों समूहों के मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिए क्रांतिक अनुपात की गणना की गयी जिसका मान 8.04 प्राप्त हुआ जो 0.05 सार्थकता स्तर के मान 1.96 से अधिक है, अतः निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि दोनों समूहों के मध्यमानों में अंतर सार्थक है अर्थात ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है। इस प्रकार शोधकर्ता की शून्य परिकल्पना 3 असत्य सिद्ध होती है।

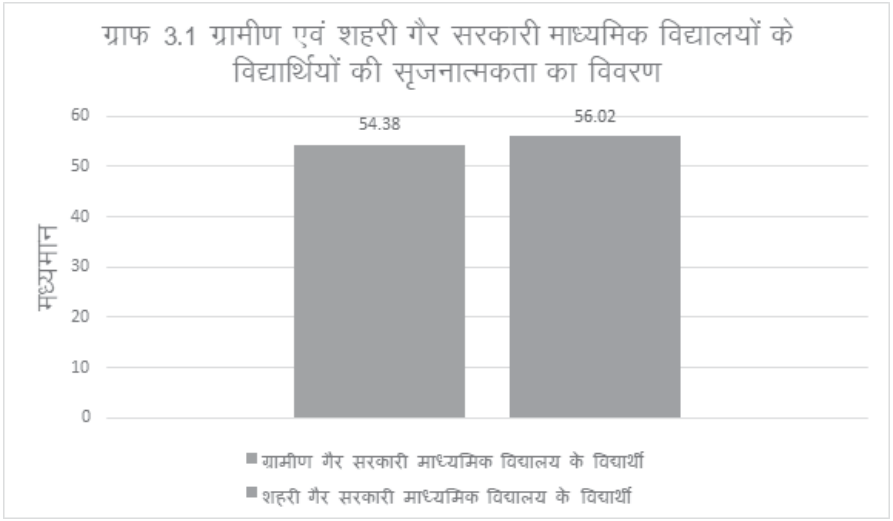

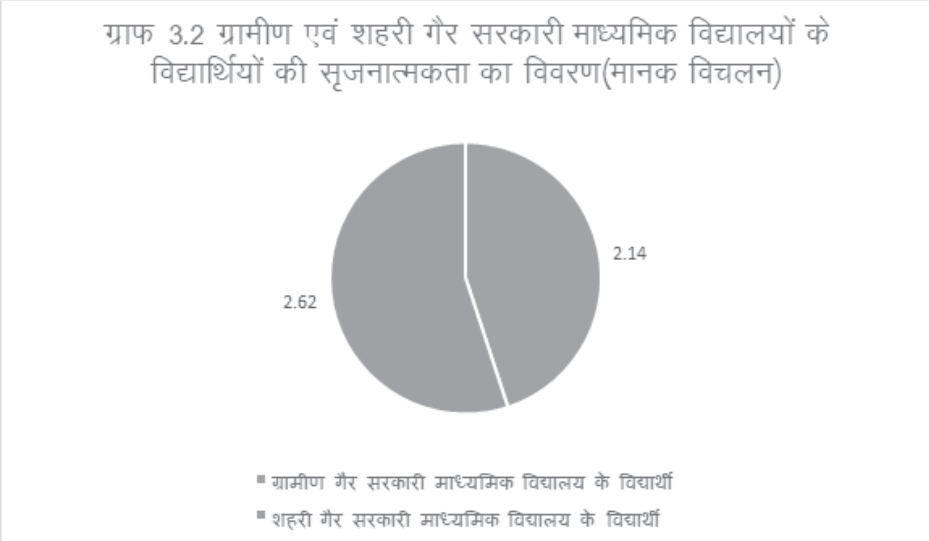

निष्कर्ष

प्राप्त परिणामों से यह स्पष्ट हुआ कि सरकारी एवं गैर-सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के स्तर में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अन्तर पाया गया। अध्ययन में यह देखा गया कि गैर-सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों का औसत सृजनात्मकता स्कोर सरकारी विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक रहा। इसका प्रमुख कारण गैर-सरकारी विद्यालयों में उपलब्ध बेहतर शैक्षिक संसाधन, नवाचारपरक शिक्षण विधियाँ, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों को अधिक महत्व दिया जाना तथा विद्यार्थियों को अभिव्यक्ति के अधिक अवसर प्रदान किया जाना हो सकता है। अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विद्यालय के प्रकार का विद्यार्थियों की सृजनात्मकता पर प्रभाव पड़ता है और प्रस्तुत परिकल्पना स्वीकार की जाती है।

प्राप्त आँकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के स्तर में सार्थक अन्तर पाया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि शहरी विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का स्तर ग्रामीण विद्यालयों के विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक है। इसका प्रमुख कारण शहरी परिवेश में उपलब्ध बेहतर शैक्षिक संसाधन, तकनीकी सुविधाएँ, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ तथा विविध अनुभवों की उपलब्धता मानी जा सकती है। अत: यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रस्तुत परिकल्पना स्वीकृत होती है और ग्रामीण एवं शहरी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में वास्तविक एवं अर्थपूर्ण अन्तर विद्यमान है।

प्रस्तुत अध्ययन में "ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर है" से संबंधित परिकल्पना के परीक्षण हेतु उपयुक्त सांख्यिकीय तकनीकों का प्रयोग किया गया। प्राप्त परिणामों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हुआ कि ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता के माध्य अंकों में सांख्यिकीय रूप से सार्थक अन्तर पाया गया। अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का स्तर ग्रामीण गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की तुलना में अधिक है। इस अन्तर का कारण शहरी वातावरण में उपलब्ध शैक्षिक संसाधन, सह-पाठ्यक्रम गतिविधियाँ, नवाचारी शिक्षण विधियाँ, तकनीकी सुविधाएँ तथा सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अधिक अवसर हो सकते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत परिकल्पना की पुष्टि होती है और ग्रामीण एवं शहरी गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता में सार्थक अन्तर विद्यमान है।

शैक्षिक उपयोगिता- सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का तुलनात्मक अध्ययन शैक्षिक दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है। इस प्रकार का शोध यह स्पष्ट करने में सहायक होता है कि विभिन्न प्रकार के विद्यालयी परिवेश, शिक्षण विधियाँ, संसाधन उपलब्धता, शिक्षकदृछात्र अंत:क्रिया तथा सहशैक्षिक गतिविधियाँ विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता को किस सीमा तक प्रभावित करती हैं। अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर पाठ्यक्रम निर्माण, शिक्षण- अधिगम प्रक्रियाओं तथा मूल्यांकन प्रणाली में आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं, जिससे विद्यार्थियों में मौलिक चिंतन, समस्या समाधान और नवाचार की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले। यह शोध शिक्षकों को उपयुक्त शिक्षण रणनीतियाँ अपनाने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता है तथा विद्यालय प्रशासन को सृजनात्मक वातावरण विकसित करने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही, शैक्षिक योजनाकारों एवं नीति निर्धारकों के लिए यह अध्ययन उपयोगी सिद्ध होता है, क्योंकि इसके माध्यम से दोनों प्रकार के विद्यालयों की वास्तविक शैक्षिक स्थिति का तुलनात्मक आकलन कर समानता एवं गुणवत्ता सुधार की दिशा में प्रभावी निर्णय लिए जा सकते हैं। इस प्रकार, यह शोध माध्यमिक स्तर पर समग्र एवं सृजनात्मक शिक्षा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- राय, पारस नाथ (2008):अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।
- अग्रवाल, जे. सी. (2014): शिक्षा मनोविज्ञान, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

- मिश्रा, बी. एल. (2015): शिक्षा एवं सृजनात्मकता, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
- वर्मा, एस. के. (2016): आधुनिक शिक्षा में सृजनात्मक विकास, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
- शर्मा, आर. ए. (2016): शिक्षा में अनुसंधान विधियाँ, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ।
- पाण्डेय, के. पी. (2017):मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं मापन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- सिंह, अरूण कुमार (2017):मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, पटना।
- चतुर्वेदी, एम. (2018): विद्यालयी वातावरण एवं विद्यार्थियों की सृजनात्मकता. समकालीन शैक्षिक अध्ययन, 5(3), 23–29।
- गुप्ता, एस. पी. (2018):शैक्षिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, नई दिल्ली।
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT), (2019): माध्यमिक शिक्षा में नवाचार एवं सृजनात्मकता, NCERT, नई दिल्ली।
- यादव,के.एन. (2019):शिक्षा मनोविज्ञान एवं अधिगम प्रक्रिया, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
- त्रिपाठी, आर. के. (2019): माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की सृजनात्मकता का अध्ययन. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 8(2), 45–52।
- सिंह, डी. पी. (2020): ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की सृजनात्मक सोच का तुलनात्मक अध्ययन. शैक्षिक विमर्श, 12(1), 67–74।

विकसित भारत@2047 तथा दिल्ली के मंदिरों का पर्यटन भविष्य: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

अनु सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, कॉलेज ऑफ वोकशनल स्डीज, दिल्ली विश्वविद्यालय

आलोक कुमार

पीएच.डी. शोधार्थी, सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो० कुमार आशुतोष

विभागाध्यक्ष, सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

विकसित भारत@2047 का विजन अजादी के 100वीं वर्षगाठ के बाद आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं संस्कृतिक में सकारात्मक परिवर्तन के माध्यम से 2047 तक भारत को विकसित राष्ट्र बनना है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था को 30 ट्रिलियन अमेरिकन डॉलर की अर्थव्यवस्था बनना है इस लक्ष्य की प्राप्ति में दिल्ली पर्यटन की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण हो सकती है। दिल्ली स्मारकों, संग्राहलयों, धार्मिक स्थलों विशेषकर मंदिरों का केन्द्र है इसमें पर्यटन को बढ़ावा देने से विदेशी मुद्राओं, टैक्सों तथा नए रोजगारों की प्राप्ति होगी तथा नवाचार को भी बढ़ावा मिलेगा। परिणाम स्वरूप दिल्ली वासियों के जीवन में आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति के रूप में देख सकते हैं।

बीज शब्दः विकसित भारत, पर्यटन, मंदिर, स्मृद्धि।

विकसित भारत@2047 भारत सरकार के द्वारा ऐसी महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है जिसके माध्यम से स्वतंत्रता के 100वी वर्षगांठ के महान उपलक्ष्य में 2047 तक भारत को विकासशील राष्ट्र से विकसित राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करना है जिसका मुख्य केन्द्र नवाचार, समावेशी विकास, स्थिरत, तथा सुशासन है मुख्य-ध्येय समाज के प्रत्येक वर्ग की स्मृद्धि को सुनिश्चित करना है। युवा महिलाएँ एवं किसान इसके मुख्य स्तम्भ है। विकसित भारत 2047 में भारत एक विकसित राष्ट्र के रूप में उभरेगा विश्व के तमाम देश में पर्यटक भारत दर्शन की लालसा रखेगा जिसके दिल्ली को पर्यटक के रूप में काफी अत्यधिक आर्थिक लाभ होगा।

परिचय

प्राचीन काल से ही दिल्ली भारत का ऐतिहासिक शहर था जो मध्यकालीन काल तक अपने सांस्कृतिक रूप को विकसित कर लिया तथा आधुनिक काल में पूरे विश्व के सामने अपने ऐतिहासिक एवं संस्कृतिक रूप में एक अलग पहचान बनाई। दिल्ली वास्तुकला, कला और संस्कृति के रूप में उत्तर भारत के संगम के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक वर्ष आंतरिक एवं बाह्य लाखों पर्यटकों को आकर्षित करने वाला यह महानगर अपनी ऐतिहासिक इमारतों और स्मारकों के लिए विश्व में प्रसिद्ध है जो विरासत और आधुनिकता का जीवंत उदाहरण है। दिल्ली के मंदिर अपनी आत्मयता और संस्कृति के लिए विश्व प्रसिद्ध है। यहाँ की प्रमुख मंदिर अपने आकर्षक शैली के साथ मजबूती के तौर पर भी जाना जाता है जो निम्नलिखित प्रमुख मंदिर हैं

- अक्षरधाम मंदिर- दिल्ली के सबसे विश्व प्रसिद्ध मंदिरों में से एक है स्वामीनारायण अक्षरधाम को समर्पित यह मंदिर राष्ट्रीय राजमार्ग-24 तथा राष्ट्रमंडल के समिप है। पर्यटकों का मुख्य आकर्षण का केन्द्र इसका बगीचों के बीच अवस्थित होना जो पर्यटकों को मन की शांति प्रदान करने का कार्य करता है। यहाँ पर्यटक अपने आप को पह भारतीय संस्कृति के साथ आधुनिक लाइट उएवं साउंड का भी भरपूर आनन्द लेते हैं।
- श्री किलकारी गौरव मंदिर- दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ प्राचीन मंदिरों में एक है। अतीत मान्यताओं के अनुसार इस मंदिरी के निर्माण का कार्य पांडवों द्वारा किया गया है यह मंदिर अपने अनुठी परम्पराओं के लिए प्रसिद्ध है जहाँ श्रद्धालुओं को देवताओं के पूजा के बाद मदिरा पीने की आज्ञा प्रदान करता है। वर्तमान में यह मंदिर दूधिया भैरव मंदिर को दूध का भोग लगानते हैं तो वहीं दूसरी तरफ किलकारी भैरव देवता मंदिर में देवता को मंदिर

अनेकों भोग चढ़ाया जाता है कई लोगों को मान्यता है कि पाण्डवों में भीम का इस मंदिर से विशिष्ट आस्था तथा वह इस मंदिर में पूजा किया था।

- छतरपुर मंदिर- नई दिल्ली, डॉ. अंबेडकर कॉलोनी में स्थित छतरपुर मंदिर वस्तुकला तथा आध्यात्मिक महत्व का सुप्रसिद्ध संगम है। यह माँ कात्यायिनी जो देवी दुर्गा के छठे स्वरूप में समर्पित है। मंदिर का क्षेत्रफल 7. एकड़ में फैला हुआ है जो अपने बेहद खूबसूरती के लिए प्रसिद्ध है आध्यात्मिक मान्यताओं के अनुसार इस के प्रांगण में जो पकड़ है उस पर चुनरी, चूंड़ियों और ध्यान बांधने से सारी मनोकामना पूर्ण होती है।
- लोटस टेंपल- लोटस टेंपल अपने नाम के अनुरूप ही भवन संरचना के लिए प्रसिद्ध है इसकी संरचना कमाल की आकृति का है तथा इसकी शुरुआत 1986 में हुई थी बहाई धर्म के द्वारा निर्मित यह मंदिर 10 मिलियन अमेरिकी डॉलर की लागत से बना है तथा इसमें कमल के आकार में 27 संगमरमर की पंखुड़ियाँ का निर्माण कि गया है।
- झंडेवाली मंदिर- झंडेवाली मंदिर दिल्ली के करोलबाग क्षेत्र में स्थित है जो देवी माँ को समर्पित प्रमुख सिद्धपीठ में एक है जो प्राचीन के अरावली पहाड़ियों और घने जंगल में साफ कर के बनाया गया हे। नवरात्री के दिनों में यहाँ काफी भीड़ रहती है तथा यहाँ पूजा -अचर्नना करने से भक्तों की सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

साहित्यिक अवलोकन

साहित्यिक अध्ययन के तहत इस लघु लेख के लिए हमने अनेकों राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय लेखों, पुस्तकों तथा दस्तावेजों का अध्ययन किया है जिसमें कुछ प्रमुख लेख इस प्रकार से हैं डॉ. विमलेश सिंह ने लघु लेख के माध्यम से विकसित भारत/2047 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का क्या योगदना होगा तथा किस प्रकार से आजादी के 100 वर्ष बाद यह भारत में आर्थिक दृष्टि, सामाजिक प्रगति, पर्यावरण स्थिरता और सुशासन सहित विकास के चौमुखी क्षेत्रों पर कार्य करेगा स्पष्ट किया है। भारीत को वैश्विक शक्ति एवं विकसित राष्ट्र बनने के मार्ग में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की भूमिका को रेखांकित किया हे। विपिन पटेल ने विकसित भातर@2047 को एक दूरदर्शी प्रयास के रूप में देखने का प्रयास किया है। यह लेख मुख्य रूप से जटिल दृष्टिकोणों को उजागर करता है तथा राष्ट्र निर्माण पर विद्वातापूर्ण योगदान देता है। पवन कुमार तथा मीरा कुमारी के लघुलेख के अंतर्गत प्रमुखता के 2047 तक भारत मुख्य, सुशासन, नवाचार, स्वास्थ, खेल, टिकाऊ अर्थव्यवस्था तथा नारी शक्ति में विश्व स्तर पर अग्रणि देश के रूप में पहचान बनेगा। हशमुख पांचाल के लेख विभिन्न डाटा ग्राफों के माध्यम से भारत को 2047 तक 'स्मार्ट' राष्ट्र के रूप में विकसित किया जाए उस पर चर्चा किया गया है। अजय कुमार कशवाह की पुस्तक विकसित भारत@2047 के युवाओं के नवीन विचार नामक आंदोलन के रूप में देखा है तथा युवाओं को सक्रिए रूप से शामिल होने का निमंत्रण देता है। विकसित भारत@2047 को साकार करने के लिए अटूट समर्पण, युवाओं की क्षमताओं तथा बड़ी जनसंख्या की भागीदारी की आवश्यकता है।

शोध विधि

शोध का महत्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु दिल्ली पर्यटन की संभावनाएँ चुनौतिया एवं समाधान है। शोध कार्य मुख्य रूप से भारत सरकार तथा दिल्ली सरकार के 2020 से 2025 के दस्तावजों के आधार पर किया गया है जिसमें वर्णात्मक शोध विविध के माध्यम से गुणात्मक एवं मात्रात्मक डाटा का संग्रह एवं विश्लेषण किया गया हे। सांस्कृति तथा ऐतिहासिक धरोहरों को विषय वस्तु के रूप में शोध प्रबंधन का कार्य सम्पन्न हुआ है। प्राथमिक डाटा प्राप्त के रूप में दिल्ली सरकार के द्वारा पर्यटन से संबंधित जगहों पर जा कर एकत्रित किया डाटा एवं सर्वे है तथा द्वितीयक स्रोत के रूप में मुख्य रूप से 2020 के बाद प्रकाशित प्रमुख पुस्ताकें, लेखें, लघु लेखों तथा विभिन्न पत्र पत्रिकाओं को लिया गया है।

इस शोध कार्य को पूर्ण करने हेतु सूक्ष्य विश्लेषण करने के क्रम में विभिन्न सार्णियों के माध्यम से प्रस्तुती का कार्य किया गया है तथा शोध की विश्वनियता एवं नैतिकता बनाने का हर संभव प्रयास किया गया है। पर्यटन का क्षेत्र व्यापक होने के कारण दिल्ली के प्रमुख पर्यटन स्थलों का ही चुनाव किया गया है। और उनका सूक्ष्मता से अध्ययन कार्य किया गया है यह शोध एक मौलिक कार्य है तथा इससे आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को बढ़ावा देने का कार्य करेगा।

दिल्ली में पयर्टन का भविष्य

भारत सरकार तथा दिल्ली सरकार के भागीदारी के पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय एवं राजकीय स्त्र पर अनेकों महात्वकांक्षी कदम उठाया गया है।

मोबाइल ऐप - 'देखों मेरी दिल्ली'

'मोबाइल ऐप- 'देखों मेरी दिल्ली' दिल्ली पर्यटन को मोबाइल ऐप के माध्यम से एक नया प्रतिमान प्रदान कर रही है। यह ऐप पूरे विश्व के पर्यटकों को आसान पहुँच प्रदान करता है। बल्कि उन्हें रचनात्मक तरीके से पर्यटन में संलगन होने के तरीका भी प्रदान करता है।

दिल्ली फिल्म नीति

दिल्ली पर्यटन मंत्रालय के द्वारा 2022 को दिल्ली फिल्म नीति (डीएफपी)-2022 अधिसूचित और शुरूआत किया गया है। इस मुख्य ध्येय फिल्मों के माध्यम से दिल्ली को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि एवं प्रचार प्रसार करना है। व्यापार के सुगमता के लिए दिल्ली सरकार ने 20 से अधिक विभाग को सहज, पारदर्शी और समयबद्ध रूप से कार्य करने की मंजूरी प्रदान करता है। ये तमाम योजनाएँ दिल्ली पर्यटन को बढ़ावा में महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करेगा।

HOHO बसें – इसकी शुरूआत दिल्ली पर्यटन विभाग तथा निजी ऑपरेटर के मदद से किया गया है जिसका मुख्य उद्देश्य एयर कंडीशन्ड, लो'–फ्लोर बसों के माध्यम से दिल्ली के प्रमुख पर्यटक स्थलों का पर्यटन करना है जिसमें पर्यटक अपने सुविधानुसार किसी भी जगह उतर चढ़ सकते है और यह सम्पूर्ण दिन दिल्ली दर्शन का सुखद अनुभव प्रदान करता है।

निष्कर्ष:

भारत सरकार की विकसित भारत@2047 योजना आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से वर्ष 2047 में पूरे भारत की काया बदलने का कार्य करेगा। जिसके तहत पर्यटन विभाग भी पीछे नहीं रहेगा। दिल्ली पर्यटन को विकसित भारत/2047 से अत्यधिक लाभ मिलने की संभावना है क्योंकि दिल्ली भारत का राजधानी राज्य है तथा यहाँ राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर के पर्यटक भ्रमण करते हैं। भारत की राजधानी राज्य दिल्ली राजनतिक तथा अध्यात्मिक के केन्द्र है दिल्ली के ये मंदिर धार्मिक, स्थापत्य कला पौराणिक कथाओं और संस्कृति विविधताओं का केन्द्र है। मंदिरों में पर्यटक बढ़ने से भारत सरकार तथा दिल्ली सरकार को विदेशी मुद्रा की प्राप्ति, टैक्स एवं अन्य शुल्कों से आय में बढ़ोत्तरी होगी साथ ही होटल, परिवहन, गाइड तथा हस्तशिलप के क्षेत्र में नए रोजगारों का सृजन होगा तथा यह विकसित भारत@2047 के सभी सपनों को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर्थिक सर्वेक्षण, दिल्ली 20–23, 24
2. प्रो. वृज किशोर कठियाला, भारत 2047 सामूहिक संकल्पना, प्रभात प्रकाशन, 2022, पृष्ठ 55, 59
3. विकसित भारत@2047 चुनौतियाँ और संभावनाएँ? अजय सिंह कुशवाहा, निशा पब्लिकेशन, 2024,
4. विकसित भारत@2047 डॉ. अरविन्द्र शुकल, इजरमश पब्लिकेशन, 2025
5- Tourism Survey for the State of Delhi
6- Vikshit bharat@2047, Transformative Role in Commerce Management and Technology, Prof. Mukesh Jain, MGM Publication House, Jaipur, Delhi, 2025
7- www.indiantourismministry.com.
8- www.delhitourismministry.com

भारत में विपक्ष की राजनीति

डॉ० रमाकान्त पाण्डेय

एस०आर०ए०पी० महाविद्यालय, बी०आर०ए०बी०यु० (मुजफ्फरपुर)

शोध सार- भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक लोकतंत्रात्मक संसदीय गणराज्य घोषित किया गया है। संसदीय लोकतंत्र में जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि सरकार का निर्माण करते है। भारत में बहुदलीय व्यवस्था है जो दल बहुमत प्राप्त करता है, सरकार बनाता है, अन्य दल विपक्ष की भुमिका अदा करते है। प्रतिनिधिक लोकतंत्र में जितना महत्वपूर्ण सतापक्ष होता है, उतना ही महत्वपूर्ण विपक्ष भी होता है। लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए विपक्ष का मजबूत होना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। विपक्ष सरकार और सतापक्ष को उतरदायी बनाता है तथा उन्हें निरंकुष होने से रोकता है। कई लोकतंत्र के समर्थकों ने विपक्ष के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए इसे लोकतंत्र के मार्ग का सबसे बड़ा बाधक बताया है। वस्तुतः प्रजातंत्र के दो पहिये है एक सतापक्ष और दुसरा विपक्ष दोनों में से एक की अनुपस्थिति भी प्रजातंत्र के पहिए को जाम कर सकती है।

15 अगस्त 1947 को भारत की आजादी के बाद प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्तमान तक एक बात स्पश्ट हो जाती है कि जब-जब विपक्ष कमजोर होता है, तब तक सरकार निरंकुश हो जाती है। अतः सरकार को नियंत्रण में रखने के लिए एवम् लोकतंत्र के सफल संचालन के लिए विपक्ष का सशक्त होना अत्यन्त आवश्यक है। संसद में विपक्ष न केवल सरकार के कार्यो की आलोचना करता है, बल्कि निर्वाचन क्षेत्र-विशिष्ट आवश्यकताओं की वकालत करने, संशोधन का प्रस्ताव करने और संसदीय प्रक्रियाओं का उपयोग कर आष्वासन की मांग करने में भी भूमिका निभाता है।

प्रथम आम चुनाव से लेकर 2024 के चुनाव तक भारत में विपक्षी प्रायः विभिन्न विधारधाराओं क्षेत्रीय हितों ओर एजेण्डों के कारण विखण्डित हो जाते है जिससे एकजूट विपक्ष भाशा प्रस्तुत करने तथा सरकार के विरूद्ध न्यूनतम साझा कार्यक्रम प्रस्तुत में अक्षम देखे गये है।

शब्द कूँजी- विपक्षी सतापक्ष, आमचुनाव, संसदीय, लोकतंत्र

प्रस्तावनाः-

15 अगस्त 1947 को भारत को आजादी मिली आजादी मिलने के बाद भारतीय लोकतंत्र के सपने को आकार मिलने लगा। जनता की इच्छाओं ने अँगड़ाइयाँ लेनी शुरू कर दी। आजाद भारत ने व्यस्क मताधिकार के आधार पर आम चुनाव करवाने का फैसला लिया। यह एक अभूवपूर्व फैसला था जिसके बदौलत नए भारत की किस्मत तय होनी थी। आजादी पूर्व ब्रिटिश काल में भी भारत में चुनाव हुए लेकिन उस समय व्यस्क मताधिकार नहीं अपनाया गया था। वोट देने का अधिकार सीमित था। केवल कुछ घनी जमींदारों और व्यापारियों को ही वोट देने का अधिकार प्राप्त था। भारत में चुनाव आयोग की स्थापना 1950 में हुई और सुकुमार सेन की पहला मुख्य चुनाव आयुक्त नियुक्त किया गया।

अंग्रेजी अखबार इंडियन एक्सप्रेस के मुताबिक फरवरी 1950 में जब मतदान खत्म हुआ तो भारत में ब्रिटेन के हाई कमिश्नर आर्ची बाल्ड नी. ने एक रिपोर्ट लिखी। इस रिपोर्ट में उन्होने कहा यह चुनाव संसदीय लोकतंत्र के तौर तरीकें को समझने के लिए एक परीक्षा थी, जिसपर यह देश अच्छी तरह से खरा उतरा है। रामचन्द्र गुहा अपनी किताब इंडिया आपटर गॉधी में लिखते है। एक तुर्की पत्रकार ने कहा कि जनता के सामने एक तरफ विकल्प था कि वो वर्चस्ववादी, साम्प्रदायिक, अलगाववादी और निरपेक्ष वादियों को चुने या दूसरी तरफ धर्म निरपेक्ष राष्ट्रीय एकता, आधुनिकता और बाकी दुनिया के साथ भाईचारे की भावना वाली विकल्प को चुने।

जनता ने आधुनिक और तरक्की को चुनकर अपनी परिपक्वता का परिचय दिया और अराजकता को खारिज कर दिया।

आजाद भारत के पहले आमचुनाव 25 अक्टुबर 1951 और 21 फरवरी 1952 के बीच हुए, यह बहुत बड़ा आयोजन था जिसमें दुनिया की करीब 17 फीसदी हिस्सा भाग ले रही थी। चुनाव में करीब 1874 उम्मीदवार और 53 राजनैतिक पार्टियाँ थी। इन पार्टियों ने 489 सीटो के लिए चुनाव लड़ा था। इस चुनाव में कॉग्रेस ने 354 सीटे जीतकर बहुमत प्राप्त किया। कुल 16 सीटे जीतने वाली भारतीय कम्युनिश्ट पार्टी मुख्य विपक्ष बनी थी।

इस तरह देखा जाए तो सन् 1952 में हुए आम चुनाव की पटकथा संयुक्त रूप से परस्पर विरोधी रही ऐतिहासिक शक्तियों भारतीय राष्टूवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हार्थो लिखी गयी थीं। ऐसा कहा जा सकता हैं कि इन शक्तियों ने आपस में विचार करके इस राष्ट्र को लोकतंत्र की तरफ लंबी छलांग लगाने के लिए प्रेरित किया था।

यह स्पष्ट है कि प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्तमान तक भारतीय लोकतंत्र को सृद्ढ़ और सशक्त बनाने में विपक्ष की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

1952 के चुनाव के लगभग तुरंत बाद भारतीय लेखक नीरद सी0 चौधरी ने एक मषहूर पत्रिका के लिए जवाहरलाल नेहरू पर लेख लिखा। उस समय तक नेहरू के आभा मंडल से पूरा देश सराबोर था। चौधरी ने लिखा कि नेहरू का नेतृत्व भारत की एकता के पीछे की सबसे बड़ी नैतिक शक्ति है। वह सिर्फ कांग्रेस पार्टी के ही नेता नहीं है। वरन् हिन्दूस्तान की जनता के नेता है।

अभिप्राय यह है कि प्रथम प्रधानमंत्री नेहरू के व्यक्तित्व की छाया में उस समय का विपक्ष पूरी तरह ओझल हो गया और अपनी भूमिका के निर्वहन में असफल रहा। भारतीय संसदीय चुनाव में धीरे-धीरे विपक्ष ने अपनी मौजूदगी का अहसास कराना शुरू किया और मौजूदा दौर में एक मजबूत और सशक्त विपक्ष अपनी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक कर रहा है।

संसदीय लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका:- एक सफल और जीवंत लोकतंत्र के लिए मजबूत और जागरूक विपक्ष का रहना अत्यन्त आवश्यक है। विपक्ष सतारूद दल को जवाबदेह बनता है। यह उसकी निरंकुषता पर लगाम लगाकर एक पारदर्शी तथा उतर दायी सरकार की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करता हैं।

विपक्ष पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए सरकारी योजनाओं वितीये लेन देन रक्षा सौदों इत्यादि की आलोचनात्मक समीक्षा करता है। अगर कोई अनियमितता पाई जाती है तो सरकार पर अविश्वास प्रस्ताव लाया जाता है। जिससे संसद के पटल पर सरकार की काफी बदनामी होती है। अत: सतापक्ष वितिय कार्यो को काफी पारदर्शी तथा उतरदायी ढंग से करती है। जिससे सरकार को संसद में किसी कठिनाई का सामना ना करना पड़े।

भारतीय संसदीय इतिहास में यह मान्यता शुरू से ही चली आ रही हैं कि संसद मे एंक दलीय प्रभुत्व एक ही आम चुनाव छोड़कर हमेशा रहा है। अगर विपक्ष कमजोर है तो एक दलीय निरंकुशता को बल मिलता है अगर विपक्ष मजबूत है तो एक दलीय तानाशाही पर नियंत्रण लगा रहता है विपक्ष की मजबूती हमेशा संसद में एक विकल्प की संभावना को मजबूती प्रदान करता हैं।

सशक्त विपक्ष सरकार की आलोचना करता है। तथा उनके अप्रजातांत्रिक क्रियाकलापों पर रोक लगाता है जिससे प्रजातंत्र को मजबूती प्रदान होती है। सतापक्ष के निरंकुशता पर अंकुश लगाकर विपक्ष नियंत्रण और संतुलन की निति का पालन करता है। साथ ही विपक्ष सरकार की जवाबदेही तथा पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।

संसद में विपक्ष के नेता को कैबिनेट स्तर के मंत्री का दर्जा प्राप्त होता है। अत: उसकी भुमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। विपक्ष का नेता संसद में सरकार के कार्यो की आलोचना करता है। जिससे सरकार की जिम्मेदारी और जबावदेही सुनिश्चित होती है।

विपक्षी दल सरकार के कार्यो को जनता तक पहुॅचता है एवम् उनकी खामियों को जनता के सामने प्रस्तुत करता है। जनता उन कानूनो का अध्ययन करती है। तथा उनके गुण दोशों के आधार पर सरकार का मूल्यांकन करती है। इस प्रकार जनता को एक विकल्प प्रदान करती है। विपक्ष के अभाव में जनता विकल्पहीन हो जाती हैं तथा मजबूरी में उन्हें सतापक्ष को ही चुनना पड़ता हैं

संसद की लोक लेखा समिति जो सरकार के वितिय खर्चो पर नियंत्रण रखती हैं परम्परागत रूप से उसका अध्यक्ष विपक्ष से ही होता है। यह परिपाटी 1967 से ही चली आ रही हैं हालाकि इसका उल्लंघन भी कई बार हुआ है। इसके साथ ही विपक्ष के सदस्य कई अन्य संसदीय समितियों के भी सदस्य होते है।

हालाकि भारत में संसदीय लोकतंत्र ब्रिटिश परम्परा की देन हैं ब्रिटिश परंपरा में विपक्ष का नेता एक छाया मंत्रिमंडल का गठन करता है जो सरकार के कार्यो का आलोचनात्मक व्याख्या कर जनता के सामने एक विकल्प प्रस्तुत करता है। जिससे सतापक्ष और विपक्ष में एक संतुलन पैदा होता है। विपक्ष छाया मंत्रिमंडल के माध्यम से न सिर्फ सरकार के कार्यो का आलोचना करता है। बल्कि जनता के सामने यह विकल्प भी प्रस्तुत करता हैं कि अगर सरकार गिर जाती है तो वैसी परिस्थिति में विपक्ष वैकल्पिक सरकार बनाने के लिए तैयार है तथा सरकार बनाने के बाद विपक्ष सरकार के गलत कार्यो को कैसे ठीक करेगी इसका ब्लू प्रिंट भी तैयार रखती हैं

इस प्रकार यह कहा जा सकता हैं कि संसदीय लोकतंत्र की दो धुरियॉ हैं एक सतापक्ष तथा दुसरा विपक्ष अगर सतापक्ष कमजोर है तो विपक्ष हावी हो जायेगा और अगर विपक्ष कमजोर है तो सतापक्ष निरकुंष हो जाएगा। दोनो ही परिस्थितियों में संसदीय लोकतंत्र की गति अवरूद्ध हो जायेगी तथा प्रजातंत्र असफल हो जाएगा।

भारत में बहुदलीय व्यवस्था हैं यहॉ संसद मे द्वितीय सबसे बडे दल को विपक्ष का दर्जा प्राप्त हो जाता था प्रथम आम चुनाव से लेकर चौथे आम चुनाव तक दुसरे सबसे बडे पार्टी को विपक्ष का दर्जा प्राप्त होता था लेकिन धीरे धीरे यह परम्परा विकसित हुई की लोकसभा चुनाव में विपक्षी दल के रूप में मान्यता प्राप्त करने के लिए लोक सभा में कुल सीटों का कम से कम 10 प्रतिशत सीट जीतना आवश्यक है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि लोकतंत्र के बदलते स्वरूप के साथ विपक्ष की भूमिका भी लगातार मजबूत होती जा रही हैं

विपक्ष हाशिए पर पड़े या कम प्रतिनिधित्व वाले समुहों की अपनी चिन्ताओं और विचारों की व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान करके विविध आवाजो के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। विपक्ष अक्सर विभिन्न विचार धाराओं हितों और दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। और समाज को प्रभावित करने वाले विभिन्न मुदो पर विचार विमर्श और बहस के लिए एक मंच प्रदान करता है।

अत: हम देख सकते है कि राजनीति विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार भारतीय लोकतंत्र में विपक्ष की भूमिका में सरकार को जवाबदेह ठहराना एक प्रहरी के रूप में कार्य करना विविध स्वरो का प्रतिनिधित्व करना प्रतिस्पर्धा को बढावा देना और वैकल्पिक नीतिगत प्रस्ताव प्रस्तुत करना शामिल है। यह सतारूढ़ दल पर एक महत्वपूर्ण नियंत्रण और संतुलन का काम करता है। और लोकतांत्रिक व्यवस्था के कामकाज और स्वास्थ्य में योगदान देता है।

चुनौतियाँ और समस्याएँ:-

भारत में विपक्ष की भूमिका काफी कमजोर रही हैं। प्रथम आमचुनाव से लेकर 1977 तक एकदलीय प्रभुत्व की स्थिति के कारण विपक्ष काफी बिखरा-बिखरा सा रहा। विपक्ष के पास एक वैकल्पिक विचारधारा और वैदेशिक नीति तथा आर्थिक नीति होनी चाहिए जिसका अभाव भारतीय विपक्षी दलो के पास नितान्त अभाव रहा है। भारत में विपक्षी दलो के पास हमेषा चुनौतिया और समस्याएॅ रही जो निम्नलिखित है।

क. कमजोर चुनावी ताकतः- 16 वी और 17 वी लोकसभा में 10 प्रतिशत सीटो की अनिवार्यता के परम्परा के कारण कोई भी दल विपक्ष के नेता पद के लिए योग्य नहीं था। इससे विधायी निगरानी और संसदीय समितियों में प्रतिनिधित्व कमजोर हो गया। ज्ञात हो कि 16 वीं और 17 वीं लोक सभा चुनावों में भाजपा और उसके सहयोगी दलों को प्रचण्ड बहुमत मिला था। जिसके कारण कोई भी विपक्षी दल अकेले 50 से ज्यादा सीट नहीं जीत सका परिणाम यह हुआ कि किसी भी विपक्षी दल को विरोधी दल की मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी क्योंकि भारतीय संसदीय इतिहास में यह परम्परा स्थापित हो चुकी है कि जो विपक्षी दल कुल लोकसभा सीटों का 10 प्रतिशत जीतेगा उसे ही पार्टी विरोधी के रूप में मान्यता प्रदान की जायेगी। इसका परिणाम यह हुआ कि विरोधी दल की प्रतिनिधित्व संसदीय समितियों में काफी कमजोर हो गया तथा सरकार पर जो विधायी नियंत्रण स्थापित किया जाता हैं उसकी परत काफी कमजोर और प्रभाव हीन हो गयी।

ख. विखण्डित विपक्षः- भारत में हमेशा विखण्डित विपक्ष रहा है। प्रथम आमचुनाव से लेकर 18 वी लोकसभा चुनाव तक भारतीय संसदीय इतिहास में यह देखा गया है कि भारत में एक से अधिक दल विपक्ष में पाये जाते है। इनके विचारधाराओं में एक रूपता न होने के कारण हमेशा विपक्ष बिखरा बिखरा रहता है। जिसके परिणास्वरूप विभिन्न विचारधाराओं वाले राजनितिक दलों की बहुलता के कारण सतारूढ़ दल के विरूद्ध एकल मोर्चा बनाना कठिन हो जाता है।

ग. स्पष्ट वैकल्पिक एजेण्डों का अभावः- नई नीतियॉ प्रस्तुत करने के बजाय विपक्ष अक्सर व्यवहार्य समाधान प्रस्तुत किए बिना ही सरकार की कार्यवाहयों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करता हैं जिसके कारण विपक्ष की आवाज में दम नहीं होता हैं। अगर विपक्ष कोई मुदा उठाता भी है तो उसपर कोई विश्वास नहीं करता।

घ. अनावश्यक आलोचना और नकारात्मक राजनीतिः- भारत में विपक्ष इतनी दिशाहीन हो जाती है। कि वह सरकार को जनहितकारी और लाभकारी योजनाओं का भी अनावश्यक विरोध करती है। जिसका परिणाम विपक्ष के लिए लाभकारी नहीं होता तथा विपक्ष की विश्वासनीयता पर प्रश्न चिन्ह खडा होता है। सरकारी नीतियॉ का ऑखमुँदकर किया जाने वाला विरोध विपक्ष की भूमिका तथा विपक्षी राजनीति को हास्यास्पद बनाता है तथा जनता के बीच विपक्षी राजनीति का कमजोर चित्रण प्रस्तुत करता है। अतः विपक्ष दल को हमेशा सजग रहना चाहिए और सकारात्मक राजनीति करनी चाहिए।

ड. दलबदलः- भारतीय राजनीति में दलबदल की घटनाएँ आम हैं बार-बार दल बदल करने से नेता तथा दल दोनो की विश्वसनीयता पर असर पड़ता है। बार-बार दल बदल तथा विधेयको पर पर्याप्त चर्चा के अभाव में भारत में विपक्षी दलों की एक नकारात्मक छवि उभरी है। किसी भी विधेयक पर सार्थक और सकारात्मक चर्चा विपक्षी राजनीति को नई दशा और दिशा प्रदान करता हैं जिसका भारतीय राजनीति में पर्याप्त अभाव हैं।

कमजोर विपक्ष के परिणामः-

क. संसदीय विश्वसनीयता में कमीः-

प्रायः कहा जाता है कि मजबूत विपक्ष संसदीय लोकतंत्र की धूरी हैं। इसके अभाव में संसदीय लोकतंत्र गतिशील नहीं रह सकता। मजबूत विपक्ष के बिना संसद में सार्थक बहस और चर्चा कम हो जाती है। जिससे नीति निर्माण में बाधा उपस्थित होती है।

ख. निरंकुशता का उदयः-

भारत में प्रायः बहूधा विधेयक अध्यादेश के रूप में लाने पड़ते है। इसका एक कारण नकारात्मक विपक्ष का होना हैं समितियों को भेजे जाने वाले विधेयकों की संख्या में कमी आने तथा अध्यादेशों के प्रयोग में वृद्धि होने से शासन कम लोकतांत्रिक तथा अधिक केन्द्रीकृत हो जाता है। संसद में यदि किसी भी विधेयक पर अपेक्षित चर्चा नहीं होगी। यदि विधेयको पर विपक्ष अपनी सकारात्मक भूमिका का निर्वहन नहीं करेगा तो ऐसी परिरिस्थति में अध्यादेश राज को बढावा मिलेगा जो कही से लोकतांत्रिक नहीं हैं

ग. सार्वजनिक मुद्दों की उपेक्षाः-

भारत में विपक्षी दल प्रायः जनता की भावनाओं की सरकार तक पहुँचाने में असमर्थ सिद्ध होते है। साथ ही जन सरोकार से जुड़े मुद्दों के आधार पर सरकार पर दबाव डालने में अक्षम सिद्ध होते है। जनता से सीधे सम्बन्धित मुद्दों जैसे बेरोजगारी, महंगाई, आर्थिक ढॉचा कमजोर, पर सरकार पर दबाव डालने तथा उसके लिए वैकल्पिक एजेण्डा प्रस्तुत करने में विफल विपक्ष जनता के सामने एक मजबूत विकल्प प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं जिससे जनता में विकल्पहीनता की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं तथा एक दलीय निरंकुषता की बढावा मिलता है।

घ. आम जनता से दूरीः-

जब विपक्ष अपने आपको जनता से सम्बद्ध नही कर पाता तो वह जनता का आधारभुत समर्थन खो देता है। जन समर्थन के अभाव में विपक्षी दल असहाय हो जाते है। ऐसी परिस्थिति में विपक्ष सरकार को चुनौती प्रस्तुत करने में असमर्थ हो जाते है। तथा सतारूढ़ दल निरंकुष तथा गैर जिम्मेदार बन जाता है।

ड. खराब शासनः-

जब विपक्ष कमजोर हो जाता है तो सरकार अनियंत्रित हो जाती है तथा कई बार अलोकप्रियकारी तथा असंवैधानिक कानूनों का निर्णाण होता है। जो जनता के लिए कष्टकारी होती है। ऐसे कानूनो को जनता या तो चुपचाप सहन करती है या फिर उनका खुलकर विरोध करती है। ऐसी परिस्थिति में जनता को स्वंय विपक्ष की भूमिका का निर्वहन करना पड़ता है। भारतीय राजनीति में कई ऐसे उदाहरण है जब जनता ने स्वंय सड़को पर उतरकर सरकार के अलोकतांत्रिक कानूनो का विरोध किया है।

आगे की राहः-

1. रचनात्मक आलोचनाः- एक सफल लोकतंत्र के संचालन के लिए मजबूत विपक्ष का होना अत्यन्त आवश्यक है। अतः भारत में भी विपक्षी राजनीति को रचनात्मक आलोचना पर विश्वास करना होगा, तथा किसी भी समस्या का वैकल्पिक समाधान जनता के सामने प्रस्तुत करना होगा। तभी जाकर विपक्ष अपने सही स्वरूप को पहचान पाएगा।
2. जनजुड़ावः- भारत में विपक्षी राजनीति को असरदार बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह जनहित कारी कार्यो के द्वारा अपने को जनता से मजबूती से आबद्ध करे। लोकप्रिय बहुमत हासिल करने के लिए विपक्ष को जनता से मजबूती से जूडना होगा।
3. विचारधारा आधरितः- भारतीय विपक्षी राजनीति की यह परम्परा रही है कि यह विचारधारा केन्द्रित नहीं होती है। अतः भारत को एक मजबूत लोकतंत्र बनाने के लिए विपक्ष की एक मजबूत केन्द्रीकृत विचार धारा को अपनाना होगा और बेहतर नीति- निर्माण के लिए विकेन्द्रित पार्टी सरंचना का निर्माण करना होगा।
4. विपक्षी दलों में आन्तरिक लोकतंत्रः- विपक्ष को मजबूत होने के लिए पहले स्वंय के अन्दर लोकतंत्र को विकसित करना होगा। परिवारवाद तथा जातिवाद सम्प्रदायवाद जैसे संकीर्ण मुद्दों से उपर उठना होगा। अन्यथा वर्तमान राजनीति विपक्ष विहीन हो जायेगी। जो संसदीय लोकतंत्र के लिए घातक सिद्ध होगी।
5. सरकार के साथ आम सहमति बनानाः- संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए विपक्ष को सरकार के साथ आम सहमति बनाकर चलनी होगी। खासकर वैसे मुद्दे जो देश की एकता और अखण्डता से जुडे हो ऐसे मुद्दो पर सरकार एवम् विपक्ष को आम सहमति बनाकर एक समन्वित दृष्टिकोण अपनाना चाहिए ताकि जनता का विश्वास संसदीय प्रतिनिधिक लोकतंत्र पर कायम रहे। आपातकाल की स्थिति में विपक्ष को सतत जागरूक तथा जिम्मेदार दृष्टिकोण अपनाना होगा। सतापक्ष का भी यह दायित्व बनता है कि बेहतर षासन सुनिश्चित करने के लिए निरंतर टकराव के बजाय विपक्ष को महत्वपूर्ण चर्चाओं और विधायीप्रक्रियाओं में षामिल किया जाना चाहिए। ताकि विपक्ष को भी अपनी जिम्मेदारी का अहसास हो सके।
6. दलबदल पर नियंत्रणः- एक सशक्त तथा जवाबदेह विपक्ष बनाने के लिए दल बदल कानून को और मजबूत बनाने की जरूरत हैं इससे पार्टी में स्थिरता तथा पार्टी के लिए समर्पण की भावना विकसित होगी।

निष्कर्षः-

एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए एक जिम्मेदार सरकार के साथ साथ एक जवाबदेह और मजबूत विपक्ष की आवश्यकता होती है। अगर विपक्ष कमजोर होता है तो सता दल के निरंकुश होने की संभावना बढ़ जाती हैं अगर सता दल कमजोर हो और विपक्ष बहुत मजबूत हो जाये तो ऐसी परिस्थिति में सरकार पंगु तथा निरीह हो जायेगी और लोकतंत्र की गाड़ी पटरी से उतर जायेगी। अतः सताधारी दल और विपक्ष की लोकतांत्रिक मूल्यों को बनाए रखने और लोगों की चिन्ताओं का प्रभावी ढंग से समाधान सुनिश्चित करने के लिए मिलकर काम करना होगा। आन्तरिक सुधारों जमीनी स्तर पर जुडाव और मुद्दा आधारित राजनीति के माध्यम से विपक्ष को मजबूत करने में एक अधिक जवाबदेही और पारदर्शी शासन प्रणाली का निर्माण होगा।

संसदीय लोकतंत्र की अभिव्यक्ति सता दल और विपक्षी दल के बीच समन्वय पर आधारित होती हैं किन्तु वर्तमान में भारत का संसदीय विपक्ष न केवल खंडित है बल्कि अव्यवस्थित बेतरतीबी का शिकार भी नजर आता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शायद ही हमारे पास कोई विपक्षी दल है जिसके पास अपने संस्थागत कार्यकलाप के लिए समग्र रूप से प्रतिपक्ष के प्रतिनिधित्व के लिये कोई रणनीति हो।

दूनिया के सबसे बडे लोकतंत्र के रूप में भारत के संसदीय विपक्ष को पूनजीर्वित करना और उसे सशक्त करना अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है विषेशकर जब लोकतंत्र का मूल्यांकन करने वाले विभिन्न सूचकांको मे इसकी वैष्विक रैकिंग में लगातार गिरावट आ रही है। वर्तमान दौर को लोकतंत्र मानवाधिकारों और प्रेस स्वतंत्रता पर भारत की अंतराष्ट्रीय रैंकिग में गिरावट कमजोर विपक्ष का उदाहरण प्रस्तुत करते है। वर्तमान दौर की संकट से निकालने के लिये विपक्ष को नई रणनीति बनाकर अपनी भूमिका को जनहितकारी तथा लोकतंत्र हितकारी बनाने की जरूरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. भारत गॉधी के बाद- रामचंद्र गुहा
2. भारतीय शासन एवम् राजनीति- पुखराज जैन
3. कोठारी रजनी-कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स नई दिल्ली
4. डॉ सुभाष कश्यप- हमारी संसद
5. सुशील चन्द्र सिंह- संसदीय सरकार में विरोधी दल का स्थान लोकतंत्र समीक्षा अप्रैल 2005
6. साप्ताहिक हिन्दुस्तान
7. इंडिया टूडे
8. द हिन्दू
9. इंडियन एक्सप्रेस

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन

डॉ० अनिल कुमार शुक्ला

प्राचार्य, माँ अष्टभुजा कॉलेज ऑफ एजुकेशन, पटेहरा, मऊगंज, रीवा (म० प्र०),
सम्बद्ध अ० प्र० सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म० प्र०)

रेखा सिंह

शोध छात्रा, शिक्षाशास्त्र, लाइफ लॉन्ग लर्निंग विभाग, अ० प्र० सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म० प्र०)

सारांश

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन करने वाला यह शोध पत्र विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं व्यवहारिक पक्षों को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना था कि उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी वर्तमान क्षण के प्रति कितने सजग, जागरूक एवं संवेदनशील हैं तथा उनकी मानसिक सजगता का उनके शैक्षिक प्रदर्शन, तनाव प्रबंधन, आत्म-नियंत्रण एवं भावनात्मक संतुलन से क्या संबंध है। शोध में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया तथा विभिन्न विद्यालयों से चयनित विद्यार्थियों को नमूने के रूप में शामिल किया गया। मानसिक सजगता के मापन हेतु मानकीकृत मानसिक सजगता मापनी का उपयोग किया गया, जिससे विद्यार्थियों की ध्यान-एकाग्रता, आत्म-जागरूकता, भावनात्मक स्वीकार्यता एवं वर्तमान क्षण के प्रति सजगता का मूल्यांकन किया गया। अध्ययन के निष्कर्षों से स्पष्ट हुआ कि जिन विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का स्तर उच्च था, उनमें तनाव, परीक्षा-भय एवं नकारात्मक भावनाएँ अपेक्षाकृत कम पाई गईं, जबकि आत्मविश्वास, भावनात्मक स्थिरता एवं सीखने में रुचि अधिक देखी गई। इसके अतिरिक्त यह भी पाया गया कि मानसिक सजगता विद्यार्थियों के शैक्षिक एवं व्यक्तिगत विकास में सहायक भूमिका निभाती है तथा उन्हें जीवन की चुनौतियों से संतुलित ढंग से निपटने में सक्षम बनाती है। अंततः शोध पत्र यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि उच्च माध्यमिक स्तर पर मानसिक सजगता से संबंधित गतिविधियों, योग, ध्यान एवं जागरूकता-आधारित कार्यक्रमों को शैक्षिक पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए,जिससे विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सके।

मुख्य शब्द- उच्च माध्यमिक स्तर, विद्यार्थी, मानसिक सजगता, मध्यमान, मानक विचलन, क्रांतिक अनुपात इत्यादि।

प्रस्तावना

उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में अत्यंत प्रासंगिक एवं समयोचित विषय है। आज का किशोर विद्यार्थी तीव्र प्रतिस्पर्धा, शैक्षिक दबाव, परीक्षा-केन्द्रित व्यवस्था, तकनीकी माध्यमों की अधिकता तथा सामाजिक-पारिवारिक अपेक्षाओं के कारण मानसिक रूप से अत्यधिक तनावग्रस्त होता जा रहा है। ऐसे परिवेश में विद्यार्थियों की मानसिक सजगता न केवल उनके शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित करती है, बल्कि उनके भावनात्मक संतुलन, निर्णय-क्षमता, आत्म-नियंत्रण एवं समग्र व्यक्तित्व विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानसिक सजगता से अभिप्राय व्यक्ति की वर्तमान क्षण के प्रति सजग, सतर्क एवं सचेत अवस्था से है, जिसमें वह बिना किसी पूर्वाग्रह के अपने विचारों, भावनाओं एवं अनुभवों को समझने और स्वीकार करने की क्षमता विकसित करता है। यह क्षमता विद्यार्थियों को तनाव प्रबंधन, एकाग्रता वृद्धि तथा सकारात्मक सोच के विकास में सहायक सिद्ध होती है।

उच्च माध्यमिक स्तर का कालखंड विद्यार्थियों के जीवन का एक संवेदनशील एवं निर्णायक चरण माना जाता है, क्योंकि इसी अवस्था में करियर-निर्धारण, आत्म-पहचान तथा सामाजिक समायोजन की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। इस स्तर पर मानसिक सजगता का अभाव विद्यार्थियों में चिंता, अवसाद, चिड़चिड़ापन, आत्म-विश्वास की कमी तथा शैक्षिक पिछड़ापन उत्पन्न कर सकता है। इसके विपरीत, उच्च मानसिक सजगता वाले विद्यार्थी अपने लक्ष्य के प्रति अधिक सजग, भावनात्मक रूप से संतुलित तथा सीखने की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय पाए जाते हैं। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में जहाँ संज्ञानात्मक विकास पर अपेक्षाकृत अधिक बल दिया जाता है, वहीं मानसिक एवं भावनात्मक सजगता की उपेक्षा एक गंभीर चुनौती के रूप में उभर रही है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि विद्यार्थियों की मानसिक सजगता को एक महत्वपूर्ण शैक्षिक चर के रूप में अध्ययन किया जाए।

वर्तमान समय में कोविड-19 महामारी के पश्चात् ऑनलाइन शिक्षा, सामाजिक दूरी तथा डिजिटल उपकरणों पर बढ़ती निर्भरता ने विद्यार्थियों की मानसिक स्थिति को और अधिक प्रभावित किया है। इससे उनकी ध्यान-क्षमता, स्मरण-शक्ति एवं भावनात्मक स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। ऐसे में मानसिक

सजगता का अध्ययन यह समझने में सहायक हो सकता है कि विद्यार्थी वर्तमान परिस्थितियों में अपने मानसिक स्वास्थ्य को किस प्रकार संतुलित कर रहे हैं। यह शोध न केवल विद्यार्थियों की मानसिक सजगता के स्तर का आकलन करेगा, बल्कि उससे संबंधित शैक्षिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों की पहचान में भी सहायक सिद्ध होगा।अत: उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन शैक्षिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी है। यह शोध शिक्षकों, अभिभावकों एवं शिक्षा-नीति निर्माताओं को विद्यार्थियों की मानसिक आवश्यकताओं को समझने तथा उनके लिए उपयुक्त शिक्षण-अधिगम वातावरण विकसित करने में मार्गदर्शन प्रदान करेगा। साथ ही, यह अध्ययन विद्यालयों में ध्यान, योग एवं मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के समावेशन की आवश्यकता को भी रेखांकित करेगा, जिससे विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सके।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन करना वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अवस्था किशोरावस्था से युवावस्था में संक्रमण की होती है, जहाँ विद्यार्थियों को शैक्षिक दबाव, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी, करियर चयन की अनिश्चितता, पारिवारिक अपेक्षाएँ तथा सामाजिक-डिजिटल वातावरण के कारण मानसिक तनाव, एकाग्रता में कमी और भावनात्मक असंतुलन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। मानसिक सजगता का अध्ययन विद्यार्थियों की ध्यान क्षमता, आत्म-नियंत्रण, भावनात्मक स्थिरता, तनाव प्रबंधन तथा सकारात्मक सोच के विकास में इसकी भूमिका को समझने में सहायक होता है। इस शोध के माध्यम से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि मानसिक सजगता न केवल शैक्षणिक उपलब्धि को बेहतर बनाती है, बल्कि विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व विकास, मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन और जीवन कौशलों के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। साथ ही, इस प्रकार का अध्ययन शिक्षकों, विद्यालय प्रशासकों और शिक्षा नीति-निर्माताओं को विद्यालय स्तर पर मानसिक स्वास्थ्य-उन्मुख कार्यक्रमों, परामर्श सेवाओं और सजगता आधारित हस्तक्षेपों को प्रभावी रूप से लागू करने हेतु वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है, जिससे विद्यार्थियों को संतुलित, आत्मविश्वासी एवं जिम्मेदार नागरिक के रूप में विकसित किया जा सके।

सम्बंधित साहित्य का पुनरावलोकन- सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञान-कोषों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध-प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन की रूपरेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

किसी भी विषय के विकास में किसी विशेष शोध प्रारूप का स्थान बनाने के लिए शोधकर्ता को पूर्व सिद्धान्तों एवं शोधों से भली-भाँति अवगत होना चाहिए। इस जानकारी को निश्चित करने के लिए व्यवहारिक ज्ञान में प्रत्येक शोध प्रारूप की प्रारम्भिक अवस्था में इसके सैद्धान्तिक एवं शोधित साहित्य की समीक्षा करनी होती है।

सम्बंधित साहित्य-

परिहार, जितेन्द्र सिंह एवं मिश्रा, नन्दलाल (2017) "विभिन्न मानसिक सजगता के विद्यार्थियों के समायोजन का अध्ययन'' शीर्षक से किए गए इस शोध में मानसिक सजगता और समायोजन के बीच संबंध को गहराई से परखा गया। शोधकर्ताओं ने मध्य प्रदेश के सतना जनपद के चित्रकूट क्षेत्र से वर्गबद्ध अनियत प्रतिचयन विधि द्वारा कुल 400 विद्यार्थियों का चयन किया, जिनमें विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक पृष्ठभूमि के छात्र-छात्राएँ सम्मिलित थे। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह जानना था कि उच्च, औसत और निम्न मानसिक सजगता वाले विद्यार्थियों में शैक्षिक, संवेगात्मक और सामाजिक समायोजन में किस प्रकार का अंतर पाया जाता है। शोध निष्कर्षों में पाया गया कि उच्च मानसिक सजगता वाले विद्यार्थी, चाहे उनका लिंग, क्षेत्र या आर्थिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, शैक्षिक तथा संवेगात्मक समायोजन के मामले में स्पष्ट रूप से श्रेष्ठ पाए गए। औसत मानसिक सजगता वाले विद्यार्थी भी निम्न सजगता वाले विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर समायोजन प्रदर्शित करते हैं। अध्ययन ने यह भी स्पष्ट किया कि मानसिक सजगता का विकास विद्यार्थियों की आत्म-नियंत्रण, तनाव-प्रबंधन और सामाजिक सहभागिता की क्षमताओं में सकारात्मक प्रभाव डालता है। इन निष्कर्षों के आधार पर शोधकर्ताओं ने सुझाव दिया कि विद्यालय स्तर पर मानसिक सजगता-वर्धन के लिए प्रशिक्षण, खेल-कूद, ध्यान-अभ्यास और सहपाठी सहयोग गतिविधियाँ आयोजित की जानी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों का समायोजन स्तर सुधर सके।

फ्रेंक, बरबरा एवं क्लग, एन्टल (2017) "कार्यव्यवस्था में अनुकूलन स्थानान्तरण पर सामान्य मानसिक सजगता तथा स्मृति का प्रभाव'' शीर्षक से किए गए इस अंतरराष्ट्रीय अध्ययन में व्यावसायिक प्रशिक्षण के दौरान प्रतिभागियों के कार्य-कौशल के हस्तांतरण की प्रक्रिया को मानसिक सजगता और स्मृति क्षमता के संदर्भ में परखा गया। शोध में कुल 200 प्रतिभागियों को शामिल किया गया, जिनमें विभिन्न आयु समूह, शिक्षा स्तर और पेशागत पृष्ठभूमि के लोग थे। अध्ययन का उद्देश्य यह पता लगाना था कि किस हद तक सामान्य मानसिक सजगता और स्मृति क्षमता, एक प्रकार के कार्य से दूसरे प्रकार के कार्य में दक्षताओं के सफल हस्तांतरण में सहायक होती है। शोध निष्कर्षों में स्पष्ट हुआ कि उच्च मानसिक सजगता वाले प्रतिभागी नए कार्य-परिस्थितियों के अनुकूल अधिक तेजी से ढलते हैं और पूर्व सीखे गए कौशलों को नए संदर्भों में अधिक सफलतापूर्वक लागू कर पाते हैं। साथ ही, जिन प्रतिभागियों की स्मृति क्षमता बेहतर थी, उन्होंने अनुकूलन प्रक्रिया में और भी प्रभावी प्रदर्शन किया। अध्ययन ने इस तथ्य को रेखांकित किया कि मानसिक सजगता न केवल तात्कालिक कार्य-निष्पादन को प्रभावित करती है, बल्कि दीर्घकालीन कौशल-विकास और पेशागत सफलता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शोधकर्ताओं ने निष्कर्ष निकाला कि कार्यस्थल और प्रशिक्षण संस्थानों में मानसिक सजगता एवं स्मृति-वर्धन के कार्यक्रम, अनुकूलन क्षमता को बढ़ाने में निर्णायक हो सकते हैं।

साव, अखिलेश्वर (2008) "मनोअध्यात्मिक विकास कार्यक्रम का सामान्य मानसिक सजगता, सांवेगिक स्थिरता, सर्जनात्मकता एवं आत्मविश्वास पर प्रभाव'' विषयक इस शोध में हस्तक्षेप-आधारित अध्ययन पद्धति का प्रयोग किया गया। शोध में विशेष रूप से किशोरियों और धीमी सीखने की गति वाले विद्यार्थियों को शामिल किया गया, ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या मनोअध्यात्मिक विकास कार्यक्रम उनके मानसिक और भावनात्मक पहलुओं में सुधार ला सकता है। अध्ययन का डिजाइन ऐसा था जिसमें प्रतिभागियों को एक विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम से गुजारा गया, जिसमें ध्यान-योग, आत्मचिंतन, समूह-चर्चा, सर्जनात्मक लेखन और समस्या-समाधान गतिविधियाँ सम्मिलित थीं। अध्ययन के परिणामों में यह पाया गया कि कार्यक्रम पूर्ण होने के बाद प्रतिभागियों की सामान्य मानसिक सजगता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। इसके साथ ही उनकी सांवेगिक स्थिरता, सर्जनात्मकता और आत्मविश्वास के स्तर में भी सकारात्मक सुधार दर्ज किया गया। धीमी सीखने की गति वाले विद्यार्थियों में भी सुधार हुआ, यद्यपि यह सुधार सामान्य विद्यार्थियों की तुलना में अपेक्षाकृत

कम था। शोध के निष्कर्ष इस दिशा में संकेत देते हैं कि ऐसे कार्यक्रमों का नियमित रूप से आयोजन विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व विकास में सहायक हो सकता है, विशेषकर उन विद्यार्थियों के लिए जिन्हें सीखने में अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होती है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य- प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता के स्तर का निर्धारण करना।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का क्षेत्र के आधार पर भिन्नता की जाँच करना।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का लिंग के आधार पर भिन्नता की जाँच करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाएं- प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पनाएं निम्नवत हैं -

1. उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में मानसिक सजगता का स्तर औसत से अधिक नहीं होता।
2. उच्च माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की मानसिक सजगता में महत्त्वपूर्ण अंतर होता है।
3. उच्च माध्यमिक स्तर पर पुरुष और महिला विद्यार्थियों की मानसिक सजगता में सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर होता है।

शोध विधि- प्रस्तुत शोध में विवरणात्मक अनुसन्धान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या- इस शोध में जनसंख्या के रूप में शोधकर्त्री ने उन विद्यार्थियों को शामिल किया है जो उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कक्षा 11 में अध्ययनरत हैं। शोध के लिए चुने गए विद्यार्थी उन विद्यालयों से होंगे, जो शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में स्थित हैं। इस प्रकार शोध में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों को समान रूप से शामिल किया गया है, ताकि यह अध्ययन शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच मानसिक सजगता में संभावित भिन्नताओं को स्पष्ट कर सके।

न्यादर्श-शोध में कुल 400 विद्यार्थियों का चयन सरल यादृच्छिक नमूना विधि द्वारा किया गया है, जिनमें से 200 विद्यार्थियों का चयन शहरी विद्यालयों से और 200 विद्यार्थियों का चयन ग्रामीण विद्यालयों से किया गया है। प्रत्येक क्षेत्र से 100 छात्र और 100 छात्राएँ चुने गये हैं। इस प्रकार, शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों से विद्यार्थियों का समान प्रतिनिधित्व है ,जो इस शोध को अधिक सटीक और प्रमाणिक बनाएगा।

शोध उपकरण- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का मूल्यांकन डॉ. आर. पी. श्रीवास्तव द्वारा विकसित ''जनरल मेंटल अलर्टनेस टेस्ट'' द्वारा किया गया है।

शोध से प्राप्त परिणामों का सारणीबद्ध विश्लेषण एवं व्याख्या अग्रवत है-

परिकल्पना 1.उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में मानसिक सजगता का स्तर औसत से अधिक नहीं होता।

तालिका 1: मानसिक सजगता में विद्यार्थियों के प्रदर्शन का वर्गीकरण

मानसिक सजगता स्तर	संख्या (n)	प्रतिशत (%)	वर्गीकरण
उच्च	120	30%	उत्कृष्ट
मध्यम	160	40%	संतोषजनक
निम्न	100	25%	सुधार की आवश्यकता
अत्यधिक निम्न	20	5%	गंभीर कमी

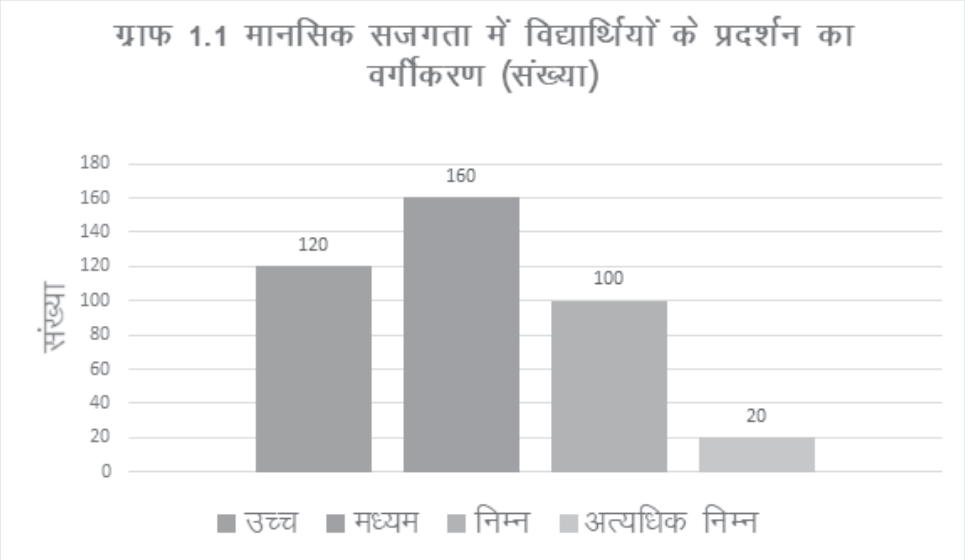

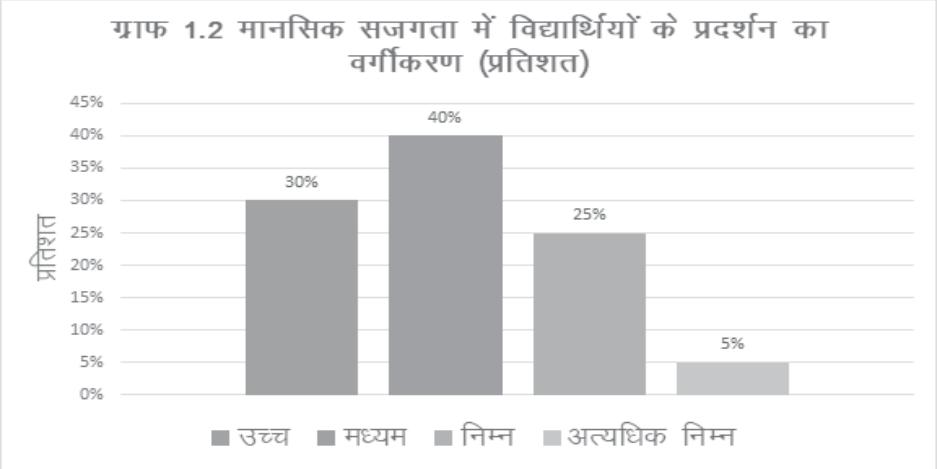

विश्लेषण: तालिका 1 में मानसिक सजगता के स्तरों के आधार पर विद्यार्थियों का वर्गीकरण किया गया है।

- उच्च मानसिक सजगता (120 विद्यार्थी, 30%) वाले विद्यार्थी मानसिक रूप से अत्यधिक सजग और सक्रिय होते हैं। इन विद्यार्थियों को न्यूनतम मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है और वे अपने अध्ययन में उत्कृष्ट प्रदर्शन करते हैं।
- मध्यम मानसिक सजगता (160 विद्यार्थी, 40%) वाले विद्यार्थी सामान्यत: अच्छे होते हैं, लेकिन उनकी सजगता में सुधार की आवश्यकता हो सकती है। वे विभिन्न परिस्थितियों में अपेक्षाकृत बेहतर प्रदर्शन करते हैं, लेकिन मानसिक सजगता में उच्च स्तर तक नहीं पहुँच पाते।
- निम्न मानसिक सजगता (100 विद्यार्थी, 25%) वाले विद्यार्थी मानसिक सजगता में सामान्य से कम होते हैं, और इन्हें मानसिक रूप से सजग होने के लिए सुधार की आवश्यकता हो सकती है।
- अत्यधिक निम्न मानसिक सजगता (20 विद्यार्थी, 5%) वाले विद्यार्थियों का मानसिक सजगता स्तर बहुत कम होता है, और उन्हें सुधार के लिए विशेष मार्गदर्शन और समर्थन की आवश्यकता होती है।

व्याख्या: तालिका 1 से यह स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों के मानसिक सजगता में विविधता है। उच्च मानसिक सजगता वाले विद्यार्थी अपनी शैक्षिक यात्रा में अधिक आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ते हैं, जबकि निम्न और अत्यधिक निम्न स्तर वाले विद्यार्थियों को अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होती है। यह डेटा यह सुझाव देता है कि मानसिक सजगता में सुधार के लिए प्रशिक्षण और मार्गदर्शन महत्वपूर्ण हो सकता है, खासकर उन विद्यार्थियों के लिए जिनकी सजगता निम्न या अत्यधिक निम्न स्तर पर है।

प्रिकल्पना 2. उच्च माध्यमिक स्तर पर शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की मानसिक सजगता में महत्त्वपूर्ण अंतर होता है।

तालिका 2: शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच मानसिक सजगता में अंतर

क्षेत्र	माध्य	मानक विचलन	न्यूनतम	अधिकतम
शहरी क्षेत्र	83.4	6.1	70	100
ग्रामीण क्षेत्र	70.2	8.4	50	89

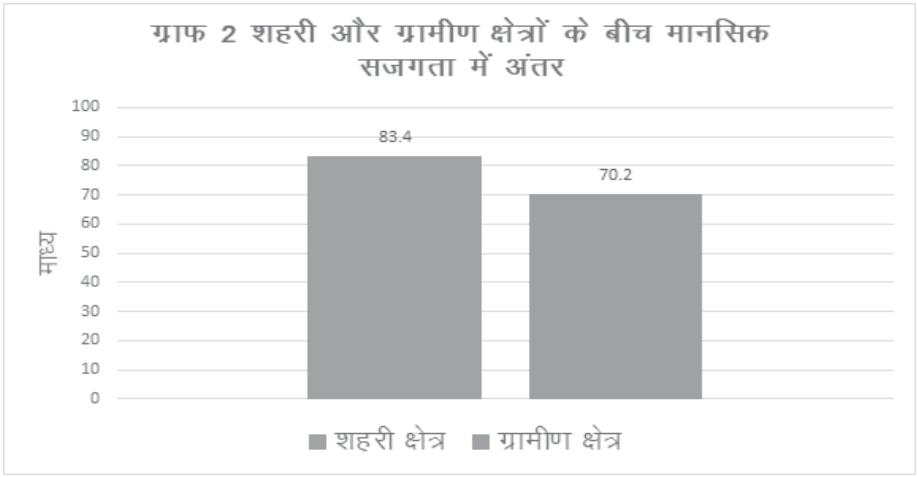

विश्लेषण: तालिका 2 में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के मानसिक सजगता के स्तरों के बीच अंतर को प्रदर्शित किया गया है।

- शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का औसत स्कोर 83ण्4 है, और उनका मानक विचलन (6ण्1) अपेक्षाकृत कम है, जो यह दर्शाता है कि इस क्षेत्र के विद्यार्थियों का मानसिक सजगता स्तर उच्च और स्थिर है। इन विद्यार्थियों के न्यूनतम स्कोर 70 और अधिकतम स्कोर 100 के बीच हैं, जो उनके उच्च मानसिक सजगता के स्तर को दर्शाता है।
- ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों का औसत स्कोर 70ण्2 है, और उनका मानक विचलन (8ण्4) शहरी क्षेत्र के मुकाबले अधिक है, जो यह दर्शाता है कि इन विद्यार्थियों के मानसिक सजगता में अधिक भिन्नता है। इन विद्यार्थियों के न्यूनतम स्कोर 50 और अधिकतम स्कोर 89 के बीच हैं, जो उनके मानसिक सजगता स्तर को शहरी क्षेत्रों के मुकाबले कम और अस्थिर बताते हैं।

व्याख्या: तालिका 2 से यह निष्कर्ष निकलता है कि शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों की मानसिक सजगता ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों से अधिक है। शहरी क्षेत्रों में बेहतर शैक्षिक संसाधन, मानसिक प्रशिक्षण और सामाजिक अवसर मिलते हैं, जो विद्यार्थियों को मानसिक रूप से अधिक सजग और सक्रिय बनाते हैं। वहीं, ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी और सामाजिक अवसरों का अभाव मानसिक सजगता को प्रभावित कर सकता है, जिसके परिणामस्वरूप इन विद्यार्थियों के मानसिक सजगता में भिन्नता और कमियां देखी जाती हैं।

प्रिकल्पना 3.उच्च माध्यमिक स्तर पर पुरुष और महिला विद्यार्थियों की मानसिक सजगता में सांख्यिकीय रूप से महत्त्वपूर्ण अंतर होता है।

तालिका 3: पुरुष और महिला विद्यार्थियों के बीच मानसिक सजगता में अंतर

लिंग	माध्य	मानक विचलन	न्यूनतम	अधिकतम
पुरुष	78.5	7.1	60	95
महिला	82.3	6.4	65	100

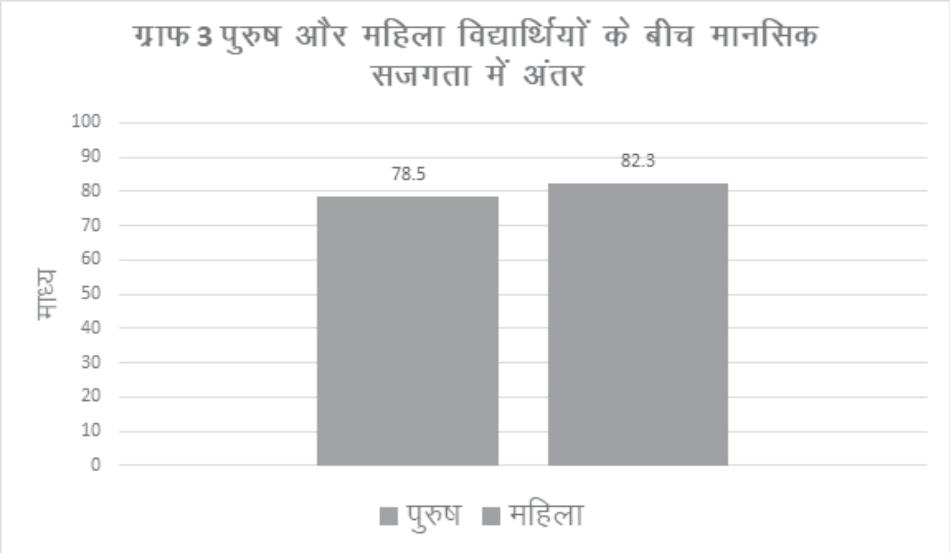

विश्लेषण:तालिका 3 में पुरुष और महिला विद्यार्थियों के मानसिक सजगता के बीच अंतर को प्रदर्शित किया गया है।

- महिला विद्यार्थियों का औसत मानसिक सजगता स्कोर 82.3 है, जबकि पुरुष विद्यार्थियों का औसत स्कोर 78.5 है। इससे स्पष्ट होता है कि महिला विद्यार्थियों की मानसिक सजगता पुरुष विद्यार्थियों से थोड़ी अधिक है।
- महिला विद्यार्थियों का मानक विचलन (6.4) पुरुष विद्यार्थियों (7.1) के मुकाबले कम है, जो यह दर्शाता है कि महिला विद्यार्थियों के मानसिक सजगता के परिणाम अधिक स्थिर और समान हैं। वहीं, पुरुष विद्यार्थियों के परिणाम में थोड़ा अधिक भिन्नता पाई जाती है।
- महिला विद्यार्थियों का न्यूनतम स्कोर 65 और अधिकतम स्कोर 100 है, जबकि पुरुष विद्यार्थियों का न्यूनतम स्कोर 60 और अधिकतम स्कोर 95 है। यह दर्शाता है कि महिला विद्यार्थियों के मानसिक सजगता में अधिक विविधता नहीं है और उनका प्रदर्शन स्थिर रहता है।

व्याख्या: तालिका 3 से यह निष्कर्ष निकलता है कि महिला विद्यार्थियों की मानसिक सजगता पुरुष विद्यार्थियों से बेहतर है। महिला विद्यार्थियों के परिणाम स्थिर और उच्चतर हैं, जबकि पुरुष विद्यार्थियों में मानसिक सजगता के स्तर में अधिक भिन्नता पाई जाती है। यह भी दर्शाता है कि महिला विद्यार्थियों के मानसिक सजगता के परिणामों में अधिक निरंतरता है, जो उनके मानसिक विकास और शैक्षिक प्रदर्शन को प्रभावित कर सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तीनों तालिकाओं के समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकलता है कि विद्यार्थियों में मानसिक सजगता का स्तर समान नहीं है, बल्कि इसमें स्पष्ट विविधता पाई जाती है। तालिका 1 के आधार पर यह देखा गया कि अधिकांश विद्यार्थी मध्यम (40:) एवं उच्च (30:) मानसिक सजगता स्तर में आते हैं, जो यह संकेत देता है कि सामान्यत: विद्यार्थियों की मानसिक सजगता संतोषजनक से उत्कृष्ट स्तर तक है। फिर भी लगभग 30 प्रतिशत विद्यार्थी (निम्न एवं अत्यधिक निम्न वर्ग) ऐसे हैं जिन्हें मानसिक सजगता में सुधार हेतु विशेष प्रशिक्षण, परामर्श एवं निरंतर मार्गदर्शन की आवश्यकता है। यह तथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि मानसिक सजगता शैक्षिक सफलता का एक महत्वपूर्ण घटक है और इसके अभाव में विद्यार्थियों का शैक्षिक प्रदर्शन प्रभावित हो सकता है।

तालिका 2 के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों की मानसिक सजगता में स्पष्ट अंतर विद्यमान है। शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों का औसत मानसिक सजगता स्कोर अपेक्षाकृत अधिक एवं स्थिर पाया गया, जबकि ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों में न केवल औसत स्कोर कम है, बल्कि उनमें अधिक भिन्नता भी देखी गई। इससे यह संकेत मिलता है कि शहरी परिवेश में उपलब्ध शैक्षिक संसाधन, मानसिक प्रशिक्षण के अवसर, तकनीकी सुविधाएँ एवं सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण विद्यार्थियों की मानसिक सजगता को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की सीमित उपलब्धता एवं शैक्षिक अवसरों की कमी मानसिक सजगता के विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।

तालिका 3 के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि लिंग के आधार पर मानसिक सजगता में अंतर पाया जाता है। महिला विद्यार्थियों का औसत मानसिक सजगता स्तर पुरुष विद्यार्थियों की तुलना में अधिक तथा अधिक स्थिर है, जबकि पुरुष विद्यार्थियों में मानसिक सजगता के स्तर में अपेक्षाकृत अधिक उतार-चढ़ाव देखा गया। यह निष्कर्ष इंगित करता है कि महिला विद्यार्थी मानसिक रूप से अधिक सजग, एकाग्र एवं निरंतर प्रयासशील होती हैं, जो उनके शैक्षिक प्रदर्शन को सुदृढ़ बनाता है।

समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि मानसिक सजगता विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास, आत्मविश्वास एवं प्रदर्शन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। उच्च मानसिक सजगता वाले विद्यार्थी सीखने की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय रहते हैं, जबकि निम्न स्तर वाले विद्यार्थियों के लिए विशेष शैक्षिक हस्तक्षेप, प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं सहायक वातावरण की आवश्यकता होती है। अत: शिक्षा व्यवस्था में मानसिक सजगता के विकास को एक महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में अपनाया जाना चाहिए, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों एवं निम्न मानसिक सजगता वाले विद्यार्थियों के संदर्भ में, ताकि सभी विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित किया जा सके।

शैक्षिक उपयोगिता- उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की मानसिक सजगता का अध्ययन सम्बन्धी शोध पत्र की शैक्षिक उपयोगिता अत्यन्त व्यापक एवं बहुआयामी है। यह शोध शिक्षकों, विद्यालय प्रशासकों, पाठ्यक्रम निर्माताओं तथा शिक्षा नीति निर्धारकों को यह समझने में सहायक होता है कि किशोरावस्था में विद्यार्थी किस प्रकार मानसिक, भावनात्मक एवं संज्ञानात्मक चुनौतियों का सामना करते हैं। मानसिक सजगता से सम्बन्धित निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि सजग एवं जागरूक विद्यार्थी न केवल कक्षा शिक्षण में अधिक सक्रिय रहते हैं, बल्कि उनकी एकाग्रता, स्मरण शक्ति, समस्या-समाधान क्षमता तथा निर्णय लेने की योग्यता में भी उल्लेखनीय वृद्धि होती है। इस प्रकार यह शोध अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया को अधिक प्रभावी, रुचिकर एवं विद्यार्थी-केन्द्रित बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

इस शोध पत्र की शैक्षिक उपयोगिता इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि इसके आधार पर विद्यालयों में तनाव प्रबंधन, ध्यान, योग, जीवन कौशल शिक्षा एवं मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को योजनाबद्ध रूप से लागू किया जा सकता है। उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी परीक्षा-दबाव, करियर चयन की चिंता एवं सामाजिक-भावनात्मक परिवर्तनों से गुजरते हैंय ऐसे में मानसिक सजगता का अध्ययन यह संकेत देता है कि सजगता-आधारित गतिविधियाँ विद्यार्थियों में आत्मनियंत्रण, भावनात्मक संतुलन तथा आत्मविश्वास को विकसित करने में सहायक होती हैं। इससे अनुशासनात्मक समस्याएँ घटती हैं और विद्यालय का शैक्षिक वातावरण अधिक सकारात्मक बनता है।

इसके अतिरिक्त, यह शोध पाठ्यक्रम विकास एवं मूल्यांकन प्रणाली में भी उपयोगी सिद्ध होता है। मानसिक सजगता से सम्बन्धित शोध निष्कर्षों के आधार पर पाठ्यक्रम में अनुभवात्मक अधिगम, चिंतनशील गतिविधियाँ तथा सतत एवं समग्र मूल्यांकन को बढ़ावा दिया जा सकता है। इससे विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित होता है तथा वे अकादमिक उपलब्धि के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य के प्रति भी सजग बनते हैं। इस प्रकार, उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की मानसिक सजगता पर आधारित शोध पत्र शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने, विद्यार्थियों के समग्र विकास को प्रोत्साहित करने तथा भावी पीढ़ी को मानसिक रूप से सक्षम एवं सशक्त बनाने में अत्यन्त उपयोगी एवं सार्थक सिद्ध होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- लांगर, ई. जे. (1989): मानसिक सजगता, एडिसन-वेस्ली, मैसाचुसेट्स।
- काबट-जिन, जे. (2003): मानसिक सजगता आधारित तनाव न्यूनीकरण की अवधारणा, सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ब्राउन, के. डब्ल्यू., एवं रायन, आर. एम. (2004): मानसिक सजगता और मनोवैज्ञानिक कल्याण. जर्नल ऑफ पर्सनैलिटी एंड सोशल साइकोलॉजी, 84(4), 822-848।
- राय, पारस नाथ (2008): अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

- अग्रवाल, जे. सी. (2014): शैक्षिक मनोविज्ञान, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
- कुलश्रेष्ठ, एस. पी. (2015): शैक्षिक अनुसंधान की पद्धतियाँ,आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- पाण्डेय, के. पी. (2016): शिक्षा मनोविज्ञान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
- सिंह, ए. के. (2017): किशोरावस्था एवं मानसिक स्वास्थ्य,मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, नई दिल्ली।
- सिंह, अरूण कुमार (2017): मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसीदास, पटना।
- शर्मा, आर. ए. (2018): शैक्षिक मनोविज्ञान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- बिष्ट, एस. पी. (2019): विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक उपलब्धि. प्रकाशन संस्थान, देहरादून।
- मिश्रा, एस., एवं त्रिपाठी, आर. (2020): विद्यालयी विद्यार्थियों में मानसिक सजगता का अध्ययन. भारतीय शैक्षिक अनुसंधान पत्रिका, 15(2), 45-52।
- एन. सी. ई. आर. टी. (2021): विद्यालयी विद्यार्थियों का सामाजिक-भावनात्मक विकास,राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली।
- यादव, वी. एस. (2022): उच्च माध्यमिक विद्यार्थियों में मानसिक सजगता एवं अध्ययन आदतों का संबंध (अप्रकाशित शोध प्रबंध). राज्य शैक्षिक अनुसंधान संस्थान, भारत।

बिहार से श्रमिक प्रवासनः कारण, स्वरूप और आर्थिक प्रभाव

डॉ० जयनेंद्र कुमार मोनू

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, वाणिज्य महाविद्यालय, पटना विश्वविद्यालय

सारांश

प्रवास, एक आर्थिक प्रक्रिया के रूप में, मानव समाज के लिए अपरिहार्य रहा है। प्रवास की घटना में कई बहुआयामी पहलू शामिल हैं; इसलिए प्रवास की प्रक्रिया को समझने के लिए वृहद और सूक्ष्म दोनों दृष्टिकोणों की आवश्यकता होती है। वृहद स्तर के विश्लेषण में एक निश्चित समयावधि के भीतर किसी भौगोलिक क्षेत्र में प्रवास के रुझानों और पैटर्न का वर्णन करना और प्रवास के व्यापक कारणों की पड़ताल करना शामिल है। दूसरी ओर, सूक्ष्म स्तर की पड़ताल में प्रवास प्रक्रिया को एक ऐसे ढांचे में समझना शामिल है जिसमें व्यक्तिगत और पारिवारिक निर्णय शामिल होते हैं, जो आर्थिक और गैर-आर्थिक (सांस्कृतिक और सामाजिक) दोनों कारकों द्वारा प्रेरित हो सकते हैं। श्रम प्रवास के संदर्भ में, यह तर्क दिया जा सकता है कि प्रवास के कारणों और आर्थिक परिणामों का पता लगाने के लिए वृहद और सूक्ष्म दोनों स्तरों की समझ महत्वपूर्ण है। इस संदर्भ में, यह शोधपत्र भारत के अन्य राज्यों में बिहार से श्रमिक प्रवासन, उसके कारण, स्वरुप तथा आर्थिक प्रभाव का आकलन करने का प्रयास करता है।

मूल शब्दः बिहार, श्रमिक प्रवासन, कारण, स्वरूप, आर्थिक प्रभाव, गरीबी, सामाजिक कारक, बेरोजगारी

प्रस्तावना

बिहार में प्रवासन का इतिहास बहुत प्राचीन और विविधतापूर्ण है। प्रवासन केवल आज का सामाजिक-आर्थिक मुद्दा नहीं है, बल्कि सभ्यता की शुरुआत से ही मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा रहा है। जीवन यापन के साधनों की तलाश, उपजाऊ भूमि, जल, वन, खनिज और व्यापार के अवसरों ने लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर आकर्षित किया। ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि बिहार क्षेत्र में सिंधु घाटी सभ्यता, वैदिक काल और महाजनपद काल के समय से ही लोग अपनी आजीविका, कृषि, पशुपालन, व्यापार, धार्मिक कारणों और बेहतर जीवन की तलाश में स्थानांतरित होते रहे हैं।[1]

प्राचीन बिहार, विशेष तौर पर मगध, वैशाली और पाटलिपुत्र, उन क्षेत्रों में शामिल रहा है जहां विभिन्न समुदायों और राजवंशों का आगमन और बसावट हुई। यहां की भौगोलिक स्थिति-गंगा के उपजाऊ मैदान, हिमालय की तराई और झारखंड के खनिज क्षेत्र-ने प्रवासियों को सदैव आकर्षित किया। बुद्ध और महावीर जैसे महान व्यक्तित्व भी बिहार के इसी ऐतिहासिक प्रवासन और सांस्कृतिक समन्वय की देन हैं। कुल मिलाकर, बिहार में प्रवासन की शुरुआत केवल आर्थिक या भौतिक जरूरतों के कारण नहीं, बल्कि पहचान, अवसर, ज्ञान और संस्कृति की खोज में भी हुई है। यह प्रवासन न सिर्फ बिहार की ऐतिहासिक समृद्धि और विविधता का परिचायक है बल्कि आज भी बिहार की सामाजिक संरचना में गहराई से बसा हुआ है।

वर्तमान में बिहार से श्रमिक प्रवासन एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि है, जो राज्य में बेरोजगारी (राष्ट्रीय औसत से अधिक), निम्न औद्योगिक विकास, कृषि पर निर्भरता और गरीबी के कारण होती है। ग्रामीण क्षेत्रों से दिल्ली, मुंबई, पंजाब जैसे शहरों व खाड़ी देशों में युवाओं का पलायन, दिहाड़ी मजदूरी व निर्माण कार्यों में अनौपचारिक भागीदारी के रूप में होता है। इससे होने वाली रेमिटेंस (प्रेषित आय) ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, लेकिन यह परिवार से अलगाव और पुरुष प्रधान प्रवासन का कारण भी बनता है।[2]

बिहार से प्रवासन के मुख्य कारण (Causes)

- आर्थिक पिछड़ापनः राज्य में औद्योगिक विकास की कमी और कम आय के कारण काम की तलाश में मजबूरी।
- बेरोजगारी व कम मजदूरीः राज्य में बेरोजगारी की उच्च दर (लगभग 42-45%) और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के सीमित अवसर।[3]
- कृषि में अलाभकारी स्थितिः बाढ़, सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण खेती पर निर्भरता और कम पैदावार।
- गरीबी व सामाजिक कारकः भूमिहीनता और हाशिए पर पड़े परिवारों (विशेषकर कमजोर वर्गों) के लिए बेहतर जीवन स्तर की तलाश।

प्रवासन के स्वरूप (Patterns)

- अंतर-राज्यीय व मौसमीः मौसमी कृषि कार्य या निर्माण कार्यों के लिए बिहार से दिल्ली, महाराष्ट्र, पंजाब, हरियाणा, गुजरात जैसे राज्यों में प्रवासन।[4]
- अंतरराष्ट्रीय प्रवासनः खाड़ी देशों (सऊदी अरब, कतर, यूएई) में निर्माण और सेवा क्षेत्र में काम करने के लिए पलायन।

- जनसांख्यिकीय: अधिकतर युवा पुरुष (40 वर्ष से कम आयु) जो अकेले या समूह में जाते हैं।
- अनौपचारिक क्षेत्र: असंगठित श्रम (रिक्शा, राजमिस्त्री, कारखाना कामगार) में मुख्य रूप से शामिल होना।[5]

आर्थिक प्रभाव (Economic Impact)

- रेमिटेंस (धन प्रेषण): परिवारों की आय में महत्वपूर्ण वृद्धि, जो घर के खर्च, शिक्षा और स्वास्थ्य में सुधार करती है।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती: कुछ गांवों में कुल आय का आधा हिस्सा प्रवासियों की कमाई से आता है, जो गरीबी कम करने में सहायक है।[6]
- मानव संसाधन की क्षति: ग्रामीण क्षेत्रों से कुशल युवाओं के जाने से स्थानीय कृषि और अन्य कार्यों में श्रमिकों की कमी।
- शहरी अनौपचारिक क्षेत्र: गंतव्य शहरों (जैसे दिल्ली) में असंगठित श्रम की आपूर्ति करना, जिससे शहरी बुनियादी ढांचे पर भी दबाव बढ़ता है।

बिहार में प्रवास मुख्य रूप से 'पुश' (मजबूरी) कारकों के कारण है, जो गरीबी और बेरोजगारी के समाधान के रूप में काम करता है, लेकिन यह संरचनात्मक विकास के अभाव को भी दर्शाता है।

प्रवासन के मुख्य कारण

बिहार से प्रवासन कोई नई बात नहीं है। पहले लोग गैर-आर्थिक कारणों से भी जाते थे - जैसे बाढ़, सूखा, जातिगत बंधन, या बेहतर पढ़ाई की तलाश। लेकिन समय के साथ आर्थिक कारण सबसे बड़ा कारण बन गए। खेती से कम आमदनी, गांव में रोजगार की कमी और शहरों में बेहतर मजदूरी का लालच लोगों को बाहर जाने पर मजबूर करता है। यह प्रवासन देश के भीतर (दिल्ली, पंजाब, महाराष्ट्र जैसे राज्यों में) और विदेशों (गल्फ देशों, नेपाल आदि) - दोनों जगह होता है।

एक सर्वे (मुजफ्फरपुर और पटना के 300 प्रवासियों पर किया गया एक सर्वे दिखता है कि 26% लंबे समय के प्रवासी और 62% से ज्यादा छोटे समय के प्रवासी केवल बेहतर कमाई के लिए बाहर गए। इसके अलावा गांवों में बेरोजगारी, बाढ़-सूखे से खेती का नुकसान, छोटे खेत, जातीय तनाव और बेहतर जीवन की चाह भी पलायन की बड़ी वजहें हैं। गांव में अच्छे स्कूल, अस्पताल और सड़क जैसी सुविधाओं की कमी प्रवासन को प्रेरित करती हैं।

लोग जहाँ जाते हैं, वहाँ पहुँचने के पीछे भी खास कारण होते हैं। ऐसे राज्य और शहर चुने जाते हैं जहाँ मजदूरी ज्यादा हो, सालभर काम मिले, और पहले से वहां अपने गांव या जाति के लोग मौजूद हों। आधे से ज्यादा प्रवासी रिश्तेदारों के जरिए काम पर पहुंचे। लगभग 66% ने बाहर रहकर नई काम/कौशल सीखी, जो वे भविष्य में अपने गांव में इस्तेमाल करना चाहते हैं।[7]

प्रवासी समुदाय की सामाजिक संरचना

सर्वे के आंकड़े बताते हैं कि 61% प्रवासी ओबीसी वर्ग से हैं, 22% अनुसूचित जाति से, और 16% ऊपरी जातियों से। 65% प्रवासी 20-30 साल के युवा हैं और 98% पुरुष हैं। शिक्षा का स्तर कम है - 80% की पढ़ाई मिडिल स्कूल तक है और सिर्फ 2% ने इंटर से आगे पढ़ाई की है।[8]

बिहार पर प्रवासन का असर

प्रवासन का बिहार पर असर मिला-जुला है। एक ओर, घर भेजा गया पैसा (रेमिटेंस) परिवार की आमदनी बढ़ाता है, बच्चों की पढ़ाई के खर्च पूरे करता है और कभी-कभी छोटे व्यापार शुरू करने में मदद करता है। दूसरी ओर, खेती के सीजन में मजदूरों की कमी हो जाती है, पढ़े-लिखे युवा बाहर चले जाते हैं और संयुक्त परिवार टूटकर छोटे परिवार में बदलने लगते हैं।

जिन राज्यों में बिहारी प्रवासी काम करते हैं, वहाँ वे निर्माण, परिवहन, घरेलू काम और खेती में अहम भूमिका निभाते हैं। लेकिन वहां उन्हें अक्सर झुग्गियों में रहना पड़ता है, असुरक्षित और असंगठित काम करना पड़ता है, न्यूनतम मजदूरी से कम कमाई होती है, और कभी-कभी भेदभाव का सामना करना पड़ता है।[9]

सरकारी प्रयास और योजनाएँ

सरकार ने कई योजनाएँ चलाई हैं, जैसे - प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), बिहार स्किल डेवलपमेंट मिशन, प्रवासी मजदूर रजिस्ट्रेशन और मनरेगा के तहत गांव में काम के मौके। लेकिन अभी भी चुनौतियाँ हैं - जैसे सभी प्रवासियों तक योजनाओं की पहुँच, मजदूरी में समानता और गांव में स्थायी रोजगार का अभाव।[10]

भविष्य में जरूरी है कि प्रवासन मजबूरी न होकर एक विकल्प बने। इसके लिए गांव में छोटे उद्योग, कृषि-आधारित फैक्ट्रियां, बेहतर सड़क-बिजली-पानी-स्कूल, श्रमिक अधिकारों का पालन, लौटने वाले प्रवासियों को व्यापार में प्रोत्साहन और बाढ़-सूखे से निपटने की मजबूत तैयारी करनी होगी।

बिहार का प्रवासन संघर्ष और हौसले की कहानी है। यह दिखाता है कि लोग कठिन हालात में भी अपनी जिंदगी बेहतर बनाने के लिए आगे बढ़ते हैं। लेकिन यह भी याद दिलाता है कि अगर गांवों में समान अवसर और सुविधाएं मिलें, तो यह प्रवासन मजबूरी नहीं बल्कि महत्वाकांक्षा का चुनाव बन सकता है।

बिहार से प्रमुख गंतव्य राज्यों की ओर पलायन

बिहार से अन्य राज्यों में पलायन हमेशा से बहुत अधिक रहा है। चूँकि इसका मुख्य कारण आर्थिक होता है, इसलिए यह जानना जरूरी है कि बिहार से लोग किन प्रमुख राज्यों में जा रहे हैं, जहाँ उन्हें बेहतर आर्थिक अवसर मिलते हैं। पुरुषों का पलायन अधिकतर रोजगार या आर्थिक कारणों से होता है,

जबकि महिलाओं का पलायन मुख्य रूप से विवाह के कारण होता है। इसलिए अगर पुरुष और महिलाओं का आंकड़ा मिलाकर देखा जाए, तो आर्थिक कारणों से जाने वाले प्रमुख राज्यों की सही तस्वीर नहीं मिलेगी।[11]

इसलिए यहाँ प्रमुख गंतव्य राज्यों का विश्लेषण केवल पुरुष प्रवासियों के आधार पर किया गया है, साथ ही पुरुष और महिला दोनों को मिलाकर भी समग्र रुझान दिखाया गया है। यह विश्लेषण बिहार से अन्य राज्यों में जाने वाले सभी प्रवासियों के आंकड़ों पर आधारित है और बताता है कि वे किन-किन राज्यों में बसते हैं।

Distribution of Bihari Migrant Cohort (Male) across Indian States-

बिहार से पुरुष प्रवासी	*बिहार से प्रवासी (ग्रामीण) %*	*बिहार (शहरी) से प्रवासी %*
महाराष्ट्र	17.8	13.9
दिल्ली	15.9	15.2
पश्चिम बंगाल	13.0	13.3
पंजाब	12.3	12.3
उतार प्रदेश	10.2	10.2
गुजरात	8.1	7.9
हरयाणा	5.8	4.6
झारखंड	4.0	6.2
असम	3.3	3.9
अन्य	10.8	10.6
कुल	100.0	100.0

Source: Calculated using Census 2011.

Distribution of Bihari Migrant Cohort (Male and Female Combined) across Indian States.

बिहार से आने वाले सभी प्रवासियों के लिए प्रमुख गंतव्य राज्य (ग्रामीण) %	*बिहार (शहरी) से प्रवासी %*
महाराष्ट्र	17.3	14.4
दिल्ली	15.7	16.0
पश्चिम बंगाल	12.9	13.4
पंजाब	12.2	12.6
उतार प्रदेश	9.8	10.2
गुजरात	8.0	9.5
हरियाणा	5.9	4.4
झारखंड	4.2	5.9
असम	3.2	3.0
अन्य	9.6	12.5
कुल	100.0	100.0

Source% Calculated using Census 2011.

दिल्ली:

1. काम के ज्यादा मौके और बड़ा मजदूर समूह: बिहार के लगभग 28% प्रवासी मजदूर दिल्ली आते हैं। यहां पहले से बसे हुए बिहारियों की अच्छी-खासी संख्या होने से नए मजदूरों को काम और रहने में आसानी होती है।
2. निर्माण और शहरी क्षेत्रों में रोजगार: दिल्ली में निर्माण, फैक्ट्री और शहरी सेवाओं में काम के अच्छे मौके हैं। यहां लगभग 22% बिहार प्रवासी निर्माण काम में और 20% उद्योग (फैक्ट्री) में लगे हुए हैं।

महाराष्ट्र:

1. शहरों में अच्छी कमाई के अवसर: महाराष्ट्र में लगभग 9% बिहार प्रवासी रहते हैं, खासकर मुंबई, भीवंडी और पुणे में। यहां निर्माण, फैक्ट्री और शहरी कामों में रोजगार आसानी से मिलता है।

2. ज्यादा मजदूरी: महाराष्ट्र, खासकर मुंबई में, मजदूरी बिहार से ज्यादा है। मुंबई की लगभग 43% आबादी प्रवासियों की है, जिनमें बड़ी संख्या बिहारियों की है।

पश्चिम बंगाल:

1. स्थानीय स्तर पर काम की कमी: पश्चिम बंगाल में खुद रोजगार और अच्छी मजदूरी की कमी है, जिससे यहां के लोग और दूसरे राज्यों के मजदूर, बेहतर कमाई के लिए यहां आते भी हैं और यहां से जाते भी हैं।
2. बेहतर मजदूरी की तलाश: लोग उन जगहों की तरफ जाते हैं जहां मजदूरी पश्चिम बंगाल से ज्यादा है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हो सके।

देश में जनसंख्या वृद्धि तो स्थिर रही है, लेकिन राज्यों और क्षेत्रों में आर्थिक विकास एकसमान नहीं रहा है। इस असंतुलित विकास के कारण पिछड़े राज्यों से श्रमिक पलायन करके आर्थिक रूप से संपन्न और उच्च आय वाले राज्यों की ओर जा रहे हैं। ऐतिहासिक रूप से, पूर्वी राज्य बिहार हमेशा से ही पलायन में अग्रणी रहा है; यह देश में सबसे अधिक जनसंख्या-समायोजित ऋणात्मक शुद्ध पलायन दर वाले प्रमुख पलायन करने वाले राज्यों में से एक बनकर उभरा है। दूसरी ओर, महाराष्ट्र, गुजरात और दिल्ली जैसे राज्य मानव पूंजी के प्रमुख प्राप्तकर्ता राज्य बन गए हैं, या दूसरे शब्दों में, मानव पूंजी के लाभार्थी बन गए हैं।[12]

यह देखा गया है कि गंतव्य राज्यों की आर्थिक और विकासात्मक विशेषताओं में भिन्नता के कारण, बिहारी प्रवासियों की विभिन्न व्यवसायों में भागीदारी राज्य दर राज्य भिन्न है। यह भी पाया गया है कि कुछ राज्यों में बिहारी प्रवासी नियमित वेतनभोगी/मजदूरी व्यवसायों में केंद्रित हैं, जबकि अन्य राज्यों में वे आकस्मिक नौकरियों में अधिक प्रमुख हैं। इसी प्रकार, गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में, बिहारी प्रवासी अधिकतर विनिर्माण क्षेत्र में कार्यरत हैं, जिसका कारण इन राज्यों में बड़े उद्योगों और सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (एमएसएमई) के सघन समूहों की उपस्थिति है। पंजाब और केरल जैसे राज्यों में, प्रवासियों का एक बड़ा हिस्सा कृषि में लगा हुआ है।[13]

चूंकि अधिकांश आर्थिक प्रवासी, विशेषकर रोजगार संबंधी कारणों से प्रवास करने वाले, घरेलू/महिला (RS/W) व्यवसायों में संलग्न होना पसंद करते हैं, इसलिए ऐसे व्यवसायों में उनके रोजगार के निर्धारकों का अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है। प्रवासी विशेषताओं में अंतर के कारण पुरुष और महिला प्रवासियों के लिए विश्लेषण अलग-अलग किया गया है। यह पाया गया है कि बिहार से आने वाले युवा प्रवासियों के घरेलू/महिला (RS/W) व्यवसायों में शामिल होने की संभावना अधिक है; यह परिणाम रोचक और अनूठा दोनों है क्योंकि अखिल भारतीय स्तर पर, अधिक आयु वर्ग के प्रवासियों को घरेलू/महिला (RS/W) नौकरियां मिलने की अधिक संभावना देखी गई है। यह पाया गया है कि उच्च शिक्षा स्तर और शहरी पृष्ठभूमि घरेलू/महिला (RS/W) व्यवसाय प्राप्त करने में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। महिला प्रवास के मामले में, अन्य चरों के अलावा, यह देखा गया है कि विवाहित महिलाओं की तुलना में अविवाहित महिलाओं को घरेलू/महिला (RS/W) नौकरियां मिलने की अधिक संभावना है। गंतव्य राज्यों में बिहारी प्रवासियों द्वारा प्राप्त आर्थिक लाभों को समझने के लिए, प्रवासियों के एमपीसीई की तुलना सामाजिक-आर्थिक समूहों में गैर-प्रवासियों के एमपीसीई से की गई है। यह पाया गया है कि कुल मिलाकर, प्रवासी गंतव्य (दिल्ली, महाराष्ट्र और गुजरात) के साथ-साथ मूल स्थान (बिहार) पर भी गैर-प्रवासियों की तुलना में धन के मामले में बेहतर स्थिति में हैं।[14]

निष्कर्ष एवं सुझाव

बिहार का प्रवासन केवल आँकड़ों की कहानी नहीं है, बल्कि यह लाखों सपनों, संघर्षों और उम्मीदों का दस्तावेज है। हर प्रवासी अपने साथ मेहनत, हुनर और बदलते हालात का अनुभव लेकर चलता है। यह प्रवासन जहाँ एक ओर परिवारों के लिए आर्थिक सहारा और नए अवसर लाता है, वहीं दूसरी ओर यह हमें याद दिलाता है कि विकास और अवसर की समान पहुँच ही स्थायी समाधान है। अगर बिहार के गाँवों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य सेवाएँ, मजबूत बुनियादी ढाँचा और स्थानीय रोजगार उपलब्ध हों, तो प्रवासन एक मजबूरी नहीं बल्कि एक स्वैच्छिक और सम्मानजनक विकल्प बन सकता है। आने वाले समय में, यह जरूरी है कि नीतियाँ केवल पलायन को कम करने पर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों को बदलने पर केंद्रित हों जो लोगों को अपना घर छोड़ने पर मजबूर करती हैं। तभी बिहार का भविष्य अपनी धरती पर ही उज्ज्वल होगा, और इसके लोग मजबूरी से नहीं, बल्कि अपनी इच्छा से दुनिया के किसी भी कोने में सफलता की कहानी लिखेंगे। बिहार से आने वाले श्रमिक प्रवासियों की व्यावसायिक संरचना के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करने के बाद, यह सुझाव दिया जा सकता है कि सरकारी एजेंसियों को ऐसी नीतियां लानी चाहिए जो संभावित प्रवासियों को उनके गंतव्य स्थान पर ही सहायता प्रदान करें, ताकि उन्हें गंतव्य श्रम बाजार, नियमों, विनियमों और व्यक्तिगत अधिकारों के बारे में बेहतर जानकारी मिल सके।

सन्दर्भ

1. जर्नल ऑफ माइग्रेशन अफेयर्स, टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज (TISS) द्वारा प्रकाशित एक द्वि-वार्षिक पत्रिका। (लेख: 2011 की जनगणना झलक - बिहार से बाह्य प्रवासन: प्रमुख कारण और गंतव्य)
2. भारतीय जनसंख्या अध्ययन संस्थान (IIPS)। (अनुसंधान और टाइम्स ऑफ इंडिया में प्रकाशित लेख: बिहार के 50% से अधिक घर प्रवासन से प्रभावित)
3. एगेसा, आरयू (2001)। 'प्रवासन और शहरी से ग्रामीण आय अंतर: एक नमूना चयन दृष्टिकोण'। आर्थिक विकास और सांस्कृतिक परिवर्तन 49, संख्या 4: 847-865।
4. भारत की जनगणना। (2011)। प्रवासन सारणी। नई दिल्ली: भारत के रजिस्ट्रार जनरल का कार्यालय।
5. चंद्रशेखर, एस. और शर्मा, ए. (2014). 'भारत में युवाओं के बीच शिक्षा और रोजगार के लिए आंतरिक प्रवासन'। कार्य पत्र संख्या 2014-004। मुंबई: विकास अनुसंधान संस्थान (आईजीआईडीआर)।

6. डी हान ए. (2011). 'समावेशी विकास? भारत में श्रम प्रवासन और गरीबी'. द इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स 54, नं.3: 387-409. कोचर, ए. (2004). 'भारत में ग्रामीण स्कूली शिक्षा पर शहरी प्रभाव'. जर्नल ऑफ डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स 74, नं.1: 113-136.
7. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) (2010)। 'भारत में प्रवासन 2007-08' एनएसएस 64वां दौर संख्या 533। नई दिल्ली: सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय।
8. प्रभा, आर.जी. (2011). 'भारत में प्रवासन और महिला रोजगार: एन.एस.एस.ओ. डेटा से व्यापक साक्ष्य'। प्रवासन, पहचान और संघर्ष: भारत प्रवासन रिपोर्ट में , एस.आई. द्वारा संपादित, नई दिल्ली: रूटलेज।
9. रेवेनस्टीन, ई.जी. (1885)। 'प्रवासन के नियम'। जर्नल ऑफ द स्टैटिस्टिकल सोसाइटी ऑफ लंदन 48, संख्या 2: 167-235।
10. रॉजर्स, जी. और रॉजर्स, जे. (2011). 'समावेशी विकास? ग्रामीण बिहार में प्रवासन, शासन और सामाजिक परिवर्तन'. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक 46, संख्या 23: 43-50.
11. रॉजर्स, जे. (2012). 'ग्रामीण बिहार में श्रम बल भागीदारी: ग्राम सर्वेक्षणों पर आधारित तीस-वर्षीय परिप्रेक्ष्य'. आईएचडी वर्किंग पेपर संख्या 04/2012. नई दिल्ली: मानव विकास संस्थान।
12. रॉय, एन. और देबनाथ, ए. (2011). 'आर्थिक विकास पर प्रवासन का प्रभाव: कुछ चयनित राज्यों का अध्ययन'. इंटरनेशनल प्रोसीडिंग्स ऑफ इकोनॉमिक्स डेवलपमेंट एंड रिसर्च (IPEDR) 5, नं.1: 198-202.
13. सरकार, पी. (2014). 'भारत में अंतर-राज्यीय क्वांटम प्रवासन का विश्लेषण: 'पुश-पुल फ्रेमवर्क' का अनुभवजन्य सत्यापन और प्रवासन से लाभ'। इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स 57. नं. 3: 267-281.
14. इंस्टीट्यूट फॉर ह्यूमन डेवलपमेंट (2019), 'ग्रामीण बिहार में गरीबी, विकास और प्रवासन', आईसीएसएसआर को प्रस्तुत रिपोर्ट।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी की भूमिका

सुमन चातोम्बा

सहायक प्रो०, नोवामुण्डी कॉलेज, नोवामण्डी

दक्षिण अफ्रीका में दो दशक तक रहने के बाद, 9 जनवरी 1915 को महात्मा गांधी वापस अपने देश लौट आए। महात्मा गांधी एक वकील के रूप में गए थे, लेकिन अफ्रीका में वह भारतीय समुदाय के नेता बन गए। जब वे वापस आए, तो एक प्रभावशाली नेता के रूप में, यहीं पर उन्होंने सत्याग्रह और अहिंसा के सिद्धांत को विकसित किया, जिन्हें बाद में उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए उपयोग किया। गोपाल कृष्ण गोखले से प्रभावित होकर, उन्हें अपना राजनीतिक गुरु माना। 1917-18 के बीच, उन्होंने चंपारण सत्याग्रह, खेड़ा सत्याग्रह और अहमदाबाद मिल हड़ताल का नेतृत्त्व किया। 1920 में, बाल गंगाध र तिलक की मृत्यु के पश्चात देश के सर्वमान्य नेता बन गए।

1915 में, गांधीजी ने अहमदाबाद के पास कोचरब में अपना आश्रम स्थापित किया, लेकिन वहाँ प्लेग फैल जाने के कारण, साबरमती में अपने आश्रम की स्थापना की। 1915 के मुंबई अधिवेशन में, गांधीजी ने भाग लिया और महसूस किया कि देश अमीर-गरीब, सर्वण-दलित, हिंदू-मुस्लिम, नरम-गरम विचारधारा, रूढ़िवादी-आधुनिक, भारत में ब्रिटिश राज के समर्थक ब्रिटिश विरोधी आदि रूप में विभाजित था। गांधीजी को समझ नहीं आ रहा था कि वे किसके साथ खड़े हों, क्योंकि अफ्रीका में उन्होंने सभी को साथ लेकर नस्लभेदी सरकार के विरोध लोहा लिया और सफल भी रहे।

गांधीजी ने पहली बार 1917 में बिहार के चंपारण में आंदोलन किया और तीन कठिया पद्धति से मुक्ति दिलाई, और अंग्रेजों से अपनी बात मनवाने में कामयाब भी हुए और किसानों को सूत कातने का काम करने तथा कपड़ा बनाने की प्रेरणा दी, जिससे उनके जीवन में गुणात्मक सुधार आया। 1918 में, गुजरात का खेड़ा क्षेत्र बाढ़ और अकाल से प्रभावित था, गांधीजी ने सत्याग्रह के आगे किया और अंग्रेजों को झुकना पड़ा, किसानों को कर देने से मुक्ति मिली, जिससे गांधीजी की ख्याति देश भर में फैल गई।

1914 से 18 तक, प्रथम विश्व युद्ध के दौरान, अंग्रेजों ने रॉलेट एक्ट के तहत बिना जाँच के किसी को भी कारागार में डालने का प्रावधान किया, और इसी का परिणाम जलियांवाला बाग हत्याकांड था। इससे पूरा देश आहत हुआ, और गांधीजी ने खुलकर ब्रिटिश सरकार का विरोध किया। खिलाफत आंदोलन के जरिए, सम्पूर्ण देश में आंदोलन को धार देने के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल दिया गया, और 1920 के सहयोग आंदोलन में सबको साथ लेने की बात कही गई। सहयोग आंदोलन के दौरान कुछ हिंसा की घटनाएँ घटीं, और गांधीजी ने आंदोलन वापस ले लिया। गांधीजी के इस निर्णय से कई लोगों ने असंतोष व्यक्त किया, लेकिन उनका मानना था कि वे कोई भी आंदोलन सत्य और अहिंसा के आधार पर ही करेंगे। हिंसा कभी भी स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि गांधीजी समझते थे कि अगर आंदोलन के दौरान हिंसा होगी, तो अंग्रेजों को उसे दबाने में जरा भी देर नहीं लगेगी और वे विश्व जनमत को भी अपने पक्ष में कर लेंगे। धीरे-धीरे, देश की जनता गांधीजी के नेतृत्व में एकजुट होने लगी।

दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए गांधीजी लंदन गए, लेकिन उसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। लंदन रवाना होने से पहले, गांधीजी ने अपने देशवासियों से कहा था कि वे विदेश से मिलने वाली स्वतंत्रता को स्वीकार न करें, और वैसा ही हुआ। वहाँ से लौटने के बाद, उन्होंने नमक सत्याग्रह की तैयारी शुरू की, जिसे सविनय अवज्ञा आंदोलन भी कहा जाता है। इस आंदोलन ने अंग्रेजों की पोल खोली और देशवासियों के हृदय में स्वतंत्रता की ज्वाला जगा दी। अब देशवासी समझने लगे कि ब्रिटिश अब कुछ ही समय की बात है। गांधीजी हमेशा कहते थे कि जिस दिन देशवासी अपने हृदय में स्वतंत्रता अर्जित कर लेंगे, उसी दिन देश स्वतंत्र हो जाएगा।

लेकिन एक बात ध्यान देने की है कि गांधीजी सहयोगी से असहयोगी की ओर बढ़ चुके थे। इसका अर्थ यह है कि शुरुआती दिनों में, शायद गांधीजी को लगता था कि ब्रिटिश] भारतियों को आजादी देंगे, लेकिन यह मानसा कुछ ही सालों में ध्वस्त हो गई। 1930 से 32 के बीच, तीन गोलमेज सम्मेलनों का आयोजन हुआ, जिनमें गांधीजी के समझौते के तहत सारे राजनीतिक कैदियों को रिहा किया गया और कुछ क्षेत्रों में नमक उत्पादन की छूट भी दी गई, जो आगे चलकर नमक सत्याग्रह का रूप लेती है। 1942 की भारत छोड़ो आंदोलन का आयोजन किया गया, जिसमें 'करो या मरो' का नारा भी दिया गया। आजादी की लड़ाई में गांधीजी का योगदान धीरे-धीरे शिखर को छूने लगा, और अंततः अंग्रेज विवश हो गए और हमारे देश को 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में दुनिया के मानचित्र पर उभार दिया।

30 जनवरी 1948 को नाथूराम गोडसे ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी। महात्मा गांधी के बिना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की कहानी अधूरी है। आज के परिवेश में, देश में कुछ अन्य विचारधाराओं वाले लोग उनकी महत्ता को कम करने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन शायद उनका यह सपना कभी पूरा नहीं होगा, क्योंकि आज भी भारतीयों के मन में गांधीजी के आजादी के संघर्ष का प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान है। हालाँकि, गांधीजी को कभी-कभी दार्शनिक अराजकतावादी भी कहा जाता है, क्योंकि उनका मानना था कि राज्य सत्ता और हिंसा पुलिस और सेना के दम पर चलती है। वे राज्यविहीन समाज की कल्पना

करते थे, जहाँ सत्ता का केंद्र गांव हो। वे हिंसा के बजाय प्रेम, अहिंसा और नैतिक परिवर्तन से परिवर्तन लाना चाहते थे, इसलिए उन्हें दार्शनिक और अराजकतावादी कहा जाता है। इस तरह, कभी-कभी उन्हें दार्शनिक अराजकतावादी भी कहा जाता है।

संदर्भ सूची: -

विपिन चंद्रा - आधुनिक भारत का इतिहास
महात्मा गाँधी - मेरे सत्य के प्रयोग
निर्मल बोस - गांधी के साथ मेरे दिन
लुई फिशर - गांधी के साथ एक सप्ताह
चंदू लाल भागुभाई - हरिलाल गांधी: ए लाइफ
राम चन्द्र गुप्ता - भारत से पहले गांधी
राज मोहन गांधी - द गुड बैटमैन

उत्तरी बिहार में निचली कोसी नदी में सतत गाद प्रबंधनः एक विस्तृत अध्ययन

डॉ० मो० रफत परवेज

अतिथि सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, सर्वना0 सिंह, राम कुमार सिंह कॉलेज, सहरसा, भूपेन्द्र ना0 मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा

सारांशः

उत्तरी बिहार में कोसी नदी की पारिस्थितिकी और बाढ़ की समस्या का मूल आधार इसके साथ आने वाली अत्यधिक गाद है। हिमालय की युवा श्रेणियों से उतरते समय कोसी प्रतिवर्ष लगभग 80 से 100 मिलियन क्यूबिक मीटर गाद वहन करती है, जो विश्व की किसी भी नदी प्रणाली के लिए एक विशालतम आंकड़ा है। जब यह नदी बिहार के मैदानी इलाकों में प्रवेश करती है, तो ढाल की कमी के कारण जल का वेग घट जाता है और गाद का भारी निक्षेपण शुरू होता है। ऐतिहासिक रूप से, यही गाद जमाव कोसी के निरंतर मार्ग परिवर्तन का मुख्य कारण रहा है, जिसके चलते इसे 'बिहार का शोक' की संज्ञा दी गई। 1954 में निर्मित तटबंधों ने यद्यपि बाढ़ को सीमित करने का प्रयास किया, किंतु उन्होंने नदी के प्राकृतिक गाद वितरण तंत्र को बाधित कर दिया, जिससे गाद अब तटबंधों के भीतर ही जमा होकर नदी तल को निरंतर ऊंचा उठा रही है।

वर्तमान में कोसी का नदी तल आसपास की कृषि भूमि के धरातल से कई मीटर ऊपर उठ चुका है, जिसे 'एग्रेडेशन' कहा जाता है। यह स्थिति न केवल बाढ़ की विभीषिका को बढ़ाती है, बल्कि तटबंधों के टूटने पर प्रलयंकारी आपदा का कारण बनती है। पारंपरिक समाधान जैसे 'ड्रेजिंग' अपनी उच्च लागत और गाद के विशाल परिमाण के कारण दीर्घकालिक रूप से विफल सिद्ध हुए हैं। अतः, एक 'सतत गाद प्रबंधन' दृष्टिकोण की आवश्यकता है जो गाद को 'अपशिष्ट' के बजाय एक 'संसाधन' के रूप में परिभाषित करे। इसमें गाद का आर्थिक उपयोग जैसे निर्माण कार्यों, ईंट उद्योग और सड़क भराव में इसकी अनिवार्यता सुनिश्चित करना शामिल है। जब तक गाद को आर्थिक मुख्यधारा से नहीं जोड़ा जाएगा, इसका प्रबंधन केवल एक प्रशासनिक बोझ बना रहेगा।

दीर्घकालिक समाधान के लिए 'एकीकृत नदी बेसिन प्रबंधन' अनिवार्य है, जिसके अंतर्गत भारत और नेपाल के बीच कूटनीतिक सहयोग से ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में मृदा संरक्षण और वृक्षारोपण किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, निचली कोसी में 'पायलट चौनलिंग' और पुराने प्राकृतिक जलमार्गों को पुनर्जीवित करने जैसी तकनीकों को अपनाना होगा ताकि नदी के दबाव को कम किया जा सके। भविष्य का जल प्रबंधन 'नदी पर नियंत्रण' के स्थान पर 'नदी के साथ अनुकूलन' के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए। कोसी के गाद प्रबंधन की सफलता इसी बात में निहित है कि हम कितनी कुशलता से पारिस्थितिक सुरक्षा, तकनीकी नवाचार और सामुदायिक विकास के बीच संतुलन स्थापित कर पाते हैं।

मुख्य शब्द : नदी तल निक्षेपण, सतत गाद प्रबंधन, पारिस्थितिक अनुकूलन, तटबंध विरोधाभास, संसाधन पुनर्चक्रण, एकीकृत बेसिन प्रबंधन

परिचय

उत्तरी बिहार की भौगोलिक और हाइड्रोलॉजिकल (जलीय) संरचना में कोसी नदी एक ऐसी धुरी है, जिसके इर्द-गिर्द इस क्षेत्र का अर्थशास्त्र, पारिस्थितिकी और आपदा प्रबंधन घूमता है। हिमालय की गोद से निकलने वाली यह नदी केवल जल का प्रवाह नहीं, बल्कि एक विशाल भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया का जीवंत उदाहरण है। कोसी के साथ सबसे बड़ी चुनौती इसकी जलराशि नहीं, बल्कि वह अदृश्य 'गाद' है जिसे यह अपने साथ प्रतिवर्ष करोड़ों टन की मात्रा में ढोती है। विश्व स्तर पर यदि नदियों के 'सेडिमेंट लोड' या गाद वहन क्षमता का विश्लेषण किया जाए, तो कोसी का स्थान शीर्ष क्रम में आता है। यह गाद हिमालय की उन कच्ची और युवा पहाड़ियों से आती है जो निरंतर क्षरण की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। जब यह नदी पहाड़ों के संकीर्ण रास्तों से निकलकर बिहार के समतल मैदानों में प्रवेश करती है, तो इसकी भौतिक ऊर्जा में अचानक कमी आती है, जिससे भारी मात्रा में गाद का निक्षेपण होने लगता है। यही वह प्रारंभिक बिंदु है जहाँ से उत्तरी बिहार की त्रासदी और गाद प्रबंधन की जटिलता शुरू होती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो कोसी को 'बिहार का शोक' केवल इसकी बाढ़ के कारण नहीं, बल्कि इसके अनिश्चित और चंचल स्वभाव के कारण कहा गया है। पिछले ढाई सौ वर्षों के इतिहास में इस नदी ने पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग 120 से 150 किलोमीटर का मार्ग परिवर्तन किया है। यह मार्ग परिवर्तन किसी आकस्मिक भू-गर्भीय हलचल का परिणाम नहीं था, बल्कि नदी के अपने ही तल को गाद से भर देने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। जब नदी का पुराना मार्ग गाद के जमाव से ऊंचा हो जाता है, तो वह अपना रास्ता बदल लेती है। 1950 के दशक के मध्य में, जब भारत ने आधुनिक इंजीनियरिंग के माध्यम से कोसी को 'नियंत्रित' करने का निर्णय लिया, तो तटबंधों का निर्माण एक तार्किक समाधान लगा। 1954 की कोसी परियोजना के तहत नदी के दोनों ओर सैकड़ों किलोमीटर लंबे तटबंध बनाए गए ताकि बाढ़ को एक निश्चित दायरे में सीमित किया जा सके। प्रारंभ में यह परियोजना सफल दिखी, लेकिन समय के साथ इन्हीं तटबंधों ने एक नए और अधिक भयावह संकट की नींव रख दी।[1]

तटबंधों के निर्माण ने कोसी की उस प्राकृतिक प्रणाली को बाधित कर दिया जिसमें वह अपनी गाद को पूरे मैदान में फैला देती थी। पहले, बाढ़ का पानी जब खेतों में फैलता था, तो वह अपने साथ महीन मिट्टी और पोषक तत्व लाता था, जो कृषि के लिए वरदान साबित होते थे। परंतु, तटबंधों ने नदी को एक संकीर्ण गलियारे में कैद कर दिया, जिससे पूरी गाद अब उन्हीं दो दीवारों के बीच जमा होने लगी।[2] पिछले सात दशकों के निरंतर निक्षेपण ने कोसी के नदी तल को आसपास की बस्तियों और कृषि भूमि के धरातल से काफी ऊपर उठा दिया है। इसे वैज्ञानिक भाषा में 'एग्रेडेशन' कहा जाता है। आज स्थिति यह है कि कोसी का जल स्तर सामान्य भूमि स्तर से काफी ऊपर बह रहा है। यह एक ऐसी कृत्रिम संरचना बन गई है जहाँ केवल तटबंधों की मजबूती ही लाखों लोगों के जीवन और मृत्यु के बीच खड़ी है। यदि किसी भी बिंदु पर तटबंध टूटता है, तो पानी का प्रलयंकारी वेग निचले इलाकों को तबाह कर देता है, जैसा कि हमने 2008 की कुशाहा त्रासदी में देखा था।

गाद की समस्या का एक अन्य गंभीर पहलू इसका प्रबंधन और आर्थिक बोझ है। अक्सर 'ड्रेजिंग' (मशीनों द्वारा गाद की सफाई) को एक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन कोसी जैसी नदियों के लिए यह तकनीकी और वित्तीय दोनों रूप से अव्यवहारिक है। कोसी द्वारा लाई जाने वाली गाद की मात्रा इतनी विशाल है कि यदि उसे मशीनों से निकाला जाए, तो उस मलबे को रखने के लिए बिहार के पास पर्याप्त जमीन भी नहीं बचेगी। साथ ही, अगले ही मानसून में नदी फिर से उतना ही गाद भरकर वापस ले आएगी। इसलिए, आधुनिक जल प्रबंधन अब 'नदी के साथ अनुकूलन' की बात करता है। इसमें गाद को 'कचरा' नहीं बल्कि एक 'संसाधन' के रूप में देखा जाना चाहिए। कोसी की गाद में सिलिका और अन्य खनिज प्रचुर मात्रा में होते हैं, जिसका उपयोग निर्माण कार्यों, ईंट भट्टों और सड़क बनाने में किया जा सकता है।[3] जब तक हम गाद के आर्थिक मूल्य को नहीं पहचानेंगे, तब तक इसका प्रबंधन एक सरकारी खर्च मात्र बना रहेगा।

कोसी में सतत गाद प्रबंधन के लिए एक व्यापक और बहु-आयामी नीति की आवश्यकता है जिसमें भारत और नेपाल के बीच कूटनीतिक सहयोग की भूमिका सबसे अहम है। चूंकि गाद का स्रोत नेपाल के ऊंचे हिमालयी क्षेत्रों में है, इसलिए ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में मृदा संरक्षण और वृक्षारोपण के बिना केवल बिहार में समाधान खोजना अधूरा होगा। इसके अलावा, निचले क्षेत्रों में जल निकासी की प्रणालियों को वैज्ञानिक रूप से संचालित करना होगा ताकि गाद का प्रवाह नदी के वेग के साथ आगे बढ़ सके और तल में जमा न हो। भविष्य की राह इंजीनियरिंग के कठोर ढांचों से हटकर पारिस्थितिक संतुलन की ओर मुड़नी चाहिए, जहाँ नदी के प्राकृतिक अधिकारों और मानवीय सुरक्षा के बीच एक सामंजस्य स्थापित हो सके। निष्कर्षत:, कोसी का गाद प्रबंधन केवल एक तकनीकी चुनौती नहीं है, बल्कि यह उत्तरी बिहार के अस्तित्व, समृद्धि और भविष्य की सुरक्षा का प्रश्न है।[4]

उत्तरी बिहार में निचली कोसी नदी में सतत गाद प्रबंधन

उत्तरी बिहार की भौगोलिक और हाइड्रोलॉजिकल (जलीय) संरचना में कोसी नदी एक ऐसी धुरी है, जिसके इर्द-गिर्द इस क्षेत्र का अर्थशास्त्र, पारिस्थितिकी और आपदा प्रबंधन घूमता है। हिमालय की गोद से निकलने वाली यह नदी केवल जल का प्रवाह नहीं, बल्कि एक विशाल भू-वैज्ञानिक प्रक्रिया का जीवंत उदाहरण है। कोसी के साथ सबसे बड़ी चुनौती इसकी जलराशि नहीं, बल्कि वह अदृश्य 'गाद' है जिसे यह अपने साथ प्रतिवर्ष करोड़ों टन की मात्रा में ढोती है। विश्व स्तर पर यदि नदियों के 'सेडिमेंट लोड' या गाद वहन क्षमता का विश्लेषण किया जाए, तो कोसी का स्थान शीर्ष क्रम में आता है। यह गाद हिमालय की उन कच्ची और युवा पहाड़ियों से आती है जो निरंतर क्षरण की प्रक्रिया से गुजर रही हैं। जब यह नदी पहाड़ों के संकीर्ण रास्तों से निकलकर बिहार के समतल मैदानों में प्रवेश करती है, तो इसकी भौतिक ऊर्जा में अचानक कमी आती है, जिससे भारी मात्रा में गाद का निक्षेपण होने लगता है।[5] यही वह प्रारंभिक बिंदु है जहाँ से उत्तरी बिहार की त्रासदी और गाद प्रबंधन की जटिलता शुरू होती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो कोसी को 'बिहार का शोक' केवल इसकी बाढ़ के कारण नहीं, बल्कि इसके अनिश्चित और चंचल स्वभाव के कारण कहा गया है। पिछले ढाई सौ वर्षों के इतिहास में इस नदी ने पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग 120 से 150 किलोमीटर का मार्ग परिवर्तन किया है। यह मार्ग परिवर्तन किसी आकस्मिक भू-गर्भीय हलचल का परिणाम नहीं था, बल्कि नदी के अपने ही तल को गाद से भर देने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। जब नदी का पुराना मार्ग गाद के जमाव से ऊंचा हो जाता है, तो वह अपना रास्ता बदल लेती है। 1950 के दशक के मध्य में, जब भारत ने आधुनिक इंजीनियरिंग के माध्यम से कोसी को 'नियंत्रित' करने का निर्णय लिया, तो तटबंधों का निर्माण एक तार्किक समाधान लगा। 1954 की कोसी परियोजना के तहत नदी के दोनों ओर सैकड़ों किलोमीटर लंबे तटबंध बनाए गए ताकि बाढ़ को एक निश्चित दायरे में सीमित किया जा सके। प्रारंभ में यह परियोजना सफल दिखी, लेकिन समय के साथ इन्हीं तटबंधों ने एक नए और अधिक भयावह संकट की नींव रख दी।

तटबंधों के निर्माण ने कोसी की उस प्राकृतिक प्रणाली को बाधित कर दिया जिसमें वह अपनी गाद को पूरे मैदान में फैला देती थी। पहले, बाढ़ का पानी जब खेतों में फैलता था, तो वह अपने साथ महीन मिट्टी और पोषक तत्व लाता था, जो कृषि के लिए वरदान साबित होते थे। परंतु, तटबंधों ने नदी को एक संकीर्ण गलियारे में कैद कर दिया, जिससे पूरी गाद अब उन्हीं दो दीवारों के बीच जमा होने लगी। पिछले सात दशकों के निरंतर निक्षेपण ने कोसी के नदी तल को आसपास की बस्तियों और कृषि भूमि के धरातल से काफी ऊपर उठा दिया है। इसे वैज्ञानिक भाषा में 'एग्रेडेशन' कहा जाता है। आज स्थिति यह है कि कोसी का जल स्तर सामान्य भूमि स्तर से काफी ऊपर बह रहा है। यह एक ऐसी कृत्रिम संरचना बन गई है जहाँ केवल तटबंधों की मजबूती ही लाखों लोगों के जीवन और मृत्यु के बीच खड़ी है। यदि किसी भी बिंदु पर तटबंध टूटता है, तो पानी का प्रलयंकारी वेग निचले इलाकों को तबाह कर देता है, जैसा कि हमने 2008 की कुशाहा त्रासदी में देखा था।

गाद की समस्या का एक अन्य गंभीर पहलू इसका प्रबंधन और आर्थिक बोझ है। अक्सर 'ड्रेजिंग' (मशीनों द्वारा गाद की सफाई) को एक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन कोसी जैसी नदियों के लिए यह तकनीकी और वित्तीय दोनों रूप से अव्यवहारिक है। कोसी द्वारा लाई जाने वाली गाद

की मात्रा इतनी विशाल है कि यदि उसे मशीनों से निकाला जाए, तो उस मलबे को रखने के लिए बिहार के पास पर्याप्त जमीन भी नहीं बचेगी। साथ ही, अगले ही मानसून में नदी फिर से उतना ही गाद भरकर वापस ले आएगी। इसलिए, आधुनिक जल प्रबंधन अब 'नदी के साथ अनुकूलन' की बात करता है। इसमें गाद को 'कचरा' नहीं बल्कि एक 'संसाधन' के रूप में देखा जाना चाहिए। कोसी की गाद में सिलिका और अन्य खनिज प्रचुर मात्रा में होते हैं, जिसका उपयोग निर्माण कार्यों, ईंट भट्टों और सड़क बनाने में किया जा सकता है। जब तक हम गाद के आर्थिक मूल्य को नहीं पहचानेंगे, तब तक इसका प्रबंधन एक सरकारी खर्च मात्र बना रहेगा।

इस संकट का समाधान केवल स्थानीय स्तर पर संभव नहीं है, क्योंकि कोसी का जलग्रहण क्षेत्र अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को स्पर्श करता है। हिमालय की ढलानों पर होने वाला वनों का कटाव और अनियंत्रित निर्माण कार्य सीधे तौर पर नदी में गाद की मात्रा को बढ़ाते हैं। 'सस्टेनेबल सिल्ट मैनेजमेंट' के लिए 'कैचमेंट एरिया ट्रीटमेंट' अनिवार्य है, जिसमें नेपाल के पर्वतीय क्षेत्रों में मृदा संरक्षण और व्यापक वृक्षारोपण शामिल हो। बिहार के मैदानी इलाकों में, हमें 'रूम फॉर द रिवर' (नदी के लिए जगह) जैसे वैश्विक मॉडलों पर विचार करना चाहिए, जहाँ नदी को नियंत्रित करने के बजाय उसे कुछ सुरक्षित क्षेत्रों में अपनी गाद फैलाने की अनुमति दी जाती है।[6] इससे न केवल नदी का तल कम ऊंचा होगा, बल्कि आर्द्रभूमियों का पुनरुद्धार भी होगा जो जल चक्र के लिए आवश्यक हैं।

कोसी में सतत गाद प्रबंधन के लिए एक व्यापक और बहु-आयामी नीति की आवश्यकता है जिसमें भारत और नेपाल के बीच कूटनीतिक सहयोग की भूमिका सबसे अहम है। 21वीं सदी का जल प्रबंधन अब 'नदी पर विजय' प्राप्त करने के पुराने इंजीनियरिंग अहंकार को छोड़कर 'नदी के साथ संवाद' करने की ओर बढ़ना चाहिए। कोसी की गाद को आपदा के बजाय एक भू-वैज्ञानिक उपहार के रूप में देखने की दृष्टि विकसित करनी होगी। जब तक गाद प्रबंधन को पारिस्थितिक सुरक्षा और सामुदायिक विकास का अभिन्न अंग नहीं माना जाएगा, तब तक उत्तरी बिहार के लिए कोसी का जल आशीर्वाद से अधिक एक निरंतर बना रहने वाला भय बना रहेगा। भविष्य की राह इसी संतुलन में निहित है कि हम कितनी कुशलता से गाद के प्रवाह को नियंत्रित करते हुए उसे आर्थिक प्रगति का आधार बना पाते हैं।[7]

कोसी की गाद मुख्य रूप से महीन रेत और गाद का मिश्रण है, जिसमें हिमालयी खनिजों की प्रचुरता होती है। इसे एक सफल बिजनेस मॉडल में बदलने के लिए 'सार्वजनिक-निजी भागीदारी' सबसे प्रभावी सिद्ध हो सकती है। सरकार को चाहिए कि वह तटबंधों के किनारे विशिष्ट 'सिल्ट प्रोसेसिंग जोन' स्थापित करे। यहाँ से निकाली गई गाद को ग्रेडिंग (छंटाई) के माध्यम से अलग-अलग उद्योगों को बेचा जा सकता है। उदाहरण के लिए, मोटी रेत का उपयोग सीधे तौर पर भवन निर्माण और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं में किया जा सकता है, जबकि महीन गाद का उपयोग 'फ्लाई-ऐश' के साथ मिलाकर उच्च गुणवत्ता वाली ईंटें बनाने में किया जा सकता है। बिहार जैसे राज्य में जहाँ निर्माण कार्य तीव्र गति से हो रहे हैं, वहाँ कोसी की गाद मिट्टी की कमी को पूरा करने का सबसे सस्ता और सुलभ स्रोत बन सकती है।[8]

तकनीकी समाधान और नवाचार

गाद प्रबंधन के लिए केवल खुदाई करना पर्याप्त नहीं है; इसके लिए हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग के आधुनिक सिद्धांतों का उपयोग आवश्यक है। एक प्रमुख तकनीकी समाधान 'सिल्ट एक्सक्लूडर' और 'सिल्ट इजेक्टर' का वैज्ञानिक प्रयोग है। ये ऐसी संरचनाएं हैं जो मुख्य जलधारा से भारी गाद को अलग कर देती हैं, जिससे नहरों और निचले बहाव में गाद का जमाव कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, 'पायलट चौनलिंग' एक अन्य प्रभावी तकनीक है, जिसमें मानसून से पहले नदी के भीतर एक कृत्रिम गहरा रास्ता बनाया जाता है, ताकि जब पानी का वेग बढ़े, तो वह अपने साथ जमा हुई गाद को बहा ले जाए। इसे 'नदी द्वारा स्वयं की सफाई' की प्रक्रिया को तेज करना कहा जा सकता है।

पारिस्थितिक एवं सामुदायिक एकीकरण

सतत प्रबंधन का एक अनिवार्य हिस्सा स्थानीय समुदायों को इससे जोड़ना है। 'कृषि-वानिकी' के माध्यम से उन क्षेत्रों में जहाँ गाद का जमाव अधिक है, विशेष प्रकार के पौधों (जैसे 'मूंज' या 'नरकट') का रोपण किया जा सकता है जो न केवल मिट्टी को बांधते हैं, बल्कि स्थानीय लोगों के लिए कुटीर उद्योगों का आधार भी बनते हैं। इसके अलावा, 'वेटलैंड रेस्टोरेशन' (आर्द्रभूमि पुनरुद्धार) के तहत नदी के अतिरिक्त पानी और गाद को पुराने प्राकृतिक जल निकायों (जैसे चौर और मन) की ओर मोड़ा जा सकता है। इससे भूजल पुनर्भरण होगा और मत्स्य पालन जैसे व्यवसायों को बढ़ावा मिलेगा।9

निष्कर्ष

कोसी नदी के गाद प्रबंधन का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि पिछले सात दशकों से अपनाई गई 'तटबंध-केंद्रित' सुरक्षा नीति ने अनजाने में एक अधिक जटिल संकट को जन्म दिया है। नदी तल का निरंतर ऊंचा होना केवल एक तकनीकी समस्या नहीं है, बल्कि यह उत्तरी बिहार के करोड़ों लोगों की सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा के लिए एक अस्तित्वगत खतरा है।

निष्कर्षत:, अब समय आ गया है कि हम ष्नदी पर नियंत्रणष् के पुराने इंजीनियरिंग प्रतिमान को बदलकर ष्नदी के साथ अनुकूलनष् की दिशा में बढ़ें। सतत गाद प्रबंधन के लिए ड्रेजिंग जैसे खर्चीले और अस्थायी समाधानों के बजाय, गाद को एक संसाधन के रूप में आर्थिक मुख्यधारा में शामिल करना होगा। जब तक गाद का उपयोग सड़क निर्माण, ईंट उद्योग और भूमि भराव जैसे क्षेत्रों में अनिवार्य नहीं किया जाएगा, तब तक यह समस्या सरकारी खजाने पर बोझ बनी रहेगी। साथ ही, भारत और नेपाल के बीच एक मजबूत कूटनीतिक और तकनीकी सहयोग के बिना ऊपरी जलग्रहण क्षेत्रों में मृदा क्षरण रोकना असंभव है। 21वीं सदी का कोसी प्रबंधन पारिस्थितिक बहाली, तकनीकी नवाचार और सामुदायिक भागीदारी के त्रिकोण पर आधारित होना चाहिए, ताकि यह 'शोक की नदी' भविष्य में 'समृद्धि की नदी' बन सके।

संदर्भ सूची

1. मिश्रा, दिनेश्वु कुमार (2008). 'दुइ पाटन के बीच में: कोसी तटबंध की कहानी'. लोक विज्ञान संस्थान। (कोसी के तटबंधों और गाद जमाव के ऐतिहासिक संकट पर सबसे प्रामाणिक पुस्तक)।
2. बिहार सरकार (2020). 'राज्य बाढ़ प्रबंधन नीति एवं गाद नियमावली'. जल संसाधन विभाग, पटना। (गाद प्रबंधन के लिए सरकारी दिशानिर्देश और ड्रेजिंग के नियम)।
3. सिन्हा, आर. (2009). 'कोसी की विनाशकारी बाढ़ और नदी का मार्ग परिवर्तन'. वैज्ञानिक शोध पत्र, भारतीय भू-वैज्ञानिक सोसायटी। (नदी तल के 'एग्रेडेशन' और गाद के जमाव का तकनीकी विश्लेषण)।
4. केंद्रीय जल आयोग (CWC) (2018). 'भारतीय नदियों में गाद निकालने के लिए मानक संचालन प्रक्रिया (SoP)'. जल शक्ति मंत्रालय, भारत सरकार।
5. झा, विधान चंद्र (2014). 'उत्तरी बिहार के मैदानी इलाकों का भू-आकृतिक विश्लेषण'. भौगोलिक अध्ययन पत्रिका। (कोसी बेसिन की मिट्टी और गाद की भौतिक संरचना पर शोध)।
6. अंतरराष्ट्रीय एकीकृत पर्वत विकास केंद्र (ICIMOD) (2016). 'हिमालयी नदियों में गाद प्रबंधन: चुनौतियां और अवसर'. काठमांडू, नेपाल। (भारत-नेपाल सीमा पर गाद के स्रोत और नियंत्रण पर रिपोर्ट)।
7. राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान (NIDM) (2015). 'कोसी बेसिन: एकीकृत जल संसाधन प्रबंधन पर केस स्टडी'. गृह मंत्रालय, भारत सरकार।
8. वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट (2010). 'कोसी बाढ़ पुनर्प्राप्ति परियोजना: तकनीकी और पारिस्थितिक मूल्यांकन'. (बाढ़ के बाद गाद के आर्थिक उपयोग के प्रस्ताव)।
9. दास, पी.के. (2012). 'कोसी की जल-राजनीति: भारत और नेपाल के बीच जल साझाकरण और गाद की समस्या'. सामयिक वैश्विक अध्ययन।

मोबाइल बैंकिंग का उदय और पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं पर इसका प्रभाव

सोमेश कुमार

(अतिथि व्याख्याता, वाणिज्य विभाग, शासकीय संत रामेश्वर गहिरा गुरूजी महाविद्यालय, बगीचा, जिला- जशपुर, छत्तीसगढ़)

सारांश (ABSTRACT) :

डिजिटल युग के सूत्रपात और मोबाइल बैंकिंग प्रौद्योगिकियों के वैश्विक प्रसार ने पारंपरिक वित्तीय ढांचे का पूर्णत: कायाकल्प कर दिया है। वर्तमान में, बैंकिंग और वित्त क्षेत्र एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा है जहाँ वित्तीय संव्यवहार (Transactions) केवल उंगलियों के स्पर्श तक सीमित हो गए हैं, जो पोर्टेबल उपकरणों के माध्यम से निरंतर (24/7) सुलभ हैं। यह शोध आलेख विशेष रूप से भारतीय वित्तीय परिदृश्य में मोबाइल बैंकिंग के उत्थान और पारंपरिक शाखा-आधारित बैंकिंग मॉडलों पर इसके बहुआयामी प्रभावों का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है।

प्रस्तुत अध्ययन भारत में मोबाइल बैंकिंग के बढ़ते अंगीकरण (Adoption) हेतु उत्तरदायी उत्प्रेरकों का अन्वेषण करता है, जिसमें तकनीकी नवाचार, उपभोक्ता व्यवहार में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, वृहद-आर्थिक घटना क्रम और गतिशील नियामक ढांचे की प्रमुख भूमिका रही है। मोबाइल बैंकिंग की इस क्रांति ने ग्राहकों और वित्तीय संस्थानों के बीच के पारंपरिक संबंधों को नए सिरे से परिभाषित किया है।

आज मोबाइल एप्लिकेशन के माध्यम से खाता प्रबंधन, निधि हस्तांतरण, बिल भुगतान और पोर्टफोलियो प्रबंधन जैसी जटिल प्रक्रियाएं सरल हो गई हैं। इस प्रतिमान विस्थापन (Paradigm Shift) ने न केवल उपभोक्ता अपेक्षाओं को बढ़ाया है, बल्कि बैंकों को अपनी से वावितरण प्रणालियों और परिचालन मॉडलों के पुनर्मूल्यांकन हेतु बाध्य भी किया है।

डिजिटल बैंकिंग की ओर इस तीव्र झुकाव ने वित्तीय धोखाधड़ी, साइबर जोखिम और डेटा संप्रभुता (Data Privacy) जैसी नई चुनौतियों को भी जन्म दिया है। इसके समाधान हेतु यह अध्ययन एक सुदृढ़ 'धोखाधड़ी जोखिम प्रबंधन' (Fraud Risk Management - FRM) प्रणाली की अपरिहार्यता पर बल देता है, ताकि ग्राहकों की संवेदनशील सूचनाओं को सुरक्षित रखा जा सके।

अंतत:,यह शोध वित्तीय संस्थानों की बदलती लागत संरचना और तकनीकी बुनियादी ढांचे में आवश्यक निवेश का विश्लेषण करता है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि पारंपरिक बैंकों के समक्ष अब भौतिक शाखाओं की प्रासंगिकता बनाए रखने और अत्याधुनिक डिजिटल प्रतिस्पर्द्धा में बने रहने के बीच एक इष्टतम संतुलन (Optimal Balance) बनाने की चुनौती है। कोविड-19 महामारी, तकनीकी अभिसरण और नियामक सक्रियता ने मिलकर भारत में एक नए और सशक्त बैंकिंग परिवेश का निर्माण किया है।

मुख्य शब्द (Keywords): मोबाइल बैंकिंग, बैंकिंग नियामक गतिशीलता, ग्राहक प्राथमिकताएं, डिजिटल रूपांतरण, साइबर सुरक्षा।

I. प्रस्तावना (INTRODUCTION)

समकालीन अर्थव्यवस्था के सुचारू संचालन में बैंकिंग क्षेत्र एक आधारभूत तत्व के रूप में कार्य करता है, जो समाज के विभिन्न वर्गों - व्यक्तियों, उद्यमों और सरकारों-को व्यापक वित्तीय सहायता प्रदान करता है। वित्तीय मध्यस्थ के रूप में बैंक न केवल जमा राशियों को सुरक्षित रखते हैं, बल्कि ऋण वितरण और भुगतान प्रणालियों को सरल बनाकर आर्थिक चक्र को गतिमान रखते हैं। ऐतिहासिक रूप से, बैंकिंग का क्रमिक विकास तकनीकी नवाचारों के साथ गहराई से जुड़ा रहा है, जिसका वर्तमान स्वरूप डिजिटल और मोबाइल बैंकिंग के रूप में हमारे सामने है। आर्थिक स्थिरता और उपभोक्ता हितों की रक्षा के लिए यह पूरा क्षेत्र एक अत्यंत कठोर और सुव्यवस्थित नियामक ढांचे के अंतर्गत कार्य करता है।

पारंपरिक बैंकिंग का स्वरूप (The Conventional Banking Model)

पारंपरिक बैंकिंग मॉडल, जो भौतिक शाखाओं और प्रत्यक्ष मानवीय संवाद पर आधारित है, सदियों से वैश्विक अर्थव्यवस्था का केंद्र रहा है। बचत खातों, ऋण सुविधाओं, क्रेडिट कार्डों और प्रेषण सेवाओं के माध्यम से इस मॉडल ने औद्योगिक और व्यक्तिगत विकास में ऐतिहासिक योगदान दिया है। हालाँकि, वर्तमान डिजिटल युग में पारंपरिक बैंकिंग के समक्ष फिनटेक (Fintech) स्टार्टअप्स और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने अस्तित्वगत चुनौतियाँ पेश की हैं। इन चुनौतियों ने पारंपरिक संस्थानों को अपनी कार्यप्रणाली में नवाचार लाने और डिजिटल परिवेश के अनुरूप ढलने के लिए विवश किया है।

डिजिटल एवं मोबाइल बैंकिंग का अभ्युदय (Emergence of Digital/Mobile Banking)

मोबाइल और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म्स के आगमन ने बैंकिंग उद्योग में 'विघटनकारी नवाचार' (Disruptive Innovation) उत्पन्न किया है। इस ने न केवल सेवाओं की उपलब्धता को सुगम बनाया है, बल्कि ग्राहकों के बैंकिंग व्यवहार और जुड़ाव के तरीके को भी मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया है। चौबीसों घंटे उपलब्ध रहने वाली ये सेवाएँ-जैसे तत्काल निधि हस्तांतरण, निवेश प्रबंधन और डिजिटल ऋणख़उपभोक्ताओं को अद्वितीय लचीलापन प्रदान करती हैं।

डिजिटल बैंकिंग की सबसे बड़ी विशेषता इसका 'वैयक्तिकृत दृष्टिकोण' (Personalized Approach) है, जो डेटा विश्लेषण के माध्यम से ग्राहक अनुभव और संतुष्टि को नई ऊंचाइयों पर ले जाता है। इस तकनीकी विस्थापन ने बैंकिंग क्षेत्र में नए खिलाड़ियों (New Players) के प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया है और नीति निर्माताओं को नियमों में व्यापक संशोधन के लिए प्रेरित किया है। बदलते वित्तीय परिदृश्य में प्रभावी ढंग से नेविगेट करने के लिए इस तकनीकी प्रभाव को समझना व्यवसायों और नीति निर्माताओं दोनों के लिए अपरिहार्य है।

भारतीय बैंकिंग परिदृश्य को परिवर्तित करने वाली 12 ऐतिहासिक घटनाएँ :

1991 के आर्थिक सुधारों के बाद से भारतीय बैंकिंग प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन आए हैं। इन सुधारों की आधारशिला एम. नरसिम्हम समिति (I और II) की सिफारिशों ने रखी थी। हालांकि, सुधारों के शुरुआती डेढ़ दशक में सुरक्षा घोटाले (1991-92), गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (NBFCs) का अस्थिर प्रदर्शन और ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा जैसी बाधाएँ सामने आईं।

2008 के वैश्विक वित्तीय संकट के बाद और विशेष रूप से 2010 के पश्चात, भारतीय बैंकिंग का डिजिटल रूपांतरण तीव्र हुआ। निम्नलिखित 12 घटनाओं ने भारत में डिजिटल बैंकिंग और भुगतान प्रणालियों के उदय में निर्णायक भूमिका निभाई है:

1. इंटरनेट की व्यापक पहुँच (Internet Penetration): 1990 के दशक में शुरू हुई इंटरनेट क्रांति 2010 के बाद स्मार्टफोन की सुलभता के कारण चरमोत्कर्ष पर पहुँची। इसने वैश्विक संचार को सुगम बनाया और वाणिज्य व शिक्षा के साथ-साथ बैंकिंग को भी 'शाखा-मुक्त' (Branchless) बनाने की नींव रखी।
2. कोर बैंकिंग सिस्टम (CBS) का क्रियान्वयन : ब्ठै की शुरुआत ने बैंकिंग परिचालनों को एकीकृत किया। इसने ग्राहक की जानकारी और लेन देन को एक केंद्रीकृत प्लेटफॉर्म पर लाकर दक्षता में वृद्धि की, जिससे ग्राहक अब 'होम ब्रांच' के बजाय 'बैंक के ग्राहक' बन गए।
3. भारतीय राष्ट्रीय भुगतान निगम (NPCI) की स्थापना (2008) : NPCI की स्थापना भारत के भुगतान इको सिस्टम में एक युगांतरकारी घटना थी। इसने इलेक्ट्रॉनिक लेन देन को सुरक्षित और सुव्यवस्थित करने के लिए बुनियादी ढांचा प्रदान किया, जिससे वित्तीय समावेशन को नई दिशा मिली।
4. आधार (Aadhaar) का उदय (2009) : विश्व की सबसे बड़ी बायोमेट्रिक पहचान प्रणाली के रूप में आधार ने बैंकिंग सेवाओं तक पहुँच को पारदर्शी बनाया। इसने 'e-KYC' के माध्यम से खाता खोलने की जटिल प्रक्रियाओं को सरल और त्वरित कर दिया।
5. प्रधानमंत्री जन-धन योजना (2014) : वित्तीय समावेशन के इस महा अभियान ने करोड़ों वंचित नागरिकों को औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा। इसने 'शून्य शेष' खातों के माध्यम से ग्रामीण और हाशिए पर खड़े समुदायों को आर्थिक सशक्तिकरण प्रदान किया।
6. 'मेक इन इंडिया' पहल (2014) : इस कार्यक्रम ने घरेलू विनिर्माण और विदेशी निवेश को बढ़ावा दिया, जिससे औद्योगिक ऋण की मांग बढ़ी और बैंकिंग क्षेत्र को विनिर्माण-आधारित अर्थव्यवस्था का समर्थन करने के लिए आधुनिक तकनीकों को अपनाने की प्रेरणा मिली।
7. जियो (Jio) दूरसंचार क्रांति (2016) : रिलायंस जियो के प्रवेश ने डेटा की कीमतों में भारी कमी की और इंटरनेट को सर्व सुलभ बना दिया। इस 'डेटा क्रांति' ने भारत में डिजिटल साक्षरता को त्वरित किया, जो मोबाइल बैंकिंग के विस्तार के लिए प्राथमिक आवश्यकता थी।
8. एकीकृत भुगतान इंटरफेस (UPI) का शुभारंभ (2016) : UPI ने डिजिटल लेन देन के क्षेत्र में वैश्विक स्तर पर भारत की धाक जमाई। तत्काल फंड ट्रांसफर और क्यूआर कोड (QR Code) आधारित भुगतान की सरलता ने इसे कैशलेस अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ बना दिया।
9. विमुद्रीकरण (Demonetization - 2016) : नवंबर 2016 में उच्च मूल्य के नोटों को बंद करने के निर्णय ने समाज के एक बड़े वर्ग को डिजिटल भुगतान विकल्पों (कार्ड, UPI, नेट बैंकिंग) की ओर बढ़ने के लिए विवश किया। इसने भारतीय अर्थव्यवस्था में 'कैश' की निर्भरता को कम करने में एक उत्प्रेरक का कार्य किया।
10. सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का वृहद विलय (Consolidation) : बैंकिंग क्षेत्र की दक्षता बढ़ाने और गैर-निष्पादित संपत्तियों (NPA) के प्रबंधन हेतु सार्वजनिक क्षेत्र के कई बैंकों का विलय किया गया (जैसे ओरिएंटल बैंक और यूनाइटेड बैंक का PNB में विलय)। इससे बैंकों की पूंजीगत क्षमता और तकनीकी आधार में मजबूती आई।
11. कोविड-19 महामारी (COVID-19 Pandemic) : महामारी के दौरान 'संपर्क रहित भुगतान' (Contactless Payments) अनिवार्य हो गया। इसने तकनीकी रूप से असहज रहने वाले नागरिकों और छोटे व्यापारियों को भी डिजिटल भुगतान अपनाने के लिए प्रेरित किया। 2026 तक आते-आते, यह अब एक सामान्य जीवन शैली बन चुकी है।
12. भू-राजनीतिक घटना क्रम और भुगतान प्रणालियों का शस्त्रीकरण (Geopolitical Issues) : रूस-यूक्रेन संघर्ष के दौरान SWIFT नेटवर्क से रूसी बैंकों को हटाए जाने की घटना ने दुनिया को भुगतान प्रणालियों के 'शस्त्रीकरण' (Weaponization) के प्रति सचेत किया। इसके बाद भारत सहित कई देशों ने अपनी स्वदेशी भुगतान प्रणालियों (जैसे UPI और RuPay) को अधिक लचीला और वैश्विक रूप से सुदृढ़ बनाने पर ध्यान केंद्रित किया है।

II. शोध कार्यप्रणाली (RESEARCH METHODOLOGY) :

प्रस्तुत शोध की प्रकृति व्याख्यात्मक (Explanatory) है, जो मुख्य रूप से माध्यमिक डेटा (Secondary Data) के गहन विश्लेषण पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु प्रतिष्ठित शोध लेखों, अकादमिक जर्नल्स, आधिकारिक बैंकिंग रिपोर्ट्स, वित्तीय पुस्तकों और विश्वसनीय वेब संसाधनों का संदर्भ लिया गया है। शोध का प्राथमिक उद्देश्य पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं पर डिजिटल बैंकिंग (विशेषकर UPI संव्यवहारों) के गुणात्मक और मात्रात्मक प्रभावों का मूल्यांकन करना है। अध्ययन में बैंकिंग क्षेत्र के व्यावहारिक अनुभवों और वास्तविक उदाहरणों को सम्मिलित किया गया है, ताकि डिजिटल परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से समझा जा सके।

2.1 UPI का विकास और सांख्यिकीय विश्लेषण :

भारतीय बैंकिंग परिदृश्य में UPI (एकीकृत भुगतान इंटरफेस) की वृद्धि किसी चमत्कार से कम नहीं है। यदि हम तुलनात्मक आंकड़ों पर दृष्टि डालें, तो परिवर्तन की भयावहता स्पष्ट हो जाती है:

- नवंबर 2016 (शुरुआती चरण) : केवल 30 बैंक UPI प्लेटफॉर्म पर सक्रिय थे, जो लगभग 2.9 लाख लेनदेन (मूल्य रू. 100.46 मिलियन) का प्रबंधन कर रहे थे।
- नवंबर 2023 : बैंकों की संख्या बढ़कर 516 हो गई, और लेनदेन की मात्रा 11,235.29 मिलियन तक पहुँच गई, जिसका कुल मूल्य रू. 17,39,740. 61 मिलियन रहा।
- वर्तमान रुझान (2025-26) : 2026 की शुरुआत तक, UPI लेनदेन का मासिक आंकड़ा 20 बिलियन को पार करने की दिशा में अग्रसर है, जो यह दर्शाता है कि डिजिटल भुगतान अब भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग बन चुका है।

2.2 सीमा पार लेनदेन (Cross-Border Transactions) और वैश्विक प्रेषण (Remittances) :

भारतीय भुगतान परिदृश्य में UPI की सफलता के बाद, अब इसका ध्यान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर केंद्रित है। माइग्रेशन पोर्टल के आंकड़ों के अनुसार, भारत वैश्विक प्रेषण (Remittances) प्राप्त करने में अग्रणी देश के रूप में उभरा है:

- प्रेषण अंतर्वाह (2023) : भारत ने 125 बिलियन अमेरिकी डॉलर के साथ शीर्ष स्थान प्राप्त किया, जिसके बाद मैक्सिको (67 बिलियन डॉलर), चीन (50 बिलियन डॉलर) और फिलीपींस (40 बिलियन डॉलर) का स्थान रहा।
- रणनीतिक महत्व : सीमा पार UPI लेनदेन अंतर्राष्ट्रीय धन हस्तांतरण की लागत को 60-80% तक कम करने की क्षमता रखते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) ने इस दिशा में नवाचार करते हुए भारत आने वाले सभी विदेशी यात्रियों को 'UPI फॉर मर्चेंट पेमेंट्स' के उपयोग की अनुमति प्रदान की है, जो भारतीय मुद्रा (INR) की वैश्विक स्वीकार्यता को बढ़ाता है।

2.3 भारतीय मुद्रा (INR) का अंतर्राष्ट्रीयकरण और भविष्य का दृष्टिकोण :

वर्तमान में, वैश्विक विनिमय बाजार (BIS 2022 के अनुसार) में भारतीय मुद्रा का योगदान लगभग 1.7% है। शोध का अनुमान है कि जैसे-जैसे UPI का अंतर्राष्ट्रीय लिंकेज (जैसे सिंगापुर के Pay Now, यूएई और फ्रांस के साथ) बढ़ेगा,यह प्रतिशत काफी ऊपर जाएगा।

- आर्थिक लक्ष्य 2047: यह अनुमान लगाया गया है कि भारत की जीडीपी,जो वर्तमान में 3.75 ट्रिलियन डॉलर के स्तर पर है, वर्ष 2047 तक 30 ट्रिलियन डॉलर के लक्ष्य को स्पर्श करेगी।
- तकनीकी आधार : इस विकास यात्रा में UPI 'बैकबोन' (रीढ़ की हड्डी) का कार्य करेगा, जिसे 2047 तक लगभग 120 करोड़ स्मार्ट फोन उपयोग कर्ताओं का समर्थन प्राप्त होगा। यह परिवर्तन पारंपरिक 'ईंट-गारे' वाली बैंकिंग को पूर्णत: विस्थापित कर एक 'हाई-टेक' मोबाइल बैंकिंग अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करेगा।

2.4 वैश्विक ग्राहक व्यवहार और रुझान :

अध्ययन में एंथनी बैक (2023) के विश्लेषण का भी संज्ञान लिया गया है,जो विभिन्न आयु वर्गों (जेनरेशन जेड, मिले नियल्स और बेबी बूमर्स) के बीच भुगतान प्राथमिकताओं के बदलाव को दर्शाता है। जहाँ युवा वर्ग पूर्णत:मोबाइल-आधारित समाधानों को प्राथमिकता देता है, वहीं पारंपरिक बैंक अब इन बदलती प्राथमिकताओं के अनुरूप अपने डिजिटल बुनियादी ढांचे में भारी निवेश कर रहे हैं।

परिकल्पना (Hypothesis) : आज के परिदृश्य में बैंकिंग केवल मोबाइल ऐप तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'हाइपर-पर्सनलाइजेशन' और 'कैशलेस इकोनॉमी' की ओर बढ़ चुकी है। इसे प्रमाणित करने के लिए निम्नलिखित परिकल्पनाएं निर्मित की गई हैं:

शून्य परिकल्पना (H0) : मोबाइल बैंकिंग सेवाओं के बढ़ते उपयोग का पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं (जैसे शाखा भ्रमण, पासबुक एंट्री, कैश ट्रांजैलक्शन) के उपयोग पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता है।

वैकल्पिक परिकल्पना (H1): मोबाइल बैंकिंग सेवाओं के बढ़ते उपयोग से पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं के उपयोग में उल्लेखनीय कमी आई है।

III. पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं पर मोबाइल बैंकिंग का प्रभाव :

मोबाइल बैंकिंग के तीव्र विकास ने पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं की कार्यप्रणाली, संरचना तथा सेवा वितरण प्रणाली में उल्लेखनीय परिवर्तन उत्पन्न किया है। पूर्व में जहाँ बैंकिंग सेवाएँ मुख्यत: भौतिक शाखाओं और प्रत्यक्ष संपर्क पर आधारित थीं, वहीं वर्तमान में डिजिटल माध्यमों के उपयोग से बैंकिंग अधिक सुलभ, तीव्र और उपभोक्ता-केंद्रित होती जा रही है। भारत के विकसित भारत 2047 के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में प्रौद्योगिकी-सक्षम बैंकिंग व्यवस्था को अपनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है, जिससे व्यापक जनसंख्या को औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जोड़ा जा सके।

पारंपरिक बैंकिंग से मोबाइल बैंकिंग की ओर यह संक्रमण कई आयामों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। मोबाइल बैंकिंग ने बैंकिंग सेवाओं को समय और स्थान की सीमाओं से मुक्त कर दिया है। ग्राहक अब खाते से संबंधित जानकारी, धन हस्तांतरण, बिल भुगतान तथा अन्य वित्तीय गतिविधियाँ बिना बैंक शाखा जाए स्वयं संचालित कर सकते हैं। इसके परिणाम स्वरूप भौतिक शाखाओं पर निर्भरता में कमी आई है और बैंकिंग सेवाओं की पहुँच में वृद्धि हुई है।

मोबाइल बैंकिंग के विस्तार से बैंकों की परिचालन लागत में भी कमी देखी गई है। पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था में शाखाओं के रख रखाव, मानव संसाधन तथा अन्य भौतिक अवसंरचना पर पर्याप्त व्यय होता है। डिजिटल चौनलों के माध्यम से नियमित और दोहराव वाले लेन-देन के स्थानांतरण से बैंकों की कार्यकुशलता में सुधार हुआ है और लागत प्रभावशीलता बढ़ी है।

ग्राहक अनुभव की दृष्टि से मोबाइल बैंकिंग ने बैंकिंग सेवाओं को अधिक सरल और सुगम बनाया है। मोबाइल अनुप्रयोगों की उपयोगकर्ता-अनुकूल संरचना, त्वरित सूचनाएँ तथा वैयक्तिकृत सेवाएँ ग्राहकों को अपने वित्तीय निर्णयों पर बेहतर नियंत्रण प्रदान करती हैं। साथ ही, वास्तविक समय में लेन-देन की जानकारी उपलब्ध होने से पारदर्शिता में वृद्धि हुई है, जिससे बैंकिंग प्रणाली के प्रति ग्राहकों का विश्वास सुदृढ़ हुआ है।

मोबाइल बैंकिंग ने वित्तीय समावेशन को भी महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा दिया है। ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाले वे व्यक्ति, जिन्हें पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं तक सीमित पहुँच प्राप्त थी,अब मोबाइल उपकरणों के माध्यम से औपचारिक वित्तीय प्रणाली से जुड़ पा रहे हैं। इसने बैंकिंग सेवाओं के दायरे को व्यापक बनाया है और आर्थिक भागीदारी को प्रोत्साहित किया है।

हालाँकि, मोबाइल बैंकिंग के साथ कुछ चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता और डिजिटल धोखाधड़ी जैसी समस्याएँ बैंकों के समक्ष प्रमुख चिंता का विषय बनी हुई हैं। इन चुनौतियों से निपटने के लिए बैंकों द्वारा उन्नत सुरक्षा प्रणालियों को अपनाया जा रहा है तथा ग्राहकों को डिजिटल जागरूकता प्रदान करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

मोबाइल बैंकिंग के बढ़ते उपयोग के कारण ग्राहकबैंक संबंधों की प्रकृति में भी परिवर्तन आया है। जहाँ पहले अधिकांश लेन-देन शाखाओं में संपन्न होते थे, वहीं अब शाखाएँ परामर्श, शिकायत निवारण और विशेष सेवाओं तक सीमित होती जा रही हैं। इसके परिणाम स्वरूप पारंपरिक बैंक शाखाओं की भूमिका पुनर्परिभाषित हो रही है।

इसके अतिरिक्त, मोबाइल बैंकिंग ने बैंकिंग क्षेत्र में तकनीकी नवाचार को गति प्रदान की है। बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डेटा विश्लेषण जैसी उन्नत प्रौद्योगिकियों का उपयोग बैंकिंग सेवाओं की गुणवत्ता और सुरक्षा को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हुआ है। साथ ही, डिजिटल बैंक और फिनटेक कंपनियों के उदय से प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई है, जिससे पारंपरिक बैंकों को नवाचार और सेवा सुधार की दिशा में निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

भारत में डिजिटल भुगतान प्रणाली का विकास इस परिवर्तन को और अधिक सशक्त बनाता है। नेट बैंकिंग, मोबाइल बैंकिंग, कार्ड आधारित भुगतान, NEFT] RTGS, IMPS, UPI, AePS तथा QR आधारित प्रणालियों ने लेन-देन को अधिक सरल, सुरक्षित और प्रभावी बनाया है। यह विकास पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था से एक आधुनिक, तकनीक-संचालित वित्तीय पारिस्थितिकी तंत्र की ओर संक्रमण को दर्शाता है।

IV. डिजिटल बैंकिंग एवं भुगतान प्रणालियों के विस्तार से उत्पन्न चुनौतियाँ :

डिजिटल बैंकिंग एवं डिजिटल भुगतान प्रणालियों के तीव्र विस्तार ने वित्तीय सेवाओं की प्रकृति में व्यापक परिवर्तन किया है। इस परिवर्तन ने जहाँ बैंकिंग को अधिक सुलभ, त्वरित और ग्राहक-केंद्रित बनाया है, वहीं वित्तीय संस्थानों के समक्ष अनेक संरचनात्मक, तकनीकी और नियामक चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। डिजिटल वातावरण में कार्यरत वित्तीय संस्थानों के लिए इन चुनौतियों का प्रभावी प्रबंधन अत्यंत आवश्यक हो गया है।

डिजिटल बैंकिंग के कारण सबसे प्रमुख चुनौती साइबर सुरक्षा से संबंधित है। ऑनलाइन लेन-देन की बढ़ती संख्या के साथ डेटा उल्लंघन, पहचान चोरी, फिशिंग और डिजिटल धोखाधड़ी के जोखिम में वृद्धि हुई है। ग्राहक जानकारी और वित्तीय डेटा की सुरक्षा सुनिश्चित करना वित्तीय संस्थानों की सर्वोच्च प्राथमिकता बन गया है, जिसके लिए निरंतर तकनीकी उन्नयन और निगरानी आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, नियामक अनुपालन भी एक जटिल चुनौती के रूप में उभर कर सामने आया है। डिजिटल बैंकिंग से संबंधित नियम, डेटा संरक्षण दिशा निर्देश, ग्राहक प्रमाणीकरण मानक और धन शोधन निवारण प्रावधान समय-समय पर संशोधित होते रहते हैं। इन बदलते नियमों के अनुरूप स्वयं को ढालना वित्तीय संस्थानों के लिए संसाधन-साध्य और समय-साध्य प्रक्रिया बन गई है।

तकनीकी अवसंरचना का आधुनिकी करण भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। अनेक वित्तीय संस्थान अभी भी पारंपरिक प्रणालियों पर निर्भर हैं, जो डिजिटल बैंकिंग की वर्तमान आवश्यकताओं को पूर्ण रूप से समर्थन नहीं दे पातीं। डिजिटल सेवाओं के निर्बाध संचालन हेतु उन्नत आईटी प्रणाली, सुरक्षित नेटवर्क और नियमित सिस्टम अपग्रेड की आवश्यकता होती है, जिससे परिचालन लागत में वृद्धि होती है।

डिजिटल बैंकिंग के सफल क्रियान्वयन में ग्राहक जागरूकता और विश्वास भी निर्णायक भूमिका निभाते हैं। तकनीक के प्रति सीमित समझ रखने वाले ग्राहकों में डिजिटल लेन-देन को लेकर आशंका बनी रहती है। अत: वित्तीय संस्थानों को डिजिटल साक्षरता बढ़ाने, उपयोगकर्ता प्रशिक्षण और पारदर्शी संवाद के माध्यम से ग्राहक विश्वास सुदृढ़ करना आवश्यक हो गया है।

डिजिटल भुगतान प्रणालियों के विस्तार के साथ धोखाधड़ी के तरीके भी अधिक जटिल होते जा रहे हैं। मोबाइल बैंकिंग धोखाधड़ी, कार्ड फ्रॉड और सोशल इंजीनियरिंग आधारित अपराध वित्तीय संस्थानों के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न कर रहे हैं। इन जोखिमों से निपटने हेतु उन्नत धोखाधड़ी पहचान प्रणाली और वास्तविक-समय निगरानी तंत्र की आवश्यकता बढ़ गई है।

एक अन्य प्रमुख चुनौती विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्मों के बीच तकनीकी समन्वय की है। अनेक भुगतान प्रणालियों और बैंकिंग प्लेटफॉर्मों के बीच निर्बाध संचालन सुनिश्चित करना सरल कार्य नहीं है। मानकी करण के अभाव में सेवा की गुणवत्ता और ग्राहक अनुभव प्रभावित हो सकता है।

डिजिटल बैंकिंग सेवाएँ पूर्णत: तकनीकी प्रणालियों पर आधारित होने के कारण परिचालन निरंतरता भी एक संवेदनशील विषय बन गया है। किसी भी प्रकार की प्रणाली विफलता, नेटवर्क बाधा या तकनीकी खराबी से बैंकिंग सेवाएँ बाधित हो सकती हैं। इस कारण वित्तीय संस्थानों को मजबूत आपदा प्रबंधन और बैक-अप प्रणालियाँ विकसित करनी पड़ रही हैं।

डिजिटल युग में डेटा गोपनीयता का प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। ग्राहकों के वित्तीय और व्यक्तिगत डेटा का सुरक्षित प्रबंधन वित्तीय संस्थानों की नैतिक और कानूनी जिम्मेदारी बन चुका है। डेटा दुरुपयोग की घटनाएँ न केवल कानूनी जटिलताएँ उत्पन्न करती हैं, बल्कि संस्थानों की साख को भी प्रभावित करती हैं।

इसके अतिरिक्त, फिनटेक कंपनियों के उदय ने पारंपरिक वित्तीय संस्थानों के समक्ष प्रतिस्पर्धा को और अधिक तीव्र बना दिया है। तकनीकी नवाचार और तीव्र सेवा वितरण के कारण फिनटेक कंपनियाँ ग्राहकों को आकर्षित कर रही हैं, जिससे पारंपरिक बैंकों को अपनी रणनीतियों में नवाचार और लचीलापन अपनाना पड़ रहा है।

V. डेटा विश्लेषण एवं व्याख्या

इस अध्ययन में मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान प्रणाली के प्रभावों का विश्लेषण मुख्यत: द्वितीयक डेटा के आधार पर किया गया है। इसके लिए भारतीय रिजर्व बैंक (RBI), नेशनल पेमेंट्स कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया (NPCI), सरकारी रिपोर्ट्स, बैंकिंग उद्योग के प्रकाशन और पिछले शोध अध्ययनों से प्राप्त आँकड़ों का उपयोग किया गया।

द्वितीयक डेटा का विश्लेषण दर्शाता है कि भारत में मोबाइल बैंकिंग सेवाओं का विस्तार तेजी से हुआ है। डिजिटल लेन-देन में वृद्धि के कारण पारंपरिक बैंक शाखाओं में प्रत्यक्ष लेन-देन की आवृत्ति में कमी आई है। इसके अलावा, मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान प्रणालियों ने बैंकिंग सेवाओं की गति, पहुँच और सुविधा में सुधार किया है।

विशेष रूप से, युवा और तकनीकी रूप से जागरूक ग्राहक डिजिटल बैंकिंग को अधिक अपनाते हैं, जबकि ग्रामीण और सीमित डिजिटल साक्षरता वाले वर्गों में इसके उपयोग को लेकर थोड़ी हिचकिचाहट देखी जाती है। डेटा से यह भी स्पष्ट होता है कि डिजिटल बैंकिंग ने वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया है, जिससे अब अधिक लोग औपचारिक बैंकिंग प्रणाली का लाभ उठा पा रहे हैं।

VI. बैंकिंग प्रणाली में साइबर सुरक्षा संबंधी खतरे :

डिजिटल बैंकिंग और भुगतान प्रणालियों के तीव्र विकास के साथ ही बैंकिंग क्षेत्र में साइबर सुरक्षा संबंधी खतरे भी बढ़ गए हैं। डिजिटल लेन-देन में वृद्धि ने जहां वित्तीय सेवाओं की गति और सुविधा को बढ़ाया है, वहीं यह बैंकिंग प्रणाली के लिए नई चुनौतियाँ भी लेकर आया है। प्रमुख खतरे निम्नलिखित हैं:

1. बढ़ती साइबर सुरक्षा जोखिम की स्थिति : भारत में डिजिटल भुगतान के तेजी से विस्तार ने लेन-देन की संख्या में वृद्धि की है, लेकिन इससे साइबर सुरक्षा खतरे भी अधिक जटिल और व्यापक हो गए हैं। वित्तीय संस्थानों और ग्राहकों दोनों के लिए डिजिटल लेन-देन की सुरक्षा सुनिश्चित करना चुनौती पूर्ण हो गया है।
2. फिशिंग हमलों की चिंता : फिशिंग हमले डिजिटल बैंकिंग प्रणाली के लिए एक गंभीर खतरा हैं। ये हमले धोखाधड़ी पूर्ण ईमेल और संदेशों के माध्यम से संवेदनशील वित्तीय जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यदि ग्राहक सावधान न रहें, तो यह उनके डिजिटल लेन-देन की सुरक्षा पर प्रत्यक्ष खतरा उत्पन्न कर सकता है।
3. मैलवेयर और रैनसमवेयर के बढ़ते मामले : मैलवेयर और रैनसमवेयर हमलों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। ये विशेष रूप से उन व्यक्तियों और संस्थाओं को लक्षित करते हैं जो डिजिटल भुगतान और बैंकिंग सेवाओं का उपयोग करते हैं। इसका परिणाम वित्तीय डेटा की गोपनीयता और अखंडता पर नकारात्मक प्रभाव के रूप में सामने आता है।
4. मोबाइल ऐप्स और उपकरणों की असुरक्षा : मोबाइल बैंकिंग और भुगतान ऐप्स का व्यापक उपयोग, असुरक्षित उपकरणों और सार्वजनिक वाई-फाई नेटवर्क पर होने वाले लेन-देन के कारण सुरक्षा जोखिम बढ़ा देता है। इसके चलते उपयोगकर्ता संभावित डेटा उल्लंघनों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं।
5. प्रणालीगत जोखिम और जटिलताएँ : डिजिटल भुगतान प्रणालियों की आपस में जुड़ी प्रकृति प्रणालीगत जोखिम को बढ़ाती है। भुगतान सेवा प्रदाताओं में आंतरिक खतरों और सप्लाई चेन में कमजोरियों के कारण साइबर सुरक्षा पर दबाव और अधिक बढ़ जाता है। इस जटिलता के कारण किसी भी सुरक्षा उल्लंघन का प्रभाव व्यापक और गंभीर हो सकता है।

VII. भारत में 2047 तक मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान का भविष्य:

साल 2047 तक भारत में मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान प्रणाली की प्रगति निर्णायक रूप से बदल जाएगी। वर्तमान में ही भारत डिजिटल भुगतान के मामले में दुनिया में अग्रणी बन चुका है, खास कर Unified Payments Interface (UPI) जैसे प्लेटफॉर्म के व्यापक उपयोग से। भविष्य में तकनीकी उन्नति जैसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मशीन लर्निंग, ब्लॉक चेन तकनीक, और 5G/6G नेटवर्क के विस्तार से मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान अधिक तीव्र, सुरक्षित और उत्तरदायी बनेंगे।

भविष्य में वित्तीय सेवाएँ नागरिकों के दैनिक जीवन का अभिन्न हिस्सा बन जाएँगी। वास्तविक समय डेटा विश्लेषण और कस्टमाइज्ड सुझावों के माध्यम से हर व्यक्ति को उसकी आवश्यकताओं के अनुसार सेवाएँ उपलब्ध होंगी। इससे न केवल वित्तीय निर्णय अधिक सटीक होंगे, बल्कि ग्राहकों की बैंकिंग अनुभव गुणवत्ता.मुख्य और सूचनात्मक होगी।

डिजिटल भुगतान प्रणाली अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के साथ अधिक गहराई से जुड़ जाएगी। IoT उपकरणों और उच्च.गति नेटवर्क के साथ, लेन. देन त्वरित, निर्बाध और सुरक्षित रूप से होंगे। कैश.लेस व्यवहार बढ़ेगा, जिससे मुद्रा पर निर्भरता कम होगी और डिजिटल भुगतान मुख्य माध्यम बन जाएगा।

सरकारी योजनाएँ जैसे डिजिटल इंडिया, Financial Inclusion Initiatives, और निजी क्षेत्र के टेक्नोलॉजी इनोवेशन्स से ग्रामीण तथा वंचित समुदायों को भी सशक्त रूप से बैंकिंग प्रणाली से जोड़ने की दिशा में ठोस प्रगति होगी। इससे वित्तीय समावेशन और सेवा की पहुँच दोनों में सुधार संभव होगा।

2047 तक भारत को मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान के क्षेत्र में वैश्विक नेतृत्व प्राप्त होगा। यह अन्य देशों के लिए एक सफल डिजिटल वित्त मॉडल के रूप में प्रस्तुत होगा, जिसमें तकनीकी सुरक्षा, सेवा गुणवत्ता और वित्तीय समावेशन के आदर्श मिलेंगे।

निष्कर्ष (Conclusion) :

वर्तमान समय में मोबाइल बैंकिंग और डिजिटल भुगतान प्रणाली ने भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में महत्वपूर्ण बदलाव किए हैं। ग्राहक अब सुविधाजनक, त्वरित और सुरक्षित डिजिटल लेन-देन को प्राथमिकता देने लगे हैं। COVID-19 महामारी और उसके बाद डिजिटल माध्यमों के तेज विस्तार ने पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया है, जिससे शाखाओं में प्रत्यक्ष लेन-देन की आवश्यकता कम हुई है।

मोबाइल बैंकिंग ने वित्तीय समावेशन को बढ़ावा दिया है और ग्रामीण तथा पिछड़े क्षेत्रों के लोगों तक बैंकिंग सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित की है। इसके साथ ही, साइबर सुरक्षा, डेटा गोपनीयता और धोखाधड़ी रोकथाम पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है, जिससे ग्राहकों के भरोसे को बनाए रखना संभव हुआ है।

संक्षेप में, मोबाइल बैंकिंग ने पारंपरिक बैंकिंग संरचना को अधिक दक्ष, ग्राहक-केंद्रित और समावेशी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भविष्य में, डिजिटल बैंकिंग और मोबाइल भुगतान का लगातार विकास भारत को वैश्विक डिजिटल वित्तीय परिदृश्य में अग्रणी भूमिका निभाने के लिए सक्षम बनाएगा।

संदर्भ (References) :

I. देवेंद्र जी. ओ., डिजिटल बैंकिंग का पारंपरिक बैंकिंग सेवाओं पर प्रभाव, श्री डी देवाजि प्रथम ग्रेड कॉलेज।
II. Banking Circle Blog, भारत में UPI का उदय और इसकी अंतरराष्ट्रीय संभावनाएँ, 27 दिसंबर 2023।
III. Economic Times, PhonePe ने Cross-Border UPI भुगतान की सुविधा शुरू की, 27 दिसंबर 2023।
IV. Statista, भारत में मोबाइल इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या, 2023।
V. NPCI, UPI Whitepaper, 2023.
VI. RBI, Payments Vision 2025.

शिक्षा का बाजारीकरण और ग्रामीण-शहरी विभाजन

डॉ० कादम्विनी कुमारी

समाजशास्त्र, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र शिक्षा के बाजारीकरण और इसके फलस्वरूप गहराते ग्रामीण-शहरी विभाजन का आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। समकालीन भारत में शिक्षा का स्वरूप 'लोक कल्याण' से स्थानांतरित होकर 'व्यापारिक लाभ' की ओर झुक गया है। उदारीकरण के पश्चात निजी शिक्षण संस्थानों और 'एड-टेक' कंपनियों के उदय ने शिक्षा को एक विलासिता की वस्तु बना दिया है, जहाँ गुणवत्ता सीधे तौर पर क्रय शक्ति से जुड़ी है।

यह अध्ययन रेखांकित करता है कि किस प्रकार डिजिटल क्रांति और महंगे कोचिंग संस्थानों ने ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों को हाशिए पर धकेल दिया है। जहाँ शहरी केंद्रों में उच्च तकनीक और विशेषज्ञता उपलब्ध है, वहीं ग्रामीण भारत आज भी बिजली, इंटरनेट और कुशल शिक्षकों जैसी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्षरत है। बाजारीकरण ने 'योग्यता' की परिभाषा को सीमित कर दिया है, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के मेधावी छात्र मुख्यधारा की प्रतिस्पर्धा से बाहर हो रहे हैं। निष्कर्षतः, यह पत्र सुझाव देता है कि शिक्षा में बढ़ती इस खाई को पाटने के लिए सरकार को न केवल सार्वजनिक निवेश बढ़ाना होगा, बल्कि निजी संस्थानों की बेलगाम फीस और व्यापारिक प्रवृत्तियों पर कड़ा विनियामक नियंत्रण भी स्थापित करना होगा।

प्रमुख शब्द : शिक्षा का बाजारीकरण, ग्रामीण-शहरी विभाजन, डिजिटल डिवाइड, निजीकरण, शैक्षणिक असमानता, एड-टेक, सार्वजनिक निवेश

प्रस्तावना:

शिक्षा किसी भी राष्ट्र की वह रीढ़ होती है जो समाज के बौद्धिक, नैतिक और आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा को 'विद्या दान' की श्रेणी में रखा गया, जिसे व्यापारिक लेन-देन से ऊपर माना जाता था। किंतु, इक्कीसवीं सदी के वैश्वीकरण और उदारीकरण के दौर ने शिक्षा के इस मौलिक स्वरूप को पूरी तरह बदल दिया है। आज शिक्षा एक सेवा नहीं, बल्कि एक 'उत्पाद' बन गई है और विद्यार्थी एक 'ग्राहक'। इस बदलाव को समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र की भाषा में 'शिक्षा का बाजारीकरण' कहा जाता है।

बाजारीकरण की इस प्रक्रिया ने एक ऐसी प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है जिसने भारतीय समाज के सबसे संवेदनशील हिस्से यानी 'ग्रामीण-शहरी विभाजन' को और अधिक स्पष्ट और गहरा कर दिया है।[1] यह विभाजन अब केवल भौगोलिक नहीं रह गया है, बल्कि यह अवसरों, संसाधनों और भविष्य की संभावनाओं का विभाजन बन चुका है।

बाजारीकरण की पृष्ठभूमि और दार्शनिक बदलाव

शिक्षा के बाजारीकरण की जड़ें 1990 के दशक के आर्थिक सुधारों में खोजी जा सकती हैं। जब राज्य ने कल्याणकारी भूमिका से हाथ खींचना शुरू किया, तो शिक्षा के क्षेत्र में निजी पूंजी का प्रवेश हुआ। प्रारंभ में इसे गुणवत्ता सुधारने के एक माध्यम के रूप में देखा गया, लेकिन धीरे-धीरे शिक्षा 'मुनाफाखोरी' का सबसे सुरक्षित केंद्र बन गई। बाजारीकरण का दर्शन इस तर्क पर टिका है कि 'जो अधिक भुगतान करेगा, उसे बेहतर सेवा मिलेगी।'[2] इस विचार ने शिक्षा के उस संवैधानिक उद्देश्य को ही चोट पहुँचाई है, जो 'समान अवसर' की बात करता है।

जब शिक्षा बाजार के नियमों (मांग और आपूर्ति) से संचालित होने लगती है, तो उसका मुख्य उद्देश्य ज्ञान का प्रसार नहीं, बल्कि ब्रांडिंग और साख निर्माण हो जाता है। बड़े-बड़े निजी विश्वविद्यालय और कॉर्पोरेट स्कूल आज महज शैक्षणिक संस्थान नहीं, बल्कि व्यावसायिक घरानों की तरह संचालित हो रहे हैं।

शहरी चमक बनाम ग्रामीण संघर्ष: संसाधनों का असंतुलन

भारत की सामाजिक संरचना में शहर हमेशा से आधुनिकता के केंद्र रहे हैं, जबकि ग्रामीण क्षेत्र पारंपरिक जीवनशैली के। शिक्षा के बाजारीकरण ने इस अंतर को एक नए और खतरनाक स्तर पर पहुँचा दिया है। शहरों में आज 'अंतरराष्ट्रीय स्कूल' और 'स्मार्ट क्लासेज' की भरमार है, जहाँ छात्र रोबोटिक्स, कोडिंग और विदेशी भाषाओं का ज्ञान ले रहे हैं। इसके विपरीत, ग्रामीण भारत के स्कूलों में आज भी एक ही शिक्षक द्वारा कई कक्षाओं को साथ पढ़ाने की मजबूरी बनी हुई है।

यह विभाजन केवल भवनों या फर्नीचर तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'डिजिटल डिवाइड' के रूप में उभरा है। शहरी छात्र के पास हाई-स्पीड फाइबर इंटरनेट और नवीनतम गैजेट्स हैं, जो उसे वैश्विक ज्ञान के भंडार से जोड़ते हैं। वहीं, ग्रामीण क्षेत्र का छात्र बिजली की कटौती और कमजोर नेटवर्क सिग्नल

के बीच अपनी बुनियादी शिक्षा पूरी करने के लिए संघर्ष कर रहा है। बाजारीकरण ने तकनीकी शिक्षा को इतना महंगा बना दिया है कि एक ग्रामीण किसान के बच्चे के लिए 'आईआईटी' या 'नीट' जैसी परीक्षाओं की तैयारी के लिए शहरों के 'कोचिंग हब' में जाना एक वित्तीय दु:स्वप्न बन गया है।

कोचिंग संस्कृति और मेधा का विस्थापन

बाजारीकरण का सबसे विकृत रूप 'कोचिंग इंडस्ट्री' के रूप में सामने आया है। कोटा जैसे शहर आज शिक्षा के कारखाने बन चुके हैं। इन संस्थानों का पूरा मॉडल इस आधार पर टिका है कि वे छात्र को परीक्षा पास करने की श्तकनीकश बेचते हैं। यहाँ ग्रामीण छात्र दोहरे मोर्चे पर हारता है। पहला, वह इन संस्थानों की लाखों की फीस वहन नहीं कर सकता। दूसरा, यदि वह ऋण लेकर पहुँच भी जाए, तो शहरी परिवेश की भाषा (अक्सर अंग्रेजी का वर्चस्व) और प्रतिस्पर्धा का दबाव उसे मानसिक रूप से तोड़ देता है।

इस प्रक्रिया ने समाज में श्सांस्कृतिक पूंजीश का एक नया भेदभाव पैदा कर दिया है। शहरी बच्चों को बचपन से ही वह वातावरण मिलता है जो बाजार की मांग के अनुरूप है, जबकि ग्रामीण छात्र अपनी प्रतिभा के बावजूद केवल संसाधनों के अभाव में पिछड़ जाता है। यह स्थिति न केवल अन्यायपूर्ण है, बल्कि यह राष्ट्र की प्रतिभा का भारी नुकसान भी है।

बाजारवादी शिक्षा का सामाजिक परिणाम

शिक्षा का बाजारीकरण और ग्रामीण-शहरी विभाजन मिलकर एक 'दोहरी शिक्षा प्रणाली' का निर्माण कर रहे हैं। एक तरफ वे लोग हैं जो महंगी शिक्षा खरीदकर वैश्विक नागरिक बन रहे हैं और दूसरी तरफ वे जो सरकारी या निम्न-स्तरीय निजी स्कूलों से निकलकर केवल कम वेतन वाली नौकरियों के लिए तैयार हो रहे हैं। यह विभाजन भविष्य में एक बड़े सामाजिक असंतोष का कारण बन सकता है।

जब एक ग्रामीण युवा देखता है कि उसकी कड़ी मेहनत के बावजूद एक शहरी छात्र केवल अपनी आर्थिक स्थिति के कारण उससे आगे निकल गया है, तो यह 'लोकतांत्रिक समानता' के विचार पर प्रहार करता है। शिक्षा, जिसे वर्ग भेद मिटाने का औजार होना चाहिए था, आज वर्ग भेद को और अधिक सुदृढ़ करने का माध्यम बनती जा रही है।[3]

प्रस्तावना के रूप में यह समझना आवश्यक है कि शिक्षा का बाजारीकरण केवल निजी स्कूलों के खुलने का नाम नहीं है, बल्कि यह शिक्षा के प्रति हमारी सामूहिक सोच के पतन का संकेत है। ग्रामीण और शहरी भारत के बीच बढ़ती यह खाई केवल पुलों या सड़कों से नहीं भरी जा सकती; इसके लिए 'समान शिक्षा प्रणाली' और डिजिटल न्याय की आवश्यकता है। बाजार को लाभ कमाने की अनुमति दी जा सकती है, लेकिन जब यह लाभ एक गरीब ग्रामीण बच्चे के भविष्य की कीमत पर हो, तो राज्य के हस्तक्षेप की भूमिका अनिवार्य हो जाती है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. शिक्षा के वाणिज्यिकरण के स्वरूप का विश्लेषण करना।
2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के मध्य संसाधनों की विषमता का मूल्यांकन करना।
3. आर्थिक अवरोधों एवं अवसरों की समानता की जाँच करना।
4. समावेशी शिक्षा हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन का महत्व

इस शोध कार्य का महत्व केवल शैक्षणिक विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समकालीन भारत की उन संरचनात्मक चुनौतियों को समझने का एक प्रयास है जो भविष्य की पीढ़ी को प्रभावित कर रही हैं। इसके महत्व को निम्नलिखित बिंदुओं में समझा जा सकता है:

सामाजिक न्याय और समानता का आधार: यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि कैसे शिक्षा का बढ़ता मूल्य 'अवसरों की समानता' के लोकतांत्रिक विचार को कमजोर कर रहा है। यह समाज को यह समझने में मदद करता है कि जब शिक्षा एक बाजार बन जाती है, तो समाज का सबसे पिछड़ा वर्ग-विशेषकर ग्रामीण आबादी-स्वचालित रूप से विकास की मुख्यधारा से कटने लगती है। यह शोध सामाजिक समानता के पैरोकारों और विचारकों के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

नीतिगत सुधारों हेतु मार्गदर्शिका: वर्तमान में सरकार द्वारा 'नई शिक्षा नीति (NEP)' को लागू किया जा रहा है। ऐसे में यह शोध उन धरातलीय बाधाओं को उजागर करता है जो डिजिटल डिवाइड और बुनियादी ढांचे के अभाव के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में नीतिगत लक्ष्यों को प्राप्त करने से रोक रही हैं। यह नीति-निर्माताओं को यह संकेत देता है कि केवल तकनीक लाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसकी सुलभता सुनिश्चित करना भी उतना ही अनिवार्य है।

बाजारीकरण के मनोवैज्ञानिक और आर्थिक प्रभाव का विश्लेषण: यह अध्ययन उन परिवारों के लिए प्रासंगिक है जो शिक्षा के बढ़ते खर्चों के कारण वित्तीय संकट या ऋण के जाल में फंस रहे हैं। यह शोध यह स्पष्ट करता है कि कैसे शिक्षा का व्यापारिक मॉडल छात्रों के बीच 'प्रतिस्पर्धा' को 'तनाव' में बदल रहा है। यह समाज के सामने यह बड़ा सवाल खड़ा करता है कि क्या शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी के लिए 'कौशल बेचना' है या वास्तव में ज्ञान का सृजन करना है।[4]

भविष्य के शोध हेतु संदर्भ: यह पत्र समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र और शिक्षाशास्त्र के शोधकर्ताओं के लिए एक प्राथमिक आधार प्रदान करता है। यह ग्रामीण-शहरी असंतुलन के नए आयामों, जैसे-एड-टेक का प्रभाव और कोचिंग इंडस्ट्री का एकाधिकार-पर विस्तृत चर्चा करने के लिए भविष्य के शैक्षणिक कार्यों को प्रेरित करता है।

साहित्य की समीक्षा

अमर्त्य सेन : नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन ने अपनी विभिन्न कृतियों में शिक्षा को 'मानवीय क्षमता' के विकास का मुख्य साधन माना है। उनका तर्क है कि भारत में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में सरकारी निवेश की कमी ने निजी क्षेत्र को अनियंत्रित विस्तार का मौका दिया है। सेन के अनुसार, जब शिक्षा का बाजारीकरण होता है, तो यह केवल उन्हीं कौशलों पर ध्यान केंद्रित करती है जिनकी बाजार में मांग है, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों की बुनियादी शैक्षिक आवश्यकताएं उपेक्षित रह जाती हैं। यह स्थिति श्क्षमता की असमानताश पैदा करती है, जहाँ ग्रामीण बच्चा अपनी प्रतिभा के बावजूद पिछड़ जाता है।[5]

कृष्ण कुमार : भारत के प्रमुख शिक्षाविद् और एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक कृष्ण कुमार ने अपनी पुस्तक "What is Worth Teaching?'' में शिक्षा के बाजारीकरण पर तीखा प्रहार किया है। उनका मानना है कि बाजारीकरण ने शिक्षा को एक 'प्रतिस्पर्धी वस्तु' बना दिया है। कुमार के अनुसार, ग्रामीण-शहरी विभाजन केवल भौतिक नहीं है, बल्कि यह 'औपनिवेशिक विरासत' का विस्तार है।[6] वे तर्क देते हैं कि निजी स्कूल एक ऐसा विशिष्ट वर्ग तैयार कर रहे हैं जो अपनी संस्कृति और जड़ों से कटा हुआ है, जबकि ग्रामीण स्कूल संसाधनों के अभाव में हाशिए पर धकेले जा रहे हैं।

ज्यां द्रेज : विकासवादी अर्थशास्त्री ज्यां द्रेज ने भारतीय शिक्षा व्यवस्था में 'दोहरी प्रणाली' के उभरते खतरों की चेतावनी दी है। उनके शोध बताते हैं कि शिक्षा के निजीकरण ने सामाजिक स्तरीकरण को गहरा किया है। द्रेज का तर्क है कि निजी संस्थान केवल उन क्षेत्रों में निवेश करते हैं जहाँ लाभ की संभावना अधिक होती है (जैसे बड़े शहर), जिससे ग्रामीण अंचल 'शैक्षणिक मरुस्थल' बन जाते हैं। वे शिक्षा को 'बाजार' के बजाय 'सार्वजनिक अधिकार' के रूप में देखने पर बल देते हैं।[7]

पियरे बोर्दियू : फ्रांसीसी समाजशास्त्री पियरे बोर्दियू का सिद्धांत इस विषय को वैश्विक संदर्भ प्रदान करता है। उन्होंने श्सांस्कृतिक पूंजीश की अवधारणा दी। बोर्दियू के अनुसार, शिक्षा व्यवस्था निष्पक्ष नहीं होती; यह उच्च वर्ग (शहरी और समृद्ध) की संस्कृति और भाषा को प्राथमिकता देती है। बाजारीकरण के दौर में, स्कूल और विश्वविद्यालय उन प्रतीकों और कौशलों को बेचते हैं जो पहले से ही शहरी अभिजात वर्ग के पास होते हैं। परिणामस्वरुप, ग्रामीण पृष्ठभूमि के छात्र अपनी मेहनत के बावजूद उस 'सांस्कृतिक पूंजी' की कमी के कारण पिछड़ जाते हैं जो बाजार में सफलता के लिए अनिवार्य मान ली गई है।[8]

शोध की पद्धति एवं प्रक्रिया

- शोध का प्रकार: यह अध्ययन मुख्य रूप से गुणात्मक और वर्णनात्मक प्रकृति का है। इसमें सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण करने के लिए उपलब्ध सिद्धांतों और तथ्यों का सहारा लिया गया है।
- प्रदत्त संग्रह: इस शोध के लिए द्वितीयक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। जानकारी के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं:
  - सरकारी रिपोर्ट (जैसे- वार्षिक शिक्षा स्थिति रिपोर्ट - ASER, और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण - NSSO)।
  - विभिन्न शिक्षाविदों के शोध लेख और पुस्तकें।
  - राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के दस्तावेज।
  - विश्वसनीय समाचार पत्रों और शैक्षणिक पत्रिकाओं (Journals) के लेख।
- अध्ययन का क्षेत्र: शोध का केंद्र बिंदु भारत के ग्रामीण परिवेश बनाम शहरी महानगरीय क्षेत्र हैं, जहाँ शिक्षा के निजीकरण और बाजारीकरण के प्रभाव सबसे अधिक स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।
- विश्लेषण की विधि: एकत्रित जानकारी का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। इसमें शहरी छात्रों को मिलने वाली डिजिटल सुविधाओं और ग्रामीण छात्रों के बुनियादी संघर्षों के बीच के अंतर को तार्किक रूप से परखा गया है।

विश्लेषण और चर्चा

बाजारीकरण का उदय और सामाजिक विषमता: शिक्षा के बाजारीकरण ने भारतीय समाज में एक नए प्रकार के श्उपभोक्तावादश को जन्म दिया है। जब निजी संस्थाएं भारी निवेश के साथ बाजार में आती हैं, तो उनका प्राथमिक लक्ष्य शैक्षणिक उत्कृष्टता के बजाय वित्तीय लाभ होता है। शहरों में केंद्रित ये संस्थान आकर्षक बुनियादी ढांचा और विदेशी पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं, जिससे समाज का समृद्ध वर्ग आकर्षित होता है। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों में निजी निवेश की कमी है क्योंकि वहां लाभ की संभावनाएं सीमित हैं। परिणामस्वरूप, ग्रामीण छात्र उन सरकारी संस्थानों पर निर्भर रहने को मजबूर हैं जो अक्सर बाजार की बदलती मांगों (जैसे संचार कौशल या तकनीकी ज्ञान) के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ होते हैं।

डिजिटल डिवाइड और ग्रामीण अलगाव: तकनीक ने शिक्षा के बाजारीकरण को नई गति दी है, लेकिन इसने ग्रामीण-शहरी विभाजन को और अधिक जटिल बना दिया है। शहरी क्षेत्रों में श्स्मार्ट शिक्षाश और 'एआई-आधारित लर्निंग' आम होती जा रही है, जबकि ग्रामीण भारत आज भी बिजली की निरंतरता और हाई-स्पीड इंटरनेट जैसी मूलभूत समस्याओं से जूझ रहा है। यह डिजिटल अंतराल केवल गैजेट्स की कमी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह श्सूचना की पहुंचश का अंतराल है। एक शहरी छात्र के पास वैश्विक संसाधनों तक पहुँच है, जबकि एक ग्रामीण छात्र अभी भी पारंपरिक और सीमित शिक्षण सामग्री पर निर्भर है, जो उसे वैश्विक प्रतिस्पर्धा में पीछे धकेल देता है।

कोचिंग संस्कृति और मेधा का विस्थापन: शिक्षा के बाजारीकरण का एक प्रमुख अंग श्कोचिंग माफियाश है, जिसका प्रभाव ग्रामीण मेधावी छात्रों पर विनाशकारी रहा है। मेडिकल, इंजीनियरिंग और सिविल सेवाओं की प्रतिष्ठित परीक्षाओं की तैयारी अब केवल शहरों के महंगे कोचिंग हब तक सीमित हो

गई है। ग्रामीण परिवार अपनी जीवनभर की पूंजी लगाकर बच्चों को इन शहरों में भेजते हैं, जहाँ उन्हें न केवल वित्तीय दबाव बल्कि एक अलग सांस्कृतिक और भाषाई परिवेश का सामना करना पड़ता है। जो छात्र यह खर्च वहन नहीं कर सकते, वे अपनी स्वाभाविक प्रतिभा के बावजूद इस 'व्यवसायीकृत प्रतियोगिता' में पिछड़ जाते हैं, जिससे ग्रामीण भारत से होने वाला बौद्धिक पलायन और तीव्र हो गया है।

नीतिगत विसंगतियाँ और सार्वजनिक व्यय: सरकारी नीतियों ने अनजाने में बाजारीकरण को बढ़ावा दिया है। सार्वजनिक शिक्षा बजट में कटौती या धीमी वृद्धि ने निजी क्षेत्र के लिए खाली जगह छोड़ दी है। 'सबके लिए शिक्षा' का नारा कागजों पर तो प्रभावशाली है, लेकिन धरातल पर निजी संस्थानों की बेलगाम फीस और सरकारी स्कूलों की गिरती गुणवत्ता ने एक ऐसी व्यवस्था बना दी है जहाँ गुणवत्ता केवल श्खरीदीश जा सकती है। जब तक राज्य शिक्षा को 'सार्वजनिक सेवा' के बजाय निजी उत्तरदायित्व के रूप में देखना बंद नहीं करेगा, तब तक ग्रामीण-शहरी यह विभाजन केवल एक भौगोलिक अंतर न रहकर एक स्थायी सामाजिक वर्ग-भेद में तब्दील होता रहेगा।

निष्कर्ष

इस शोध का मुख्य निष्कर्ष यह है कि शिक्षा का बाजारीकरण केवल शैक्षणिक संस्थानों की संख्या में वृद्धि नहीं है, बल्कि यह समाज के भीतर एक अदृश्य दीवार खड़ी करने की प्रक्रिया है। बाजारीकरण ने 'ज्ञान' को 'क्रय शक्ति' से जोड़ दिया है, जिसके कारण ग्रामीण छात्र, जिनके पास मेधा तो है पर मुद्रा नहीं, पिछड़ते जा रहे हैं। ग्रामीण-शहरी विभाजन अब केवल दूरी का मामला नहीं रह गया है, बल्कि यह अवसरों और संसाधनों का एक गहरा वर्ग-भेद बन चुका है। यदि शिक्षा का उद्देश्य केवल लाभ कमाना रह गया, तो यह सामाजिक गतिशीलता का साधन बनने के बजाय सामाजिक असमानता को स्थायी बनाने का औजार बन जाएगी।

सार्वजनिक शिक्षा तंत्र का सुदृढ़ीकरण: ग्रामीण-शहरी खाई को पाटने का प्राथमिक समाधान सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता में क्रांतिकारी सुधार करना है। सरकार को जीडीपी का एक बड़ा हिस्सा शिक्षा पर खर्च करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में 'मॉडल स्कूल' और 'डिजिटल लाइब्रेरी' विकसित करनी चाहिए। जब तक सरकारी स्कूलों का स्तर निजी संस्थानों के बराबर नहीं होगा, तब तक ग्रामीण छात्र प्रतिस्पर्धा में बराबरी नहीं कर पाएंगे। इसके लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण और उनकी ग्रामीण क्षेत्रों में नियुक्ति को अनिवार्य व आकर्षक बनाना आवश्यक है।

निजी क्षेत्र का प्रभावी नियमन: शिक्षा को पूरी तरह बाजार के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। सरकार को एक सख्त 'नियामक ढांचा' तैयार करना चाहिए जो निजी संस्थानों की फीस संरचना और प्रवेश प्रक्रिया की निगरानी करे। शिक्षा के 'मुनाफाखोरी' मॉडल को सीमित कर उसे 'नो-प्रॉफिट-नो-लॉस' के सिद्धांत पर वापस लाने की आवश्यकता है। साथ ही, निजी संस्थानों के लिए यह अनिवार्य किया जाना चाहिए कि वे ग्रामीण और वंचित वर्ग के छात्रों के लिए विशेष छात्रवृत्ति और कोटा सुनिश्चित करें, ताकि संसाधनों का लाभ केवल शहर तक सीमित न रहे।

डिजिटल न्याय और भविष्य की राह: डिजिटल डिवाइड को समाप्त करना आज के समय की सबसे बड़ी जरूरत है। 'डिजिटल इंडिया' अभियान को गांवों के स्कूलों तक पूरी ताकत से पहुँचाना होगा ताकि एक ग्रामीण छात्र भी वैश्विक ज्ञान के भंडार से जुड़ सके। अंततः, शिक्षा को बाजार की वस्तु मानने के बजाय इसे एक 'बुनियादी मानवाधिकार' के रूप में पुनः स्थापित करना होगा। केवल एक समावेशी और न्यायसंगत शिक्षा प्रणाली ही भारत के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच के इस असंतुलन को समाप्त कर एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार, कृष्ण (2004). What is Worth Teaching? (तीसरा संस्करण). ओरिएंट ब्लैकस्वान। (भारतीय शिक्षा व्यवस्था और बाजारीकरण के सामाजिक प्रभाव पर केंद्रित)।
2. सेन, अमर्त्य और द्रेज, ज्यां (2013). An Uncertain Glory: India and its Contradiction. प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस। (शिक्षा में सार्वजनिक निवेश और असमानता का विश्लेषण)।
3. बोर्दियू, पियरे (1977). Reproduction in Education, Society and Culture. सेज पब्लिकेशंस। (सांस्कृतिक पूंजी और शैक्षणिक विषमता के सिद्धांत हेतु)।
4. शिक्षा मंत्रालय (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (National Education Policy 2020). भारत सरकार।
5. प्रथम फाउंडेशन (2023). Annual Status of Education Report (ASER) 2022-23. (ग्रामीण भारत में सीखने के स्तर और संसाधनों पर वार्षिक डेटा)।
6. NSSO (2019). Key Indicators of Household Social Consumption on Education in India. सांख्यिकी और कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार।
7. मजूमदार, मंजुश्री (2018). "Marketization of Higher Education in India"- Journal of Educational Planning and Administration.
8. तिलक, जे. बी. जी. (2006). "Public&Private Partnership in Education"- Economic and Political Weekly. (पीपीपी मॉडल और बाजारीकरण की आलोचनात्मक समीक्षा)।

समकालीन कवयित्रियों की रचनाओं में स्त्री-विमर्श

नंदनी देवांगन

शोधार्थी

डॉ० राजकुमार पाण्डेय

विभागाध्यक्ष, हिन्दी, संत गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरूद, जिला-धमतरी (छ.ग.)

शोर्ध-सार : समकालीन साहित्य से अभिप्राय वर्तमान समय की परिस्थितियों, उनकी समस्याओं, आकांक्षाओं एवं संघर्षों को रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करना है। समकालीन साहित्यकार अपने समय का स्वयं साक्षी होता है, जो चली आ रही लेखन परंपराओं और आधुनिकताओं के बीच संवाद स्थापित करने में मुख्य भूमिका निभाता है। स्त्री-जीवन पर लिखने की प्राचीन परंपरा रही है, किन्तु समकालीन महिला कवयित्रियों प्रभा खेतान, निर्मला गर्ग, तेजी ग्रोवर, गगन गिल, कात्यायनी, जया जादवानी, अनीता वर्मा, अनामिका, प्रज्ञा रावत, सविता सिंह, निलेश रघुवंशी, निर्मला पुतुल आदि ने स्त्री-विमर्श के रूप में एक वैचारिक आन्दोलन प्रारंभ किया और यह उनका प्रिय विषय भी रहा है। समकालीन स्त्री-लेखन ने स्त्री-विमर्श को प्रगतिवादी युग से विस्तारित कर आधुनिक संदर्भ दिया है। वर्तमान धारा में हिन्दी साहित्य के समकालीन कवयित्रियों ने अपने काव्य के माध्यम से स्त्री-चेतना को केंद्रित कर अस्तित्व में लाया है। आधुनिक समय में स्त्री-विमर्श के बढ़ते स्वरूप ने सामाजिक और राजनीतिक स्तर को मजबूत किया है, किन्तु आत्मनिर्भर होने के बावजूद आज भी स्त्रियों को अपने ही घर में निर्णय लेने का अधिकार नहीं दिया जाता। स्त्रियाँ कुछ अधिकारों के लिए बहस तो करती हैं, लेकिन आज भी वे अपने आप को भावनात्मक रूप से कमजोर पाती हैं। स्त्री पर होने वाले अत्याचार, उसकी पीड़ा तथा उसके विद्रोह को स्वर देते हुए समकालीन कवयित्रियों ने स्त्री-विमर्श को एक नया आयाम प्रदान किया है।

बीज शब्द : समकालीन कवयित्री, स्त्री-विमर्श, स्त्री-अस्मिता, लैंगिक समानता, पितृसत्ता, सामाजिक संघर्ष, अस्मिता, अस्तित्व, मानसिक संघर्ष।

समकालीन के समय को सरल शब्दों में समझने के लिए चार चरणों में विभाजित किया जा सकता है। प्रारंभिक चरण 1950 से 1970 में प्रमुख लेखिकाओं अमृता प्रीतम, कृष्णा सोबती जैसे साहित्यकारों ने अपने साहित्यों के माध्यम से स्त्री विमर्श की नींव को समकालीन साहित्य में केंद्रित किया। द्वितीय चरण 1970 से 1990 में प्रमुख स्त्री लेखिकाओं मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान ने अपने साहित्य में पितृसत्ता का विरोध किया। शहरी स्त्री-जीवन एवं यौनिकता पर आधारित रचनाएँ ऐसे प्रश्न करती हैं जो स्त्री के अधिकारों एवं आकांक्षाओं को उजागर करती हैं। इस चरण में स्त्री-विमर्श अधिक विकसित हुआ। तृतीय चरण 1990 से 2010 में स्त्री-विमर्श को अधिक विस्तृत रूप में देखा जा सकता है। उनमें प्रमुख कवयित्रियों नासिरा शर्मा, अनामिका ने अपने काव्यों में पितृसत्ता का खुलकर विरोध किया है। उनके काव्यों में स्त्री के व्यक्तिगत संघर्ष एवं उनकी संवेदनाओं और पीड़ाओं को मूल रूप से उजागर किया गया है। नारीवाद ने सामाजिक एवं राजनीतिक अन्याय के खिलाफ स्वतंत्रता की माँग उठायी है तथा मुस्लिम स्त्रियों का संघर्ष, धार्मिक बंधनों एवं सामाजिक कुरीतियों के विरोध में वास्तविकता पर विशेष बल दिया है। चतुर्थ चरण 2010 से अब तक में नई पीढ़ी के प्रमुख लेखिकाओं गगन गिल, प्रज्ञा रावत, सविता सिंह, मनीषा कुलश्रेष्ठ, निलेश रघुवंशी, निर्मला पुतुल, अमृता भारती के स्त्री-विमर्श आधारित समकालीन स्वर नये संदर्भ में देखने को मिलते हैं। उनकी रचनाओं में स्त्री की स्वतंत्रता, स्त्री के आत्मसंघर्ष, सामाजिक बंधनों एवं समानता, स्त्री संबंधों की जटिलताओं एवं स्त्री के मनोवैज्ञानिक संघर्षों की व्याख्या की गई है। इस समय डिजिटल युग की समस्याएँ और लैंगिक समानताओं के नए विमर्श को चर्चा का मुख्य विषय बनाया गया तथा समाज को अपनी स्वायत्तता का संदेश दिया है।

स्त्री-चिंतन एवं नारी-अस्मिता की सशक्त प्रवक्ता, लेखिका प्रभा खेतान हिन्दी साहित्य में एक समाजसेवी, कथाकार एवं अनुवादक के रूप में सामने आती हैं। प्रभा खेतान पहले कथाकार हैं, कवयित्री बाद में। प्रभा खेतान का मानना है कि स्त्री के शोषण का मुख्य कारण आर्थिक रूप से कमजोर होना है। वे कहती हैं कि स्त्री कितनी ही शिक्षित क्यों न हो, आत्मनिर्भर होने के बाद भी वह दमित, कुंठित, बेबस और शोषण का शिकार हर स्तर और हर जगह पर है। एक स्त्री अपने पूरे जीवन में अपनी मेहनत और लगन से अपने परिवार को सँवारती है। यही मेहनत यदि अपने के लिए करे तो आसमान की ऊँचाइयों तक को छू लेगी। वे कहती हैं कि औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित होती है- "आर्थिक स्वतंत्रता मेरी पहली जरूरत है।"[1] यह हर स्त्री के लिए महत्वपूर्ण संदेश है।

वे अपने उपन्यास 'आओ पेपे घर चलें' में स्त्री जीवन के अकेलेपन की मार्मिक स्थिति को बयां करती हैं। वे अपने अनुभव में पाती हैं कि केवल भारत देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी स्त्रियाँ आर्थिक रूप से संपन्न होने के बावजूद अकेलेपन का जीवन व्यतीत करती हैं। यह उपन्यास अमेरिका की स्त्रियों के जीवन पर आधारित है। उनका सबसे प्रसिद्ध उपन्यास 'छिन्नमस्ता' स्त्री के उत्पीड़न, उनके अस्तित्व और अस्मिता को तलाश करते हुए दिखायी देता है। 'पीली आँधी' में आधुनिक समाज की स्त्रियों का चित्रण किया गया है। इसमें एक मारवाड़ी समाज में शोषण, अन्याय, अत्याचार और संघर्ष को दर्शाया गया है। उनकी कविता 'अहल्या' मिथक आधारित कविता है। वे इस कविता के माध्यम से ऋषि गौतम की पत्नी अहल्या की दयनीय स्थिति को प्रस्तुत करती हैं। इस पर प्रभा खेतान का वक्तव्य है- "सदियों से ही स्त्रियाँ अहल्या का प्रतिनिधित्व करते आई हैं, स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं हो पाई है, सदैव पुरुषों के द्वारा

छली जाती है।" वे स्त्रियों से कहती हैं कि तुम्हें अपनी स्वतंत्रता, पहचान के लिए किसी राम रूपि पुरुष की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, बल्कि स्वयं ही अपना रास्ता तय करना होगा–

"लौट आओ
पथरीली गहराइयों से
निकल आओ
समाधि के अँधेरे से
आवाज दो पत्थर हुई आत्मा को।"[2]

प्रभा खेतान स्त्री को अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की पहचान के लिए स्वयं युद्धभूमि में उतरने का संदेश देती हैं। स्त्रियों के लिए बनाई गई संस्कृति के मायने एवं पक्षपात के विरुद्ध सवाल करते हुए कहती हैंख़ "क्या वजह है कि संस्कृति हमेशा उत्पीड़ित स्त्री को विनम्र बने रहने, क्षमा करने व अहिंसा पर चलने का उपदेश देती है। आखिर क्यों मानवीय मूल्यों का प्रतीक स्त्री ही बनी रहती है? संस्कृति स्त्री के नारी-गुणों पर बल देती है और घुमा-फिराकर पुरानी पितृसत्तात्मक मान्यताओं को ही स्थापित करती है।"[3] स्त्री-जीवन की यातना एवं पीड़ा का मूल कारण पितृसत्ता एवं उनके द्वारा बनाए गए नियम है। जन्म से ही लड़कियों को गौण माना जाता है। उनके लिए दोयम दर्जे की मानसिकता पुरुष प्रधान समाज से उपजी हुई विचारधारा है। कन्या भ्रूण हत्या से लेकर, यौन शोषण एवं शारीरिक प्रताड़ना द्वारा स्त्री मानसिक रूप से शिकार होती आई है। वे अंदर ही अंदर यातनाओं को सहन करने के लिए विवश हो जाती हैं। इस प्रकार का हिंसक व्यवहार को गगन गिल अपने काव्य की पंक्तियों में प्रस्तुत करती हैं–

"उसने उससे कहा
मुझे तुम्हारी आत्मा चाहिए

वह उसे बाजू से पकड़कर
एक सुनसान मैदान में ले गया
जहाँ एक बिना सिर का
चौपाया खड़ा था
उसने उससे कहा
आत्मा नहीं
मुझे तुम्हारा मन चाहिए
वह उसे घसीटता हुआ
एक घने जंगल में ले गया
जहाँ एक भयंकर अजगर
मुँह खोले बैठा था" [4]

प्रस्तुत पंक्तियों में पितृसत्ता की उस मानसिकता को सामने लाया गया है जहाँ स्त्री को मनुष्य के रूप में स्वीकार न कर पुरुष उस पर वर्चस्व चाहता है। स्त्रियों को समाज में वस्तु या संपत्ति के रूप में ही देखा गया है। स्त्री का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। पुरुष द्वारा स्त्री के आत्मा एवं मन पर बलपूर्वक नियंत्रण तथा उसके सम्पूर्ण अस्तित्व पर अधिकार की मानसिकता को गगन गिल अपने काव्य में प्रस्तुत करती हैं। अधिकार की यह प्रवृत्ति प्रेम या स्नेह को नहीं, बल्कि स्वामित्व को दर्शाती है। कविता का केन्द्रीय भाव यह है कि जब तक स्त्री की स्वतंत्रता का सम्मान नहीं होगा, तब तक संबंध आत्मिक नहीं होगा। अधिकार का भाव आत्मिक संबंध को नहीं, संघर्ष को जन्म देता है। ऐसा संघर्ष दोनों पक्षों के विनाश का कारण बन सकता है। कहने को तो एक सुखी परिवार की बहुत मिसालें दी जाती हैं तथा सामाजिक दृष्टि से यह आवश्यक माना जाता है, किन्तु उसी परिवार की स्त्री के साथ भेदभाव किया जाता है। स्त्री अलगाव महसूस करने को विवश हो जाती है। इस पर कात्यायनी प्रत्यक्ष संवाद करते हुए अपने काव्य-संग्रह 'देह न होना' में लिखती हैंख़

"देह नहीं होती है एक दिन स्त्री
और उलट-पुलट जाती है
सारी दुनिया अचानक।" [5]

वर्तमान समय में स्त्रियाँ बहुत अच्छे से समझ चुकी हैं कि उन्हें आत्मनिर्भर होना क्यों आवश्यक है। स्त्री जीवन में आगे बढ़ना चाहती है और वह अब पीछे नहीं हटना चाहती। यह संघर्ष उसके जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। उनके बढ़ते कदम स्पष्ट दिखायी देते हैं, जब कवयित्री कहती हैंख़ "मौत की दया पर जीने से बेहतर है, जिंदा रहने की ख्वाहिशों के हाथों मारा जाना।"[6] स्त्रियों का शोषण किस हद तक किया जाता है, इसे कात्यायनी बहुत ही मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करती हैं। स्त्रियों का शोषण बाजारवाद के रूप में भी दिखायी देता है। स्त्रियों को यश प्राप्ति एवं धन के लालच में बाजारवाद के दल-दल में धकेल दिया जाता है। तरह-तरह के विज्ञापनों में स्त्रियों का ही अंगप्रदर्शन किया जाता है। इस पर कवयित्री अनीता वर्मा गहरी चिंतन करते हुए प्रश्न करती हैं–

"खरीदनी है अगर दवा तो देखो स्त्री को
दर्द से ज्यादा असरदार है उसकी कमर
तेल से ज्यादा सुंदर हैं केश, कपड़ों से ज्यादा देह,
देखो चमकीली आँखें चिकनी त्वचा
काली करो कल्पना अगर खरीदनी हो गजल
शुक्र करो की खूबसूरत मांएँ बच्चे नहीं बेचतीं।" [7]

वे बाजारवाद का चेहरा सामने लाती हुई इस खोखले और दिशा विहीन जीवन मूल्यों पर अपनी संवेदनाएँ प्रकट करती हैं। बाजारवाद पर तीखा प्रहार करती हुई हैं- "कुछ दिनों बाद शायद बनाए जाएँ विज्ञापन, खरीदिए एक पूरा आदमी भाव, प्रेम और संवेदना से भरपूर"[8] इस प्रकार सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर कवयित्री अपनी बात प्रस्तुत करती हैं। समाज द्वारा शोषित स्त्रियाँ जीवन की विसंगतियों को नियति मानकर स्वीकार कर लेती हैं। इस पर अनामिका स्त्री-पीड़ा के भाव को अपनी कविता 'दरवाजा' के माध्यम से प्रस्तुत करती हैं -

"मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया, मैं उतनी खुलती गयी
अंदर आये आने वाले तो देखा
चल रहा है एक वृहत्चक्र [9]"

लंबे समय से स्त्री, पुरुषों द्वारा दुर्व्यवहार को सहते आ रही है। वह पुरुषसत्ता के प्रति क्रोध व्यक्त करते हुए अपने स्वाभिमान के लिए प्रतिरोध करती है। अपने काव्य के माध्यम से समाज में स्त्री की दुर्दशा पर चिंतन करते हुए निर्मला गर्ग कहती हैं--

"यह औरत कुछ नहीं माँग रही
न आँगन न एक थान गहना
न गट्ठा-हितोपदेश
बस उदास होने का हक माँग रही है" [10]

स्त्री की आत्मनिर्भरता स्त्री की पहली प्राथमिकता होनी चाहिए तभी स्त्री-विमर्श सार्थक होगा। एक सक्षम नारी अपना अपमान, शोषण और दुर्व्यवहार को सहन नहीं कर सकती, इसलिए स्वावलंबन उसके लिए आवश्यक है। स्त्री का सशक्त होना उतना ही आवश्यक है जितना कि आत्मनिर्भर होना। वे अपना विकास तभी कर पाएँगी जब वे जागरूक होंगी। कवयित्री सविता सिंह सामाजिक जकड़न से मुक्ति पाने के लिए लालायित स्त्रियों की व्याख्या अपनी पंक्तियों के माध्यम से करती हैंख्

"सोचकर बहुत मैंने कहा उससे
मैं किसी की औरत नहीं हूँ
मैं अपनी औरत हूँ अपना खाती हूँ
जब जी चाहता है तब खाती हूँ
मैं किसी की मार नहीं सहती
और मेरा परमेश्वर कोई नहीं।" [11]

कवयित्री स्त्रियों के द्वारा सहन करने वाली पीड़ा को मार्मिक रूप से प्रस्तुत करती हैं।

स्त्री के भीतर चलने वाले अंतर्द्वन्द्व, सामाजिक विडंबनाओं और आंतरिक संघर्ष से घिरी स्त्री को अपनी रचनाओं के माध्यम से उल्लेख करते हुए नीलेश रघुवंशी अपनी कविता 'जन्म और यातना' में लिखती हैं-

"कितना आसान है कहना--जन्म देना सृष्टि का सबसे सुखद कार्य है
लेकिन कितना मुश्किल है जन्म देना
यह पीड़ा, यह कष्ट तुम क्या जानो
वैसे भी अगर तुम लड़का हुए तो नहीं जान पाओगे कभी भी
और लड़की हुए तो कैसे सहोगे इतना कष्ट?
अब तो जैसे नसें फटने लगी हैं आजकल
पीड़ा ही पीड़ा है अभी तो, जाने कब सुख मिलेगा
सब कुछ तुम्हारे हिसाब से चल रहा है।" [12]

पूर्व की अपेक्षा स्त्रियों का वर्तमान स्वरूप अधिक समृद्ध है। अब वे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने में तनिक भी देर नहीं करतीं। अब स्त्रियों का सशक्तिकरण सही मायनों में सार्थक प्रतीक हो रहा है, किन्तु आज भी स्त्रियाँ पूर्ण रूप से स्वतंत्र नहीं हैं। वर्तमान में स्त्री बिना डर एवं भय के अपने आत्मसम्मान को बचाए रखने का ऐलान करती है। इस पर निर्मला पुतुल अपने पंक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए कहती हैं--

"एहसान माने उनका जी-हुजूरी करें
हाँ में हाँ मिलाएँ सिर्फ
बिछ जाएँ जब-तब उनके इशारे पर उनकी खातिर
तो नहीं चाहिए हमें उनका एहसान
उठा ले जाएँ वे अपनी व्यवस्था
ऐसा विकास नहीं चाहिए हमें
नहीं चाहिए ऐसा बदलाव नहीं चाहिए।" [13]

पुरुष स्त्रियों को सुरक्षित रखने के लिए इतनी सारी बंदिशें लगाता है। स्त्रियों को खतरा भी उन्हीं से है, जो उसके लिए सुरक्षा का दावा करता है। इस पर सिमोन बाउवॉर अपनी किताब 'द सेकंड सेक्स' में कहती हैं "पुरुष मूल्यों की बराबरी में या उनके समकक्ष औरत ने कभी भी स्त्री मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा नहीं की : ये पुरुष हैं जिन्होंने विशेषाधिकारों को बनाए रखने की चाह में इस विभाजन को गढ़ा है : पुरुष ने औरत के लिए एक दुनिया बनाने का दावा कियाख्र इस दुनिया में जीवन के, स्थिरता के कुछ नियम थेख्र ताकि औरत हमेशा के लिए उसमें कैद होकर रह जाये; लेकिन कोई भी अस्तित्व अपने उत्थान की गति में अपने औचित्य की तलाश करता है, चाहे उनकी यौन विशिष्टता कुछ भी हो : स्त्रियों का समर्पण इस बात का प्रमाण है। आज वे सिर्फ इस बात की माँग कर रहीं है कि उन्हें पुरुषों के समान ही अस्तित्व के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए और जीवन अस्तित्व के प्रति समर्पित न हो, न ही पुरुष अपनी पशुता के वश में रहे।"[14]

आधुनिक जीवन शैली ने भारतीय मूल्यों में ऐसे बीज बो दिया है, जिसकी जड़ें समाज में दुष्प्रभाव का कारण बनते जा रही हैं। पाश्चात्य संस्कृति युवा पीढ़ी को एक ऐसे दलदल में ले जा रही है जो हमारी संस्कृति के लिए ह्रास के द्वार खोल रही है। इससे जुड़ी हुई बहुत सारी समस्याएँ समाज एवं परिवारों को झेलनी पड़ रही है। वर्तमान में सच और झूठ से बेखबर युवा पीढ़ी बिना कोई समझ के अपने तौर-तरीके से जीवन जी रहे हैं। कवयित्री प्रज्ञा रावत 'लड़कियाँ' कविता में इस दृश्य को पंक्तिबद्ध करती ह-

"एक रात घर वापस नहीं लौटेंगी सिर्फ लड़कियाँ
शाम की रंगीनियों में खोई हुई
रात के नशे में झूमती
सड़कों पर होंगी सिर्फ लडकियाँ। [15]"

निष्कर्षतः समकालीन कवयित्रियाँ कृष्णा सोबती, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान, गगन गिल, नासिरा शर्मा तथा अन्य लेखिकाओं ने अपने कलम के माध्यम से स्त्री-विमर्श को ऊँचाई पर पहुँचा दिया। उभरती हुई अन्य कवयित्री एवं लेखिकाएँ अभी भी प्रयासरत है। इतने वर्षों के स्त्री-संघर्षो के परिणामस्वरूप स्त्री-विमर्श के अनेक प्रकार के मुद्दों पर संवाद आज भी जारी है। इस प्रकार समकालीन कवयित्रियों ने अपने काव्य के माध्यम से स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार एवं अन्याय का प्रतिरोध करते हुए स्त्री-विमर्श को बुलंदियों तक पहुँचाने का कार्य किया है। वे आज भी अपने अधिकारों को लेकर संघर्षरत हैं। कंप्यूटर एवं मोबाइल के विभिन्न संस्करण वर्तमान में देखने को मिलते हैं। इसने पूरे विश्व को एक-दूसरे के साथ जोड़ रखा है। कुछ स्त्रियाँ अपने साथ होने वाले अत्याचारों को सोशल मीडिया में खुलकर साझा कर रही हैं। स्त्रियों के भीतर जागरूकता, आत्मविश्वास और साहस पैदा हुआ है। वे अपने साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने में सक्षम हुई हैं। इस प्रकार साहित्यिक चेतना ने स्त्री-विमर्श को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ

1 खेतान, प्रभा. अन्या से अनन्या; नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2007. पृ. 156.
2 खेतान, प्रभा. अहल्या; नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2020. पृ. 26.
3 खेतान, प्रभा. उपनिवेश में स्त्री; नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003. पृ. 82.
4 गिल, गगन. एक दिन लौटेगी लड़की. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2024. पृ. 75.
5 कात्यायनी. सात भाइयों के बीच चम्पा. लखनऊ : कल्पना प्रकाशन, संस्करण 1994. पृ. 16.
6 कात्यायनी, सात भाइयों के बीच चम्पा. लखनऊ : कल्पना प्रकाशन, संस्करण 1994. पृ. 44.
7 वर्मा, अनीता. एक जन्म में सब; नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010. पृ. 25.
8 वर्मा, अनीता. एक जन्म में सब; नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, संस्करण 2010. पृ. 19.
9 अनामिका. अनुष्टुप; नई दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, संस्करण 1998. पृ. 52.
10 गर्ग, निर्मला. यह हरा गलीचा, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 1992. पृ. 85.
11 सिंह, सविता. अपने जैसा जीवन; नई दिल्ली : आधार प्रकाशन, संस्करण 2001. पृ. 40.
12 रघुवंशी, निलेश. कवि ने कहा; किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2018. पृ. 37.
13 पुतुल, निर्मला. नगाड़े की तरह बजते शब्द; नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण 2005. पृ. 34.
14 द बोव्आर. सिमोन (अनु. मोनिका सिंह) द सेकंड सेक्स; वाणी प्रकाशन, संस्करण 2024. पृ 96.
15 रावत, प्रज्ञा. जो नदी होती; नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण 2012. पृ. 12.

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020:- त्रिभाषा सूत्र का महत्व और चुनौतियां

क्रिस्टियान डॉ० लतिका

प्राचार्य, छत्तीसगढ़ कॉलेज ऑफ एजुकेशन, धनोरा, दुर्ग

Abstract

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मुताबिक, देश के सभी छात्रों को तीन भाषाएं सीखनी चाहिए, इस सूत्र को त्रिभाषा सूत्र कहा जाता है। इसका मकसद भाषा, सीखकर बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को बढ घवा देना और बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव को बढाना है। त्रिभाषा सूत्र में पहली भाषा- मातृभाषा, दूसरी भाषा- हिन्दी भाषी राज्यों में आधुनिक भारतीय भाषा या अंग्रेजी भाषा, और गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी या अंग्रेजी, तीसरी भाषा- हिन्दी और गैर हिन्दी दोंनों राज्यों में अंग्रेजी या एक शास्त्रीय भाषा (आधुनिक भारतीय भाषा)। त्रिभाषा सूत्र द्वारा छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताएं और सांस्कृतिक जागरुकता बढावा देना है। त्रिभाषा सूत्र की चुनौतियां दक्षिण भारत में व्यापक विरोध, ब्रिटिश शासन ने समाप्त की, हिन्दी की अनिवार्यता, तमिलनाडू के राजनीतिक मुद्दा। अनुच्छेद 29 में कहा गया है कि नागरिकों के किसी भी वर्ग "जिसकी स्वयं की विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति है।" को उसका संरक्षण करने का अधिकार होगा। त्रिभाषा सूत्र का उद्देश्य राज्यों के बीच भाषाई विभाजन को पाटना और राष्ट्रीय एकता को बढावा देना है। भारत में बहुभाषावाद को बढावा देना और छात्रों देश भर में प्रभावी ढ घवा देकर राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करना भी है। त्रिभाषा सूत्र राज्यों के बीच भाषाई अंतर को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता में वृद्धि का विचार रखता है। हालांकि यह भारत की जातीय विविधता को एकीकृत करने के लिए एकमात्र उपलब्ध विकल्प नहीं है। तमिलनाडू जैसे राज्यों ने अपनी भाषा नीति के साथ न केवल शिक्षा मानक स्तर को बढ घने में कामयाबी हासिल की है, बल्कि त्रिभाषा सूत्र को अपनाए बिना राष्ट्रीय अखंडता को भी बढावा दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के मुताबिक, देश के सभी छात्रों को तीन भाषाएं सीखनी चाहिए, इस सूत्र को त्रिभाषा सूत्र कहा जाता है। इसका मकसद भाषा, सीख्कर बच्चों के संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देना और बहुभाषिकता और राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ाना है, साथ ही हिन्दी और गैर हिन्दी भाषी राज्यों में भाषा के अंतर को खत्म करना भी इसका मकसद है, इस सूत्र के तहत, सरकारी और निजी दोनों स्कूलों में शिक्षा का माध्यम तीनों में से कोई भी हो सकता है।

त्रिभाषा सूत्र के मुताबिक, छात्रों को ये तीन भाषाएं सीखनी चाहिए।

- पहली भाषा:- मातृभाषा या घर का भाषा, या क्षेत्रीय भाषा
- दूसरी भाषा:- हिन्दी भाषी राज्यों में आधुनिक भारतीय भाषा या अंग्रेजी भाषा, और गैर हिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी या अंग्रेजी
- तीसरी भाषा:- हिन्दी और गैर हिन्दी दोंनों राज्यों में अंग्रेजी या एक शास्त्रीय भाषा (आधुनिक भारतीय भाषा)

NEP - 2020 में कहा गया है कि त्रिभाषा सूत्र का ज्यादा लचीला तरीके से लागू किया जाएगा, किसी राज्य पर कोई भाषा थोपी नहीं जाएगी, तीन भाषाओं में से कम से कम दो भाषाएं, भारत की मूल भाषाएं होनी चाहिए, साथ ही शास्त्रीय भाषा और विदेशी भाषा को वैकल्पिक भाषा के रुप में भी पढ़ाया जा सकता है।

त्रिभाषा सूत्र के विशेषताएं:-

- इससे भाषायीं अवरोध दूर होता है और देश में राष्ट्रीय एकता बढती है।
- इससे छात्रों की संज्ञानात्मक क्षमताएं और सांस्कृतिक जागरुकता बढती है।

त्रिभाषा सूत्र की आवश्यकता:-

- इसका प्राथमिक उद्देश्य बहुउद्देश्यीयता और राष्ट्रीय सद्भान ;छंजपवदंस भ्ंतउवदलद्ध को बढ़ावा देता है।
- त्रिभाषा सूत्र का उद्देश्य हिन्दी व गैर हिन्दी भाषा राज्यों में भाषा के अंतर को समाप्त करना है।

चुनौतियां:-

- दक्षिण भारत में व्यापक विरोध
- ब्रिटिश शासन ने समाप्त की हिन्दी की अनिवार्यता

- तमिलनाडु के लिए राजनीतिक मुद्दा
- हिन्दी भाषी राज्य भी उत्तरदायी
- तमिलनाडू में हिन्दी का प्रसार

भाषा संबंधी संवैधानिक प्रावधानः-

- अनुच्छेद 29 में कहा गया है कि नागरिकों के किसी भी वर्ग "जिसकी स्वयं की विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति है।" को उसका संरक्षण करने का अधिकार होगा।
- अनुच्छेद 343 - भारत संघ की अधिकारिक भाषा से संबंधित है। इस अनुच्छेद के अनुसार, हिन्दी देवनागरी लिपी में होनी चाहिए, और अंको के संदर्भ में भारतीय अंको के अर्न्तराष्ट्रीय रुप का अनुसरण किया जाना चाहिए।
- अनुच्छेद 346 - राज्यों और संघ एवं राज्यों के बीच सलाह हेतु अधिकारिक भाषा के विषय में प्रबंध करता है।
- अनुच्छेद 347 - किसी राज्य की जनसंख्या के किसी भाग द्वारा बोली जाने वाली भाषा के संबंध में विशेष उपबंध।
- अनुच्छेद 350। - प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 350 ठ - भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान करता है।

निष्कर्षः-

इस प्रकार त्रिभाषा सूत्र राज्यों के बीच भाषाई अंतर को समाप्त कर राष्ट्रीय एकता में वृद्धि का विचार रखता है। हालांकि यह भारत की जातीय विविधता को एकीकृत करने के लिए एकमात्र उपलब्ध विकल्प नहीं है। तमिलनाडू जैसे राज्यों ने अपनी भाषा नीति के साथ न केवल शिक्षा मानक स्तर को बढ़ाने में कामयाबी हासिल की है, बल्कि त्रिभाषा सूत्र को अपनाए बिना राष्ट्रीय अखंडता को भी बढ़ावा दिया है। इसलिए त्रिभाषा सूत्र पर व्यापक विचार - विमर्श की आवश्यकता है।

सारांशः-

नई शिक्षा नीति सतत् विकास के लिए एजेंडा 2030 के अनुकूल है और इसका उद्देश्य 21वीं शताब्दी की आवश्यकताओं के अनुकूल स्कूल और कॉलेज की शिक्षा को अधिक समग्र, लचीला बनाते हुए भारत को एक ज्ञान आधारित जीवंत समाज और वैश्विक महाशक्ति में बदलकर प्रत्येक छात्र में निहित अद्वितीय क्षमताओं को सामने लाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बहुभाषावाद और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के लिए त्रिभाषा सूत्र पर बल देने का निर्णय लिया गया। इस नीति ने सम्पूर्ण भारत में त्रिभाषा सूत्र की उपयुक्ता पर बहस को फिर से प्रारंभ कर दिया है।

पृष्ठभूमिः-

- "त्रिभाषा सूत्र" तीन भाषाएं, हिन्दी, अंग्रेजी और संबंधित राज्यों की क्षेत्रीय भाषा से संबंधित है।
- सर्वप्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में एक अधिकारिक दस्तावेज के रुप में वर्गीकृत किया गया।
- राधाकृष्णन आयोग (1948-49) की रिपोर्ट से ही प्रारंभ हो गयी थी। जिसमें तीन भाषाओं में पढ़ाई की व्यवस्था का परामर्श दिया गया था। आयोग का कहना था कि माध्यमिक स्तर पर प्रादेशिक भाषा, हिन्दी भाषा और अंग्रेजी भाषा की शिक्षा की जाए।
- इसके बाद वर्ष 1955 में डॉ. लक्ष्मण स्वामी मुदालियार के नेतृत्व में माध्यिमक शिक्षा आयोग का गठन किया गया, जिसने प्रादेशिक भाषा के साथ हिन्दी के अध्ययन का द्विभाषा सूत्र दिया और अंग्रेजी व किसी अन्य भाषा को वैकल्पिक भाषा बनाने का प्रस्ताव रखा।
- कोठारी आयोग की सिफारिश पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में "त्रिभाषा सूत्र" को स्वीकार कर लिया गया, परन्तु इसे धरातल पर नहीं लाया जा सका।

हिंदी उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक स्वरूप का अवलोकन

मोहित गौड़

शोधार्थी, पीएच.डी हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली, 110007

प्रो० प्रभात शर्मा

शोध निर्देशक, श्याम लाल महाविद्यालय प्रातः

उपन्यास साहित्य जगत की सर्वाधिक सशक्त विधा है। आरंभ से ही उपन्यास सामाजिक समस्याओं को उभारते रहे हैं और यथार्थ रूप में समाज के सामने अपनी भूमिका निभाते रहे हैं। वर्तमान युग बौद्धिक, तार्किक, वैज्ञानिक तथा यांत्रिक युग है। इसके प्रभाव से जीवन और जगत अछूता नहीं है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी उपन्यास की भूमिका और अधिक सक्रिय हो जाती है। वर्तमान सदी 21वीं सदी के नाम से चर्चित है, जिसमें भारतीय संस्कृति, अन्य वैश्विक संस्कृतियों के प्रभाव से दूषित होने लगी है। इसी का प्रभाव वर्तमान उपन्यासों में स्पष्ट दिखाई देता है। कहा भी जाता है कि काजल की कोठरी से निष्कलंक निकलना संभव नहीं है।

इस प्रकार 21वीं सदी के उपन्यासों में हम वैश्वीकरण का प्रभाव स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। हिंदी उपन्यासों में सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक स्वरूप को निम्न रूप से समझा जा सकता है। प्राचीन काल में हिंदी उपन्यासों में समाज, धर्म एवं नैतिक मूल्यों को लेकर के जो संस्थाएं एवं परिवार कार्य कर रहे थे,कहीं ना कहीं ये समाज को जोड़ने का काम कर रहे थे, किंतु वर्तमान समय में परिस्थितियों के बदलने के कारण हमारे सांस्कृतिक, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों में टकराहट के साथ बदलाव आया है।आज की युवा पीढ़ी इस बदलाव में अपनी महनीय भूमिका निभा रही है। हम इस लेख के माध्यम से सामाजिक धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों का अवलोकन करेंगे।

आज के उपन्यासों में जीवन जगत का पूर्णतया परिवर्तित स्वरूप दिखाई देता है। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक मूल्य इतने विशाल एवं गहरे हैं कि पश्चिमी संस्कृतिक झंझावात से वह संघर्ष करके भी अपना वजूद बनाएं रखने में सक्षम है।

आज धर्म का क्षेत्र भी इस पश्चिमी संस्कृति के संक्रमण से अछूता नहीं रह गया। आज 'धर्म' परंपराओं और नैतिक मूल्यों का प्रतीक मात्र रहकर ढोंग, पाखंड, अनाचार एवं अंधविश्वास का पर्याय बन गया है। वर्तमान उपन्यासों में भारतीय संस्कृति का यह संक्रमित स्वरूप प्रत्यक्ष दिखाई देता है।

आज के लेखक भी इसी संक्रमित संस्कृति को देखकर चिंतित हैं और व्याकुल हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से वह अपनी आने वाली पीढ़ी और वर्तमान युवाओं को यह संदेश देना चाहते हैं कि सांस्कृतिक लेनदेन कोई बुरा काम नहीं है परंतु केवल अच्छा ग्रहण करना ही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। बुराई को हमें त्याग देना चाहिए क्योंकि कोई भी समाज, संस्कृति एवं व्यवस्था पूरी तरीके से परिशुद्ध नहीं होती। इसीलिए हमें सिर्फ अच्छाइयों पर ध्यान देना चाहिए। हमारी परिस्थितियाँ, वातावरण हमारी परंपरा के साथ जुड़ने वाली संस्कृति ही हमारे लिए अमृत समान सिद्ध होगी, अन्यथा वर्तमान समय के इस बाजारवादी सोच का जहर हमारी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर को एवं हमारे जीवन, नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देगी। जिसका दुष्प्रभाव इस वर्तमान युवा पीढ़ी और आने वाली पीढ़ी को झेलना पड़ेगा।

वैश्वीकरण के इस युग को सरल शब्दों में 21वीं शताब्दी कहा जाता है। यह ग्लोबलाइजेशन का युग हमें यह संकेत देता है की कर लो दुनिया मुठ्ठी में इस अर्थ के आधार पर यह नैतिकता को ताख पर रखता है और कहता है –कमाओ पैसा, पैसा कमाओ। विश्व की बड़ी शक्तियां जिसे गर्व से वैश्वीकरण का युग कह रही हैं उन सब का मूल आधार केवल आर्थिक संबंध और व्यापार है। वैश्वीकरण का वास्तविक मूल्य विश्व बंधुत्व है जो भारतीय संस्कृति की जड़ों में भीतर तक समाया है।

अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।

अर्थात् : यह मेरा है, यह उसका है; ऐसी सोच संकुचित चित्त वोले व्यक्तियों की होती है; इसके विपरीत उदारचरित वाले लोगों के लिए तो यह सम्पूर्ण धरती ही एक परिवार जैसी होती है।

हमारा वैश्वीकरण विश्व बंधुत्व, भ्रातृत्व, मातृत्व, संवेदना, समानुभूति, पीड़ा, दर्द और समावेशी हित को लेकर चलता है। हमारे वैदिक मंत्र सभी की मंगल कामना की बात करते हैं-

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।
।। शांतिः शांतिः शांतिः ।।

सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी मंगलमय घटनाओं के साक्षी बनें और किसी को भी दु:ख का भागी न बनना पड़े। हमारी प्रार्थनाएं सत्यम, शिवम, सुंदरम की बात करती है। हमारी संस्कृति त्याग की बात करती है। धर्माचरण की बात करती है मोक्ष और मर्यादा की बात करती है। हमारी संस्कृति शिखर संस्कृति है जिसमें मोह भी है मोहभंग भी है। हमारी संस्कृति हमें सत्य बोलना और धर्म पर चलने की बात करती है इसीलिए कहा जाता है

'सत्यं वद, धर्मं चर...'

अर्थात सत्य बोलना और धर्म का आचरण करना। धर्म... सिर्फ उपासना विधि नहीं है, बल्कि नैतिक मूल्यों, सदाचार और हमारे कर्तव्यों का एक पर्याय है।

आज पाश्चात्य प्रभाव वर्तमान युग में ऐसे संक्रमण और दुष्प्रभाव का प्रसार कर रहा है जिससे हमारी आस्थाएं भी बदलने लगी हैं। पश्चिमी जादू हमारे सिर पर ऐसा चढ़ा हुआ है कि सभी अर्थ का अनर्थ हो गया है।

वर्तमान शताब्दी बौद्धिकता की शताब्दी है तकनीकी के क्षेत्र में मनुष्य ने अपनी बुद्धि का सर्वोत्तम देते हुए अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की है। आज इस समय में विश्व को एक छोटा गांव कहकर पुकारा गया है वर्तमान संदर्भ में वैश्वीकरण विश्व की एकता का परिचायक न बनकर बाजारवाद का प्रतीक बन गया है।

मारी भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखें तो गांव भोलेपन, सच्चाई, ईमानदारी सद्भाव, एकता, नैतिकता एवं निश्चलता के प्रतीक के रूप में देखे जाते हैं। जहां केवल नि:स्वार्थ भावनाओं की प्रधानता होती है...। मानवीय संवेदना होती है, मानवीय रिश्तों की महनीय भूमिका होती है परंतु वर्तमान सदी में यह सब विलुप्त होते दिखाई दे रहे हैं। आज केवल स्वार्थ, मतलब, झूठ, फरेब धोखाधड़ी इत्यादि का सर्वत्र बोलबाला है। संपूर्ण विश्व बाजारवाद की तूफान में गिरा हुआ दिखाई देता है। मानवता शर्मसार होती दिखाई देती है। संवेदना का ह्रास प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है समानुभूतिक महत्व खत्म होती जा रही है। भारतीय संस्कृति विश्व बंधुत्व में यकीन रखने वाली संस्कृति है हमारी संस्कृति ने सदैव अंधकार में भटके लोगों को राहे दिखाई है इसीलिए भारत को विश्वगुरु कहा जाता था।

भौतिकतावादी इस युग में धान की लालसा ऐश्वर्या की विपाशा ने हमारे विवेक आत्मीयता गुण और पुरुषार्थ को समाप्त कर दिया है केवल भौतिक सुख पाना ही हमारा एकमात्र लक्ष्य रह गया है इसके सुखद और दुखद दोनों ही पक्ष हमारे सामने आए हैं एक कहावत कही जाती है की "बेर और कदली के वृक्ष पास-पास नहीं लगाने चाहिए" परंतु आज ऐसा ही हो रहा है।

पश्चिमी संस्कृति ने हमारे भारतवर्ष को भौतिक रूप से सफल बनाने में तो सराहनीय कार्य किया किंतु आत्मिक और आध्यात्मिक स्तर गिराने का निंदनीय कृत्य भी किया। प्रेम, दया, त्याग, सत्य अहिंसा, दान, तप, सहृदयता, उदारता आदि हमारी भारतीय संस्कृति के संवाहक ध्वज स्तंभ रहे हैं जिसको इन्होंने जड़ से मिटाने का घिनौना कार्य किया है। लोभ- लालच के पश्चिमी चश्में को लगाने के कारण मानव विनाश की ओर सतत बढ़ता दिखायी दे रहा है।

वर्तमान 21वीं सदी के इस युग में भारतीय संस्कृति संस्कृत संक्रमण से गुजर रही है। आज बौद्धिकता का युग है। परीक्षण और तर्क का युग है, शंकाओं का युग है परंतु मानवता का युग नहीं है पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव व प्रगति की इस अंधी दौड़ ने महत्वाकांक्षाओं की तीव्र आंधी ने वर्तमान सदी को प्रभावित किया है। संपूर्ण विश्व एक ऐसी अंधी दौड़ दौड़ रहा है जहाँ मानवता रौधी जा रही है। पैसा समस्त देवों का देव बनकर अपनी पैंठ जमा रहा है, महत्वाकांक्षाओं, फैशन -परस्तों की इस प्रतियोगिता में प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से आगे निकलने की होड़ में अंधी चाल चल रहा है। हमारी युवा पीढ़ी विदेश के रंग में रंगकर जो परिणाम दे रही है उससे कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। ऐसे में भयंकर मूल संकट उत्पन्न हो गया है। हमारी स्थिति उस कौवे के समान हो गई है जो हंस बनने चला था परंतु ना ही हंस रहा और ना ही कौवा बल्कि उपहास का पात्र बन गया। कहा भी जाता है "रहीमन एहीमन ना वहिमन"

आज हमारी मान्यताओं परंपराओं नीतियों में आए क्रांतिकारी परिवर्तनों ने हमारे युवा वर्ग को सर्वाधिक प्रभावित किया है। युवा वर्ग में आती जा रही नैतिक गिरावट, संस्कारों का क्षरण, अभद्रता, बिखरती जा रही परंपराएं, टूटती जा रही व्यवस्थाएँ भारतीय संस्कृति का नवीन स्वरूप प्रदर्शित करती है।

आज शंकाकुल दृष्टिकोण होने के कारण हमारा समाज टूट रहा है। समाज की प्रथम संस्था परिवार है जो की टूटती जा रही है। युवा वर्ग की बढ़ती अभद्रता, निरंकुशता, हीन भावना, माता-पिता को लाचार कर रही है। बिखराव की स्थिति को देखकर लोग पीड़ित हो रहे हैं। साहित्य की भूमिका यहाँ बढ़ जाती है। साहित्य सदैव से मानव का पथ प्रदर्शक बनता आ रहा है। यह सत्य है कि साहित्य समाज एवं मानव जीवन का दर्पण है परंतु दर्पण में देख कर ही तो वह अपनी वास्तविकता को देख सकता है और वास्तविकता मनुष्य को सदकर्मों की ओर प्रेरित एवं अग्रेसित करती है। वर्तमान उपन्यास भी आज की संस्कृति के बदलते स्वरूप को अपने माध्यम से लोगों को संस्कृति के स्वस्थ्य स्वरुप को दिखा रहे हैं और मानव को सचेत कर रहे हैं।

वर्तमान के इस तार्किक युग में हर व्यक्ति अधिक चौतन्य और तर्कशील हो गया है शिक्षा के व्यापक प्रसार ने, इंटरनेट की दुनिया ने हमारे विवेक को पूर्णतया जागृत और तर्कसंगत बना दिया है। जहां तार्किकता बढ़ती है वहां शंका बढ़ जाती है कहते हैं अति ज्ञान शंका का जनक है लगभग ऐसा ही हमारे युवा पीढ़ी में घटित हो रहा है। इसी घटना को आज के उपन्यासकार चौतन्य होकर देख रहे हैं और अपनी लेखनी के माध्यम से एक पथ- प्रदर्शक का कार्य कर रहे हैं और अपनी समाज में भूमिका सुनिश्चित कर समाज को उन्नति की ओर ले जाने में महानीय भूमिका निभा रहे हैं।

भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव से हमारा समाज सर्वाधिक प्रभावित होता दिखाई दे रहा है समलैंगिकता और लाइव इन रिलेशनशिप पश्चिमी संस्कृति की ही देन से ही उपजा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में व्यक्ति समाज के लिए था समाज व्यक्ति के लिए नहीं परंतु वर्तमान भारतीय संक्रमित संस्कृति में समाज व्यक्ति के लिए है व्यक्ति समाज के लिए नहीं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही अपना बाह्य एवं आंतरिक विकास करता है। भारतीय समाज की अवधारणा वस्तुत: विश्व बंधुत्व की है। भारतीय समाज में अद्‌भुत विविधता के दर्शन होते हैं इसमें अनगिनत जातियाँ, जनजातियाँ एवं समुदाय समाहित है।

समाज परिवर्तनशील है। प्रत्येक युग में समाज का स्वरूप बदलता रहा है। जिसका आश्रय मूल्यों को जाता है। भारतीय संस्कृति और समाज में युगीन प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। हमारे यहां युगों का पौराणिक विभाजन रहा है - सत, त्रेता, द्वापर और कलि। प्रत्येक समाज की अपनी मान्यताएं रीति रिवाज एवं परंपराएं होती हैं। भारतीय समाज की परंपराओं पर अन्य देशों की मान्यताओं का प्रभाव पड़ रहा है। इससे भारतीय समाज में विघटन की प्रक्रिया सामने आ रही है। समाज तभी विकास करता है जब सब लोग मिलकर एक साथ एक गति से चले। "डॉ संपूर्णानंद" ने समाज की परिभाषा देते हुए कहा है "सम् अजन्ति जना: अस्मिन इति।"

भारतीय समाज के विघटन का प्रमुख कारण भ्रष्टाचार भी है अपनी जाति के लोगों की नातेदारों की मदद करना भी एक प्रकार से भ्रष्टाचार है। आज हर व्यक्ति अपने काम निकलवाने के चक्कर में नैतिक - अनैतिक का अंतर समझे बिना भ्रष्टाचार में लिप्त है। वर्तमान हिंदी उपन्यासों में भी भ्रष्टाचार पर उपन्यासकारों ने भरपूर करारा व्यंग्य किया है। डॉक्टर जो भगवान का दूसरा रूप माने जाते हैं अगर वही भ्रष्टाचार फैलाएं तो समाज की व्यवस्था डगमग आएगी।

"विजन"(मैत्रेयी पुष्पा) मैं समाज के हित हेतु चलाए जा रहे आई सेंटर में फल फूल रहे भ्रष्टाचार को दिखाया है। नेहा जो कि अजय की पत्नी है वह अपने ससुर के अस्पताल में चल रही धाधलियों को देखकर हैरान है। वह एक रजिस्टर में बाकायदा लिखे गए भ्रष्टाचार के विवरण का विवरण देती नजर आती है। डॉक्टर जो भगवान का स्वरूप माने जाते हैं वह आज भ्रष्टाचार को बढ़ावा देने में किसी से पीछे नहीं है। यह समाज का विघटन करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। आज व्यक्ति को कोई भी काम करवाना है तो उसे हर स्तर पर रिश्वत देनी ही पड़ेगी क्योंकि अगर व्यक्ति नियम अनुसार काम करेगा तो शायद अपने बुढ़ापे तक भी वह काम पूरा होने की आशा में दम तोड़ देगा।

"शहंशाह ए तहबाजारी"(शीतांशु भारद्वाज) का रक्षित भी भ्रष्टाचार का खुला स्वरूप दिखाता है रक्षित स्वयं अपनी स्थिति को बताते हुए कहता है कि रक्षित "नगर निगम" के चक्कर काटता रहा है। एक बाबू ने उससे कहा था देखो भाई काम तो तुम्हारा बन जाएगा लेकिन इसके लिए तुम्हें "सुविधा शुल्क" देना होगा।

"लाजो"(शांता कुमार) में भी वर्तमान समाज के अंदर फैले भ्रष्टाचार और भ्रष्टाचारियों पर एक दूसरे के मुख से व्यंग्य करवा कर हमारी संस्कृति के विघटित स्वरूप को दिखलाने का प्रयास किया है।

भ्रष्टाचार वह है जिसमें व्यक्ति सार्वजनिक शक्ति का प्रयोग अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए करता है। ऐसा करने में वह कानून की अवहेलना करता है। भ्रष्टाचार में डोनेशन प्रक्रिया भी शामिल है आज बड़े-बड़े शिक्षण संस्थान डोनेशन के नाम पर लोगों को ठगते नजर आ रहे हैं।

"विजन" (मैंत्रेयी पुष्पा) में भी डोनेशन देना या लेना समाज में भ्रष्टाचार को फैलाने में पूरा सहयोग दे रहा है। मैत्रेयी पुष्पा ने भ्रष्टाचार के बढ़ने और समाज के जागते हुए लोगों की सुप्त मानसिकता को प्रदर्शित किया है। पात्र नेहा के माता-पिता भी इसी मानसिकता के शिकार है। नेहा के विवाह योग्य वरघघघघ ढूंढने के दौरान जब डॉक्टर अजय को चुना जाता है जिनके पिताजी उसका एडमिशन साढ़े सात लाख में करवाते हैं जो भ्रष्टाचार बढ़ाने में सहायक है। जिसके कारण मेधावी छात्र उस अवसर को गंवा देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज की संस्कृति को भ्रष्टाचार रूपी चीटियाँ धीरे-धीरे चट करती जा रही है। भ्रष्टाचार के कारण व्यक्ति की स्वार्थी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना शायद 21वीं सदी में तो नामुमकिन है। भ्रष्टाचार फैलाने में दफ्तरों का बहुत बड़ा योगदान है।

विलासी प्रवृति

वर्तमान में व्यक्ति की जीवन शैली में व्यस्तता तो आ गई है परंतु वह शारीरिक परिश्रम की अपेक्षा मानसिक परिश्रम ज्यादा करने लगा है। आज के औद्योगिकरण ने वर्तमान जगत के व्यक्ति को इतनी सुख - सुविधाओं से लैस कर दिया है कि वह परिश्रम करने से कतराता है। महानगरों में जाकर व्यक्ति अपने जीवन स्तर को सुधारने के लिए जिस शैली का उपयोग करता है। वह धीरे-धीरे उसे विलासिता की गुलामी में जकड़ लेती है और वह अनैतिक ढंग से पैसा कमाने के तरीके की खोज में लग जाता है। दिखावे की जीवन शैली में व्यक्ति प्रकृतिक सुख सुविधाओं के स्थान पर भौतिक उपलब्धियां जताने की लालसा रखता है।

"टूटने के बाद"(संजय कुंदन) पात्र विमला के पास घर है पैसा है संतान है लेकिन वह फिर भी संतुष्ट नहीं है। उसके पति को जब मंत्री जी दिल्ली बुलाते हैं तो वह हां कर देती है क्योंकि उसे रमेश जी की साधारण नौकरी से संतोष नहीं था वह तो आसमान में उड़ना चाहती थी।

आज की नवयुतियां भी विलासी जीवन जीने की चाह में न जाने कितनी प्रतियोगिताओं में अपनी देह का नग्न प्रदर्शन करती नजर आती है। आज यह हर वर्ग की समस्या बन गई है हमारी सोच पर पाश्चात्य संस्कृति का ऐसा पर्दा पड़ गया है कि हम नकलची बंदर बनते जा रहे हैं।

नशे से संघर्ष करता हुआ युवा इससे भारतीय संस्कृति को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जद्दोजहद करना पड़ रहा है। नशे की लत युवक युवतियों में ही नहीं अपितु नाबालिक छात्र-छात्राओं में भी देखी जा रही है। समाज के इस गिरते स्तर में अबोध बालक भी भटक रहे हैं। वर्तमान शताब्दी में आज मालिक और उसके नौकरों के बीच का अंतर मद्यपान ने समाप्त कर दिया है ।

दहेज प्रथा के कारण इस युग में प्रत्येक व्यक्ति के मूल्य बदल रहे हैं। दहेज के कारण माता-पिता को समझ में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और वह अनैतिक कृत्य के लिए विवश हो जाते हैं। वर्तमान में दहेज ने लोगों की नींद उड़ाने का काम किया है लड़की के जन्म लेते ही मां-बाप दहेज देने की सोच में चिंतित रहने लगे हैं जबकि कई मां-बाप दहेज देना शान समझते हैं।

सहजीवन (लिव इन रिलेशनशिप) आज के समय में व्यक्ति उन्नति तो कर रहा है लेकिन युवक और युवती विवाह बंधन को नकार कर आगे बढ़ रहे हैं। आज का युवा विवाह के पश्चात निभाने वाले उत्तरदायित्वों से बचकर एक समझौतावादी दृष्टिकोण अपना रहा है। उन्हें गृहस्थ जीवन से घृणा हो गई है। इसका सरल उपाय वे लिव इन रिलेशनशिप में ढूंढ रहे हैं। हमारी भारतीय संस्कृति में विवाहपूर्व युवक युवतियों का पति पत्नी की भांति साथ रहना वर्जित माना गया है। परंतु 21वीं शताब्दी के समाज मुख्यत: शहरी समाज में इस प्रथा का प्रचलन सर्वत्र देखने को मिलता है।

समलैंगिकता वर्तमान भारतीय संस्कृति को विकसित करने में इसका बहुत बड़ा योगदान है यह बदलाव नर नारी के पवित्र रिश्ते पर प्रश्न चिन्ह लगता है। इस आधुनिकीकरण ने हमारे परम्परागत मूल्यों को संकट में डाल दिया है।

धार्मिक स्वरूप

भारत धर्मनिरपेक्ष देश है धर्म आश्रित हमारी संस्कृति संपूर्ण विश्व में अनूठी है। विश्व के सभी देश भारतवर्ष की इस धर्म नीति से ही डरते हैं। हमारे यहां सत्य बोलो और धर्म पर चलो की नीति अपनाई जाती है सत्यं वद धर्मं चर" का अर्थ है "सत्य बोलो और धर्म का पालन करो"। धर्म का अर्थ होता है धारण करना, जिसका संबंध आचरण से है। मानवता हमारे धर्म का मूल है। दया, करुणा, अहिंसा, प्रेम, सेवा हमारे धर्म के आधार हैं। संपूर्ण विश्व को एकजुट करना भी हमारे धर्म का ही आधार है। हमारे वेद पुराण, संहिताएं सभी धर्म के स्तंभ है। राम-कृष्ण की इस धरती पर कई वर्षों तक शांति का साम्राज्य रहा है इसके पीछे धर्म ही है। धर्म हमारी आत्मा पर अनुशासन का काम करता है जिसके भय से हम बुराई करने से भयभीत होते हैं। धर्म का संबंध आध्यात्मिकता से है इसके प्रभाव से आस्था का जन्म हुआ। धर्म मानव कल्याण के लिए है। यह एक ऐसी अनुभूति है, जो हमें जीवन की सच्चाई से अवगत कराती है। धर्म का संबंध व्यक्ति के चरित्र से है। डॉ शशि भूषण सिंघल ने कहा है "जीवन भली भांति व्यतीत करने के लिए देश, काल, परिस्थिति के अनुसार व्यक्ति और समाज के जो कर्तव्य स्थिर होते हैं वही उनका धर्म है।"

धर्म अंधविश्वास, ढोंग नहीं बल्कि जीवन को सही ढंग से संचालित करने के लिए मानव को दिया गया एक निर्देशन है। भारतीय धर्म भीरू है जो व्यक्ति जितना धर्म भीरू होगा वह उतना ही सदाचारी होगा। धर्म का मूल है- दया और पाप का मूल है - निर्दयता।

किंतु बहुत सारे लोग धर्म के नाम पर अंधविश्वास फैलाने में लग जाते हैं और हमारी संस्कृति और धर्म को विद्रूपित करते हैं।

"पानी बीच मीन पियासी" (मिथिलेश्वर) में ग्रामीण संस्कृति में बढ़ते पाखंडों, कुरुतियों, जातिगत मनोभावों का चित्रण किया गया है। इसमें लोगों के धर्म के नाम पर अमानवीय होने पर व्यंग्य किया गया है।

'तीसरा बच्चा" (वीरेंद्र सारंग) में बासमती दंपति को भी बच्चा पैदा न होने पर अनेक संदेह की नजरों से देखा जाता है। वह अपनी संतान की उत्पत्ति के लिए अनेक तीर्थ यात्राओं पर जाकर मन्नत मांगती है और स्त्री के देवी होने पर संदेह व्यक्त करते हुए कहती है कि जिस समाज में बेटी का जन्म ही यातना है वहां स्त्री को देवी का दर्जा देने का चलन शाब्दिक खेल मात्र लगता है।

" बेघर" (ममता कालिया) की राम भी अंधविश्वासी है उसके पुत्र बीमार पड़ते हैं तो वह अंधविश्वास समझ बैठती है। हमारे समाज में लड़कियों से ज्यादा लड़कों को प्यार किया जाता है वह सोचती है कि लड़का बीमार हो गया इसका कारण वह किसी का नजर लगना मानती है।

आज के इस धार्मिक युग में धार्मिक कट्टरता, जातिवाद, बाजारवाद आतंकवाद सांप्रदायिकता आदि वास्तविक रूप को दिखाती है और भारत के मूल धर्म को धूमिल करती है।

नैतिक स्वरूप

भारतीय संस्कृति सदैव नीति परक रही है। नीति का अर्थ है - आगे ले जाना। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने के लिए नीति का पालन करना अनिवार्य माना गया है।

"नीति" शब्द से ही "नैतिक" शब्द की निर्मित हुई है। नीति को भारतीय संस्कृति में सर्व प्रमुख स्थान दिया गया है। समाज, राजनीति, धर्म, अर्थ सभी में नैतिकता का होना अनिवार्य है। नीतियाँ परिवेशगत होती हैं। भारतीय लोगों में आरंभ से ही अपने बच्चों को नीति का पाठ पढ़ाया जाता रहा है। दादा-दादी, नाना- नानी की कहानियों द्वारा नीति के पाठ पढ़ाए जाते रहे हैं। "नीति शतक" नामक पुस्तक में हमारी मूल नैतिक कथाएं हैं। वेद, पुराण, जातक कथाएँ, वैदिक ग्रंथ हमारी संस्कृति के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

वर्तमान युग बौद्धिकता का युग हो गया है हर व्यक्ति बहुत तार्किक रूप में सोचने लगा है। वह अपने नैतिक मूल्यों को ताख पर रखकर आधुनिकता और पाश्चात्य प्रभाव से अपने नैतिक मूल्यों को गर्त की खाई में डाल रहा है। मनुष्य की आत्मा के पतन को रोकने में विवेकशील की शक्ति ही सहायता करेगी। विवेक एक प्रकार से हमारे मूल्य दृष्टि है। जो हमारी शुभता का परिचायक रही है। समाज की दृष्टि में नैतिक होना ही भारतीय संस्कृति की मूल धारणा रही है। समाज में नैतिक मूल्यों के कारण ही समानुभूति भाईचारा पर पीड़ा को महसूस करने के भाव जागृत होते हैं। इसीलिए कहा जाता है। 'परहित सरिस धर्म नहीं भाई' और पर पीड़ा सम नहिं अधमाई. ' अर्थात दूसरों की भलाई के समान अन्य कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है और दूसरों को कष्ट देने के जैसा अन्य कोई निम्न पाप नहीं है।

आज हमारा आचरण पूरी तरह से पश्चिमी संस्कृति को धारण कर अनैतिकता की राह पर चल रहा है। आज के हमारे साहित्य में हमारे सामान्य जन जीवन की झांकी प्रस्तुत की जा रही है, जिसमें ना प्रेरणा है, ना मूल्य चेतन, ना ही नैतिकता, क्योंकि आज की शताब्दी अनैतिकता से जूझ रही है और साहित्य समाज का दर्पण कहा जाता है तो हमारे उपन्यासों में इसकी झलक साफ दिखाई देती है।

"स्वार्थ की अंधी दौड़" प्राचीन भारतीय संस्कृति में जो मानव था। वह स्वहित और स्वार्थ की भावना से परे रहकर परहित की भावना दिलों में संजो कर कार्य करता था। किन्तु आज का समाज केवल उदर पूर्ति हेतु कार्य कर रहा है।

नारी भी आज नर की तरह स्वार्थी बनकर लोगों का इस्तेमाल अपने फायदे के लिए कर रही है जो की नैतिक मूल्यों के विघटन के लिए उत्तरदायी है। माता-पिता और संतानों के रिश्तों में आई दूरियों का कारण भी कहीं ना कहीं अत्यंत स्वार्थी होना और नैतिक मूल्यों की कमी होने का सूचक है। "तृषिता" (कमलिनी कौल) में सेठ दंपत्ति की संतान भी स्वार्थी बन जाती है और वृद्धावस्था में अपने माता-पिता की सेवा छोड़कर उन्हें तड़पने के लिए छोड़ देती है और उनकी बीमारी से अपना पीछा छुड़ा लेती है।

अनैतिक यौन संबंध- भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थों में से एक पुरुषार्थ "काम" है। यह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है यह न केवल मनुष्यों में बल्कि सभी प्राणियों में विद्यमान है। काम की पूर्ति करने के लिए समाज में विवाह संस्था का निर्माण किया गया है। विवाहित नर नारी ही काम पूर्ति करके समाज में नैतिक दायित्व की पूर्ति करते हैं। इससे इतर संबंध बनाने वाले को अनैतिक घोषित किया जाता है। ऐसे ही लोग भारतीय संस्कृति के विघटन में भूमिका निभाते हैं।

"ए.बी.सी.डी."(रविंद्र कालिया) में भी 'शीनी' पात्र निक के साथ डेट पर जाती है, जो कि हमारी भारतीय संस्कृति का हिस्सा ही नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति में युवक युवतियाँ डेट के नाम पर अनैतिक यौन संबंध बनाते हैं और बाद में पछतावे के शिकार होते हैं। इसी प्रकार "तिनका तिनके पास" (अनामिका) उपन्यास में अवंतिका सांसद बनने के बाद अनैतिक यौन संबंध बनाती है जो की नैतिकता का विघटन करती है। पति-पत्नी के रूखे संबंध भी अनैतिक यौन संबंध को बढ़ावा देते हैं। किस प्रकार अवंतिका तारा (कालगर्ल) को अपने अनैतिक संबंधों के बारे में बताती है। इससे पता चलता है कि आज का आधुनिक प्राणी किस अनैतिक मार्ग पर चल रहा है।

"समय साक्षी है" (मनु शर्मा) उपन्यास में प्यारी नामक स्त्री अनैतिक यौन संबंध बनाती है और उसे खुले आम स्वीकार भी करती है और इसे अनैतिक मानने से भी इंकार करती है वह कहती है प्रेम अपमान नहीं सह सकता औरत सब कुछ रह सकती है।

"टूटने के बाद" (संजय कुंदन) उपन्यास में अविवाहित अभय अपनी सहपाठी शिवानी से अनैतिक संबंध बनाता है। आज का छात्र शिक्षा ग्रहण करने के नाम पर यौन शिक्षा प्राप्त कर नैतिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह उठा रहा है। वह अपने छोटे भाई अप्पू को शिवानी की नंगी तस्वीर भी दिखता है जो कुछ घंटे पहले एक बंद कमरे में यौन संबंध बनाते समय ली गई थी इतना नैतिक पतन होना हमारे सांस्कृतिक मूल्यों के ऊपर कुठाराघात है।

भारतीय संस्कृति में व्यक्ति अपने मूल्यों की रक्षा के लिए अपने आपसे समझौता नहीं करता था। परंतु आज तो अनैतिक यौन संबंध भी समझौते के आधार पर निर्मित किए जाते रहे हैं। अपने जीवन में पैसे के सिवा हमें आज कुछ दिखाई नहीं दे रहा है और इसके लिए भारतीय नारी पतन की खाई में कूद रही है। हमारे प्राचीन मूल्यों में वासना को योग द्वारा संयमित किया जाता था और व्यक्ति के जीवन को ब्रह्मचर्य के नियम में बांधा जाता था। वर्तमान 21वीं शताब्दी में भारतीय युवा एवं विवाहित नर-नारी नैतिकता के दायरे को तोड़कर नैतिक मूल्यों से बाहर निकल रहे हैं। वह अपने बच्चों के प्रति अपना दायित्व भूल कर विषय वासना में डुबे नजर आ रहे हैं और पाश्चात्य देशों से वासना का सीख लेकर पवित्र रिश्तों को शर्मशार कर रहे हैं साथ ही भारतीय संस्कृति को खंडित कर रहे हैं। भोगवाद जैसी मानसिकता पुरुष और स्त्री समाज में घोर निंदनीय विषय बनी हुई है। कामुकता लोगों के मानसिक पटल पर अत्यधिक प्रभावी रूप से छाई हुई है। जीवन शैली में विकृति आने से भी नैतिक मूल्य समाप्त हो रहे हैं, अनैतिक कार्य को जन्म देते हुए हमारे मूल्यों को विघटित कर रहे हैं। उपरोक्त सभी बातों को यथार्थ रूप में 21वीं सदी के उपन्यासों में देख सकते हैं।

निष्कर्ष- 21वीं सदी के उपन्यासों में भारतीय समाज का स्वरूप धार्मिक प्रवृत्ति और नैतिक मूल्यों का जो स्वरूप दिखाया गया है, वह हमारी भारतीय संस्कृति के विपरीत चल रही युवा पीढ़ी की वर्तमान दशा और दिशा का यथार्थ और नग्न चित्रण करता है। हमें अपनी संस्कृति, धर्म और नैतिक मूल्यों के प्रति चौतन्य रहकर समाज में बने सामाजिक बंधनों एवं उत्तरदायित्वों का वहन करते हुए समाज के साथ आगे बढ़ना चाहिए। हमें अपने आस ख़ पास के आधुनिकतावादी समाज से समाजोपयोगी मूल्यों को धारण करना चाहिए और अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठावान रहते हुए अपने कर्तव्य बोध को समझना चाहिए। राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है-

"धर्म यो बाधते धर्मः, न स धर्मः, कुधर्म तत्,
अविरोधी तु यो धर्मः, स धर्मः सत्यविक्रमः।।"

अर्थात जो धर्म धर्म में बाधा डालता है, वह धर्म नहीं है, वह दुष्ट धर्म है, परंतु जो धर्म धर्म का खंडन नहीं करता, वह सत्य है।

संदर्भ ग्रंथ

1) डॉ देवराज, "भारतीय संस्कृति", पृ. 20
2) 'मैत्रेयी पुष्पा, 'विजन', पृ. 10
3) शीतांशु भारद्वाज, "शहंशाह ए तहबाजारी" पृ. 15

4) शांता कुमार,"लाजो", पृ. 49,वहीं पृ 80
5) संजय कुंदन, "टूटने के बाद", पृ. 41
6) ममता कालिया, "बेघर", पृ. 141
7) मनु शर्मा, "समय साक्षी है", पृ.55, वहीं 50
8) मिथिलेश्वर, "पानी बीच मीन पियासी" पृ.34
9) वीरेंद्र सारंग, "तीसरा बच्चा" पृ. 24
10) "संस्कृति के चार अध्याय" (रामधारी सिंह दिनकर)-पृ-3
11) हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक परिदृश्य, ज्योति वत्स, कल्पना प्रकाशन, संस्करण 2012
12) प्रदीप सौरभ, "मुन्नी मोबाइल" पृ. 77

मोहन राकेश के नाटको में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

राम कुंवर

शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

प्रो० दर्शन पांडेय

(शोध निर्देशक) प्राचार्य, राजधानी महाविद्यालय

नाटक को दृश्य एवं श्रव्य काव्य के रूप में स्वीकार किया जाता है। क्योंकि इसमें शब्द, दृश्य, संगीत, नृत्य और अभिनय का ऐसा समन्वित विधान उपस्थित होता है, जो दर्शक को अत्यंत सघन और जीवंत रसानुभूति प्रदान करता है; यही कारण है कि इसे साहित्य की अन्य सभी विधाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि किसी भी प्रबंध काव्य या महाकाव्य के केवल पठन अथवा श्रवण से वह अनुभूति संभव नहीं हो पाती, जो रंगमंच पर साकार होते नाटक को देखकर होती है। इसलिए नाटक को अन्य सभी विधाओ में श्रेष्ठ माना जाता है। नाटक साहित्य का एक प्रमुख अंग है। भारतेन्द्र जी नाटक शब्द का अर्थ – नट लोगो की क्रिया मानते हैं।

नाटक में मनुष्य सुने एवं देखे गए सभी दृश्यों को अपने समक्ष रखकर यथार्थ की दृष्टि से उनका मूल्यांकन करता है। इस संदर्भ में रामगोपाल सिंह चौहान का वक्तव्य है कि– "मनुष्य का जीवन एक नाटक माना जाता है, जो वह विश्व रंगमंच पर करता है। नाटक उसका एक लघु अनुकरण है। नाटक में उसके जीवन की ही घटनाओं को कथा का रूप देकर नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जिसे मनुष्य उसी रूप मेंश रंगमंच पर होता हुआ देखता है, जिस रूप मेंश अपने जीवन में अनेक घटनाओ को।"

नाटक दृश्य काव्य होने के कारण नृत्य, संगीत और अभिनय के माध्यम से हृदय को आनंदित करता है तथा इसके दो अनिवार्य पक्ष माने जाते हैं, एक ओर वे आंतरिक अनुभूतियाँ, जो रस और मनोविज्ञान से संयुक्त होकर जीवन के यथार्थ या आदर्श को अभिव्यक्त करती हैं और दूसरी ओर वे बाह्य संरचनाएँ, जो मंच, वेशभूषा, नृत्य, संगीत और अभिनय के माध्यम से साकार होती हैं; इनमें से किसी एक के अभाव में नाटक अपने चरम उद्देश्य की सिद्धि नहीं कर सकता। यह दोनों रूप नाटक के लिए अनिवार्य है। डॉ. रामकुमार वर्मा के शब्दो मेंश कहे तो– "नाटककार की सफलता इसी बात में है कि वह दर्शको और श्रोताओं के सम्मुख तत्कालीन जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करे।"

मोहन राकेश बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के कीर्तिमान नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिन्होंने नव-नाट्य लेखन और नाट्य-चिंतन को नई दिशा प्रदान की। डॉ. माधाता ओझा एवं डॉ शशि सरदाना की पुस्तक नाट्य चिंतन और रंग – प्रयोग में लिखा है – "मोहन राकेश रंगकर्म का प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं मानते। उनकी दृष्टि में, समसामयिक जीवन की जटिल वास्तविकता से दर्शक का साक्षात्कार करा देना रंग कर्म का प्रमुख अभीष्ट है।" उनका स्पष्ट मत है कि नाटक और रंगमंच एक-दूसरे से पृथक नहीं किए जा सकते; जहाँ रंगमंच है, वहीं नाटक है और जहाँ नाटक है, वहीं रंगमंच, बिना नाटक के रंगमंच की कल्पना निरर्थक है। अर्थात् नाटक रंगमंच की अनिवार्यता है।

हिन्दी रंगमंच के स्वरूप पर विचार करते हुए मोहन राकेश जी ने यह प्रतिपादित किया कि उसे हिन्दी भाषी समाज की सांस्कृतिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना चाहिए तथा हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को अभिव्यक्त करने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूप विधान नाटकीय प्रयोगो के अभ्यांतर से जन्म लेगा, जिसका विकास नाटकीय प्रयोगों के माध्यम से समर्थ अभिनेताओं और निर्देशकों द्वारा संभव होगा। आधुनिक जीवन में व्याप्त अनास्था, निराशा और महानगरीय एकाकीपन की गहन संवेदनात्मक अनुभूति को पहचानकर मोहन राकेश ने उसे नाट्यरूप प्रदान किया और एक गंभीर रंगदृष्टि का परिचय दिया। राकेश जी शहरों और महानगरों के जीवन में व्याप्त एकाकीपन की त्रासदीय स्थिति को प्रकट करने वाले नाटककार है। हम यह कह सकते है किं जीवन के यथार्थबोध को नाटकों के माध्यम से प्रकट करने वाले नाटककार राकेश जी है। डा त्रिभुवन सिंह ने यथार्थ और यथार्थवाद के विषय में लिखा है कि "यथार्थ जीवन को यथार्थवादी कला के माध्यम से मोड़ने का प्रयत्न करता है। मोडने का यह प्रयत्न कल्पना द्वारा सम्पादित होता है। यह इन दोनो को निश्चित स्वरूप प्रदान करने की क्रिया का निर्देशक तत्व है। जीवन की सच्ची अनुभूति यथार्थ है पर इसका कलात्मक अभिव्यक्तिकरण यथार्थवाद है।"

नाट्य साहित्य की रचना मूलत: जीवन के सभी पक्षों को उद्घाटित करने के लिए हुई है। यदि हम नाट्य साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन मान उसके यथार्थ पक्ष की उपेक्षा करे तो नाटक अपना महत्व खो देगा। क्योंकि नाटको में केवल तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिदृश्य का चित्रण मात्र ही नही होता है, बल्कि उसके भीतर वर्तमान परिस्थितियों को बदल देने की एक शक्ति विद्यमान होती है। नाट्य साहित्य अपने नाट्य तत्त्वों के कारण साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा जीवन यथार्थ के अधिक निकट दिखलाई पडता है। अरस्तु ने अपनी पुस्तक श्पोएटिक्सश में कहा है कि – "कवि का कर्म

उन बातो को बताना नहीं है, जो बीत चुकी है, वरन् उस वस्तु का प्रदर्शन करना है जो हो सकती है अर्थात् जो संभाव्य और यथार्थ है।" इसी संदर्भ में डॉ रामगोपाल सिंह चौहान ने लिखा है- "नाटक की कला जीवन को अपने यथार्थ रूप में दर्शक की दृष्टि के सामने जीवन्त रूप में अभिनीत होता हुआ चित्रित कर सकने में जितनी समर्थ है, उतनी हिन्दी गद्य की अन्य कोई विधा नहीं । यथार्थवाद की सृष्टि हमें सत्य से अवगत कराकर दृढतर बनाने के लिए की जाती है।"

यथार्थवादी चेतना का स्वरूप विश्व के लगभग समस्त देशों के साहित्य में विभिन्न कालखंडों में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहा है। जब भी कोई कलाकार अथवा साहित्यकार किसी सामाजिक अवस्था, रूढ़ि या अन्यायपूर्ण व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना से अनुप्राणित होता है, तब वह उस स्थिति का अलंकरणरहित, सजीव और प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। इस यथार्थपरक अभिव्यक्ति का मूल उद्देश्य यह होता है कि पाठक या दर्शक के अंतर्मन में उस विशेष परिस्थिति के प्रति संवेदनशीलता के साथ-साथ आक्रोश और असंतोष की चेतना जागृत हो सके, क्योंकि बिना इस मानसिक उद्वेलन के किसी भी प्रकार के सामाजिक सुधार या परिवर्तन की कल्पना संभव नहीं है। नाट्य-साहित्य के क्षेत्र में यथार्थवाद मानव जीवन के अनुभूत सत्यों, दैनिक संघर्षों, आंतरिक द्वंद्वों तथा सामाजिक दबावों का सशक्त प्रतिबिंब बनकर सामने आता है। नाटककार जीवन को उसके यथार्थ रूप में मंच पर उपस्थित करता है, जिससे दर्शक स्वयं को उन परिस्थितियों से तादात्म्य स्थापित करता हुआ अनुभव करता है। इस प्रकार यथार्थवादी नाटक केवल मनोरंजन का साधन न रहकर समाज के अंतर्संघर्षों और विडंबनाओं का उद्घाटन करने वाला माध्यम बन जाता है। हिन्दी नाट्य-साहित्य में मोहन राकेश का योगदान इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने नाटकों में मानव जीवन की बहुआयामी समस्याओं, सामाजिक परंपराओं, पारिवारिक संरचनाओं, ऐतिहासिक और समकालीन घटनाओं, रहन-सहन की विविध पद्धतियों तथा जीवन के प्रिय-अप्रिय दोनों प्रकार के प्रसंगों को गहन संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। उनके नाट्य-साहित्य में यथार्थ न तो मात्र बाह्य घटनाओं तक सीमित है और न ही वह सतही वर्णन पर रुकता है, बल्कि वह व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक संघर्षों, अधूरेपन की पीड़ा और सामाजिक दबावों की गहरी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है। गंभीर रंग-प्रयोगों में समर्थ नए नाट्य आदोलनो के लिए राकेश जी गंभीर नाटक और प्रबुद्ध दर्शको का संदर्भ आवश्यक मानते है। गंभीर रंग प्रयोगों की अपनी अवधारणा को स्पष्ट करते हुए वे लिखते है- "गंभीर रंग प्रयोगो से हमारा अभिप्राय: एक विशेष दृष्टि और स्तर रखकर चलने वाले प्रयोगो से है, मात्र कुछ बुद्धिजीवियों को संतुष्ट करने वाले प्रयोगों से नहीं । लोकप्रियता के चालू नुस्खो को तिरस्कृत करते हुए ये रंग प्रयोग अपने स्तर और दृष्टि की गंभीरता के बावजूद, बल्कि उसके कारण, काफि लोकप्रिय हो सके और हो सकते हैं, उसमे संदेह नहीं। रंग प्रयोगो की गंभीरता का अर्थ एक उबाऊ किस्म की लादी हुई गंभीरता नहीं, स्तर और दृष्टि की गंभीरता है, जिसका निर्वाह एक व्यंग्य या प्रहसन के माध्यम से दर्शक वर्ग को निरंतर गुदगुदाते हुए भी संभव है।"

मोहन राकेश के समय में यह भ्रांति थी कि रंगमंच का उचित विकास न होने के कारण हिन्दी नाट्य साहित्य में रंगमचीयता अथवा अभिनेय नाटक लिखे जाने की सम्भावना नहीं है। लेकिन मोहन राकेश ने समाज में फैली इस भ्रांति को तोडने का प्रयास किया है। चाहे वह आषाढ का एक दिन 'हो लेहरों के राजहंस' हो 'आधे- अधूरे' हो या 'पैर तले की जमीन' हो, सभी में रंगमंचीय दृष्टि अपनाई गई है।

आषाढ का एक दिन तीन अंको का नाटक है। नाटक का आरंभ बादलो के गर्जन और मूसलाधार वर्षा से होता है। जिसके बाद पहले ही अंके में कालिदास का एक घायल हिरण शावक का उपचार करना तथा उसे राजपुरुष दन्तुल को देने से इनकार कर देना है तथा कालिदास को उज्जयिनी में राजकवि का सम्मान प्राप्त होना और मल्लिका का उसे भारी मन से विदा करना है। "नही विदा तुम्हें नहीं दूंगी, जा रहे हो इसलिए केवल प्रार्थना करूंगी की तुम्हारा पथ प्रशस्त हो।" इस अंक में कालिदास का एक हिरण शावक के प्रति स्नेह एवं मल्लिका का कालिदास के उज्जवल भविष्य के लिए समर्पण को दिखाया गया है। तृतीय अंक में सम्राट का निधन हो गया है। मल्लिका गहरी यातना में है, तभी कालिदास का प्रवेश होता है। कालिदास के मन में अब भी मल्लिका के लिए प्रेम है। एक आकर्षण सदा मुझे उस सूत्र की ओर खीचता था जिसे तोडकर में यहां से गया था। यहां के एक- एक वस्तु में जो आत्मीयता थी। वह यहां से जाकर मुझे कही नही मिली। इस वाक्य से राकेश जी ने व्यक्ति के अन्तर्मन की इच्छाओं को व्याख्यायित किया है कि वह चाहता कुछ है होता कुछ है। वहीं मल्लिका वर्तमान के अंतर्द्वंद के रूप में कालिदास की अनुपस्थिति में विलोम से विवाह कर लेती है। क्योंकि वह भी समय की गति के आगे विवश थी। कालिदास क्षण भर रूककर चले जाते है। मल्लिका बच्ची को गोद में लिए कालिदास को देखती रहती है।

लहरों के राजहंस भी तीन अंको का नाटक है! इस नाटक में कपिलवस्तु के राजकुमार नन्द के बौद्ध भिक्षु बनने और यौवन आकर्षण की कथा है। सुंदरी एक अत्यंत सौन्दर्य सम्पन्न आत्माभिमान से भरी एवं आत्मविश्वास से युक्त नारी है। नन्द को एक तरफ सुदरी की रुपाशक्ति अपनी और आकर्षित करती है तो दूसरी ओर गौतम बुद्ध का प्रभाव अपनी तरफ। इन्ही दोनों पाटो के मध्य वह आगे बढ़ता है। सुंदरी का मानना है कि नारी अपने सौन्दर्य आकर्षण से पुरुष को प्रणय के बन्धन से बांधे रख सकती है। दूसरो की असफलता से अपनी सफलता का संकेत करते हुए कहती है- देवी यशोधरा का आकर्षण यदि राजकुमार सिद्धार्थ को बांध सकता तो क्या आज वे राजकुमार सिद्धार्थ ही न होते? अर्थात् वे देवी यशोधरा को छोडकर सन्यासी नहीं बनते। तो वही नंद अन्तर्द्वंद में फंसा हुआ है। वह खुद को अधूरा सा महसूस करता है। नंद कहता है- में चौराहे पर खड़ा नंग्न व्यक्ति हूँ जिसे सभी दिशाएं लील लेना चाहती है, और अपने को ढकने के लिए जिसके पास आवरण तक नहीं है। जिस किसी दिशा की और पैर बढाता हूँ, लगता है वह स्वयं अपने ध्रुव पर डगमगा रही है और में पीछे हट जाता हूँ।

मोहन राकेश ने अपने नाटकों में जिस प्रकार पुरुष के जीवन की त्रासदी को व्यक्त किया है उसी प्रकार नारी जीवन की त्रासदी को भी उजागर किया है। लहरों के राजहंस मे त्रासदी की भावना सुंदरी के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। सुदरी की धारणा है कि - "नारी का आकर्षण पुरुष को पुरुष बनाता है तो उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।" नाटक में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का अपनी मुक्ति का पथ स्वयं ही खोजता है, दूसरो के द्वारा खोजा गया पथ अपने आप में विशिष्ट होते हुए भी अधूरा और निरर्थक लग सकता है। इस नाटक में यही भाव प्रत्येक कलाकार के हृदय में उत्पन्न हुआ है जैसे गौतम बुद्ध द्वारा खोजा गया पथ महत्वपूर्ण होते हुए भी नंद के संवेदनशील हृदय को प्रभावित नहीं कर पाता। वैसे ही नंद द्वारा खोजा गया पथ सुन्दरी को आश्वस्त नहीं कर पाता एवं सुंदरी का पथ नंद को आश्वस्त नही कर पाता है।

आधे अधूरे मोहन राकेश का तीसरा नाटक है। इस नाटक में मोहन राकेश ने वर्तमान परिस्थितियों से सीधा साक्षात्कार किया है। नाटक का आरंभ एक साधारण कमरे से होता है घर की चीजे अस्त व्यस्त है। परिवार में पति पत्नी है तथा उनके तीन बच्चे है दो लड़की एक लडका। परंतु घर का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कटे-कटे रहते हैं। आपस में किसी के प्रति कोई लगाव नही, रिश्तो में मजबूरी एवं विवशता झलकती है। नाटक में राकेश जी ने नारी की मुक्ति भावना, विघटनशील मानव मूल्य, वैवाहिक संबंधों की विडम्बना और पुरुष के अधूरेपन को दिखाया गया है। इस नाटक में बड़ी लडकी घर से भाग चुकी है, छोटी लडकी गुस्ताख एवं बत्तमीज हो गई है, लड़का बेकार है एवं पिता बेरोजगार है केवल स्त्री ही नौकरी करती है तथा घर को चलाती है और घर के काम भी करती है। स्त्री अब ऊब चुकी है वह अपने खालीपन एवं उबाऊ जिदगी को भरने के लिए कुछ पुरुष मित्रो से दोस्ती करती है, उनको घर बुलाती है जिससे घर के बेटे को नौकरी मिल सके और घर का कुछ भला हो। परन्तु घर के सदस्यों को यह बात अच्छी नहीं लगती है। स्त्री अपना यह खालीपन अपने पुरुष मित्रो के माध्यम से भरना चाहती है ताकि तह पूर्ण हो सके। इस नाटक में सावित्रि और महेन्द्रनाथ के रिश्ते में इतना बिखराव है कि सावित्रि महेन्द्रनाथ से संवाद करते हुए कहती है- ष्पर बात तो मेरे घर की हो रही"। आधे-अधूरे नाटक में विघटनशील मानव-मूल्यो की बात की गई है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मोहन राकेश के नाटकों में सामाजिक तथ्यो की प्रधानता है। मोहन राकेश के व्यक्तिगत जीवन की घर की तलाश उनके नाटकों में भी दिखाई देती है । इनके नाटक सामाजिक सरोकार से युक्त कहे जा सकते हैं। उन्होंने अपने नाटको में सूक्ष्म मानवीय अन्तर्दृष्टि के साथ संवेदनात्मक चिंतन का समन्वय करते हुए लोकरंजन की आवश्यकता का सदैव सम्मान किया है। डॉ. सुषमा अग्रवाल ने मोहन राकेश एवं उनके नाटको के विषय में कहा है कि "वर्तमान पीढी का हिन्दी में इतना प्रबुद्ध इतना मौलिक और जीवन का ऐसा चित्रकार दूसरा नही है। जिसने कथावस्तु, चरित्र, संवाद, दृश्य संयोजन, रंगमंचीय निर्देश और चितंना में इतने सधे नाट्य प्रयोग करके ख्याति पायी हो जितनी की मोहन राकेश ने।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० सुरेन्द्र यादव, नाटक, रंगमंच और मोहन राकेश, तक्षशिला प्रकाशन 23/4761, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002, पृष्ठ 18
2. डॉ० दशरथ ओझा, नाट्य समीक्षा, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीर गेट, दिल्ली, पृष्ठ 18
3. रामगोपाल सिंह चौहान, हिन्दी नाटक, सिद्धान्त और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन, 205 चावड़ी बाजार, दिल्ली संस्करण 1959, पृष्ठ 14
4. डॉ० दशरथ ओझा, हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीर गेट, दिल्ली, संस्कार 2000 पृष्ठ 16
5. डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान, हिन्दी नाटक, सिद्धान्त और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन 205 चावड़ी बाजार, दिल्ली संस्करण 1959, पृष्ठ 165
6. डॉ० रामगोपाल सिंह चौहान, हिन्दी नाटक, सिद्धान्त और समीक्षा, प्रभात प्रकाशन 205 चावड़ी बाजार, दिल्ली संस्करण 1959.
7. डॉ० त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय C-21/30 पीशचमीचन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1955, पृष्ठ 48
8. डॉ. माधाता ओझा एवं डॉ. शशि सरदाना, नाट्य चिंतन और रंग प्रयोग, कला मन्दिर.

डॉ. अंबेडकर के राष्ट्रवाद पर विचार: एक अवलोकन

सविता कुमारी

(शोधार्थी), राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सारांश

राष्ट्रवाद की मनोवैज्ञानिक अवधारणा सांस्कृतिक, जातीय, नस्लीय, धार्मिक और भाषाई आधार पर समाज में भाईचारे की भावना स्थापित करती है। आधुनिक भारत के राष्ट्र निर्माताओं में से एक, डॉ . भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता से भारत की स्वतंत्रता के बारे में राष्ट्रवाद की एक ऐसी अवधारणा प्रस्तुत की, जिसे सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता से भारत की स्वतंत्रता के रूप में समझा जा सकता है। इसे समाज के दलित, वंचित और हाशिए पर पड़े वर्गों के उत्थान के एक निम्नवर्गीय दृष्टिकोण के रूप में समझा जा सकता है; वह वर्ग जिसका औपनिवेशिक भारत के सार्वजनिक जीवन में कोई योगदान नहीं था।

डॉ. भीमराव अंबेडकर का राष्ट्रवाद और राष्ट्र निर्माण का दृष्टिकोण सामाजिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व पर आधारित था, न कि केवल भौगोलिक एकता पर। उन्होंने जाति व्यवस्था को राष्ट्र-निर्माण में सबसे बड़ी बाधा माना और 'समानता की चेतना' के माध्यम से एक समावेशी भारतीय राष्ट्र के निर्माण पर जोर दिया। उन्होंने शिक्षा, संवैधानिक अधिकारों और कानून के शासन को सुदृढ़ कर, हाशिए पर पड़े समुदायों को मुख्यधारा में लाकर राष्ट्र को मजबूत किया।

इस शोध पत्र में, हम डॉ. अंबेडकर के राष्ट्रवाद के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे, जिसमें उन्होंने दृढ़ता से कहा कि वंचित लोगों (दलितों) की मुक्ति के बिना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम पूर्ण नहीं माना जा सकता। उन्होंने पश्चिमी और भारतीय चरमपंथी अवधारणाओं के विपरीत व्यावहारिक राष्ट्रवाद की अवधारणा प्रस्तुत की है, जिसके कुछ पहलुओं पर हम इस लेख में चर्चा करेंगे।

मूल शब्द: राष्ट्रवाद, बंधुत्व, जातीय, अस्पृश्यता, अधीनस्थ वर्ग, सहभागिता, मुक्ति, डॉ. आंबेडकर

प्रस्तावना

राष्ट्रश एक ही संस्कृति, जातीयता, नस्ल, धर्म और भाषा या इनमें से किसी एक को साझा करने वाले साथी नागरिकों के प्रति एकरूपता की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। नवभारत के राष्ट्र निर्माताओं में से एक, डॉ. अंबेडकर का राष्ट्रवाद न केवल औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संघर्ष के रूप में था, बल्कि भारतीय सामाजिक संरचना में दलितों के शोषण और अस्पृश्यता की कुटिल अवधारणाओं के विरुद्ध भी था। अंबेडकर के राष्ट्रवाद का एक महत्वपूर्ण तत्व भारतीय नागरिकों के बीच एकीकृत साझा हित था, जो पुरातन सामाजिक संरचना में शोषित और दबे-कुचले वर्ग की सामाजिक पहचान, आर्थिक पुनर्वितरण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बिना संभव नहीं था। पश्चिमी आधुनिक राष्ट्रवाद की श्रेष्ठता-आधारित राष्ट्रवाद के विपरीत, डॉ. अंबेडकर ने विचारों के इतिहास पर आधारित प्रबुद्ध भारत के जागरण और सामूहिक समावेशन को महत्व दिया है। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर के लिए राष्ट्रवाद का अर्थ है - 'नागरिक जीवन का अधिकार और एकता के धागे में बंधे रहने का कर्तव्य बोध'।

यह एक स्थापित तथ्य है कि बी.आर. अंबेडकर के व्यक्तित्व और कार्यों का मूल्यांकन एक बेहद संकीर्ण दृष्टिकोण से किया गया है, जो आज भी जारी है। देश उन्हें याद रखता है, लेकिन उनकी पूर्णता को नहीं। अक्सर मीडिया, शिक्षा जगत और बुद्धिजीवी उन्हें केवल एक अनुसूचित जाति (दलित शब्द बाद में विकसित हुआ) के नेता या समाज सुधारक के रूप में ही देखते हैं। ऐसी स्थिति में, अंबेडकर के बौद्धिक चिंतन के कई आयामों को या तो नकार दिया गया है या जानबूझकर पृष्ठभूमि में धकेल दिया गया है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, डॉ. अंबेडकर ने 'व्यक्ति', 'जाति', 'वर्ण', ग्राम, धर्म, सामाजिक संरचना (हिंदू धर्म के विशेष संदर्भ में) को परिभाषित किया है; सामाजिक न्याय - हिंदू महिलाओं और अल्पसंख्यकों की समस्याएं (इस्लाम के विशेष संदर्भ में), राष्ट्र निर्माण, आधुनिकता आदि जैसी कई अवधारणाओं को प्रतिपादित किया है।[1]

डॉ. अंबेडकर ने राष्ट्र और राष्ट्रवाद पर अपने विचार बहुत स्पष्ट और तार्किक ढंग से प्रस्तुत किए। उनके लेखन में राष्ट्रवाद की अवधारणा पर कुछ प्रश्न अवश्य उठते हैं, जिन्हें हम निम्नलिखित रूप में देख सकते हैं:-

ए: - राष्ट्र की अवधारणा क्या है?

बी: - क्या भारत एक राष्ट्र है या राष्ट्र बनने की राह पर है?

सी: भारत के राष्ट्र न बन पाने के मुख्य कारण क्या हैं?

डी: राष्ट्र निर्माण और उसके विकास की प्रक्रिया क्या है?

ई: भारत के लिए राष्ट्रवाद के कौन से आयाम सबसे उपयुक्त होंगे?

अंबेडकर की उनकी प्रख्यात पुस्तक 'पाकिस्तान पर विचार' से उद्धृत करते हुए, वे कहते हैं कि- "राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद में अंतर है। ये मानव मन की दो भिन्न मनोवैज्ञानिक अवस्थाएँ हैं। राष्ट्रीयता का अर्थ है 'संबंध की चेतना, उस रिश्तेदारी के बंधन के अस्तित्व की जागरूकता'। राष्ट्रवाद का अर्थ है 'इस रिश्तेदारी के बंधन से बंधे लोगों के लिए एक अलग राष्ट्रीय अस्तित्व की इच्छा'।"

राष्ट्रीय कवि रवींद्रनाथ टैगोर और विपुल राष्ट्रवादी विवेकानंद की तरह, डॉ. बी.आर. अंबेडकर का भी मानना था कि भारत एक राष्ट्र नहीं बन पाया है; बल्कि, उनसे आगे बढ़कर, डॉ. अंबेडकर का मानना था कि बहुसांस्कृतिक, बहुभाषी, बहुजातीय समाज में विभाजित राष्ट्र में राष्ट्रवाद की अवधारणा अर्थहीन है।

डॉ. अंबेडकर ने टिप्पणी करते हुए प्रश्न उठाया, "अनेक जातियों से मिलकर बना लोक समूह/समाज एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? ... जातियाँ राष्ट्र-विरोधी हैं, क्योंकि वे अन्य जातियों के प्रति नकारात्मकता और ईर्ष्या को जन्म देती हैं। ... हिंदुओं में समग्र चेतना का पूर्ण अभाव है। प्रत्येक हिंदू में जो चेतना विद्यमान है, वह जाति चेतना है। इसीलिए हिंदू एक समाज का निर्माण करते हैं, राष्ट्र का नहीं।"[2]

अत: इस लेख में हम देखेंगे कि डॉ. अंबेडकर किस प्रकार पश्चिमी राष्ट्रवाद की अवधारणा के आधार पर तत्कालीन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रवाद के उदय की धारणा का खंडन करते हैं। उन्होंने पर्याप्त तर्क और प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि भारत विभिन्न जातियों, वर्गों और संप्रदायों से बना एक समाज है, जिसमें प्रत्येक के अपने नैतिक मूल्य और हित हैं, इसलिए साझा हित की अवधारणा इतनी आसानी से जागृत नहीं हो सकती। इसी आधार पर उन्होंने 'मुस्लिम राष्ट्रवाद' का समर्थन किया, जिसके लिए उनकी कई बार आलोचना भी हुई है, जो उनके तर्कों की गलत व्याख्या से उत्पन्न होती है।

डॉ. अंबेडकर की राष्ट्रवाद की अवधारणा

भारतीय राष्ट्रवाद को पश्चिमी 'राष्ट्र' की अवधारणा के समानांतर माना जा सकता है; जिसे (पश्चिमी राष्ट्रवाद) अर्नेस्ट गेलनर, बेनेडिक्ट एंडरसन और एरिक हॉब्सबॉम ने भू-राजनीतिक, राजनीतिक-आर्थिक और सामूहिक दृष्टिकोण से परिभाषित और स्पष्ट किया है। हालांकि, दोनों (भारतीय और पश्चिमी) कई मायनों में भिन्न भी हैं। दोनों के बीच मुख्य अंतर इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि भारतीय राष्ट्रवाद एक नैतिक-आध्यात्मिक अवधारणा है जबकि पश्चिमी राष्ट्रवाद एक सांस्कृतिक अवधारणा है।[3]

श्री अरविंदो, गांधी, नेहरू, तिलक, टैगोर और दीन दयाल उपाध्याय जैसे कई भारतीय नेताओं ने भारतीय राष्ट्र और राष्ट्रवाद के विचार पर गहन चिंतन किया। उनके विचार आध्यात्मिक, तत्वमीमांसा या राज्यवादी हैं। बाद वाले पहलुओं को ज्योतिराव फुले, भीमराव अंबेडकर और पेरियार रामास्वामी नियाकर ने एक तरफ और सावित्रीबाई फुले के साथ बालिका शिक्षा की शुरुआत ने सबसे अधिक उजागर किया। इस समूह ने इस बात पर जोर दिया कि 'भारत एक विकासशील राष्ट्र है'।[4]

इस दौरान डॉ. अंबेडकर, दलित क्रांति की एक नई विचारधारा के साथ उभरे; जिसे निम्नवर्गीय राष्ट्रवाद कहा जा सकता है। इसमें समाज के कमजोर, वंचित और शोषित वर्गों के उत्थान की बात की गई है ताकि उन्हें समाज की मुख्यधारा में लाया जा सके। अंबेडकर के लिए भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का उद्देश्य केवल ब्रिटिश साम्राज्य से राजनीतिक सत्ता प्राप्त करना ही नहीं था, बल्कि भारत को रूढ़िवादी परंपराओं और संस्थाओं से मुक्त करके एक आधुनिक राष्ट्र बनाना भी था। डॉ. भीमराव अंबेडकर ने सामाजिक असमानता और अस्पृश्यता से भारत की स्वतंत्रता के राष्ट्रवाद का ताना-बाना बुना। इन वंचित लोगों की मुक्ति के बिना भारतीय स्वतंत्रता संग्राम अधूरा माना जाता था। पिछली आधी शताब्दी में भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष केवल विदेशी शासन से राजनीतिक सत्ता छीनने का संघर्ष नहीं था, बल्कि समाज को अप्रचलित सामाजिक संस्थाओं, मान्यताओं और दृष्टिकोणों से मुक्त करके एक आधुनिक भारत की नींव रखने का संघर्ष भी था।[5]

ऑक्सफोर्ड में प्राप्त पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव ने अंबेडकर को एक सच्चे लोकतंत्र की ओर अग्रसर किया, जहाँ लोग गौरव और गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। इसने उन्हें शासन के सबसे प्रभावी रूपों के बारे में एक वैश्विक दृष्टिकोण प्रदान किया। गणतंत्र-पूर्व युग में डॉ. बी.आर. अंबेडकर महात्मा गांधी के राष्ट्र निर्माण संबंधी विचारों से सहमत थे। साथ ही, उस समय की विश्व की राजनीतिक आकांक्षाओं से प्रभावित होकर, हमारे संविधान में ओटो वॉन बिस्मार्क के सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और संप्रभुता के आदर्शों के साथ-साथ व्लादिमीर लेनिन के समाजवादी सरकार के आदर्शों की झलक मिलती है। 1948 में संविधान सभा में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा,

> *"मैं एक ऐसे संविधान के लिए प्रयास करूंगा जो भारत को हर प्रकार की गुलामी और पक्षपात से मुक्त करे... मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूंगा जिसमें सबसे गरीब लोग भी यह महसूस करें कि यह उनका देश है और इसके निर्माण में उनकी प्रभावी भूमिका है, एक ऐसा भारत जिसमें ऊँच-नीच का कोई वर्ग न हो, एक ऐसा भारत जिसमें सभी समुदाय पूर्ण सद्भाव से रहें। ऐसे भारत में छुआछीपी के अभिशाप के लिए कोई जगह नहीं होगी... महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होंगे... मैं इसके अलावा किसी और चीज से संतुष्ट नहीं होऊंगा।"*[6]

अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान या भारत का विभाजन' में राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के विचार को विस्तार से समझाया है। वे राष्ट्रीयता को "अपनेपन की चेतना, उस रिश्तेदारी के बंधन के अस्तित्व की जागरूकता" के रूप में और राष्ट्रवाद को "उस रिश्तेदारी के बंधन से बंधे लोगों के लिए एक अलग राष्ट्रीय अस्तित्व की इच्छा" के रूप में वर्णित करते हैं। यह सत्य है कि राष्ट्रीयता की भावना के बिना राष्ट्रवाद नहीं हो सकता। लेकिन, यह ध्यान रखना

महत्वपूर्ण है कि इसका विपरीत हमेशा सत्य नहीं होता। राष्ट्रीयता की भावना मौजूद हो सकती है, लेकिन राष्ट्रवाद की भावना पूरी तरह अनुपस्थित भी हो सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीयता हमेशा राष्ट्रवाद को जन्म नहीं देती। राष्ट्रीयता को राष्ट्रवाद में परिवर्तित होने के लिए दो शर्तें पूरी होनी चाहिए। पहली, एक राष्ट्र के रूप में जीने की इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए। राष्ट्रवाद उस इच्छा की गतिशील अभिव्यक्ति है। दूसरी, एक ऐसा क्षेत्र होना चाहिए जिस पर राष्ट्रवाद अधिकार कर सके और उसे एक राज्य तथा राष्ट्र का सांस्कृतिक केंद्र बना सके। ऐसे क्षेत्र के बिना, राष्ट्रवाद, लॉर्ड एक्टन के वाक्यांश का उपयोग करते हुए, एक आत्मा की तरह होगा जो जीवन को फिर से शुरू करने के लिए एक शरीर की तलाश में भटक रही है और उसे न पाकर मर जाती है।[7]

राष्ट्रवाद के पहलू

दरअसल, अंबेडकर का उद्देश्य आधुनिक भारत के स्वर्णिम भविष्य का निर्माण करना था। पश्चिमी विचारक हॉब्सबॉम के विचारों से प्रेरित होकर, डॉ. अंबेडकर का लक्ष्य भारत की सामूहिक एकता था, जिसमें सभी जातियाँ, वर्ग, संप्रदाय और राष्ट्रीयताएँ शामिल हों। उन्होंने कहा,

"जहाँ तक अंतिम लक्ष्य का सवाल है, हममें से किसी को कोई आशंका या संदेह नहीं है। हमारी कठिनाई अंतिम लक्ष्य के बारे में नहीं थी, बल्कि इस बारे में थी कि आज हम जिस विषम जनसमूह का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसे एकजुट करके एक सामान्य निर्णय कैसे लिया जाए और उस मार्ग पर सहयोगात्मक रूप से कैसे आगे बढ़ा जाए, जो हमें एकता की ओर ले जाएगा।"

अंबेडकर ने अपनी 55वीं जयंती के अभिनंदन कार्यक्रम में स्पष्ट रूप से यह बात कही।

"इस देश में रहने वाले हमारे लोगों के प्रति मेरी निष्ठा है। इस देश के प्रति भी मेरी निष्ठा है। मुझे कोई संदेह नहीं है कि आपकी भी यही निष्ठा है। हम सभी इस देश को स्वतंत्र देखना चाहते हैं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मेरा आचरण इस विचार से निर्देशित रहा है कि हम इस देश की स्वतंत्रता प्राप्त करने में कोई बड़ी बाधा न डालें।"[8]

डॉ. अंबेडकर का मानना था कि श्सामाजिक एकता राष्ट्रवाद का आधार है, अलगाववाद का नहींश पश्चिमी राजनीतिक चिंतन से प्रभावित अंबेडकर ने आर्थिक क्षेत्र में व्यक्तिवाद, सामाजिक क्षेत्र में समुदायवाद, धार्मिक क्षेत्र में कट्टरवाद और वैज्ञानिक प्रगति के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण की सामूहिक संभावनाओं पर सवाल उठाए। उनका मत था कि इन सभी क्षेत्रों में एकीकरण की आवश्यकता है। वे फ्रांसीसी राष्ट्रीय क्रांति के नारे – स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व – से गहराई से प्रेरित थे। उनका मानना था कि भारत में राष्ट्रवाद की स्थापना के लिए श्हम जनताश और श्साझा हितश की अवधारणा अत्यंत आवश्यक है। उनका मानना था कि

"जातीय चेतना बंधुत्व और समानता के लिए हानिकारक है, क्योंकि प्रत्येक जाति के अपने व्यक्तिगत हित होते हैं और जातियाँ श्रेणियों में बँटने लगती हैं। यदि हमें राष्ट्र का निर्माण करना है तो हमें इस कमजोरी को जल्द से जल्द दूर करना होगा।"[9]

हॉब्सबाम की 'अभिजात वर्ग अवधारणा' के आलोक में, डॉ. अंबेडकर का मानना है कि 'एकीकृत ब्रिटिश शासन ने भारत में एक साझा हित को जन्म दिया है'। इस प्रकार उन्होंने गांधी, विवेकानंद और सावरकर आदि की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के विरुद्ध विशुद्ध राजनीतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को अपनाया है।

डॉ. अंबेडकर का राष्ट्रवाद समाज के दलित और शोषित वर्ग के लिए पहचान, पुनर्वितरण और प्रतिनिधित्व की वकालत करता है; जिसके तत्व वे बौद्ध धर्म में देखते हैं, जो वेदांत के विपरीत है। अंबेडकर ने 'वित्त और मौद्रिक अर्थशास्त्र: ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रशासन और वित्त' में लिखा है – "भारत में शोषक अभिजात्यवादी संरचना को तोड़ने में अंग्रेजों का सहयोग प्राप्त करना राष्ट्र के हित में है।"

उन्होंने ब्रिटिश शासन का हमेशा के लिए समर्थन नहीं किया। जैसा कि उनके संपादकों ने कहा:

"ब्रिटिश शासन के दौरान, राजनीतिक स्वतंत्रता का मुद्दा सामाजिक सुधार से अधिक महत्वपूर्ण हो गया और इसलिए सामाजिक सुधार की उपेक्षा की गई। वे (अंबेडकर) हिंदुओं से जाति व्यवस्था को समाप्त करने का आह्वान करते हैं, जो एक सामाजिक सुधार है। एकजुटता में एक बड़ी बाधा लोकतंत्र के सिद्धांतों के अनुसार स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों पर आधारित एक नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना है।[10]

'पूर्वी भारत में सार्वजनिक वित्त का विकास' और 'रुपये की समस्या' नामक रचनाओं में 'आर्थिक शोषण' के सिद्धांत का संपादन करते हुए उन्होंने लिखा कि "दलितों के राजनीतिक और आर्थिक हितों की रक्षा किए बिना भारत सामंती संघर्षों से क्षतिग्रस्त हो गया; जो ब्रिटिश सरकार की सहायता से संभव प्रतीत होता है।" वहीं दूसरी ओर एक दुविधा यह भी है कि यदि ब्रिटिश लंबे समय तक भारत में बने रहते हैं, तो वे भारत का और अधिक शोषण करेंगे। इसीलिए हम भारतीयों को यह समझना होगा कि समाज के दलितों को मुख्यधारा में लाए बिना भारत में राष्ट्रवाद की स्थापना संभव नहीं है। अंबेडकर का मानना था कि...

जाति चेतना के कारण हिंदुओं में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का पूर्ण अभाव है, ऐसी स्थिति में भारत को एक राष्ट्र मानना वास्तविकता से परे है। [11]

राजनीतिक क्षेत्र में भी, उनका मानना था कि प्रभावशाली जातियाँ दलितों को अपनी बात मनवाने नहीं देंगी। इसलिए उन्होंने दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल की मांग की, जिसे अगस्त 1932 में मैकडॉनल्ड के 'सांप्रदायिक पुरस्कार' में स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने दलितों के 'स्व-प्रतिनिधित्व' को सर्वोपरि महत्व दिया। उनका मत था कि, "अछूतों को अक्सर दया का पात्र माना जाता है, लेकिन राजनीतिक प्रक्रिया में उन्हें हमेशा यह सोचकर नकार दिया जाता है कि उनका कोई हित नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि उनके हित सर्वोपरि हैं।" यह कहना गलत होगा कि उनकी संपत्ति छीन ली गई है, बल्कि उनका पूरा अस्तित्व ही छीन लिया गया है। अछूतों को कभी नागरिक नहीं माना गया।

उन्हें निम्नलिखित नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं थे: 1. व्यक्तिगत स्वतंत्रता, 2. व्यक्तिगत सुरक्षा, 3. निजी संपत्ति रखने का अधिकार, 4. न्याय की समानता, 5. अंतरात्मा की स्वतंत्रता, 6. बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, 7. शांतिपूर्ण ढंग से इकट्ठा होने की स्वतंत्रता, 8. राष्ट्रीय सरकार में प्रतिनिधित्व का अधिकार, 9. राज्य में पद धारण करने की स्वतंत्रता।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक देश में, डॉ. अंबेडकर अर्नेस्ट गेलनर की राष्ट्रवाद की अवधारणा से प्रेरित थे, जिसमें गेलनर का मूल वाक्य था, "सहजीवन में निरंतर जनमत संग्रह ही राष्ट्रवाद है।" अंबेडकर के लिए, यह परिकल्पना शांतिपूर्ण सामूहिकता पर आधारित 'सहअस्तित्व' के बौद्ध दर्शन में निहित है। राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में, सहअस्तित्व व्यक्तिगत स्तर (सूक्ष्म स्तर) पर संभव है, लेकिन वृहद स्तर पर इसकी स्थापना के लिए सामाजिक मूल्यों में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा; यहाँ वे श्अंतरजातीय विवाहश के संबंध का उल्लेख करते हैं।[12]

राजनीतिक दृष्टि से राष्ट्रवाद स्थापित करने के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा; बल्कि, समाज में सामूहिक हित की स्थापना के लिए गेलनर की ऐतिहासिक 'विस्मृति' की अवधारणा भी आवश्यक है। जिसके लिए रूढ़िवादी परंपराओं को मिटाने के लिए रूढ़िवादी प्रतीकों को तोड़ना होगा। इसी क्रम में, डॉ. अंबेडकर द्वारा मनुस्मृति की प्रतियों को जलाना, मंदिर में प्रवेश और अन्य अछूत मुक्ति कार्यक्रम चलाए गए। अंबेडकर के विचार में, हिंदू धर्म दलितों की असमानता और उत्पीड़न पर आधारित था। इसी ने उन्हें एक ऐसे वैकल्पिक धर्म में धर्मांतरण के बारे में सोचने के लिए प्रेरित किया जो दलितों को समान मानता हो, और यह खोज 1956 में बड़ी संख्या में दलितों के बौद्ध धर्म में धर्मांतरण के साथ परिणत हुई।

सावरकर के विचारों के विपरीत, उन्होंने अतीत का महिमामंडन नहीं किया क्योंकि इससे अतीत की नकारात्मक रूढ़ियाँ जुड़ी हुई हैं। इस राजनीति का गहरा एजेंडा, यानी समाज के कमजोर वर्गों, दलितों, महिलाओं, श्रमिकों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों का दमन, धीरे-धीरे सामने आने लगा।[13]

स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ टैगोर की यह अवधारणा कि 'आधुनिकता का राष्ट्रवाद के साथ मिश्रण भयावह है', अंबेडकर इससे सहमत थे, क्योंकि दोनों विश्व युद्धों की भयावहता ने पश्चिमी राष्ट्रवाद के रहस्यों को उजागर कर दिया था। राष्ट्रवाद केवल साझा विरासत और गौरव की भावना से विकसित नहीं होता, जब तक कि उसमें एक बहिर्मुखी समाज निवास करता है। इसलिए, यदि एक नए भारत का निर्माण करना है, तो 'विचारों के इतिहास' के आधार पर, समानता पर आधारित 'प्रबुद्ध भारत' का निर्माण करना होगा। यहां अंबेडकर, बेनेडिक्ट एंडरसन के 'कल्पित समुदाय' से प्रभावित प्रतीत होते हैं, जो एक प्रबुद्ध वर्ग है, अर्थात् गुणात्मक। भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों के प्रावधान और दलित वर्गों के लिए आरक्षण के प्रावधानों को 'सामूहिक समावेशन' के रूप में देखा जा सकता है, जो भारतीय रूढ़िवादी परंपराओं से उत्पन्न दोषों का पर्याय है। अंबेडकर का मानना है कि, "नायक पूजा स्वतंत्र चिंतन में बाधक है, अर्थात् प्राचीन समाज (राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक अवधारणा) 'संगठित समाज' की अवधारणा के विरुद्ध है क्योंकि यह जनता को भेड़ बना देती है।" इसलिए, अंबेडकर सांस्कृतिक और धार्मिक राष्ट्रवाद की तुलना राजनीतिक राष्ट्रवाद से करते हैं, जो आज भी उतना ही तर्कसंगत है।[14]

निष्कर्ष

वास्तव में, बाबासाहेब अंबेडकर ने भारतीय राष्ट्रवाद की स्थापना में अद्वितीय, उपयोगी, न्यायसंगत और सार्थक योगदान दिया है। आधुनिक भारत के निर्माण में बाबासाहेब का योगदान अनुकरणीय है। सामाजिक न्याय के लिए उनका संघर्ष और दलितों के संगठन के लिए उनका अग्रणी आंदोलन 'भारत को एक राष्ट्र के रूप में निर्मित करने' का अभिन्न अंग है।

आज जब सभी विचार समावेशी राजनीति के इर्द-गिर्द घूमते हैं, तब अंबेडकर पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। राष्ट्रवाद, सामाजिक एकीकरण की एक गतिशील प्रक्रिया है और इसलिए राष्ट्रवाद का उद्देश्य जाति, रंग और धर्म के भेदभाव के बिना सभी मनुष्यों के बीच सामाजिक भाईचारे की पूर्ण एकता प्राप्त करना है। राष्ट्रवाद, मानवतावाद या व्यक्तिवाद का विरोधी नहीं है। राष्ट्रवादी ढांचे के भीतर व्यक्ति पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आनंद ले सकता है। हर किसी को सोचने, विकसित होने और स्वतंत्र होने के लिए एक स्थान की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में, इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए राष्ट्र ही सर्वोत्तम संस्था है। हमें एक ऐसी व्यापक विचारधारा की आवश्यकता है जिसमें कतार में खड़ा अंतिम व्यक्ति भी शामिल हो। डॉ. अंबेडकर का मानना है, "राष्ट्रवाद का अर्थ है नागरिक जीवन, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और कर्तव्य की भावना के कारण समाज में एकता और एकजुटता की भावना। समाज में एकता की भावना को बढ़ाने वाले तत्वों की आवश्यकता है, न कि विभाजनकारी तत्वों की।"

इस प्रकार, गांधी की तरह अंबेडकर भी मानते हैं कि राष्ट्रवाद की पश्चिमी अवधारणा राज्य को एक मशीन मानती है, जबकि मौलिक सिद्धांत वीरता को बढ़ावा देता है, शासक की पूजा करता है और जनता को भेड़ बना देता है। जबकि आज एक ऐसे समाज की आवश्यकता है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर आधारित हो, जिसमें मनुष्य का सम्मान हो और उसके साथ धर्म, जाति, नस्ल, लिंग या किसी भी कृत्रिम अवधारणा के आधार पर भेदभाव न किया जाए। यह स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद की अवधारणा मानवतावाद या व्यक्तिवाद के विपरीत नहीं, बल्कि पूरक है। राष्ट्रवादी ढांचे के भीतर व्यक्ति पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता का आनंद ले सकता है। हर किसी को सोचने, विकसित होने और स्वतंत्र होने के लिए स्थान चाहिए।

सन्दर्भ

1. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1979 से 1995), लेखन और भाषण खंड 1-13, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार.
2. अंबेडकर, बी.आर. (1940). पाकिस्तान पर विचार, बॉम्बे: ठक्कर एंड कंपनी, पृ. 78
3. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1990), लेखन और भाषण खंड 5, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार. पृ. 29
4. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1990), लेखन एवं भाषण खंड 7, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार. पृ. 50-51
5. माधव, राम। (2013) राष्ट्रम: 'राष्ट्रवाद की आध्यात्मिक नैतिक अवधारणा'
   यूआरएल:- http://www.rammadhav.in/ articles/raashtram-spiritual-ethical-concept-of-nationhood/
6. पुनियानी, राम.(2015). 'औपनिवेशिकवाद ने भारत के साथ क्या किया'
7. भारती, के.एस. (1998) अंबेडकर का राजनीतिक विचार, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एमिनेंट थिंकर्स, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, पृ.29

8. जाधव, नरेंद्र. (2013) मैं अपने लोगों और इस देश के प्रति निष्ठा रखता हूँ, अंबेडकर स्पीक्स खंड 1, नई दिल्ली: कोनार्क पब्लिशर्स, पृष्ठ 48
9. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1994), लेखन और भाषण खंड 11, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार. पृ.1216–17
10. चिटनिस, एम.बी. (2014) एट अल. श्परिचयश डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: लेखन और भाषण, खंड 1 वसंत मून द्वारा संकलित, पृ. xiv.
11. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1994), लेखन और भाषण खंड 11, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार. पृ.1218
12. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर. (1979), लेखन और भाषण खंड 1, मुंबई: शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार. पृ.255–56
13. 'बाबासाहेब ने बौद्ध धर्म क्यों अपनाया', दलित नेशन (14 दिसंबर, 2007 सुबह 7:55 बजे) https://dalitnation.wordpress.com/2007/12/14/why-babasaheb-converted-to-buddhism/
14. पुनियानी, राम. 'अंबेडकर की भारतीय राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष'

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का योगदान

वंदना कुमारी

(शोधार्थी), राजनीति विज्ञान विभाग, बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

सारांश

आज जब हम आत्मनिर्भर भारत की बात करते हैं, तो तिलक की विरासत को आगे बढ़ाया जाता है। स्वदेशी रूप से निर्मित वस्तुओं के लिए आर्थिक राष्ट्रवाद की भावना को पुनर्जीवित करना और देशी संस्कृति के माध्यम से सामाजिक एकता के लिए प्रयास करना (एक भारत, श्रेष्ठ भारत) तिलक की रणनीति की विशेषताएं थीं।

"स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूंगा!", यह वह नारा था जिसने भारतीयों में स्वशासन के प्रति राजनीतिक चेतना का संचार किया। यह नारा बाल गंगाधर तिलक ने दिया था। उनके योगदान को देखते हुए, तिलक को भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का पहला जन नेता माना जा सकता है।

महात्मा गांधी ने उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा था। जबकि ब्रिटिश औपनिवेशिक अधिकारियों ने उन्हें 'भारतीय अशांति का जनक' कहा था। यह भारतीय समाज और स्वतंत्रता संग्राम में उनकी विरासत और योगदान का प्रमाण है।

एक दार्शनिक-राजनेता के रूप में उनका योगदान बहुत बड़ा है क्योंकि उन्हें स्वराज और स्वदेशी के विचारों का अग्रदूत माना जाता है। इसके लिए उन्होंने भारतीय संस्कृति, शिक्षा और मीडिया का उपयोग किया।

मूल शब्दः भारतीय राष्ट्रीयता, विकास, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, योगदान, स्वराज, गणेशोत्सव, शिवाजी उत्सव

प्रस्तावना

अंग्रेजों द्वारा 1857 के विद्रोह का निर्मम दमन और उसके बाद के घटनाक्रम ने भारतियों में स्वशासन के संबंध में मोहभंग और अंधकार का माहौल पैदा कर दिया था, जो कई दशकों तक जारी रहा।

इसी समय तिलक ने 20 वीं शताब्दी के आगमन के साथ राष्ट्रवादी चेतना के विकास को गति देना शुरू किया। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के सबसे कठिन दौर में से एक के दौरान जनता के बीच देशभक्ति की भावना को जागृत किया।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारतीय राष्ट्रीयता के जनक और 'उग्रवादी' राष्ट्रवाद के प्रणेता थे, जिन्होंने "स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा" के उद्घोष से स्वतंत्रता संग्राम को जन-आंदोलन बनाया।

उन्होंने 'केसरी' और 'मराठा' समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाई, गणेशोत्सव-शिवाजी उत्सव द्वारा राष्ट्रवाद को संस्कृति से जोड़ा, और शिक्षा व श्होम रूल लीगश (1916) के माध्यम से आम जनता को अंग्रेजी हुकूमत के विरुद्ध एकजुट किया।1

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में उनका योगदान निम्नवत है:

- जन-आंदोलन का निर्माण: तिलक ने कांग्रेस की 'प्रार्थना और याचना' की नीति को छोड़कर प्रत्यक्ष कार्यवाही और जन-आधारित राजनीति को बढ़ावा दिया, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन में एक नया युग शुरू हुआ।
- स्वराज का नाराः उन्होंने पहली बार 'पूर्ण स्वराज्य' की स्पष्ट मांग की और उसे भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार बताया।
- सांस्कृतिक राष्ट्रवाद: 1893 में गणपति उत्सव और 1895 में शिवाजी उत्सव की शुरुआत की, जिनका उद्देश्य धार्मिक आड़ में राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति की भावना फैलाना था।
- पत्रकारिता और जनजागरण: मराठी में 'केसरी' और अंग्रेजी में 'मराठा' समाचार पत्रों के माध्यम से निर्भीकतापूर्वक ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफाश किया।
- होम रूल लीग: 1916 में 'होम रूल लीग' (स्वशासन संघ) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य संवैधानिक साधनों के द्वारा भारत में स्वशासन प्राप्त करना था।
- शैक्षिक योगदान: लोगों में देशभक्ति और भारतीय संस्कृति की भावना जगाने के लिए पुणे में 'डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी' और 'फर्ग्यूसन कॉलेज' की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

तिलक के योगदान ने भारतीय समाज को आत्म-सम्मान और आत्मविश्वास दिया, जिसने अंततः गांधीवादी युग के लिए जन आधार तैयार किया।[2]

राजनीतिक यात्रा

लाल-बाल-पाल की त्रिमूर्ति का एक दुर्लभ चित्र जिसमें बायें से लाला लाजपतराय, बीच में लोक्मान्य तिलक जी और सबसे दायें श्री बिपिनचन्द्र पाल बैठे हैं सन 1907 में सूरत कांग्रेस के पश्चात राष्ट्रवादियों की सभा को सम्बोधित करते हुए बालगंगाधर तिलक। इस सभा की अध्यक्षता अरविन्द घोष ने की थी।

लोकमान्य तिलक ने इंग्लिश मे मराठा व मराठी में केसरी नाम से दो दैनिक समाचार पत्र शुरू किये जो जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी शासन की क्रूरता और भारतीय संस्कृति के प्रति हीन भावना की बहुत आलोचना की। उन्होंने माँग की कि ब्रिटिश सरकार तुरन्त भारतीयों को पूर्ण स्वराज दे। केसरी में छपने वाले उनके लेखों की वजह से उन्हें कई बार जेल भेजा गया।

लोकमान्य तिलक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए लेकिन जल्द ही वे कांग्रेस के नरमपंथी रवैये के विरुद्ध बोलने लगे। 1907 में कांग्रेस गरम दल और नरम दल में विभाजित हो गयी। गरम दल में लोकमान्य तिलक के साथ लाला लाजपत राय और श्री बिपिन चन्द्र पाल शामिल थे। इन तीनों को लाल-बाल-पाल के नाम से जाना जाने लगा। 1908 में लोकमान्य तिलक ने क्रान्तिकारी प्रफुल्ल चाकी और क्रान्तिकारी खुदीराम बोस के बम हमले का समर्थन किया जिसकी वजह से उन्हें बर्मा (अब म्यांमार) स्थित मांडले की जेल भेज दिया गया। जेल से छूटकर वे फिर कांग्रेस में शामिल हो गये और 1916 में एनी बेसेंट जी और मुहम्मद अली जिन्ना के समकालीन होम रूल लीग की स्थापना की।[3]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

लोकमान्य तिलक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से 1890 में जुड़े। हालांकि, उसकी मध्य अभिवृत्ति, खासकर जो स्वराज्य हेतु लड़ाई के प्रति थी, वे उसके खिल्लाफ थे। वे अपने समय के सबसे प्रख्यात आमूल परिवर्तनवादियों में से एक थे।

अल्पायु में विवाह के समर्थक, लोकमान्य तिलक 1891 एज ऑफ कंसेन्ट विधेयक के खिलाफ थे, क्योंकि वे उसे हिन्दू धर्म में अतिक्रमण और एक खतरनाक उदाहरण के रूप में देख रहे थे। इस अधिनियम ने लड़की के विवाह करने की न्यूनतम आयु को 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष कर दिया था।

राजद्रोह के आरोप

केसरी का सम्पादकीय

लोकमान्य तिलक ने अपने पत्र केसरी में 'देश का दुर्भाग्य' नामक शीर्षक से लेख लिखा जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध किया। उनको भारतीय दंड संहिता की धारा 124-ए के अन्तर्गत राजद्रोह के अभियोग में 27 जुलाई 1897 को गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें 6 वर्ष के कठोर कारावास के अंतर्गत माण्डले (बर्मा) जेल में बन्द कर दिया गया।[4]

भारतीय दंड संहिता में धारा 124-ए ब्रिटिश सरकार ने 1870 में जोड़ा था जिसके अंतर्गत "भारत में विधि द्वारा स्थापित ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोध की भावना भड़काने वाले व्यक्ति को 3 साल की कैद से लेकर आजीवन देश निकाला तक की सजा दिए जाने का प्रावधान था।" 1898 में ब्रिटिश सरकार ने धारा 124-ए में संशोधन किया और दंड संहिता में नई धारा 153-ए जोड़ी जिसके अंतर्गत "अगर कोई व्यक्ति सरकार की मानहानि करता है यह विभिन्न वर्गों में नफरत फैलाता है या अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा का प्रचार करता है तो यह भी अपराध होगा।"

माण्डले में कारावास

ब्रिटिश सरकार ने लोकमान्य तिलक को 6 वर्ष के कारावास की सजा सुनाई, इस दौरान कारावास में लोकमान्य तिलक ने कुछ किताबो की मांग की लेकिन ब्रिटिश सरकार ने उन्हे ऐसे किसी पत्र को लिखने पर रोक लगवा दी थी जिसमे राजनैतिक गतिविधियां हो। लोकमान्य तिलक ने कारावास में एक किताब भी लिखी, कारावास पूर्ण होने के कुछ समय पूर्व ही बाल गंगाधर तिलक की पत्नी का स्वर्गवास हो गया। इस दुखद खबर की जानकारी उन्हे जेल में एक पत्र से प्राप्त हुई।[5]

आल इण्डिया होम रूल लीग

बाल गंगाधर तिलक ने अप्रैल 1916 में एनी बेसेंट की मदद से होम रुल लीग की स्थापना की। होम रूल आन्दोलन के दौरान बाल गंगाधर तिलक को काफी प्रसिद्धि मिली, जिस कारण उन्हें "लोकमान्य" की उपाधि मिली थी। इस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य भारत में स्वराज स्थापित करना था। इसमें चार या पांच लोगों की टुकड़ियां बनाई जाती थी जो पूरे भारत में बड़े-बड़े राजनेताओं और वकीलों से मिलकर 'होम रूल लीग' का मतलब समझाया करते थे। एनी बेसेंट, जो आयरलैंड से भारत आई हुई थीं, उन्होंने वहां पर होमरूल लीग जैसा प्रयोग देखा था, उसी तरह का प्रयोग उन्होंने भारत में करने का सोचा।[6]

सामाजिक योगदान और विरासत

सन 1956 में लोकमान्य तिलक पर भारत सरकार द्वारा जारी एक डाक टिकट

लोकमान्य तिलक ने सबसे पहले ब्रिटिश राज के दौरान 'पूर्ण स्वराज' की मांग उठाई। उन्होंने जनजागृति का कार्यक्रम पूरा करने के लिए महाराष्ट्र में गणेश उत्सव तथा शिवाजी उत्सव सप्ताह भर मनाना प्रारंभ किया। इन त्योहारों के माध्यम से जनता में देशप्रेम और अंग्रेजों के अन्यायों के विरुद्ध संघर्ष का साहस

भरा गया। नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिक सम्मेलन में भाषण करते हुए उन्होने पूरे भारत के लिए समान लिपि के रूप में देवनागरी की वकालत की और कहा कि समान लिपि की समस्या ऐतिहासिक आधार पर नहीं सुलझायी जा सकती। उन्होने तर्कपूर्ण ढंग से दलील दी कि रोमन लिपि भारतीय भाषाओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। 1905 में नागरी प्रचारिणी सभा में उन्होने कहा था, "देवनागरी को समस्त भारतीय भाषाओं के लिए स्वीकार किया जाना चाहिए।"[7]

पुस्तकें

तिलक ने यूँ तो अनेक पुस्तकें लिखीं किन्तु श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या को लेकर मांडले जेल में लिखी गयी गीता-रहस्य सर्वोत्कृष्ट है जिसका कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है।[8]

- वेद काल का निर्णय (The Orion)
- आर्यों का मूल निवास स्थान (The Arctic Home in the Vedas)
- श्रीमद्भागवतगीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र
- वेदों का काल-निर्णय और वेदांग ज्योतिष (Vedic Chronology - Vedang Jyotish)
- हिन्दुत्व,

निष्कर्ष

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के जनक, साहसी पत्रकार, आधुनिक भारत के कौटिल्य, महान शिक्षाशास्त्री, उत्कृष्ट तर्कशास्त्री, विद्वान विचारक एवं दार्शनिक, व्यावहारिक समाज सुधारक, मानवतावादी, कुशल संगठनकर्ता, उदार परम्परावादी एवं दृढ निश्चयी व्यक्तित्व के धनी थे।

भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। लोकमान्य तिलक का योगदान भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में 'गाँधी युग' 1915 से प्रारम्भ हुआ और 'गांधी युग' प्रारम्भ होने से पूर्व के 25 वर्षों में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राजनीतिक चिन्तन में सबसे अधिक एवं प्रभावी योगदान लोकमान्य तिलक का रहा हैं।

तत्कालीन राजनीति में उनके प्रवेश ने राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा को ही बदल दिया और राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नये युग की शुरूआत की जिसे भारतीय राजनीति का उग्रवादी युग कहा जाता हैं। आम जनता से विमुख, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित और ब्रिटिश नौकरशाही के सहारे रेंगने वाली, उदारवादी राजनीति राष्ट्रीय आंकाक्षाओं की प्राप्ति में जब असफल सिद्ध हुई और राष्ट्र निराशा के अंधकार में डुबने लगा तब तिलक ने राष्ट्रीय चेतना एवं आकांक्षाओं को नये आयाम देकर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को भरपूर योगदान दिया।

इस शोध लेख का प्रमुख उद्देश्य लोकमान्य तिलक के बहु आयामी व्यक्तित्व के बारे में जानना था। तिलक अपनी मातृभूमि से बहुत प्यार करते थे। उन्हें देश से बहुत प्यार था। उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी देश की खुशहाली के लिए हर तरह की कोशिशें और कुर्बानी दीं। बचपन से ही उन्हें अपने देश से प्यार विरासत में मिला था। वह भारत को दुनिया में एक खुशहाल और मजबूत देश बनाना चाहते थे। उन्हें भारतीय कल्चर, धर्म, कला और परंपरा में गहरी और बहुत ज्यादा आस्था थी। उन्होंने हमारे देश की तुलना भगवान से की। तिलक के शब्दों में, श्भगवान और हमारा देश अलग नहीं हैं। संक्षेप में, हमारा देश भगवान का एक रूप है। भगवान के प्यार की तरह देश के लिए प्यार को छोटी-मोटी जगह और कम्युनलिज्म से ऊपर उठना होगा।श महान स्वतंत्रता सेनानी और लोगों के नेता ने अपने श्स्वराज, स्वदेशी, बहिष्करण और नेशनल एजुकेशनश के जरिए सच्चे शब्दों में भारत की तरक्की और डेवलपमेंट का नक्शा बनाया था।

सन्दर्भ

1. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी - प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, पृष्ठ 288-290
2. प्रतिनिधि भारतीय राजनीतिक विचारक- साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा डॉ. पुखराज जैन पृष्ठ- 166
3. वी. पी. शर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन पृष्ठ- 252
4. केलकर, भालचंद्र कृष्णजी (1981): तिलक विचार, श्री विद्या प्रकाशन, पुणे।
5. पत्रिका, अमृता बाजार (एड) (1918): स्टीमर में एक कदम, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पब्लिकेशन, पुणे
6. तिलक, बाल गंगाधर (1917): केसरी अखबार
7. तिलक, बाल गंगाधर (1923): गीता रहस्य, तिलक ब्रदर्स, पुणे
8. तिलक, बाल गंगाधर (1955): ओरियन, तिलक ब्रदर्स, पुणे

महिलाओं की शिक्षा में कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (सीएसआर) कार्यक्रमों का योगदानः छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में

हुमप्रभा साहू

शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रो० एल.एस. गजपाल

शोध निर्देशक, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

सारांश – यह अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदाबाजार जिले के विशेष संदर्भ में महिलाओं की शिक्षा में कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी (सीएसआर) कार्यक्रमों की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है, इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि सीएसआर आधारित शैक्षिक कार्यक्रमों ने बालिकाओं की शिक्षा, वयस्क महिलाओं की साक्षरता, डिजिटल साक्षरता तथा कौशल-आधारित शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया है। अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतों एवं सीएसआर रिपोर्टों के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं।

अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि सीएसआर कार्यक्रमों ने विद्यालयों की संरचनाओं के विकास, छात्रवृत्ति, डिजिटल शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण तथा जागरूकता अभियानों के माध्यम से महिला शिक्षा की पहुँच और गुणवत्ता दोनों में सुधार किया है। इन्ही कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिलाओं की साक्षरता में वृद्धि, बालिकाओं के ड्रॉप आउट दर में कमी, विद्यालय उपस्थिति में सुधार, आर्थिक आत्मनिर्भरता और समाज में सहभागिता जैसे सकारात्मक परिवर्तन देखा गया है। इन प्रयासो के बाद भी ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता की कमी, संसाधनों की कमी तथा कार्यक्रमों का उचित निगरानी न होना जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सीएसआर कार्यक्रम महिलाओं की शिक्षा की स्तिथि में सुधार के प्रभावी साधन हैं।

शब्द-कुंजी – महिला शिक्षा, कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी, सशक्तिकरण, डिजिटल साक्षरता, कौशल विकास, ग्रामीण शिक्षा, सामाजिक विकास।

प्रस्तावना – शिक्षा मनुष्य के साथ संपूर्ण समाज के विकास के लिए सबसे महत्वपूर्ण साधन हैं, किसी भी समाज के विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उस समाज के अंतर्गत आने वाले मनुष्य अर्थात स्त्री व पुरुष समान रूप से शिक्षित हो द्य भारतीय समाज में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति प्राचीन काल से ही दयनीय रही है इसके पीछे पितृसत्तात्मक परिवार, लैंगिक असमानता, रूढ़िवादिता, संसाधनों का अभाव जैसे अनेक कारण जिम्मेदार रहें है वर्तमान में औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, ने महिला शिक्षा को प्रोत्साहित किया है सीएसआर वह सिद्धांत है जिसके अंतर्गत कंपनियां केवल आर्थिक लाभ कमाने तक सीमित न होकर समाज, समुदाय, पर्यावरण और हितधारको के प्रति जिम्मेदारी निभाती है। सीएसआर के अंतर्गत संस्थाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण सरंक्षण, समाज कल्याण, व सामाजिक समानता जैसे क्षेत्रों में योगदान देती है द्य लैंगिक असमानता को कम करने व समाज के विकास को बढ़ावा देने हेतु सीएसआर महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करता है इसमे सरकारी प्रयास तो जिम्मेदार हैं ही किन्तु सीएसआर ने भी इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है, विशेषकर बलौदाबाजार जैसे ग्रामीण – औद्योगिक क्षेत्र मे। उक्त अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया है कि सीएसआर के माध्यम से महिलाओं की शिक्षा की स्तिथि में क्या सुधार हुआ है।

अध्ययन का महत्व – यह अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में महिला शिक्षा पर सीएसआर का प्रभाव कम अध्ययनित विषय है, बलौदाबाजार जिला औद्योगिक-ग्रामीण अंतर्संबंध का उदाहरण है, सीएसआर निवेश और सामाजिक विकास के संबंध को समझने में सहायक है, जोकि सामाजिक विकास में सीएसआर का योगदान, महिला शिक्षा में सीएसआर की भूमिका, महिला शिक्षा का सामाजिक विकास में योगदान को समझने में सहायक है।

साहित्य समीक्षा –

Jha, Shekhar (2020), का अध्ययन महिलाओं की शिक्षा का उनके सशक्तिकरण में योगदान पर आधारित है जो नेपाल के काठमांडू का है क्योंकि नेपाल भारत के निकटवर्ती देशों में है अतः भारतीय शोधों का अन्य देशों को योगदान हेतु भी यह अध्ययन किया गया है। अध्ययन हेतु काठमांडू क्षेत्र के

325 महिला उत्तरदाताओं का चयन फोकस निदर्शन के द्वारा किया गया है जिसमें विश्वविद्यालय में प्रतिवेदन का भी अध्ययन किया गया है व तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है जिसमें यह पाया गया कि नेपाल में व्यवस्था के कारण महिलाओं को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता एवं विधवाओं की स्तिथि खराब शिक्षा के परिणामस्वरूप अत्यंत दयनीय यहाँ तक कि वे यौन कर्मी बनने हेतु मजबूर हो जाती है यहां नेपाल का नवीन संविधान भी बहुत सीमा तक पितृ सत्तात्मक समाज का समर्थन करता है एवं जितनी महिलाएं शिक्षित है उनका अपने दैनिक एवं व्यवसायिक जीवन में निर्णय लेने की क्षमता अशिक्षित महिलाओं से बेहतर है अत: नेपाल को बेहतर प्रदर्शन के लिए अपने शिक्षा से संबंधित ढांचे में सुधार करने की आवश्यकता है।

Kori Aasha Deepak (2019), सीएसआर गतिविधियों का महिलाओं के सशक्तिकरण में योगदान ज्ञात करना है इस अध्ययन हेतु इन्होंने उद्देश्य पूर्ण निदर्शन विधि द्वारा 43 इंजीनियरिंग संगठनों का चयन किया था जिसमें से 13 संगठन बंद हो चुके थे अत: इन्होंने केवल 30 संगठनों में अध्ययन किया अध्ययन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया इसके निष्कर्ष में यह पाया गया कि भारत में सीएसआर परोपकार और गांधीवादी ट्रस्टीशिप मॉडल पर आधारित है अध्ययन में यह पाया गया सी एसआर के तहत महिलाओं को दिया जाने वाला कौशल प्रशिक्षण उन्हें आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने में सहायक है इसमें इन्होंने यह सुझाव दिया है कि यदि महिलाओं के स्वरोजगार को वेतन भोगी रोजगार में परिवर्तित किया जाए तो यह अर्थव्यवस्था के लिए अत्यंत सकारात्मक निवेश होगा।

अध्ययन के उद्देश्य -

1. बलौदाबाजार जिले में CSR आधारित शैक्षिक कार्यक्रमों का अध्ययन करना।
2. महिला शिक्षा में CSR कार्यक्रमों की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. महिला शिक्षा से जुड़े सामाजिक और आर्थिक प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. महिला शिक्षा की चुनौतियों और सुधार की संभावनाओं की पहचान करना।

अध्ययन पद्धति -

प्रस्तुत अध्ययन में अध्ययन पद्धति तीन भागो में विभक्त है -

(अ) अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त परिचय - नवगठित बलौदाबाजार जिले की स्थापना 01 जनवरी 2012 को हुआ है। बलौदाबाजार तहसील के रूप में सौ वर्षों के इतिहास को अपने आप में समेटा हुआ हैं। अंग्रेजी शासन के समय 1854 से 1864 तक बलौदाबाजार व तरेंगा रायपुर जिले के अंग से लेकर 1973 में बलौदा बाजार को प्राप्त नगर पालिका के दर्जे तक बलौदाबाजार का वैभवशाली इतिहास रहा हैं। किवदंती के अनुसार पूर्व में यहां महाराष्ट्र, हरियाणा, गुजरात आदि प्रांतों के व्यापारी बैल, भैंसा (बोदा) के खरीदी - बिक्री करने नगर के भैंसा सरा में एकत्रित होते थे जिसके कारण इसका नाम बैलबोदा बाजार एवं बाद में बलौदाबाजार के रूप में प्रचलित हुआ। बलौदाबाजार जिले का सोनाखान क्षेत्र छत्तीसगढ़ के स्वतंत्रता संग्राम के प्रथम शहीद वीरनारायण सिंह से संबंधित हैं। इस जिले में गिरौदपुरी, दामाखेड़ा, सोनाखान, तुरतुरिया आदि महत्वपूर्ण स्थल यहां विद्यमान हैं। जो इसके पर्यटन के अवसर को दर्शाते हैं बलौदाबाजार जिले का क्षेत्रफल 4748.44 वर्ग कि.मी. व जनसंख्या 13,05,343 है। उक्त अध्ययन हेतु चार ग्रामों रवान, अर्जुनी, पवसरी, खैरताल का चयन किया गया है। उक्त चारो ग्रामों में महिलाओं की शैक्षिक स्थिति ग्रामीण बहुल आबादी एवं सीमित उच्च शिक्षा संस्थान के कारण निम्न रही है एवं यहाँ अंबुजा सीमेंट फाउंडेशन भाटापरा यूनिट, के सीएसआर गतिविधियों के तहत महिलाओं के शैक्षिक स्तिथि में सुधार हेतु अनेक प्रयास किए जा रहें है।

(ब) उत्तरदाताओं का चयन - प्रस्तुत अध्ययन में सीएसआर के माध्यम से महिलाओं के शिक्षा हेतु किए जा रहे गतिविधियों एवं उसके प्रभावों को जानने का प्रयास किया गया है इस अध्ययन हेतु उत्तरदाताओं का चयन बलौदा बाजार जिले के चयनित चार ग्रामों से 40 उत्तरदाताओं का चयन स्तरीकृत यादृच्छिक निदर्शन प्रणाली द्वारा किया गया है।

(स) तथ्य संकलन हेतु चयनित उपकरण एवं प्रविधि - शोध में अध्ययन पद्धति एवं उपकरण का विशेष महत्व होता है अध्ययन हेतु वर्णनात्मक एवं विश्लेषण शोध प्रारूप का उपयोग किया गया है एवं तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची उपकरण के रुप में लिया गया है चूंकि साक्षात्कार प्रविधि के प्रयोग में उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष संपर्क के कारण अवलोकन प्रविधि का भी प्रयोग किया गया है साथ ही अध्ययन में विषय आधारित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, शासकीय एवं गैर शासकीय संगठनों के प्रतिवेदनों, प्रकाशित शोध जर्नल, इंटरनेट बेबसाइट, आदि साधन का उपयोग द्वितीयक समंकों के संकलन के लिए किया गया है।

उत्तरदाताओं की सामाजिक - शैक्षिक स्तिथि -

अध्ययन में सम्मिलित 40 महिला उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं शैक्षिक पृष्ठभूमि से ज्ञात हुआ कि अधिकांश प्रतिभागी ग्रामीण परिवेश तथा सीमित आय वाले परिवारों से संबंधित हैं। शिक्षा स्तर प्राय: प्राथमिक से माध्यमिक के बीच पाया गया, जबकि उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं की संख्या कम रही। पारिवारिक स्थिति में विवाहित महिलाओं का अनुपात अधिक रहा और बड़ी संख्या गृहिणियों की थी, हालांकि कुछ महिलाएँ स्वरोजगार अथवा स्थानीय कार्यों से भी जुड़ी थीं। यह पृष्ठभूमि अध्ययन क्षेत्र की वास्तविक सामाजिक परिस्थिति को दर्शाती है तथा ब्रै कार्यक्रमों के प्रभाव के आकलन के लिए आधार प्रदान करती है।

आँकड़ो का प्रस्तुतिकरण एवं विश्लेषण –

सारणी क्रमांक - 1 महिला शिक्षा से संबंधित सीएसआर कार्यक्रम

क्रमांक	*सीएसआर कार्यक्रम*	*लाभार्थी महिलाओं की संख्या*	*प्रतिशत (%)*
1	छात्रवृत्ति / वित्तीय सहायता	11	27.5
2	वयस्क साक्षरता	19	47.5
3	डिजिटल साक्षरता		
	9	22.5	
4	कौशल विकास	23	57.5
5	स्कूल वापसी	7	17.5
6	शैक्षिक सामग्री वितरण	25	62.5

उक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि बलौदाबाजार जिले में सीएसआर कार्यक्रमों के अंतर्गत सबसे अधिक महिलाओं को शैक्षिक सामग्री (62.5%) और कौशल विकास प्रशिक्षण (57.5%) मिली।

वयस्क साक्षरता कक्षाओं में 47.5% महिलाएँ शामिल हुई ,जबकि डिजिटल साक्षरता और ड्रॉप ख्र आउट पुनः नामांकन जैसी गतिविधियों में और सुधार कि आवश्यकता है।

सारणी क्रमांक - 2 सीएसआर कार्यक्रमों का महिला शिक्षा पर प्रभाव

क्रमांक	*प्रभाव*	*सहमत*	*असहमत*	*अनिर्णीत*
1.	नामांकन में वृद्धि	27	7	6
2.	विद्यालयीन उपस्तिथि में सुधार /निरंतरता	25	9	6
3.	साक्षरता दर में वृद्धि	31	4	5
4.	आत्मविश्वास में वृद्धि	33	3	4
5.	कौशल एवं रोजगार योग्यता में वृद्धि	23	11	6
6.	निर्णय क्षमता / सामाजिक भागीदारी	24	9	7

उक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि सीएसआर गतिविधियों का सबसे सकारात्मक प्रभाव आत्मविश्वास (33/40) और साक्षरता स्तर (31/40) पर पड़ा है द्य नामांकन (27/ 40) और पढ़ाई कि निरंतरता (25/ 40)में भी अच्छी वृद्धि हुई, जबकि रोजगार / कौशल योग्यता में 23/ 40 महिलाओं ने सुधार महसूस किया द्य

सारणी क्रमांक - 3 कार्यक्रम क्रियान्वयन में चुनौतियाँ

क्रमांक	*प्रमुख समस्या*	*सहमत (%)*	*गंभीरता*
1.	जागरूकता की कमी	21(52.5%)	उच्च
2.	आर्थिक बाधाएँ	17(42.5%)	उच्च
3.	पारिवारिक / सामाजिक प्रतिबंध	15 (37.5%)	मध्यम
4.	संसाधन / अवसरंचना की कमी	13(32.5%)	मध्यम
5.	समय / कार्यभार अधिक होना	9(22.5%)	निम्न

उक्त सारणी से ज्ञात होता है कि कार्यक्रम किरयानवयन में सबसे बड़ी बाधा जागरूकता की कमी (52.5 %) और पारिवारिक प्रतिबंध (42.5%) है द्य आर्थिक बाधाएँ (37.5%) और समय की कमी (32.5%) मध्यम स्तर की है, जबकि आवागमन की समस्या कम (22.5%) हैं द्य

सारणी क्रमांक - 4 सीएसआर - समग्र मूल्यांकन

क्रमांक	*कथन*	*पूर्ण सहमति*	*सहमति*	*असहमति*	*पूर्ण असहमति*
1.	सीएसआर से महिला शिक्षा को लाभ	21	13	4	2
2.	कार्यक्रम स्थानीय जरूरतों के अनुरूप हैं	17	14	5	4
3.	सीएसआर कार्यक्रम दीर्घकालीक प्रभाव डालेंगे	16	15	5	4

उक्त सारणी से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश महिलाओं ने माना कि सीएसआर कार्यक्रमों से उनकी शिक्षा में लाभ हुआ (21 पूर्ण सहमति , 13 सहमति)। कार्यक्रम स्थानीय जरूरतों के अनुसार है, इस पर भी अधिकांश ने सहमति जताई। हालांकि कुछ महिलाओं ने इसे अपर्याप्त बताया, जो यह दर्शाता है कि पहुँच और निरंतरता में सुधार की आवश्यकता है।

चर्चा - बलौदाबाजार जिले के चयनित चार ग्रामों में सीएसआर कार्यक्रमों का महिला शिक्षा पर बहुआयामी प्रभाव देखने को मिला है। तालिकाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सीएसआर गतिविधियों में सबसे अधिक लाभार्थियों को शैक्षिक सामग्री वितरण (62.5%) और कौशल विकास प्रशिक्षण (57.5%) मिली। वयस्क साक्षरता कक्षाओं में लगभग आधी महिलाएँ शामिल हुई, जबकि डिजिटल साक्षरता और स्कूल ड्रॉप - आउट पुनः नामांकन में कम सहभागिता देखी गई। अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि सीएसआर कार्यक्रम मुख्य रूप से शैक्षिक और कौशल विकास पर केंद्रित है, और डिजिटल एवं पुनः नामांकन कार्यक्रमों का विस्तार आवश्यक है।

सीएसआर कार्यक्रमों ने महिलाओं की शिक्षा में सकारात्मक परिवर्तन लाया है। नामांकन ज(27/40) और पढ़ाई की निरंतरता (25/40) में वृद्धि हुई है, जबकि साक्षरता स्तर (31/40) और आत्मविश्वास (33/40) में और अधिक प्रभाव देखने को मिला। यह दर्शाता है कि सीएसआर केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि महिलाओं के व्यक्तित्व, सामाजिक भागीदारी और आत्मनिर्भरता को भी सशक्त कर रही है। रोजगार / कौशल योग्यता में सुधार अपेक्षाकृत कम (23/40) है, जिससे पता चलता है कि शिक्षा और व्यवसायिक अवसरों के बीच बेहतर समन्वय की आवश्यकता है।

तालिकाओं से यह भी स्पष्ट हुआ की सीएसआर क्रियान्वयन में सामाजिक और पारिवारिक प्रतिबंध (42-52%) सबसे बड़ी चुनौती है। आर्थिक और समय संबंधी बधाएँ मध्यम स्तर की हैं, जबकि आवागमन की समस्या कम रही। इसका मतलब है कि सीएसआर कार्यक्रमों की सफलता केवल संसाधन या आर्थिक सहायता पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि सामाजिक जागरूकता और पारिवारिक समर्थन पर भी निर्भर करती है।

सुझाव -

1. डिजिटल शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण का विस्तार - अधिक से अधिक महिलाओं तक डिजिटल साक्षरता और कौशल प्रशिक्षण पहुँचाना।
2. सामाजिक और पारिवारिक जागरूकता अभियान - परिवार और समुदाय में महिला शिक्षा के महत्व को बढ़ावा देना।
3. कार्यक्रमों की निरंतरता और मॉनिटरिंग - सीएसआर गतिविधियों की निरंतर समीक्षा और फीडबैक के मध्यम से आवश्यक सुधार करना।
4. स्थानीय जरूरतों के अनुसार योजना बनाना - प्रत्येक गाँव या समुदाय के अनुरुप गतिविधियों की प्राथमिकता तय करना।

निष्कर्ष-

यह अध्ययन दर्शाता है कि सीएसआर कार्यक्रमों ने बलौदाबाजार जिला के चयनित ग्रामों में महिला शिक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है, विशेषतः अंबुजा सीमेंट फाउंडेशन की भाटापारा इकाई के कार्यक्रमों ने। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि शैक्षिक सामग्री वितरण, वयस्क साक्षरता कक्षाएँ, कौशल विकास प्रशिक्षण और सामुदायिक जागरूकता गतिविधियों ने महिलाओं की शैक्षिक भागीदारी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिक्षा से जुड़ी निरंतरता, बुनियादी साक्षरता, आत्मविश्वास तथा सामाजिक सहभागिता में सकारात्मक परिवर्तन दर्ज हुआ। यह प्रभाव केवल औपचारिक शिक्षा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि महिलाओं की निर्णय क्षमता और आत्मनिर्भरता को भी सुदृढ़ करता दिखाई दिया।

डेटा विश्लेषण से यह भी संकेत मिलता है कि सीएसआर कार्यक्रमों की प्रभावशीलता उन क्षेत्रों में अधिक रही जहाँ परिवार और समुदाय का सहयोग उपलब्ध था। दूसरी ओर, सामाजिक परंपराएँ, पारिवारिक दायित्व और जागरूकता का अभाव अभी भी कुछ महिलाओं की भागीदारी को सीमित करते हैं। डिजिटल शिक्षा और रोजगारोन्मुख कौशल के क्षेत्र में प्रभाव अपेक्षाकृत मध्यम पाया गया, जो भविष्य की रणनीतियों के लिए दिशा प्रदान करता है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि सीएसआर पहलें महिला शिक्षा को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ ग्रामीण समाज में दीर्घकालिक सामाजिक परिवर्तन की आधारशिला रखती हैं। यदि कार्यक्रमों को स्थानीय आवश्यकताओं, सामाजिक संवेदनशीलता और निरंतर मूल्यांकन के साथ संचालित किया जाए, तो वे महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को और अधिक व्यापक तथा टिकाऊ बना सकते हैं।

संदर्भ - सूची -

Kori, A. D. (2019). community Initiatives of carporate social Responsibility in engineering organigation in mumbai a study of women beneficiaries. Shodhganga@INFLIBNET.

kumar, s. (2021). corporate social responcibility protection of Human Right's a comparative study. Shodhganga@INFLIBNET.

Shekhar, J. (2020). Women Acess to educcation and its effect on their empowerment, A survey of Kathmandu Region. Shodhganga@INFLIBNET.

Ministry of Corporate Affairs. (2013). Companies Act, 2013: Corporate Social Responsibility provisions. Government of India.

UNESCO, (2015). Education for All 2000-2015: Achievements and challenges. UNESCO Publishing.

UN Women, (2018). Turning promises into action: Gender equality in the 2030 Agenda for Sustainable Development. United Nations.

Ambuja Cement Foundation. (2022). Annual report. Ambuja Cement Foundation.

Government of Chhattisgarh. (2021). Economic survey of Chhattisgarh. Directorate of Economics and Statistics.

कमार जनजातियों के लोक व्यंजन पर वैश्वीकरण के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन

कविता सोम

शोधार्थी, प्रध्यापक, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य अध्ययन शाला

डॉ० हेमलता बोरकर वासनिक

शोध निर्देशिका, पं. रविशंकर शुक्ला विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

सारांश-

कमार जनजाति भारत की विशेष पिछड़ी जनजातियों में से एक है, जो मुख्यत: छत्तीसगढ़ के गरियाबंद, धमतरी, महासमुंद और कांकेर जिलों के जंगलों, पहाड़ियों और घाटियों में निवास करती है। पारंपरिक रूप से कमार जनजाति की भोजन व्यवस्था वन संसाधनों, देशी मोटे अनाजों, मौसमी सब्जियों तथा स्वदेशी ज्ञान पर आधारित रही है जो न केवल पोषण का स्रोत थी बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक जीवन का अभिन्न अंग भी थी। यह शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ की विशेष संरक्षित कमार जनजाति के लोक व्यंजनों पर वैश्वीकरण के प्रभावों के विश्लेषण पर आधारित है। प्रस्तुत शोध पत्र हेतु 270 उत्तरदाता का चयन उद्देश्य पूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया हैं। प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची उपकरण एवं अवलोकन प्रविधि का उपयोग किया गया हैं।

प्राथमिक तथ्यों के संकलन से स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत बाजारवाद, उपभोग संस्कृति, संचार माध्यमों तथा सरकारी नीतियों के प्रभाव से कमार जनजाति की पारंपरिक भोजन प्रणाली में उल्लेखनीय परिवर्तन आया है। एक ओर जहाँ डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों, परिष्कृत अनाजों और बाहरी भोजन आदतों का प्रसार हुआ है, वहीं दूसरी ओर कोदो, कुटकी जैसे पारंपरिक अनाजों तथा लोक व्यंजनों का उपयोग घटता जा रहा हैए जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी खाद्य पदार्थों के प्रति अभिरुचि में परिवर्तन आया है, स्वदेशी खाद्य पदार्थों का क्षरण, स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में वृद्धि और सांस्कृतिक पहचान पर संकट देखा जा रहा है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह अध्ययन सांस्कृतिक परिवर्तन, वैश्वीकरण, संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण तथा उपभोगवाद की अवधारणाओं के माध्यम से इन परिवर्तनों की व्याख्या करता है।

शब्द कुंजी- कमार जनजाति, लोक व्यंजन, भोजन, संस्कृति, वैश्वीकरण

प्रस्तावना.

भारत एक बहु-सांस्कृतिक एवं बहु-जातीय देश है, जहाँ जनजातीय समाज अपनी विशिष्ट जीवन-शैली, परंपराओं और सांस्कृतिक पहचान के लिए जाना जाता है। इन जनजातियों की भोजन प्रणाली केवल पोषण का साधन नहीं, बल्कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक जीवन से गहराई से जुड़ी हुई है। छत्तीसगढ़ की विशेष संरक्षित जनजाति कमार जनजाति इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसकी पारंपरिक भोजन व्यवस्था वन संसाधनों, मोटे अनाजों, मौसमी कंद-मूल, जंगली साग-सब्जियों तथा स्वदेशी ज्ञान पर आधारित रही है।

कमार जनजाति के लोक व्यंजन उनके सामुदायिक जीवन, पर्व-त्योहार, धार्मिक अनुष्ठानों तथा पारिवारिक संरचना का अभिन्न अंग रहे हैं। महुआ, कोदो-कुटकी, सांवा, जंगल से प्राप्त कंद-मूल एवं हस्तनिर्मित मसालों का उपयोग न केवल उनकी आत्मनिर्भरता को दर्शाता है, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलन और सामूहिकता की भावना को भी प्रतिबिंबित करता है। परंतु वर्तमान समय में वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने जनजातीय समाज की इस पारंपरिक भोजन संस्कृति को तीव्र रूप से प्रभावित किया है।

वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप बाजारवाद, उपभोग संस्कृति, संचार माध्यमों का विस्तार, सरकारी योजनाएँ, शहरीकरण तथा बाहरी समाज से बढ़ता संपर्क कमार जनजाति की पारंपरिक भोजन प्रणाली में परिवर्तन ला रहा है। पैकेज्ड खाद्य पदार्थों, परिष्कृत अनाजों, बाहरी व्यंजनों और त्वरित भोजन (फास्ट फूड) की बढ़ती उपलब्धता ने लोक व्यंजनों की उपयोगिता और सामाजिक महत्व को धीरे-धीरे कम किया है। इसके परिणामस्वरूप पोषण असंतुलन, सांस्कृतिक क्षरण तथा पारंपरिक ज्ञान के लुप्त होने की आशंका उत्पन्न हो रही है।

यह समाजशास्त्रीय अध्ययन कमार जनजाति के लोक व्यंजनों पर वैश्वीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन उनकी पारंपरिक भोजन व्यवस्था को प्रभावित कर रहे हैं। साथ ही यह अध्ययन लोक व्यंजनों के संरक्षण, सांस्कृतिक पहचान की पुनर्स्थापना तथा सतत विकास के संदर्भ में उनके महत्व को रेखांकित करता है।

शोध उद्देश्य

- कमार जनजाति के पारंपरिक लोक व्यंजनों की संरचना, सामाजिक-सांस्कृतिक महत्व तथा स्वदेशी भोजन प्रणाली का अध्ययन करना।
- वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत बाजारवाद, उपभोक्ता संस्कृति एवं आधुनिक भोजन प्रवृत्तियों के कारण कमार जनजाति के लोक व्यंजनों में आए परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।

शोध साहित्य समीक्षा-

कुजुर निस्तर (2015) अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि कमार जनजाति पर वैश्वीकरण का प्रभाव आंशिक रूप से परिलक्षित होता है। शहरी समाज से बढ़ते संपर्क के कारण दैनिक उपयोग की भौतिक वस्तुओं-जैसे टेबल, कुर्सी, टेलीविजन, साइकिल, मोटरसाइकिल और मोबाइलकृका उपयोग बढ़ा है। हालांकि आजीविका के साधनों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं दिखता और अधिकांश परिवार पारंपरिक व्यवसायों पर निर्भर हैं। शिक्षा एवं स्वास्थ्य क्षेत्र में भी सीमित प्रगति हुई हैय प्राथमिक स्तर तक उपस्थिति बढ़ी है, पर उच्च शिक्षा में निरंतरता का अभाव है। स्वास्थ्य सेवाओं में आशाधिमतानिन योजना से जागरूकता आई है। समुचित नीतिगत क्रियान्वयन से सकारात्मक परिवर्तन संभव है।

एक्का शांति (2025) यह अध्ययन वैश्वीकरण के जनजातीय समाज पर बहुआयामी प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। एक ओर आधुनिक शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, रोजगार और वैश्विक बाजारों तक पहुंच ने आर्थिक अवसरों और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा दिया है। वहीं दूसरी ओर भूमि अधिग्रहण, विस्थापन, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन तथा उपभोक्तावाद के कारण पारंपरिक जीवनशैली, सांस्कृतिक पहचान और सामुदायिक संरचना पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अध्ययन विकास मॉडलों और नीतिगत कमियों को रेखांकित करते हुए जनजातीय अधिकारों के संरक्षण, सांस्कृतिक संवर्धन और समावेशी, स्थायी विकास की आवश्यकता पर बल देता है, ताकि संतुलित और सम्मानजनक प्रगति सुनिश्चित की जा सके।

नवीन कुमार सिंह संतोष कुमार (2024) यह अध्ययन भारतीय जनजातीय समुदायों पर वैश्वीकरण के बहुआयामी प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। निष्कर्षों से स्पष्ट है कि वैश्वीकरण ने सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षिक तथा स्वास्थ्य क्षेत्रों में उल्लेखनीय परिवर्तन किए हैं। एक ओर आय और रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा कुछ क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता में सुधार देखा गया है, वहीं दूसरी ओर पारंपरिक रीति-रिवाजों, सांस्कृतिक प्रतीकों और धरोहर के क्षरण की प्रवृत्ति भी उभरकर सामने आई है। सेवाओं की गुणवत्ता और पहुँच में असमानताएँ विद्यमान हैं। अध्ययन समावेशी नीतियों और सांस्कृतिक संरक्षण की आवश्यकता पर बल देता है।

शोध प्रारूप

- विवरणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

अध्ययन पद्धति

प्रस्तुत शोध पत्र अनुभव जन्य तथ्यों पर आधारित हैं। यह शोध पत्र छत्तीसगढ़ राज्य के कमार जनजातियों पर केंद्रित हैं। छत्तीसगढ़ राज्य में कमार जनजाति मुख्य रूप में धमतरी जिले के तीन विकासखण्डों में निवास करती है अध्यन हेतु चयनित क्षेत्र नगरी एवं मगरलोड हैं। नगरी में जनजाति कमार परिवारों की कुल संख्या 1248 एवं मगरलोड में कमार जनजाति परिवार की संख्या 448 है। अध्ययन हेतु 1696 का 16 अर्थात 271 कमार परिवारों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन द्वारा किया गया है।प्रस्तुत शोध- पत्र पूर्णतः गुणात्मक शोध पर केंद्रित हैं, जिसके अंतर्गत कमार जनजातियों का में प्रचलित मान्यताओ का समजशास्त्रीय एवं नृजातीय प्रस्तुतीकरण किया गया हैं।

कमार जनजातियों के लोक व्यंजन पर वैश्वीकरण के प्रभाव

कमार जनजाति के लोक व्यंजनों पर वैश्वीकरण का प्रभाव आज एक महत्वपूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक विषय बन चुका है। इसे संक्षेप में लेकिन गहराई से इस प्रकार समझा जा सकता हैं।

1. पारंपरिक भोजन व्यवस्था

कमार जनजाति का भोजन मुख्यतः वन संसाधनों, देशी मोटे अनाज (कोदो-कुटकी, मड़िया), मौसमी कंद-मूल, साग-भाजी, महुआ, चिरौंजी, तेंदूपत्ता आदि पर आधारित रहा है। यह भोजन न केवल पोषणयुक्त था, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान, पर्व-त्योहार और सामूहिक जीवन से गहराई से जुड़ा था।

2. बाजारवाद और डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों

वैश्वीकरण के प्रभाव से अब गाँवों तक पैकेट खाद्य पदार्थ, रिफाइंड आटा, चावल, नमकीन, बिस्किट, शीतल पेय पहुँच गए हैं। इसके कारण पारंपरिक मोटे अनाजों का उपयोग घटा बच्चों और युवाओं में बाहरी भोजन की रुचि बढ़ी पोषण असंतुलन और स्वास्थ्य समस्याएँ बढ़ने लगीं

3. कृषि और वन आधारित खाद्य पर प्रभाव

वन क्षेत्रों में कटौती, वन कानूनों और नकदी आधारित अर्थव्यवस्था के कारण, कंद-मूल और जंगली खाद्य पदार्थों की उपलब्धता घटी ,परंपरागत संग्रहण और संरक्षण की विधियाँ कमजोर हुई बाजार से खरीदे गए खाद्य पदार्थों पर निर्भरता बढ़ी

4. सांस्कृतिक एवं अनुष्ठानिक परिवर्तन

जहाँ पहले नवा खाई, विवाह, पूजा-पाठ में पारंपरिक व्यंजन अनिवार्य थे, वहीं अब, कई स्थानों पर बाहरी भोजन शामिल होने लगा है ,पारंपरिक व्यंजन केवल प्रतीकात्मक रह गए हैं, युवा पीढ़ी को लोक व्यंजनों का ज्ञान सीमित रह गया है

5. सकारात्मक प्रभाव

वैश्वीकरण के कुछ सकारात्मक पहलू भी हैं,पोषण और स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी, सरकारी योजनाओं से खाद्यान्न की उपलब्धता हुई, कुछ पारंपरिक व्यंजन अब शोध और दस्तावेजीकरण के माध्यम से पहचान पा रहे हैं

6. निष्कर्ष

वैश्वीकरण ने कमार जनजाति के लोक व्यंजनों को परिवर्तन की दिशा में मोड़ दिया है। जहाँ एक ओर पारंपरिक भोजन संस्कृति क्षीण हो रही है, वहीं दूसरी ओर संरक्षण, पुनर्जीवन और अकादमिक शोध के अवसर भी उभर रहे हैं। आवश्यक है कि लोक व्यंजनों को सांस्कृतिक धरोहर मानते हुए उन्हें संरक्षण और प्रोत्साहन दिया जाए।

संदर्भ ग्रन्थ शुचि-

1. https://mainbhibharat.co.in/pvtg/know-about-kamar-tribe-pvtg-of-chattisgarh/
2. कुजुर निस्तर ग्रामीन विकास योजनाओ का आदिम जनजाति कमार पर प्रभाव Internationl Journal of Advonces in Social Sciences April- June 2015 Page 53.57
3. एक्का शांति वैश्वीकरण में जनजातिय समाज का विकास मुद्दे चुनौतियां Internationl Scientific Refereed Journal. Gyanshavryam vol. 08 , no. 01 January-February (2025)
4. नवीन कुमार सिंह संतोष कुमार जनजातियों पर वैश्वीकरण के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन रवनतदंस of advances and scholarly Researchers in Allied Education vol.21, issues . 05 year July 2024
5. https://share.google/Ubqqw7m0ORs0tb3PO
6. शर्मा, आर.-यादव, एम. (2020). ' जनजातीय स्वास्थ्य सेवाओं पर वैश्वीकरण के प्रभाव का मूल्यांकन।' स्वास्थ्य नीति और योजना, 35(5), 654-668.
7. सिन्हा, एस., पटेल, ए. (2023). वैश्वीकरण के प्रभावों पर सांस्कृतिक धरोहर का विश्लेषण: गुणात्मक और मात्रात्मक दृष्टिकोण।'' सांस्कृतिक धरोहर प्रबंधन जर्नल, 12(1), 45-62.
8. Tribal Food of Central India | Traditional Gond Cuisine https://www.pugdundeesafaris.com/blog/traditional-food-of-central-india/
9. Cuisine | Food, Culture & Tradition | Tribal Food | Unique Food https://theindiantribal.com/tribal/cuisine/

''छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति एवं आदिवासी जीवन''

डॉ० रश्मि पाण्डेय

सहायक प्राध्यापक हिंदी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर शासकीय महाविद्यालय, बलौदा, जिला- जांजगीर-चाम्पा (छ.ग.)

सारांश:

आज जनता द्वारा बिना किसी प्रदर्शन या ताम-झाम के बनाई गई कला को लोककला कहा जाता है। लोककला मनुष्य की अपनी सृजनात्मक कला प्रवृत्ति की प्रेरणा से बनती है। लोकला, सामुदायिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है। लोककला, भाषा या धर्म जैसी साझा विशेषताओं वाले लोगों के मध्य स्पष्ट रूप से परिभाषित भौगोलिक क्षेत्रों में मौजूद होती है। ऐसी ही लोककला, संस्कृति एवं सभ्यता से सम्पन्न छत्तीसगढ़ राज्य है, जो भारत के हृदय-स्थल पर स्थित है, जिसे प्रभू श्रीराम का ननिहाल भी कहा जाता है जो श्रीराम की कर्मभूमि भी रही है।, प्राचीन कला, संस्कृति एव सभ्यता, इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से अत्यंत ही सम्पन्न राज्य है। छत्तीसगढ़ की शिल्पकला में परंपरा और आस्था का अद्‌भूत समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ कि पारंपरिक शिल्पकला में काष्ठ, धातु, बांस और अर्चना व अलंकरण के लिए विशेष रूप से लोकप्रिय है। छत्तीसगढ़ की संस्कृति के अंतर्गत यहां के जनजीवन प्रसिद्ध उत्सव, हर पर्व में किये जाने वाले नृत्य, संगीत, मेला-मड़ई तथा लोक शिल्प आदि शामिल है।

बीज शब्द: लोक-संस्कृति, ननिहाल, सभ्यता, शिल्पकला, अलंकरण, जीवन्त, आच्छादित

छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति एवं कला बहुआयामी है, वनों से आच्छादित एवं आदिवासी जनजीवन की अधिकता के कारण यहां की कला में वनों, प्राकृति, प्राचीन परंपरा का विशेष महत्त्व है। छत्तीसगढ़ की लोककला में हमें विविध रंग देखने को मिलता है जिसमें लोकनृत्य विविध त्यौहार, लोक-गीत, मेला-मड़ई, शिल्प और हर पर्व में अलग-अलग बनाये जाने वाले व्यंजन छत्तीसगढ़ की पहचान है। यहाँ कि आभूषणों वस्त्रों का विशेष स्थान है जो यहां की संस्कृति को और अधिक समृद्ध एवं प्रभावशाली बनाती है।

छत्तीसगढ़ राज्य जीवन्त सांस्कृतिक परंपराओं से सम्पन्न है। यह प्रदेश कृषि प्रधान होने के कारण प्राय: यहां के सभी त्यौहार कृषि से किसी न किसी रूप में संबंधित है। छत्तीसगढ़ के तीज त्यौहार यहां की कृषि संस्कृति के अभिन्न अंग है। छत्तीसगढ़ अपनी सांस्कृतिक विरासत में समृद्ध है। राज्य में एक बहुत ही अद्वितीय और जीवंत संस्कृति का समावेश है। इस क्षेत्र में 35 से अधिक छोटी-बड़ी जनजातियाँ निवास करती है, जिसकी सभ्यता, संस्कृति, परम्परा, त्यौहार व भोजन छत्तीसगढ़ को संस्कृति सम्पन्न राज्य बनाती है। उनके लयबद्ध लोक संगीत, नृत्य और नाट्य परंपरा देखने का एक अलग ही आनंद है।

राज्य का सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय नृत्य-नाटक पंडवानी है, जो हिंदू महाकाव्य महाभारत का संगीतमय वर्णन है, जो हिंदू महाकाव्य महाभारत का संगीतमय वर्णन है। राउत नाचा, पंथी और सुआ इस क्षेत्र की कुछ अन्य प्रसिद्ध नृत्य शैली है। प्रदेश में यहाँ के आभूषणों वस्त्रों का विशेष स्थान है जो यहाँ की संस्कृति को और प्रभावशाली स्वरूप प्रदान करती है। सरल एवं सामान्य जीवन जीने वाले प्रकृति प्रेमी यहां के लोग अपनी परम्परा, रीति रिवाज और मान्यताओं का पालन करते हुए प्रकृति का सम्पन्न करते हैं

समय-समय पर ऋतुओं, तिथि और त्यौहार अनुसार विभिन्न उत्सवों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी होता है। प्रत्येक ग्राम, जिले, क्षेत्र की अपनी अलग मान्यताएँ व धार्मिक महत्त्व है। कला के द्वारा संगीत नृत्य के द्वारा यहां की परम्परा का हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होता है। छत्तीसगढ़ की कला जहां एक तरफ तकनीकी व वैज्ञानिक आधार रखती है, वहीं दूसरी ओर भाव एवं रस को सदैव प्राणतत्व बनाकर संजो के रखती है, यथा -

''कला के जिंहा भरमार हे
संस्कृति जिंहा के तिहार हे
बानी मा जिंहा पियार हे
अबड़ सुघ्घर उहां के संस्कार हे।
विभिन्न संस्कृतियों के संगम हे
तरह-तरह के व्यंजन हे
खेलों के विभिन्न परकार हे
सरलता के उहां सार हे।''[1]

छत्तीसगढ़ की प्राचीन कला:

छत्तीसगढ़ प्राचीन कला की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध राज्य है। छत्तीसगढ़ में प्रागैतिहासिक काल के अनेक शैल गृहों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इस काल में जब मानव पर्वत कुंदराओं पर निवास करता था, तब उसने इन शैलाश्रयों में चित्रांकन किया था, जो कि उनके अलंकरण एवं कला प्रियता का प्रमाण प्रस्तुत

करता है। रायगढ़ जिला स्थित कबरा पहाड़ सिंघनपुर में अंकित शैल चित्र इसके अनुपम उदाहरण हैं, जो भारतीय चित्रकला की प्राचीनतम धरोहर है। कुछ समय पहले महाकौशल इतिहास परिषद द्वारा राजनांदगाँव के चितवाडोंगरी तथा रायगढ़ के बसनाझार, ओंगना, कर्मागढ़ तथा लेखामाड़ा में शैल चित्र के अवशेष प्राप्त किये गये हैं। चितवाडोंगरी में मानव एवं पशु की आकृति चित्रित है, जिसे देखने से चित्रकाला की आरंभिक अवस्था का पता लगाया जा सकता है। इन्हें रंगों की जानकारी भी जो इनके तात्कालिक जीवन शैली को प्रतिबिम्बित करते हैं।

जिला अम्बिकापुर रामगढ़ को लोग विश्व की प्राचीनतमा नाट्यशाला के लिए जानते हैं।

''सन् 1848 में कर्नल आउस्ले ने प्रकाश में लाया था, किन्तु यहाँ उपलब्ध दुर्लभ भित्ति चित्रों के संबंध में बहुत कम प्रकाश पड़ सका है। रामगढ़ पहाड़ी के जोगीमारा गुफा जो कि सम्भवत: नृत्यांगनाओं का विश्राम स्थल था, जिसमें चित्र सुरक्षित भित्ति चित्र अजंता और बाघ के विश्व प्रसिद्ध भित्ति चित्रों से भी अधिक पुराने हैं।''[2]

छत्तीसगढ़ के प्राचीन कला केन्द्र

छत्तीसगढऋ की प्राचीनकला एवं धरोहरों में सिरपुर, राजिम तथा रतनपुर कला के प्रमुख केन्द्र हुआ करते थे। इसी शृंखला में भोरमदेव की कला भी है, जिसकी तुलना खजुराहों एवं कोणार्क जैसे विश्व धरोहरों से किया जाता है। इसे 'छत्तीसगढ़ का खजुराहो' कहा जाता है। रतनपुर कलचुरि कला का केन्द्र था, तो वही सिरपुर में सोमवंशी नरेशों के संरक्षण में कला का विस्तार हुआ। मल्हार में सोमवंशी एवं कलचुरियों की कलाओं का एक साथ विस्तार देखा गया। राजिम में सोमवंश, नलवंश और कलचुरि वंश से संबंधित कलाएँ विकसित होती रही। सोमवंशियों के शासनकाल में मल्लार सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र हुआ करता था। राजिम का शिल्प सिरपुर के स्थापत्यकला और मूर्ति शिल्प से प्रभावित है, वहीं भोरमदेव की कला कलचुरियों से प्रभावित प्रतीत होता है। भोरमदेव के मंदिर का स्थापत्य चंदेलों की खजुराहों शैली के अधिक समीप जान पड़ता है। यह मंदिर मध्ययुगीन मंदिरों के अधिक समीप जान पड़ता है। यह मंदिर मध्ययुगीन मंदिरों की विशेषताओं के अनुरूप भोरमदेव में नागवंशी और कलचुरि कलाओं का मिश्रित रूप प्रतीत होता है।

''सिरपुर की कला की विशेषता यह थी कि उनकी अधिकांश मूर्तियाँ हल्के लाल भूरे रंग की बलुआ पत्थर से बनी है तथा मुर्तियों की आकृति गोल, अंडाकार है जो गुप्तकालीन कलाशैली से प्रभावित जान पड़ती है।''[3]

छत्तीसगढ़ की प्रमुख गायनशैलियाँ

छत्तीसगढ़ के लोकगीत एवं गायन शैली क्षेत्र की विशाल कलात्मक योग्यता और इसके संगीतकारों और गायकों की रचनात्मक कला कौशल का प्रमाण है। छत्तीसगढ़ के लोकजनों के पास लोकगीतों की अपार सम्पदा है। यहाँ की प्रमुख गायन परम्पराओं में प्रमुख पंडवानी, भरथरी, लोरिकचंदा, बाँसगीत, ढोलामारू गायन आदि है। लोक संगीत की समस्त क्षमता एवं ऊर्जा लोक-गायन में समाहित है।

पंडवानी

पंडवानी महाभारत कथा पर आधारित छत्तीसगढ़ी लोक गायन का एक स्वरूप है। छत्तीसगढ़ी लोक-धुन में महाभारत की सम्पूर्ण गाथा को गायक अपने स्वर, बोली अभिनय, कथा-कथन और लोक संगीत द्वारा प्रस्तुति देता है। ये गायन परम्परा छत्तीसगढ़ की परधान तथा देवार जातियों की गायन परंपरा है। परधान गोंड़ की एक उपजाति है और देवार घुमन्तू जाति है। इन दोनों जातियों की बोली तथा वाद्यों में अंतर है। परधान जाति के कथा वाचक या वाचिका के हाथ में 'किंकनी' तथा देवारों के हांथों में रूसू होता है। परधानों और देवारों के हाथों में रूसू होता है। परधानों और देवारों ने पंडवानी लोक महाकाव्य को सम्पूर्ण में ख्याति दिलाई है। पंडवानी की दो शैली होती है -

(क) वेदमती शाखा (ख) कापालिक शाखा

आज पंडवानी गायकों में श्री झाझूराम देवांगन, प९श्री श्रीमती तीजन बाई, पुनाराम निषाद, रितु वर्मा, श्रीमती उषा बारले, श्रीमती प्रतिमा बारले आदि प्रमुख हैं।

भरथरी गायन

भरथरी गायन छत्तीसगढ़ की लोकगाथा है, यह राजा भरथरी और रानी पिंगला की कथा और उनके उपदेशों को लोक शैली में प्रस्तुत करती है। भरथरी गायन को सारंगी या एकतारे के साथ गाया जाता है। छत्तीसगढ़ में भरथरी गायन करने वाले लोग 'योगी' कहलाते हैं। उदाहरण -

''घोड़ा रोवय घोड़ेसार मा, घोड़ेसर मा वो, हाथी रोवय
हाथीसार मा
मोर रानी ये वो, महलों में रोवय
मोर रानी ये या, महलों में रोवय
येदे धरती में दिए लोटाए वो, से लोटाए वो,
भाई येदे जी
येदे धरती में दिए, लोटाए वो, ऐ लोटाए वो, भाई येदे जी
सुन लेबे नारी ये बाते ला, मोर बाते ला या, कात तो जवपनी
ये दिए हे''[4]

श्रीमती सुरूजबाई खांडे भरथरी-गाथा-गायन की शीर्ष लोक गायिका है। सुरूज बाई खांडे की गायन-शैली में एक मौलिक स्वर माधुर्य और आकर्षण की उपस्थिति है।

लोरिक चंदा गायन

लोरिक चंदा उत्तर भारत की सबसे प्रचलित लोकप्रिय प्रेम लोकगाथा है। यह लोकगीत नृत्य नाटक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। लोरिक चंदा गायन को छत्तीसगढ़ में चंदेनी गायन की संज्ञा दी जाती है। वर्त्तमान में चिन्तादास लोरिक चंदा चंदैनी के वरिष्ठ व श्रेष्ठ गायकों में से है। गीत नृत्य रात भर चलता है जिसमें पुरूष विशेष वेशभूषा में चंदेनी प्रेमगाथा नृत्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। नृत्य में टिमकी एवं ढोलक वाद्य यंत्र का उपयोग किया जाता है, यथा -

''राजा महर के बेटी ये ओ
लोरिक गावत हंवव चंदा
ये चंदा हे तोर
मोर जौने समें के बेटा म ओ
लोरिक गावत हंवव चंदा
ये चंदा हे तोर।''[5]

बाँस गीत

बाँस गीत मूलत: गाथा गायन है। इसमें गायक रागी और वादक प्रमुख होते हैं। गायक कथा का गाता है और रागी हूंकारी भरता है वादक बाँस बजाता है। बाँस गीत के गायक मुख्यत: राऊत या अहीर जाति के लोग होते हैं। बाँस-गीत के माध्यम से अक्सर करूणगाथा गायी जाती है। बाँस-गीत की प्रसिद्ध कथाओं में सित बसंत, मोरध्वज कर्ण-कथा आदि प्रमुख है। ग्राम बासीन के श्री केजूराम यादव और खैरागढ़ के नकुल यादव बाँसगीत के श्रेष्ठ गायकों में से है। रावत और रवताईन के वार्तालाप बाँस-गीत के प्रस्तुति रवताईन-

''छेरी ला बेचव, भेड़ी ला बेचँव, बेवच करिया धन गायक गोठन ल बेचव धनि मोर, सोवत गोड़ लगाय रावत: छेरी ला बेचव, न भेड़ी ला बेचव, नई बेचव करिया धन जादा कहिबे तो तोला बेचँव, इ कोरी खन-खन रवताईन: कोन करही तोर राम रसोइया, कोन करही जेनवास कोन करही तौर पलंग बिछौना, कोन जोही तौर बाट रावत: दाई करही राम रसोइया बहिनी हा जेवनास सुलखी चोरिया पंगल बिहाही, बँसी जोही वाह रवताईन:''[6]

ढोला मारू गायन

ढोलामारू मूलरूप से राजस्थान की लोक-गाथा है, परन्तु ढोलामारू गाथा पूरे उत्तर भारत में प्रचलित है और प्रसिद्ध है। मूलत: दोहों में रचित स लोक गाथात्मक काव्य को सत्रहवीं शताब्दी में कुशलराय वाचक ने कुछ चौपाईयाँ जोड़कर विस्तार दिया है। इसमें राजकुमार ढोला और राजकुमारी मारू की प्रेमगाथा का वर्णन है। कथा में स्थानीय छत्तीसगढ़ी संस्कृति के मनोहारी रंग और लोकरागिनी का समावेश है। श्रीमती सुरूज बाई खाण्डे की ढोला मारू गायन सबसे अधिक लोकप्रिय है।

ददरिया

ददरिया मूलत: प्रेमगीत है, जिसमें शृंगार रस की प्रधानता है। ददरिया गीत दो-दो पंक्ति के स्फुट गीत होते हैं, जो लोक-गीति-काव्य के प्रमुख उदाहरण है। ददरिया गीत स्त्री और पुरूष मिलकर अथवा अलग-अलग भी गाते हैं। जब स्त्री और पुरूष गाते हैं तब ददरिया सवाल-जबाब के रूप में गाया जाता है। इसकी लोक धुन इतनी मधुर और सरस होती है कि इसे कोई भी आसानी से गा सकता है। ददरिया गीतों का विषय जीवन में कोई बात हो सकती है, जिसमें युवा मन के प्रेम-शृंगार की चर्चा हो रही हो -

''लड़की -करै मुखारी करौंदा रूख के
एक बोली सुना दे आपन मुा के।
लड़का -एक ठिन आमा के दूई फाँकी,
मोरी, आँखिच, आंखिच झूल से तोरिच आँखी।''[7]

छत्तीसगढ़ के लोक नृत्य

छत्तीसगढ़ की संस्कृति अत्यंत समृद्ध है, जो यहां के पारम्परिक लोकनृत्य में दिखाई देती है। यहां की संस्कृति लोक संस्कृति ओर जनजातिय संस्कृति में झलकती है। यहां के लोकनृत्य एवं जनजातीय नृत्य सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है।

प्रमुख लोक नृत्यों में सुआ, राउत नाचा, करमा, ककसार, गौर पंथी, सैला, परघोनी, बिलमा, गेंडी, फाग, थापटी, सरहुल, दोरला, गँवर आदि है। इन नृत्यों की वेषभूषा एवं भावपूर्ण मुद्राएँ अद्वितीय होती है। ये नृत्य क्षेत्र की सांस्कृतिक विरासत एवं समृद्धि को दर्शाते हैं, इन नृत्यों में महिला पुरूष सामूहिक रूप से भाग लेते हैं, इन नृत्यों के समय गाए जाने वाले गीतों में प्रेम विरह, धार्मिक मान्यताओं के साथ जीवन की कठिनाईयों, सुख दु:ख सभी भावनाओं को प्रतिपादित किया जाता है।

पंथी नृत्य

यह नृत्य सतनामी समाज द्वारा प्रस्तुत किया जाता है इसे विशेष रूप से बाबा गुरू घासीदास के जन्मदिवस के शुभअवसर पर किया जाता है।

''जगमग जोत जलय हो सतनाम के मंदिर म
नाम के मंदिर म सतनाम के मंदिर म ..... जगमग जोत
जलय हो .....
काकर घर परे निस अंधयारियां काकर अंगना
दियना बरय हो .....
मुरख अंगना निस अंधयरियां
ज्ञानी के अंगना दियना बरय हो .....''[8]

राउत नाचा

यह यादव समुदाय द्वारा किया जाने वाला लोक नृत्य है जिसे दीपावली के पर्व पर किया जाता है। इस नृत्य में राउत लोग विशेष वेशभूषा पहनकर हाथ में सजी हुई लाठी लेकर टोली में गाते और नाचते हुए निकलते हैं।

''गौरी के गनपति भये, अंजनी के हनुमान रे।
कलिका के भैरव भये, कौशिल्या के लक्ष्मन राम रे''[9]

गेंडी नृत्य

यह बस्तर की मुड़िया जनजाति का विशेष पारंपरिक नृत्य है, इसे प्रमुख रूप से सावन माह में किया जाता है। इस नृत्य में पारंपरिक लोकवाद्यों की थाप के साथ ही मांदर, शहनाई, चटकुला, डफली, टिमकी और बाजा जैसे वाद्य भी बजाए जाते हैं।

सैला नृत्य

यह गोंड जनजाति का आदिवासी नृत्य है, इसे फसल की कटाई के बाद ईश्वर को धन्यवाद कहने के लिए किया जाता है। अगहन माह में, ग्रामीणों द्वारा सैला नृत्य का प्रदर्शन किया जाता है।

''डाल्टन के अनुसार - यअ द्रविड़ समुदाय का एक नृत्य है।''[10]

सुआ नृत्य

सुआ नृत्य छत्तीसगढ़ का एक प्रमुख लोकनृत्य है इसे तोता नृत्य भी कहा जाता है, यह मुख्य रूप से आदिवासी महिलाओं द्वारा किया जाता है। इस नृत्य में महिलाएँ गोल घेरा बनाकर नृत्य करती है।

''तरी हरी नाना रे सुआ ना
तरी हरी नाना .....
चलो मन बंसरी बजावें, जिहां मोहना रे
राध रानी नाचे ठुमा ठु-म
रास रचाव जिहां गोकुल गुवाला रे
मिरदंग बाजे धुमा धुम
मोर सुवा ना मिरदंग बाजे धुमा धु-म
तरी हरी नहा ना रे, नाना मोर सुवा ना
तरी हीर नाना रे नाना .....''[11]

छत्तीसगढः आदिवासी जीवन

छत्तीसगढ़ राज्य एक जनजाति बाहुल्य राज्य है यहां कुल 42 जनजातियां पायी जाती है छत्तीसगढ़ की प्रमुख जनजाति गोंड है इसके अलावा कंवर, बिंझवार, भैना, भतरा, उरांव, मुंडा, कमार, हल्बा, बैगा, भरिया, नगेशिया, मंझवार, खैरवार और धनवार जनजाति प्रमुख है।

छत्तीसगढ़ मूलतः वन्य बाहुल्य क्षेत्र है तथा इसमें यहां के मूल निवासी आदिवासी रहते हैं। इनकी अपनी अलग संस्कृति, भाषा, धार्मिक परंपरा एवं संस्कार है। इन आदिवासी लोगों की खास विशेषता इनका सामूहिक जीवन सामूहिक उत्तरदायित्व और भावात्मक संबंध एवं लोक परंपराएँ है।

''मजूमदार तथा मदान के अनुसार - चयनशील व्यक्तियों द्वारा एक समय विशेष में संचालित सामाजिक संरचना को सामाजिक संगठन कहते हैं।''[12]

इनके जीवन में परम्परागत त्यौहारों, संस्कारों एवं उत्सवों का अत्यंत महत्त्व है, जो इनके संघर्षमय जीवन में सरसता और उत्साह को संचारित करता है। ये लोग प्रकृति प्रेमी होते हैं प्रकृति, वन्यजीवन से संबंधित विविध त्यौहार इनके द्वारा मनाया जाता है। प्राय: सभी त्यौहारों में नृत्य व गीत का आयोजन किया जाता है। नृत्य इनके लिए तनाव दूर करने एवं मनोरंजन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इनकी वैवाहिक परंपरा भी अद्‌भुत होती है। कुछ आदिवासी समुदायों में युवक-युवती को अपनी जीवन साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता होती है, और दोनों की आपसी सहमति से वैवाहिक कार्यक्रम संपन्न होता है। आदिवासी समाज में विविध तरह के विवाह होते हैं यथा-भगेली विवाह, पैठुल विवाह, चोर विवाह, उघरिया विवाह, सरगी के पेड़ को साक्षी मानकर विवाह इस प्रकार से विवाह की परंपरा प्रचलित है।

छत्तीसगढ़ में आदिवासी जीवन समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, प्रकृति के साथ सामंजस्य और पारंपरिक जीवनशैली से जुड़ा है, जिसमें कृषि वनोपज संग्रहण और पशुपालन मुख्य आजीविका के साधन है।

निष्कर्ष:

छत्तीसगढ़ प्रकृति सम्पदा से सम्पन्न आदिवासी बाहुल्य राज्य है। जहां विविध परंपरा एवं संस्कृतियों का समावेश है। छत्तीसगढ़ अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के लिए सम्पूर्ण विश्व में जाना जाता है। छत्तीसगढ़ के सांस्कृतिक जीवन में पारंपरिक कला और शिल्प, आदिवासी नृत्य, लोकगीत, क्षेत्रीय पर्व एवं त्यौहार और मेले सांस्कृतिक उत्सव के विविध रूप शामिल है। छत्तीसगढ़ में चक्रधर समारोह, सिरपुर महोत्सव, राजिम कुंभ और अन्य त्यौहार जैसे बस्तर दशहरा, बस्तर लोकोत्सव जैसी विविध सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन किया जाता है, जो राज्य के जीवंत सांस्कृतिक जीवन एवं समृद्धि को प्रदर्शित करता है।

संदर्भ

1. छत्तीसगढ़ की कला एवं संस्कृति - https://thechhattisgarhblogspot.com/2019/09
2. CG Ki Prachinkala - cghub.in/2020/11
3. CG Ki Prachinkala - cghub.in/2020/11
4. hi.m.wikipedia.org
5. hindi kahani.hindi - kavita.com
6. hi.m.wikipedia.org
7. समग्र छत्तीसगढ़, छत्तीसगढ़ राज्य हिंदी ग्रंथ अकादमी पृ.सं. 581
8. https://www/sahapedia.org
9. https://gurtargoth.com/traditional-chhattisgarh
10. https://korea.gov.in
11. https://cgsongs.wordpress.com/2010
12. दिव्य कीर्ति, डॉ. विकास छत्तीसगढ़ का सामाजिक परिदृश्य दृष्टि IAS पृष्ठ संख्या 04

राजनीतिक दलों की चुनावी नीतियों का मतदाताओं के निर्णय पर प्रभाव का अध्ययन

अलोक तिर्की

मोहल्ला- चुनाभट्ठी, नाका नं0 8, पोस्ट- लक्ष्मीसागर, जिला- दरभंगा (बिहार)

परिचय

भारत में लोकतंत्र का स्वरूप अत्यंत जटिल और बहुआयामी है। यहाँ राजनीतिक दलों की भूमिका केवल शासन करने तक सीमित नहीं है, बल्कि वे समाज के विभिन्न वर्गों, समूहों और समुदायों के विचार, अपेक्षाएँ और भावनाओं को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चुनाव, जो कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया का मुख्य स्तंभ है, केवल मतदाता और प्रत्याशी के बीच प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा नहीं होते, बल्कि यह सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारकों के जटिल नेटवर्क का परिणाम होते हैं। ऐसे में यह समझना अत्यंत आवश्यक है कि राजनीतिक दल अपनी चुनावी रणनीतियों के माध्यम से मतदाताओं के निर्णय को किस प्रकार प्रभावित करते हैं और किन कारकों के आधार पर मतदाता अपनी प्राथमिकताओं और निर्णयों का चयन करते हैं।

राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियाँ कई रूपों में सामने आती हैं। इनमें प्रचार, जनसभाएँ, भाषण, घोषणाएँ, वादे, नकारात्मक प्रचार, डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान आदि शामिल हैं। प्रत्येक रणनीति का उद्देश्य मतदाताओं के दृष्टिकोण और व्यवहार को प्रभावित करना होता है। उदाहरण स्वरूप, सोशल मीडिया अभियान युवा मतदाताओं पर अधिक प्रभाव डालते हैं, जबकि पारंपरिक रैलियाँ और प्रत्यक्ष संपर्क ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक कारगर साबित होते हैं। इसके अलावा, राजनीतिक दल अपने संदेश को विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों, धार्मिक और भाषाई समूहों के अनुसार ना आवश्यक है कि उनके संदेश और रणनीतियाँ मतदाता की अपेक्षाओं और मानसिकता से किस हद तक मेल खाती हैं। भारत में राजनीतिक संदर्भ अत्यंत विविधतापूर्ण है। यहाँ की जातीय, भाषाई, धार्मिक और आर्थिक विविधताओं के कारण हर चुनाव क्षेत्र में रणनीतियाँ अलग ढंग से तैयार की जाती हैं। राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दल दोनों ही अपने चुनावी अभियान को स्थानीय संदर्भों के अनुसार अनुकूलित करते हैं। इसके परिणामस्वरूप, एक ही रणनीति किसी एक क्षेत्र में अत्यधिक प्रभावी हो सकती है, जबकि किसी अन्य क्षेत्र में उसका प्रभाव सीमित रह सकता है।[1]

यही कारण है कि चुनावी रणनीतियों के प्रभाव का अध्ययन केवल व्यापक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि क्षेत्रीय और सामाजिक-आर्थिक भिन्नताओं के संदर्भ में भी किया जाना आवश्यक है। यह अध्ययन राजनीतिक दलों की विभिन्न चुनावी रणनीतियों और उनके मतदाताओं के निर्णय-निर्माण पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने के उद्देश्य से किया जा रहा है। इसके माध्यम से यह पता लगाया जा सकेगा कि कौन-सी रणनीतियाँ कितनी प्रभावशाली हैं, किन समूहों पर उनका अधिक असर पड़ता है और किस प्रकार राजनीतिक दल अपने संदेश और अभियान को अधिक लक्षित और प्रभावी बना सकते हैं। यह अध्ययन न केवल भारत के लोकतांत्रिक व्यवहार की गहन समझ प्रदान करेगा, बल्कि भविष्य में राजनीतिक दलों और नीति निर्माताओं के लिए भी उपयोगी रणनीतिक संकेत प्रदान कर सकेगा।[2]

वैचारिक एवं सैद्धांतिक पृष्ठभूमि:

राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियों और उनके मतदाताओं के निर्णय-निर्माण पर प्रभाव को समझने के लिए सैद्धांतिक और वैचारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन अत्यंत आवश्यक है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में मतदाता का निर्णय केवल व्यक्तिगत पसंद या तात्कालिक परिस्थितियों पर आधारित नहीं होता, बल्कि यह सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और भावनात्मक कारकों के जटिल संयोजन का परिणाम होता है। मतदाता निर्णय-निर्माण के अध्ययन में प्रमुख रूप से तीन दृष्टिकोण सामने आते हैं। पहला दृष्टिकोण तर्कसंगत विकल्प का है, जिसके अनुसार मतदाता अपने लाभ और हानि का मूल्यांकन करके निर्णय लेते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हित और अपेक्षाओं के अनुरूप चुनावी विकल्प चुनता है और दलों द्वारा प्रस्तुत योजनाओं, वादों और घोषणाओं का आकलन करता है। दूसरा दृष्टिकोण सामाजिक पहचान और भावनात्मक कारकों को महत्व देता है।

इसके अनुसार, मतदाता अपने समुदाय, जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र या अन्य सामाजिक समूहों के आधार पर पार्टी या प्रत्याशी का समर्थन करता है। यह दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि केवल तर्कसंगत विश्लेषण मतदाता निर्णय को पूरी तरह स्पष्ट नहीं कर सकता, बल्कि भावनाएँ और सामाजिक पहचान भी निर्णायक भूमिका निभाती हैं। मतदाता अक्सर अपने समूह के अनुभवों, परंपराओं और विश्वासों के आधार पर चुनावी निर्णय लेते हैं और राजनीतिक दल इसी मानसिकता को समझकर अपनी रणनीतियाँ तैयार करते हैं। तीसरा दृष्टिकोण सूचना और मीडिया के प्रभाव पर केंद्रित है। मीडिया, समाचार पत्र, दूरदर्शन, रेडियो और डिजिटल माध्यम मतदाताओं तक राजनीतिक संदेश पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[3]

राजनीतिक दल अपने संदेश को प्रभावशाली बनाने के लिए मीडिया और सूचना के विभिन्न साधनों का उपयोग करते हैं। सोशल मंचों, मोबाइल संदेश और ऑनलाइन अभियान के माध्यम से दल विशेष रूप से युवा और शहरी मतदाताओं तक पहुँचते हैं। मीडिया की भूमिका केवल सूचना पहुँचाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मतदाताओं के दृष्टिकोण और विचारधारा को भी प्रभावित करती है। चुनावी रणनीतियों के प्रकार और उनके घटक भी इस अध्ययन का महत्वपूर्ण आधार हैं। राजनीतिक दल प्रचार और विज्ञापन, जनसभाएँ, भाषण, घोषणाएँ, चुनावी वादे, नकारात्मक प्रचार और डिजिटल माध्यमों के अभियान जैसी विभिन्न रणनीतियाँ अपनाते हैं। प्रत्येक रणनीति का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि उसे किस समूह के लिए तैयार किया गया है और उस समूह की प्राथमिकताएँ क्या हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्यक्ष संपर्क और स्थानीय रैलियाँ अधिक प्रभावशाली मानी जाती हैं, जबकि शहरी और युवा वर्ग डिजिटल अभियान और ऑनलाइन संवाद से अधिक प्रभावित होता है।[4]

वस्तुतः भारत में चुनावी संदर्भ अत्यंत विविधतापूर्ण है। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्रीय पहचान, आर्थिक स्थिति और शिक्षा स्तर जैसी विविधताएँ चुनावी निर्णय को गहराई से प्रभावित करती हैं। राजनीतिक दल अपनी रणनीतियों को इन विविधताओं के अनुरूप ढ़ालते हैं। उदाहरण के लिए, किसी क्षेत्र में दल धार्मिक प्रतीकों और सांस्कृतिक संदर्भों का प्रयोग करके मतदाता का ध्यान आकर्षित कर सकते हैं, वहीं किसी अन्य क्षेत्र में सामाजिक कल्याण योजनाओं और रोजगार वादों पर जोर दिया जाता है। पिछले शोधों से यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दलों की रणनीतियों का प्रभाव मतदाताओं पर कई स्तरों पर दिखाई देता है। विभिन्न अध्ययन यह दर्शाते हैं कि प्रचार की तीव्रता, संदेश की प्रस्तुति और मीडिया पहुँच मतदाताओं के दृष्टिकोण और प्राथमिकताओं को बदलने में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। इसके साथ ही, विभिन्न सामाजिक और आर्थिक वर्गों पर इन रणनीतियों का प्रभाव अलग होता है। गरीब और कम शिक्षित वर्ग पर प्रत्यक्ष संपर्क और स्थानीय मुद्दों का प्रभाव अधिक होता है, जबकि शहरी और शिक्षित वर्ग पर डिजिटल और सूचना आधारित अभियान प्रभावी रहते हैं। इस प्रकार, सैद्धांतिक और वैचारिक पृष्ठभूमि हमें मतदाता निर्णय-निर्माण की जटिलताओं और राजनीतिक दलों की रणनीतियों के प्रभाव को समझने में मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह अध्ययन केवल रणनीतियों के प्रकार और उनके घटकों का विश्लेषण नहीं करता, बल्कि यह भी दर्शाता है कि विभिन्न सामाजिक-आर्थिक समूहों, सांस्कृतिक संदर्भों और मीडिया उपभोक्ता व्यवहार के आधार पर इन रणनीतियों का प्रभाव कैसे भिन्न होता है।[5]

राजनीतिक दलों की नीतियों एवं मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करने वाले तत्वः

राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियाँ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में मतदाताओं के निर्णय-निर्माण को गहराई से प्रभावित करती हैं। ये रणनीतियाँ केवल मतदाताओं को पार्टी के प्रति आकर्षित करने के साधन नहीं होतीं, बल्कि उनकी सोच, प्राथमिकताओं और विश्वासों को भी दिशा देती हैं। भारत जैसे विविधताओं से भरे देश में चुनावी रणनीतियों का प्रभाव और भी जटिल और बहुआयामी होता है। राजनीतिक दल अपनी नीतियों, घोषणाओं, प्रचार माध्यमों और प्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से मतदाताओं की भावनाओं, उम्मीदों और आशंकाओं को समझने और प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। सबसे पहले, प्रचार और विज्ञापन रणनीतियाँ मतदाताओं के निर्णय पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती हैं। राजनीतिक दल अपने संदेश को टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, होर्डिंग और अन्य पारंपरिक माध्यमों के माध्यम सु फैलाते हैं। इन संदेशों में अक्सर दल की उपलब्धियों, नेता की छवि और आगामी योजनाओं को उजागर किया जाता है। इस प्रकार का प्रचार मतदाताओं में विश्वास निर्माण करता है और पार्टी के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करता है। इसके अतिरिक्त, डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान आजकल चुनावी रणनीतियों का अहम हिस्सा बन गए हैं। राजनीतिक दल फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर और अन्य ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से सीधे मतदाताओं तक पहुँचते हैं। सोशल मीडिया पर व्यक्तिगत और लक्षित संदेश मतदाताओं की प्राथमिकताओं और रूचियों के अनुसार तैयार किए जाते हैं।

इसका परिणाम यह होता है कि मतदाता स्वयं को उस दल या नेता से जुड़ा महसूस करने लगते हैं, जिससे उनका निर्णय प्रभावित होता हैं। प्रत्यक्ष संपर्क, जैसे रैलियाँ, जनसभाएँ और डोर-टू-डोर अभियान, भी मतदाताओं के मनोभाव को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब नेता सीधे जनता के बीच आते हैं और उनके सवालों का उत्तर देते हैं, तो मतदाता में भरोसा और आत्मीयता की भावना पैदा होती है। इसके अलावा, चुनावी घोषणाएँ और वादे भी मतदाताओं के निर्णय को आकार देने में प्रभावी होते हैं। जब किसी दल द्वारा दी गई योजनाएँ और वादे उनकी जीवन परिस्थितियों से संबंधित होते हैं, तो वे उन पर विश्वास करने की प्रवृत्ति रखते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जाति, धर्म, क्षेत्र और आयु जैसे कारक राजनीतिक दलों की रणनीतियों को प्रभावित करते हैं और दल इन कारकों के आधार पर अपनी योजनाएँ और संदेश तैयार करते हैं। उदाहरण के लिए, कुछ दल विशेष समुदायों या वर्गों को लक्षित कर उनके हितों को सामने रखते हैं, जिससे उनकी मतदान प्रवृत्ति प्रभावित होती है।

अंत में, मीडिया और जनमानस पर दलों की छवि का प्रभाव भी मतदाताओं के निर्णय में महत्वपूर्ण होता है। नकारात्मक प्रचार, विरोधी दलों की आलोचना और चुनावी बहसें भी मतदाताओं की धारणा को आकार देती हैं। कुल मिलाकर, राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ मतदाताओं के निर्णय-निर्माण को केवल सूचना देने तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि उनकी भावनाओं, प्राथमिकताओं और सामाजिक पहचान को भी गहराई से प्रभावित करती हैं। इस तरह, चुनावी रणनीतियाँ लोकतंत्र के निष्पक्ष और सूचित निर्णय-प्रक्रिया में एक निर्णायक कारक के रूप में कार्य करती हैं।

विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों पर इन रणनीतियों का प्रभाव निश्चित तौर पर पड़ता है। सामाजिक-आर्थिक वर्गों के आधार पर राजनीतिक दलों की चुनावी रणनीतियों का प्रभाव अलग-अलग रूप में प्रकट होता है। भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और विविधतापूर्ण देश में मतदाता केवल अपने व्यक्तिगत हितों के आधार पर निर्णय नहीं लेते, बल्कि उनकी सामाजिक स्थिति, आर्थिक क्षमता, शिक्षा स्तर, क्षेत्रीय पहचान और जीवन शैली भी उनके मतदान व्यवहार को प्रभावित करती है। राजनीतिक दल इस विविधता को ध्यान में रखते हुए अपनी रणनीतियाँ तैयार करते हैं ताकि वे हर वर्ग के मतदाताओं को प्रभावी रूप से लक्षित कर सकें। आर्थिक स्थिति मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है। उच्च आय वर्ग के मतदाता अक्सर शिक्षा और सूचना के उच्च स्तर के साथ जुड़े होते हैं और वे नीति आधारित निर्णय लेने की प्रवृत्ति रखते हैं। ऐसे मतदाता राजनीतिक दलों के विकास, आर्थिक सुधार, निवेश योजनाओं और उद्योग-व्यवसाय के अवसरों पर अधिक ध्यान देते हैं। इसलिए, राजनीतिक दल उच्च आय वर्ग को लक्षित करते समय कर नीति, निवेश संवर्द्धन, तकनीकी विकास और शिक्षा क्षेत्र में सुधार जैसी योजनाओं को प्रमुखता देते हैं। इसके विपरीत, निम्न और मध्यम आय वर्ग के मतदाता अपनी जीवनयापन की समस्याओं, रोजगार, स्वास्थ्य सुविधा और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। दल ऐसे वर्ग के लिए प्रत्यक्ष लाभकारी योजनाओं, सब्सिडी, रोजगार गारंटी और स्थानीय विकास परियोजनाओं को अपनी प्रचार रणनीति में प्रमुख बनाते हैं।

शिक्षा स्तर भी मतदाता निर्णय-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उच्च शिक्षा प्राप्त मतदाता सूचना को समझने, विश्लेषण करने और आलोचनात्मक दृष्टि से आंकलन करने में सक्षम होते हैं। इसलिए, उनके लिए राजनीतिक दल अपने संदेशों को तर्कसंगत, तथ्यात्मक और नीति केंद्रित प्रस्तुत करते हैं। दूसरी ओर, कम शिक्षा प्राप्त मतदाता अक्सर भावनात्मक और प्रत्यक्ष अनुभव आधारित संदेशों पर प्रतिक्रिया करते हैं। दल उनके लिए रैलियों, व्यक्तिगत संपर्क और सरल भाषा में संदेश देने पर अधिक ध्यान देते हैं। क्षेत्रीय और सामाजिक पहचान भी चुनावी रणनीतियों के प्रभाव को आकार देती है। ग्रामीण और शहरी मतदाता के बीच प्राथमिकताओं में भिन्नता होती है। ग्रामीण क्षेत्र के मतदाता खेती, सिंचाई, स्थानीय विकास और बुनियादी सुविधाओं जैसे मुद्दों को अधिक महत्व देते हैं, जबकि शहरी क्षेत्र के मतदाता रोजगार, परिवहन, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा से जुड़े मुद्दों को प्राथमिकता देते हैं। इसी प्रकार, जाति, धर्म और भाषा भी दलों की रणनीतियों को प्रभावित करते हैं। राजनीतिक दल विशेष समुदायों को लक्षित करते हुए उनके हितों और आशंकाओं को समझकर घोषणाएँ और वादे तैयार करते हैं। आयु वर्ग भी मतदाता निर्णय पर प्रभाव डालता है। युवा मतदाता तकनीकी और डिजिटल माध्यमों के अधिक प्रभाव में आते हैं और वे सामाजिक मीडिया, ऑनलाइन अभियान और नवाचारपूर्ण योजनाओं के प्रति संवेदनशील होते हैं। इसलिए, राजनीतिक दल युवाओं को आकर्षित करने के लिए डिजिटल प्रचार, रोजगार और शिक्षा से जुड़ी योजनाओं को प्रमुखता देते हैं। वृद्ध मतदाता अक्सर पारंपरिक माध्यमों, प्रत्यक्ष संपर्क और स्थानीय समस्याओं पर ध्यान देते हैं। मीडिया उपभोग और सूचना की पहुँच भी विभिन्न सामाजिक-आर्थिक वर्गों में मतदाता निर्णय को भिन्न तरीके से प्रभावित करती है। उच्च आय और शिक्षा वाले वर्ग डिजिटल और समाचार माध्यमों के माध्यम से विस्तृत जानकारी प्राप्त करते हैं, जबकि निम्न आय वर्ग स्थानीय समाचार, जनसभाओं और व्यक्तिगत संपर्क पर अधिक भरोसा करता है। इस आधार पर राजनीतिक दल अपने संदेश और प्रचार माध्यमों का चयन करते हैं।

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ सामाजिक-आर्थिक वर्गों की विशेषताओं, प्राथमिकताओं और समस्याओं के अनुसार भिन्न रूप में तैयार की जाती हैं। उच्च आय वर्ग और शिक्षित मतदाता नीति और तर्क आधारित संदेशों से प्रभावित होते हैं, जबकि निम्न और मध्यम आय वर्ग प्रत्यक्ष लाभ और स्थानीय संपर्क पर अधिक प्रतिक्रिया करते हैं। ग्रामीण और शहरी मतदाता, युवा और वृद्ध मतदाता, विभिन्न जातीय और धार्मिक समुदायकृसभी के लिए अलग-अलग दृष्टिकोण अपनाए जाते हैं। इस प्रकार, राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ समाज के विभिन्न वर्गों में मतदाताओं के निर्णय-निर्माण को गहराई से प्रभावित करती हैं और चुनावी परिणामों पर महत्वपूर्ण असर डालती हैं।[6]

मतदाता निर्णय-निर्माण के सिद्धांतः

मतदाता निर्णय-निर्माण का सिद्धांत यह बताता है कि कोई व्यक्ति किस प्रकार और किन कारकों के आधार पर किसी चुनाव में अपने मत का निर्णय करता है। यह केवल एक सैद्धांतिक निर्णय का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। मतदाता किसी भी चुनाव में अपने व्यक्तिगत हितों, समाजिक और आर्थिक परिस्थितियों, जानकारी की उपलब्धता, मीडिया और सामाजिक समूहों के प्रभाव तथा भावनाओं के आधार पर निर्णय लेते हैं। इस प्रक्रिया में मतदाता कई स्तरों पर विचार करते हैं। पहले वे विभिन्न दलों और उम्मीदवारों की नीतियों, उपलब्धियों और भविष्य की योजनाओं का मूल्यांकन करते हैं। इसके साथ ही वे यह भी सोचते हैं कि किस दल के शासन में उनके जीवन और समाज की स्थिति बेहतर हो सकती है। इसके अलावा, चुनावी प्रचार, मीडिया रिपोर्ट, नेताओं की छवि और प्रत्यक्ष संपर्क जैसे कारक भी उनके निर्णय को प्रभावित करते हैं। कुछ मतदाता अपने निर्णय को पूरी तरह तर्क और तथ्य के आधार पर लेते हैं, जबकि कुछ भावनाओं और सामाजिक पहचान के आधार पर प्रभावित होते हैं। इसके अलावा, परिवार, मित्र और समुदाय का प्रभाव भी महत्वपूर्ण होता है। कभी-कभी मतदाता किसी दल के साथ लंबे समय से जुड़ा हुआ अनुभव या परंपरा के कारण भी निर्णय लेता है। इस तरह, मतदाता निर्णय-निर्माण का सिद्धांत यह समझने में मदद करता है कि चुनावी प्रक्रिया केवल मत देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जटिल और बहुआयामी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक कारक मिलकर निर्णय को आकार देते हैं।

तर्क आधारित (रेशनल चॉइस) सिद्धांतः

रेशनल चॉइस सिद्धांत यह मानता है कि मतदाता अपने निर्णय को पूरी तरह तर्क और गणना के आधार पर लेते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि कौन सा विकल्प उसके लिए अधिक लाभकारी होगा और किस निर्णय से उसके निजी हितों की पूर्ति होगी। इस दृष्टिकोण में मतदाता को एक सक्रिय और सोचने वाला व्यक्ति माना जाता है, जो अपने जीवन की परिस्थितियों, उपलब्ध विकल्पों और परिणामों का मूल्यांकन करता है। इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि मतदाता हर विकल्प के लाभ और हानि का तुलनात्मक अध्ययन करता है। उदाहरण के लिए, किसी दल की नीतियों के कारण उसे आर्थिक सुविधा, रोजगार या सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होगी या नहीं, इसका विश्लेषण वह करता है। मतदाता यह भी देखता है कि कौन सा दल या उम्मीदवार उसके दीर्घकालिक हितों के अनुरूप निर्णय लेगा। रेशनल चॉइस सिद्धांत का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि मतदाता केवल व्यक्तिगत लाभ पर ध्यान नहीं देता, बल्कि सामूहिक लाभ या सामाजिक प्रभाव को भी आंकता है। मतदाता यह सोचता है कि उसका निर्णय समाज, समुदाय और परिवार पर किस प्रकार प्रभाव डालेगा। यह सिद्धांत पूर्ण रूप से तर्कसंगत व्यवहार मानता है, लेकिन वास्तविक जीवन में सभी मतदाता पूरी तरह से तर्कसंगत नहीं होते। फिर भी, यह सिद्धांत चुनावी रणनीतियों और मतदाता व्यवहार को समझने के लिए एक आधारभूत ढ़ांचा प्रदान करता है, क्योंकि यह स्पष्ट करता है कि लोग निर्णय लेने से पहले विकल्पों का मूल्यांकन, लाभ-हानि का अनुमान और अपने हितों का आकलन करते हैं।[7]

भावनात्मक और सामाजिक पहचान मॉडलः

भावनात्मक और सामाजिक पहचान मॉडल यह मानता है कि मतदाता का निर्णय केवल तर्क और तथ्य पर आधारित नहीं होता, बल्कि उसमें भावनाएँ और सामाजिक पहचान भी गहरा प्रभाव डालती हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, मतदाता किसी दल या उम्मीदवार के प्रति भावनात्मक जुड़ाव महसूस करता है और सामाजिक समूहों, जाति, धर्म, भाषा या क्षेत्रीय पहचान के आधार पर अपने मत का निर्धारण करता है। इस मॉडल में यह देखा गया है कि लोग अक्सर उन दलों या नेताओं को समर्थन देते हैं जिनके विचार, मूल्य या पहचान उनके समूह से मेल खाते हैं। उदाहरण के लिए, किसी जातीय या धार्मिक समुदाय

के लोग ऐसे दल को प्राथमिकता दे सकते हैं जो उनके हितों और पहचान का प्रतिनिधित्व करता हो। इसके अलावा, नेता की छवि और उसके व्यक्तित्व से उत्पन्न भावनात्मक जुड़ाव भी मतदाता के निर्णय को प्रभावित करता है। भावनाएँ जैसे भरोसा, घृणा, उम्मीद या डर, मतदाता को किसी दल के पक्ष में या विरोध में प्रेरित कर सकती हैं। सामाजिक पहचान के माध्यम से लोग यह अनुभव करते हैं कि उनके निर्णय से उनका समूह और समुदाय लाभान्वित होगा या उसकी स्थिति सुरक्षित रहेगी। इसके परिणामस्वरूप, यह मॉडल यह स्पष्ट करता है कि राजनीतिक निर्णय केवल तर्क के आधार पर नहीं होते, बल्कि इसमें गहरी भावनात्मक और सामूहिक पहचान शामिल होती है। इस सिद्धांत के अनुसार, राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ केवल योजनाओं और घोषणाओं तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे मतदाताओं की भावनाओं और सामाजिक पहचान को समझकर संदेश तैयार करते हैं। रैलियाँ, जनसभाएँ, भाषा, प्रतीक और मीडिया का प्रयोग भावनात्मक जुड़ाव बनाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार, भावनात्मक और सामाजिक पहचान मॉडल मतदाता व्यवहार को समझने का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रदान करता है।

चुनावी रणनीतियों के प्रकार और उनके घटक:

चुनावी रणनीतियाँ राजनीतिक दलों द्वारा मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए अपनाई जाने वाली योजनाएँ और क्रियाएँ होती हैं। इनमें मुख्य रूप से प्रचार और विज्ञापन, डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान, रैलियाँ और भाषण, प्रत्यक्ष संपर्क, घोषणाएँ, वादे और नकारात्मक प्रचार शामिल हैं। प्रचार और विज्ञापन के माध्यम से दल अपनी उपलब्धियाँ और नीतियाँ जनता तक पहुँचाते हैं। डिजिटल अभियान मतदाताओं तक त्वरित और लक्षित संदेश पहुँचाने में प्रभावी होते हैं। रैलियाँ और प्रत्यक्ष संपर्क विश्वास और जुड घव बढ घते हैं। घोषणाएँ और वादे विशेष समूहों के हितों को ध्यान में रखकर तैयार किए जाते हैं, जबकि नकारात्मक प्रचार विरोधियों को कमजोर दिखाने के लिए किया जाता है।[8]

प्रचार और विज्ञापन:

चुनावी प्रचार और विज्ञापन राजनीतिक दलों की सबसे पारंपरिक और प्रभावशाली रणनीतियों में से एक हैं। इसके माध्यम से दल अपने संदेश और उपलब्धियों को व्यापक जनता तक पहुँचाते हैं। टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र और होर्डिंग का प्रयोग करके मतदाताओं तक सूचना पहुँचाई जाती है। विज्ञापनों में अक्सर दल की उपलब्धियों, नेता की छवि और भविष्य की योजनाओं को प्रमुखता दी जाती है। प्रचार का उद्देश्य मतदाताओं में विश्वास और सकारात्मक धारणा विकसित करना होता है। सही और आकर्षक संदेश जनता के मन में स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं। चुनावी प्रचार केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं रहता, बल्कि भावनाओं को भी प्रभावित करता है। विज्ञापन में कहानी, छवि और प्रतीक का प्रयोग करके संदेश को रोचक और यादगार बनाया जाता है। इसके अलावा, प्रचार जनता में दल के प्रति पहचान और समर्थन बनाने का माध्यम भी होता है। इस तरह, प्रचार और विज्ञापन मतदाताओं के निर्णय-निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान:

डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान आधुनिक चुनावी रणनीतियों का अहम हिस्सा बन गए हैं। राजनीतिक दल फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम और अन्य प्लेटफॉर्म का प्रयोग करके सीधे मतदाताओं तक पहुँचते हैं। सोशल मीडिया पर संदेश लक्षित समूहों और व्यक्तिगत प्राथमिकताओं के अनुसार तैयार किए जाते हैं। इसके माध्यम से दल मतदाताओं के साथ संवाद स्थापित करते हैं और उनकी प्रतिक्रियाओं को तुरंत समझते हैं। डिजिटल अभियान छोटे वीडियो, पोस्टर, संदेश और लाइव स्ट्रीमिंग के रूप में प्रस्तुत होते हैं। यह अभियान विशेष रूप से युवाओं और शहरी मतदाताओं को आकर्षित करने में प्रभावी होता है।[9]

सोशल मीडिया की व्यापक पहुँच और त्वरित प्रतिक्रिया क्षमता इसे प्रभावशाली बनाती है। दल इस माध्यम से सकारात्मक संदेश के साथ-साथ विरोधियों के नकारात्मक प्रचार का भी उपयोग करते हैं। डिजिटल अभियान में डेटा विश्लेषण और मतदाता वर्गीकरण का प्रयोग संदेश को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए किया जाता है। परिणामस्वरूप, सोशल मीडिया अभियान मतदाता की धारणा और निर्णय पर गहरा प्रभाव डालता है।

रैलियाँ, भाषण और प्रत्यक्ष संपर्क:

रैलियाँ, भाषण और प्रत्यक्ष संपर्क राजनीतिक दलों की सबसे प्रत्यक्ष और पारंपरिक रणनीति हैं। नेता जनता के बीच जाकर उनसे संवाद करते हैं और उनकी समस्याओं को समझते हैं। प्रत्यक्ष संपर्क से मतदाता में विश्वास और आत्मीयता की भावना पैदा होती है। रैलियों और सभाओं के माध्यम से दल अपने संदेश और घोषणाओं को व्यापक रूप से प्रसारित करते हैं। भाषणों में भावनात्मक और तर्कसंगत दोनों प्रकार के तत्व सम्मिलित होते हैं। यह रणनीति विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों और कम डिजिटल पहुँच वाले मतदाताओं के लिए महत्वपूर्ण है। दल यहाँ अपने नेताओं की छवि और करिश्मा का प्रभाव दिखाते हैं। प्रत्यक्ष संपर्क मतदाता को यह अनुभव कराता है कि उनकी आवाज सुनी जा रही है। यह रणनीति मतदाता और पार्टी के बीच संबंध मजबूत करने का माध्यम भी बनती है। इस प्रकार रैलियाँ और प्रत्यक्ष संपर्क मतदाता के निर्णय-निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।[10]

घोषणाएँ, वादे और नकारात्मक प्रचार:

घोषणाएँ और चुनावी वादे राजनीतिक दलों की मुख्य रणनीतियों में शामिल हैं। इसके माध्यम से दल अपने भविष्य की योजनाओं और नीतियों का आश्वासन देते हैं। वादे जैसे रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा जनता के मन में उम्मीद और विश्वास जगाते हैं। नकारात्मक प्रचार का प्रयोग विरोधी दलों की आलोचना और उनके कार्यों को प्रश्नांकित करने के लिए किया जाता है। यह मतदाता में तुलना और निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करता है। घोषणाएँ और वादे अक्सर लक्षित समूहों के हितों के अनुसार तैयार किए जाते हैं। इसके माध्यम से दल अपनी प्राथमिकताओं और उद्देश्यों को स्पष्ट करते हैं। नकारात्मक

प्रचार मतदाताओं में डर, असमर्थता या आलोचना की भावना उत्पन्न कर सकता है। इस रणनीति का उद्देश्य मतदाता को किसी दल के पक्ष में प्रेरित करना और विरोधियों को कमजोर दिखाना होता है। कुल मिलाकर, घोषणाएँ, वादे और नकारात्मक प्रचार मतदाताओं के निर्णय-निर्माण पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

रणनीतियों की तुलना:

चुनावी रणनीतियों की तुलना से यह समझा जा सकता है कि कौन सी रणनीति किन समूहों पर अधिक प्रभाव डालती है। प्रचार और मीडिया व्यापक जनसंख्या तक संदेश पहुँचाने में प्रभावी हैं। डिजिटल और सोशल मीडिया अभियान विशेष रूप से युवा और शहरी मतदाताओं को लक्षित करते हैं। प्रत्यक्ष संपर्क और रैलियाँ ग्रामीण और पारंपरिक मतदाताओं पर अधिक प्रभाव डालती हैं। घोषणाएँ और वादे विशेष समूहों की आवश्यकताओं और आशाओं को ध्यान में रखते हैं। नकारात्मक प्रचार मतदाता के आलोचनात्मक और तुलना करने वाले दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। हर रणनीति का प्रभाव क्षेत्र और समय के अनुसार भिन्न होता है। दल अपनी प्राथमिकताओं और लक्षित समूह के अनुसार इन रणनीतियों का मिश्रण अपनाते हैं। तुलना से यह भी पता चलता है कि तर्कसंगत और भावनात्मक दोनों प्रकार की रणनीतियाँ आवश्यक हैं।

मतदाता निर्णय पर प्रभाव:

मतदाता निर्णय पर विभिन्न कारकों का गहरा प्रभाव पड़ता है। राजनीतिक दलों की रणनीतियाँ, जैसे प्रचार, रैलियाँ, घोषणाएँ और डिजिटल अभियान, मतदाताओं की सोच, प्राथमिकताएँ और विश्वासों को प्रभावित करती हैं। सामाजिक-आर्थिक स्थिति, शिक्षा स्तर, आयु और क्षेत्रीय पहचान भी निर्णय प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मीडिया और सूचना स्रोत मतदाता की धारणा को आकार देते हैं। भावनात्मक जुड़ाव और सामाजिक पहचान भी चुनावी निर्णय में असर डालते हैं। इस प्रकार, राजनीतिक दलों की योजनाएँ और संदेश केवल जानकारी देने तक सीमित नहीं रहते, बल्कि मतदाताओं के निर्णय-निर्माण को गहराई से प्रभावित करते हैं।[11]

निष्कर्ष:

राजनीतिक दलों के लिए सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह है कि वे अपनी रणनीतियों को मतदाताओं की वास्तविक आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं के अनुसार तैयार करें। प्रचार और संदेश हमेशा स्पष्ट, सटीक और जनता के जीवन से जुड़े हुए होने चाहिए। डिजिटल और स्थानीय माध्यमों का संतुलित उपयोग करना चाहिए ताकि सभी मतदाता वर्गों तक संदेश पहुँच सके। नेताओं का प्रत्यक्ष संपर्क और रैलियों में भागीदारी मतदाताओं में विश्वास और जुड़ाव बढ़ाती है। घोषणाओं और वादों को पूरी तरह से व्यवहारिक और निष्पक्ष होना चाहिए। नकारात्मक प्रचार का प्रयोग सीमित और संयमित तरीके से किया जाना चाहिए। युवा और महिला मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए विशेष योजनाएँ और कार्यक्रम तैयार किए जा सकते हैं। मतदाताओं की प्रतिक्रिया और सुझावों को लगातार मापना और रणनीतियों में सुधार करना आवश्यक है। दलों को अपनी सामाजिक जिम्मेदारी और पारदर्शिता पर भी ध्यान देना चाहिए। इस प्रकार, संगठित और समन्वित रणनीतियाँ चुनावी सफलता की कुंजी बन सकती हैं। भविष्य में इस विषय पर शोध के कई संभावनाओं को अपनाया जा सकता है। राजनीतिक दलों की रणनीतियों का क्षेत्रीय और ग्रामीण-शहरी प्रभाव का अलग-अलग अध्ययन किया जा सकता है।

साथ ही सोशल मीडिया और डिजिटल अभियानों के दीर्घकालिक प्रभावों का विश्लेषण किया जा सकता है। विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक समूहों पर रणनीतियों के असर को और गहराई से समझा जा सकता है। मतदाता के व्यवहार में भावनात्मक और तर्कसंगत कारकों के मिश्रित प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है। चुनावी वादों और घोषणाओं की सटीकता और उनके क्रियान्वयन का प्रभाव भी शोध का विषय हो सकता है। राजनीतिक जागरूकता और मीडिया उपभोक्ता व्यवहार के बीच संबंधों का मूल्यांकन किया जा सकता है। भविष्य में तुलनात्मक अध्ययन राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय चुनावों के अनुभवों के आधार पर किया जा सकता है। नीति निर्माण और रणनीति सुधार के लिए शोध परिणामों का व्यावहारिक उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार, भविष्य में मतदाता निर्णय और राजनीतिक रणनीतियों पर शोध के असीमित अवसर मौजूद हैं।

संदर्भ सूची:

1. अख्तर, जाहिदा और यूनिस अह. शेख, "भारत में मतदान व्यवहार के निर्धारक: सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य," पब्लिक पॉलिसी एंड एडमिनिस्ट्रेशन रिसर्च 4, अंक 8 (2014)
2. एंट्यून्स, रुई, "मतदान व्यवहार के सैद्धांतिक मॉडल" रिसर्चगेट, जनवरी, 2010
3. बर्धन, प्रणब, संदीप मित्रा, दिलीप मुखर्जी और अनुषा नाथ। "ग्रामीण पश्चिम बंगाल में बदलते मतदान पैटर्न: ग्राहकवाद और स्थानीय सार्वजनिक वस्तुओं की भूमिका" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 49, अंक 11 (2014): 54-62।
4. गोहेन, हिरेन "असम चुनाव परिणाम: एक प्रत्युत्तर" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 51, अंक 36 (2016): 69-70
5. गोस्वामी, संध्या और विकास त्रिपाठी, "असम में राजनीतिक बदलाव को समझना: कांग्रेस का कम होता प्रभुत्व" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 50, अंक 39 (2015):
6. हजारिका, बिराज, "भारत में मतदान व्यवहार और उसके निर्धारक", आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज 20, अंक 10, संस्करण 4 (2015):
7. हुसैन, मोहम्मद काजी रेजुआन, मोस्ट मुनमुन अख्तर और मोहम्मद शरीफुल इस्लाम, "स्थानीय चुनाव में लोगों का मतदान व्यवहार: अन्नदानगर संघ परिषद, पिरगाछा, रंगपुर पर एक अध्ययन", आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस 22, अंक- 3, संस्करण 1 (2017)
8. कडेकोडी, गोपाल के. और शिद्दलिंगस्वामी वी. हनगोदीमठ", क्या विकास लोगों को मतदान के लिए प्रेरित करता है?" इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 50, अंक 18 (2015)
9. कुमार, संजय. "चुनावी राजनीति में मुसलमान." इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 31, अंक 2/3 (1996): 138-141.
10. नाथ, मोनोज कुमार, "असम में सांप्रदायिक राजनीति: 2016 से एआईयूडीएफ का विकास", इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली 51, अंक 16 (2015)
11. नेगी, मनमोहन सिंह, "चुनावी व्यवहार के सैद्धांतिक पहलू", इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस 66, अंक 1 (2005)

भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताएं

डॉ० अजय गोयल

आदर्श गर्ल्स डिग्री कॉलेज, समाना, पटियाला

सार:

यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल भारतीय साहित्य और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पुनर्जागरण काल है। जब साहित्य में भक्ति, प्रेम और सामाजिक सुधार को प्रमुखता दी गई। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निस्वार्थ प्रेम और समर्पण को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग माना गया। यह कहा जा सकता है कि कठिन संस्कृत के बजाय ब्रज, अवधी और राजस्थानी जैसी जनभाषा में काव्य रचा गया। यह कहा जा सकता है कि निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं में गुरु को ईश्वर से ऊंचा या मार्गदर्शक माना गया। कवियों ने जाति-पाति, रूढ़िवादिता और आडंबरों का कड़ा विरोध किया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि साहित्य का उद्देश्य समाज का कल्याण करना था। यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल के कवियों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया गया। यह शोध पत्र भक्तिकाल की प्रमुख विशेषताओं का विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्द: भक्तिकाल, भक्ति, निर्गुण, सगुण

भूमिका:

यह वास्तविक तथ्य है कि भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल कहा जाता है। यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल पर बहुत काम किया गया है भारतीय हिंदी साहित्य में भक्तिकाल की समय सीमा 1375 से 1700 संवत तक मानी जाती है। भक्तिकाल के हिंदी साहित्य में कबीर, रहीम, तुलसी, सूर, जायसी, मीरा, रसखान आदि कवि इस युग की उपज हैं जिन्होंने धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं, छंदों आदि के माध्यम से समाज में एक वैचारिक क्रांति को जन्म दिया था। उनकी रचनाओं के कारण भक्ति युग को हिन्दी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। इस काल में भगवान श्री राम के सच्चे, विनम्र और सुंदर अवतार की पूजा की गई है। इस अवधि के दौरान प्रबंध और मुक्तक दोनों कविताओं की रचना की गई थी। इस भक्तिकाल के हिंदी साहित्य में अवधी और ब्रजभाषा दोनों भाषाओं का ही मुख्य रूप से प्रयोग होता था और हिंदी साहित्य में अनेक श्लोकों में रचनाएँ होती थीं। इस काल के काव्य में सभी रसों को समाहित किया गया था, लेकिन भक्तिकाल में शांत और अलंकृत रस प्रधान रस थे[1]

यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल (संवत 1375-1700) हिंदी साहित्य का श्स्वर्णयुगश है, जिसमें ईश्वर के प्रति समर्पण, सामाजिक समानता, और प्रेम प्रधान काव्य की प्रमुखता रही। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस काल में निर्गुण (कबीर, जायसी) और सगुण (तुलसी, सूर) विचारधाराओं के माध्यम से रूढ़ियों का विरोध और लोक-कल्याणकारी साहित्य रचा गया, जिसमें ब्रज और अवधी भाषाओं का विकास हुआ। यह कहा जा सकता है कि भक्तिकाल (विक्रम संवत 1375-1700) हिंदी साहित्य का श्स्वर्ण युगश है, जिसमें ईश्वर प्रेम, भक्ति, और सामाजिक समानता मुख्य आधार बने। इस काल में निर्गुण (कबीर, जायसी) और सगुण (तुलसी, सूर) विचारधाराओं के तहत कवियों ने लोकभाषा (ब्रज, अवधी) में रचनाएं रचीं, जिसने जाति-पाति के भेदभाव को मिटाकर मानवता का संदेश दिया[2]

भक्तिकाल की मुख्य विशेषताएँ:

यह वास्तविक तथ्य है कि हिन्दी साहित्य पर पिछली एक सदी में बहुत काम हुआ है और हिंदी साहित्य के नवीन युग के विषय विशेषज्ञों ने इसकी कड़ियों को पिरोकर एक परिष्कृत साहित्य बनाने का प्रयास किया है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की विषयवस्तु पर कड़े प्रतिबंध लगाकर इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यह सत्य है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी साहित्य में अनेक साहित्यिक ग्रंथ लिखे गए हैं। यदि हम हिन्दी साहित्य की परम्परा को देखें तो हमें ऐसे अनेक ग्रंथ मिलते हैं जो हिन्दी की प्रारंभिक झलक दिखाते हैं । लेकिन उन साहित्यिक कृतियों को ग्रंथों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि उनमें साहित्यिक संभावनाओं का अभाव है। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान लेखक ग्रियर्सन ने हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा है। यह वास्तविक तथ्य है कि भक्तिकाल हिंदी साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण काल है जिसे इसकी विशेषताओं के कारण 'स्वर्ण-युग' कहा जाता है। हिंदी साहित्य के भक्ति काव्य के अंतर्गत कबीर, जायसी, सूर, तुलसीदास, रैदास और मीरा जैसी महान प्रतिभाओं ने हिन्दी में साहित्यिक रचनाएँ कीं है। यह वास्तविक तथ्य है कि राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अंतर्विरोधों से परिपूर्ण होने के बावजूद भी इस काल में भक्ति की ऐसी धारा प्रवाहित हुई है की हिंदी साहित्य के नवीन युग के विद्वानों ने सर्वसम्मति से इसे हिंदी साहित्य का 'स्वर्ण-युग' कहा है[3]

ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम (-) :इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस काल का साहित्य ईश्वर को प्रेम और समर्पण के रूप में देखता है। यह कहा जा सकता है कि सगुण भक्त ईश्वर को साकार रूप (राम, कृष्ण) में पूजते हैं। यह कहा जा सकता है कि ईश्वर प्रेम की प्रधानता भक्तिकाल की मुख्य विशेषता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निस्वार्थ प्रेम और समर्पण को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग माना गया है[4]

सामाजिक समानता का समर्थन: कवियों ने जाति-पाती की और आडंबरों का कड़ा विरोध किया। कबीर का 'जाति-पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै सो हरि का होई' कथन इस धारा का प्रतीक है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक सुधार की भावना को महत्व दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि कवियों ने जाति-पाति, रूढ़िवादिता और आडंबरों का कड़ा विरोध किया है[5]

लोकभाषा का प्रयोग: इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि ज्ञान और भक्ति को आमजन तक पहुँचाने के लिए कवियों ने ब्रज, अवधी, सधुक्कड़ी जैसी लोक भाषाओं का प्रयोग किया, जिससे साहित्य जन-साधारण के करीब आया। यह कहा जा सकता है कि लोकभाषा का प्रयोग किया गया है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि कठिन संस्कृत के बजाय ब्रज, अवधी और राजस्थानी जैसी जनभाषा में काव्य रचा गया है[6]

- गुरु का महत्व: इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं में गुरु को ईश्वर से भी ऊँचा स्थान दिया गया है, जो ज्ञान देकर ईश्वर तक मार्ग दिखाता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि गुरु का महत्व दिया गया है यह कहा जा सकता है कि निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं में गुरु को ईश्वर से ऊंचा माना गया
- रहस्यवादी भावना: इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि विशेषकर निर्गुण काव्य में, आत्मा के ईश्वर से मिलने की व्याकुलता और रहस्यात्मक अनुभूति को व्यक्त किया गया है।
- लोक-मंगल की भावना: इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भक्तिकाल का साहित्य केवल व्यक्तिगत साधना न होकर, समाज को एक आदर्श और नैतिक जीवन प्रदान करने वाला रहा, जिसमें मानवता की रक्षा प्रमुख थी। यह कहा जा सकता है कि लोक मंगल की भावना को महत्व दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि साहित्य का उद्देश्य समाज का कल्याण करना था[7]

भक्ति आंदोलन को एकतरफा दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता है। इसका सबसे बड़ा कारण इस आंदोलन का बहुआयामी प्रभाव है। भक्ति आंदोलन का प्रभाव न केवल सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक संदर्भों पर पड़ा, बल्कि कला और संस्कृति पर भी इसका प्रभाव बहुत गहरा पड़ा था। इस आंदोलन में अवर्ण से लेकर सवर्ण तक, महिला से लेकर पुरुष तक, शिक्षित से लेकर अशिक्षित और हिंदू से लेकर मुस्लिम तक सभी पूरी तरह से शामिल थे। यह भक्ति आंदोलन अपने स्वरूप में लोकतांत्रिक था। इसके साथ ही इस भक्ति आंदोलन का स्वरूप अखिल भारतीय था। भक्ति आंदोलन का साहित्य इसी आंदोलन की उपज है। इसलिए भक्ति आंदोलन के साहित्य को पढ़ते समय इस आंदोलन की प्रकृति को ध्यान में रखना आवश्यक है।

प्रमुख कवि और योगदान

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भक्तिकाल के कवियों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया:

- कबीरदास: निर्गुण पंथ के प्रमुख, जिन्होंने आडंबरों पर चोट की।
- तुलसीदास: राम के माध्यम से आदर्श समाज (रामराज्य) की स्थापना की।
- सूरदास: कृष्ण के बाल और प्रेम रूप का अद्भुत वर्णन किया।
- मीराबाई: कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और समर्पण की प्रतिमूर्ति।
- मलिक मुहम्मद जायसी: प्रेम के माध्यम से ईश्वर की खोज।

निष्कर्ष:

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भक्तिकाल ने भारतीय समाज को धार्मिक उदारता और सांस्कृतिक एकता प्रदान की। यह कहा जा सकता है कि कबीर, तुलसी, सूर और मीरा जैसे कवियों ने साहित्य के माध्यम से जो लोक-समरसता का संदेश दिया, वह आज भी प्रासंगिक है। इसीलिए इस युग को हिंदी साहित्य का सर्वोत्तम काल (स्वर्ण युग) माना जाता है। संक्षेप में, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भक्तिकाल ने धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर प्रेम, करुणा और भाईचारे का संदेश दिया, जिसने भारतीय संस्कृति को एक नई दिशा प्रदान की।

संदर्भग्रंथ सूची:

1. नवीन, 'भक्तिकाल और भारतीय मानस.' साहित्य संहिता, 2.1, (2016): 6-10.
2. सुमन लता, 'भक्तिकाल में तुलसी के सामाजिक सरोकार' रामचरितमानस के परिप्रेक्ष्य में.' अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 11.2, (2023): 58-67.
3. वसुदा. 'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग 'भक्तिकाल.' निबंध माला, 5.10, (2013).
4. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2004.
5. राजीव कुँवर, 'इकाई-5 भक्तिकाल की पृष्ठभूमि.' इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2008.
6. चतुर्वेदी, राम स्वरूप, हिंदी साहित्य और संवाद का विकास, लोकभारती प्रकाशन, 2005.
7. शुक्ला, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 2009.

वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं पर कोविड-19 महामारी का प्रभाव

दीक्षा सिंह

हिंदी विभाग, सिद्धार्थ विष्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थ नगर

सारांश

कोविड-19 महामारी, जो 2019 के अंत में चीन के वुहान शहर से उत्पन्न हुई, एक गंभीर वैश्विक स्वास्थ्य संकट के रूप में उभरी और इसने विश्व अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला। यह महामारी केवल एक स्वास्थ्य आपातकाल नहीं थी, बल्कि इसके परिणामस्वरूप वैश्विक आर्थिक गतिविधियों में गंभीर बाधाएँ आई। विभिन्न देशों ने वायरस के प्रसार को रोकने के लिए लॉकडाउन और यात्रा प्रतिबंध लागू किए, जिससे उत्पादन, व्यापार, रोजगार और वित्तीय गतिविधियों में भारी गिरावट हुई। इन उपायों ने वैश्विक आपूर्ति श्रृंखलाओं को बाधित कर दिया, औद्योगिक उत्पादन घटा दिया और विकासशील एवं विकसित देशों दोनों में आर्थिक मंदी को जन्म दिया।

यह अध्ययन यह उजागर करता है कि महामारी ने पहले से मौजूद असमानताओं को और बढ़ाया और निम्न आय वाले एवं विकासशील देशों के लिए बड़ी चुनौतियाँ प्रस्तुत कीं। लाखों लोगों ने अपनी नौकरियाँ खो दीं, और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों, विशेष रूप से कमजोर अर्थव्यवस्थाओं में, को गंभीर आर्थिक नुकसान झेलना पड़ा। पर्यटन, परिवहन और सेवाओं जैसे क्षेत्रों को अभूतपूर्व नुकसान हुआ, जबकि डिजिटल बदलाव ने अर्थव्यवस्थाओं में नई व्यापारिक और श्रम प्रणाली को जन्म दिया। साथ ही, महामारी ने वैश्विक स्वास्थ्य प्रणाली और आर्थिक स्थिरता के बीच गहरे संबंध को उजागर किया और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की महत्ता को रेखांकित किया। आर्थिक मंदी के बावजूद, कुछ देशों ने अपनी अर्थव्यवस्थाओं को स्थिर करने और संकट से उबरने के लिए नवाचारपूर्ण रणनीतियाँ अपनाई। हालांकि, यह पुनर्प्राप्ति प्रक्रिया असमान और धीमी रही, जिससे विभिन्न देशों की स्वास्थ्य सेवाओं और आर्थिक तैयारियों में असमानताएँ स्पष्ट हुई।

यह शोध पत्र COVID-19 महामारी के दौरान व्यापार, रोजगार, वित्त और सामाजिक कल्याण प्रणाली जैसे प्रमुख क्षेत्रों पर पड़े आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण करता है। यह महामारी के दौरान उत्पन्न आर्थिक चुनौतियों, वैश्विक स्तर पर अपनाए गए सुधारात्मक उपायों और महामारी के बाद के विश्व में सतत विकास को प्राप्त करने के व्यापक प्रभावों पर चर्चा करता है। निष्कर्ष यह संकेत देता है कि ऐसी वैश्विक आपदाओं के प्रभाव को कम करने के लिए भविष्य में तैयारी, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और नीतिगत नवाचार आवश्यक हैं।

मुख्य शब्दः COVID-19, वैश्विक अर्थव्यवस्था, आर्थिक मंदी, लॉकडाउन, असंगठित क्षेत्र, डिजिटल परिवर्तन, वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला, रोजगार संकट, स्वास्थ्य प्रणाली, सतत विकास, अंतरराष्ट्रीय सहयोग, आर्थिक सुधार, सामाजिक असमानता, पर्यटन उद्योग, वित्तीय संकट।

प्रस्तावना

कोविड-19 नामक कोरोना वायरस महामारी की शुरुआत 2019 में चीन के हुबेई प्रांत के वुहान शहर से हुई और यह यूरोप, एशिया, संयुक्त राज्य अमेरिका और अफ्रीका के 200 से अधिक देशों में फैल गई। इसने विश्व अर्थव्यवस्था को तबाह कर दिया और इसे लगभग ठप्प कर दिया। 28 मई, 2020 तक वायरस से लगभग 360,000 मौतों और 2.4 मिलियन लोगों के ठीक होने के साथ 5.8 मिलियन से अधिक पुष्ट मामले दर्ज किए गए (द न्यूयॉर्क टाइम्स, 2020)[1]। महामारी ने आर्थिक और स्वास्थ्य संकट पैदा किए हैं, जिसने वैश्विक अर्थव्यवस्था पर इसके आसन्न प्रभाव को लेकर अनिश्चितता और भय को गहरा कर दिया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 30 जनवरी 2020 को कोविड-19 के प्रकोप को इसके सार्वजनिक स्वास्थ्य जोखिम को देखते हुए वैश्विक आपातकाल घोषित किया और इसके बाद 11 मार्च, 2020 को इसे वैश्विक प्रकोप घोषित किया।[2]

वायरस के फैलने के साथ ही विभिन्न देशों ने स्वास्थ्य सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए लॉकडाउन और यात्रा प्रतिबंध जैसे कठोर उपायों को लागू किया, जिसके कारण उत्पादन, व्यापार, रोजगार और वित्तीय गतिविधियाँ ठप हो गईं। महामारी के कारण वैश्विक स्तर पर आर्थिक मंदी का दौर शुरू हुआ, जिससे न केवल विकासशील और उभरती अर्थव्यवस्थाएं, बल्कि विकसित देशों की अर्थव्यवस्थाएं भी प्रभावित हुईं। कोविड-19 ने यह सिद्ध कर दिया कि वैश्विक अर्थव्यवस्थाएँ आपस में जुड़ी हुई हैं और एक देश में घटित होने वाली घटना का असर पूरी दुनिया पर पड़ सकता है। इस महामारी ने वैश्विक व्यापार, आपूर्ति श्रृंखला, अंतरराष्ट्रीय निवेश, श्रम बाजार, वित्तीय बाजार और सामाजिक कल्याण प्रणालियों में भारी उतार-चढ़ाव उत्पन्न किया। व्यापार के क्षेत्र में आंतरराष्ट्रीय आपूर्ति श्रृंखलाएं अवरुद्ध हुईं, जिससे उत्पादन में भारी गिरावट आई। वहीं, पर्यटन, परिवहन और सेवाओं के क्षेत्र में भी भारी नुकसान हुआ। वहीं, लाखों लोगों ने अपनी नौकरियां खो दीं, जिससे बेरोजगारी दर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। महामारी के कारण जिस तरह से वैश्विक आर्थिक स्थिति ने नकारात्मक मोड़ लिया,

उसने यह भी साबित कर दिया कि किसी भी महामारी का सिर्फ स्वास्थ्य पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक पहलुओं पर भी गहरा असर पड़ता है। संकट के समय में दुनिया भर के देशों ने एकजुटता के बजाय अपने-अपने राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दी, जिससे वैश्विक सहयोग की कमी देखी गई। हालांकि, इसके बावजूद कुछ देशों ने सहयोग की दिशा में कदम उठाए और महामारी से निपटने के लिए अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य और आर्थिक संस्थाओं के माध्यम से राहत कार्यों की पहल की। [3]

इन उपायों का दुनिया भर के व्यवसायों पर प्रभाव पड़ता है। कोरोना वायरस ने आर्थिक पीड़ा को और गहरा कर दिया है और स्पष्ट रूप से वैश्विक स्तर पर अभूतपूर्व आर्थिक मंदी की संभावना है। वायरस की अस्थिर प्रकृति नीति निर्माताओं के लिए इसे रोकने के लिए सही व्यापक आर्थिक नीति बनाना कठिन बना देती है। बाल्डविन और वेडर डी मौरो (2020)[4] ने देखा कि कोविड-19 दुनिया भर में आर्थिक पीड़ा फैला रहा है और यह आर्थिक रूप से उतना ही संक्रामक हो सकता है जितना कि चिकित्सा के लिए। हालांकि महामारी के प्रभाव की भयावहता अप्रत्याशित है, लेकिन इसका झटका लंबे समय तक बना रहने की संभावना है और शायद विश्व अर्थव्यवस्थाओं में बड़े संरचनात्मक परिवर्तन हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, भौतिक व्यापार ने ऑनलाइन शॉपिंग का रास्ता अपनाया है जिससे किराने का सामान और सब्जियों की आपूर्ति प्रभावित हुई है। लेकिन दुनिया को हिला देने वाला पहला बड़ा झटका करीब तीन दशकों में देखी गई सबसे बड़ी एक दिवसीय तेल की कीमत में गिरावट थी। मार्च, 2020 में ब्रेंट ऑयल की कीमत 34 डॉलर प्रति बैरल से गिरकर 25.70 डॉलर पर आ गई, जिसमें 24 प्रतिषत की गिरावट दर्ज की गई। उच्च आर्थिक अनिश्चितता के कारण, वैश्विक शेयर बाजारों ने 24 से 28 फरवरी, 2020 के बीच एक सप्ताह के भीतर लगभग 6 ट्रिलियन डॉलर की संपत्ति में गिरावट का अनुभव किया। और उसी सप्ताह S-P 500 इंडेक्स ने लगभग 5 ट्रिलियन डॉलर का नुकसान किया।[5]

महामारी के दौरान वित्तीय संकट भी एक महत्वपूर्ण पहलू बनकर उभरा। देशों ने वित्तीय राहत पैकेजों की घोषणा की, जिससे अर्थव्यवस्थाओं को कुछ राहत मिली, लेकिन इसके बावजूद, महामारी के बाद आर्थिक पुनर्निर्माण और विकास की प्रक्रिया में लंबा समय लगा। इस दौरान केंद्रीय बैंकों ने ब्याज दरों में कटौती की और सरकारी खर्चों में वृद्धि की, ताकि मंदी से बचा जा सके। साथ ही, इस संकट के दौरान डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन सेवाओं का विस्तार हुआ, जिससे एक नई डिजिटल अर्थव्यवस्था का जन्म हुआ।

महामारी के दौरान रोजगार संकट ने वैश्विक श्रम बाजार को गहरे रूप से प्रभावित किया। लाखों लोग बेरोजगार हुए, जबकि असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों ने विशेष रूप से नुकसान उठाया। महामारी ने वैश्विक असमानताओं को और बढ़ा दिया, और गरीब देशों के नागरिकों के लिए महामारी के बाद की आर्थिक चुनौतियां और भी कठिन हो गईं। यही नहीं, महामारी ने स्वास्थ्य सेवाओं के महत्व को भी उजागर किया और यह महसूस कराया कि स्वास्थ्य और आर्थिक क्षेत्र के बीच गहरा संबंध है। इस शोध पत्र का उद्देश्य कोविड-19 महामारी के कारण वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं पर पड़े प्रभावों का विश्लेषण करना है। यह महामारी एक आर्थिक संकट के रूप में उभरी, जिसने विभिन्न देशों में गंभीर आर्थिक मंदी, बेरोजगारी और वित्तीय संकट का कारण बनी। इस अध्ययन में हम महामारी के कारण विभिन्न क्षेत्रों जैसे व्यापार, रोजगार, वित्त, पर्यटन और सामाजिक कल्याण प्रणाली पर हुए प्रभावों का विस्तृत अध्ययन करेंगे। साथ ही, महामारी के बाद के समय में आर्थिक सुधारों और वैश्विक सहयोग के महत्व को भी समझने का प्रयास करेंगे।

महामारी के बाद के दौर में यह भी देखा गया कि दुनिया भर में सरकारें और अंतरराष्ट्रीय संस्थाएं कोरोना वायरस के प्रभाव से उबरने के लिए योजनाएं बनाने में जुटी थीं। विभिन्न देशों ने ग्रीन रिकवरी योजनाओं की शुरुआत की, जिसमें पर्यावरणीय सुधारों को प्राथमिकता दी गई, ताकि इस संकट से उबरने के साथ-साथ दीर्घकालिक पर्यावरणीय स्थिरता भी सुनिश्चित की जा सके। इसके अतिरिक्त, डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन सेवाओं की ओर बढ़ते कदम ने वैश्विक व्यापार और कार्यप्रणाली में एक नया आयाम जोड़ा, जिससे भविष्य के लिए एक नई आर्थिक और सामाजिक संरचना की नींव रखी गई। कोविड-19 ने यह भी साबित किया कि अब भविष्य में किसी भी प्रकार की वैश्विक संकट से निपटने के लिए एक बेहतर तैयारियां और अधिक सहयोग की आवश्यकता होगी। यह संकट न केवल हमारी स्वास्थ्य सेवाओं को सुधारने की आवश्यकता को रेखांकित करता है, बल्कि वैश्विक आर्थिक प्रणाली के डिजिटलीकरण और स्थिरता की दिशा में भी नई चुनौतियों और अवसरों की ओर संकेत करता है। इस महामारी ने हमें यह भी समझाया कि किसी भी वैश्विक संकट से निपटने के लिए समन्वित प्रयासों और सतत विकास की आवश्यकता है, ताकि भविष्य में हम ऐसे संकटों का सामना कर सकें और इससे शीघ्र उबर सकें।[6]

साहित्य की समीक्षा

विलेना युरेविना जिलेंको, और अन्य (2021)[7] ने अपने अध्ययन में स्पष्ठ किया है कि 2019 में दुनिया में एक नए कोरोनावायरस संक्रमण (COVID-19) के सामने आने के परिणामस्वरूप लोगों के जीवन के सभी क्षेत्रों में बदलाव आया। वायरस के प्रसार को कम करने के लिए किए गए उपायों का अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक और पर्यावरण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इस शोध का उद्देश्य पर्यावरण पर कोविड-19 के सकारात्मक प्रभाव का अध्ययन करना और स्वीकार किए गए संगरोध उपायों के संबंध में वैश्विक आर्थिक मंदी का अध्ययन करना है। शोध में कोविड-19 पर वैश्विक सांख्यिकी और उपलब्ध वैज्ञानिक साहित्य के विश्लेषण के आधार पर एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया। मुख्य मैक्रोइकॉनोमिक संकेतकों का विश्लेषण किया जाता है, और अलगाव अवधि के दौरान वायुमंडल और जलमंडल की स्थिति का आकलन किया जाता है। शोध के परिणामस्वरूप, आर्थिक मंदी को खत्म करने में योगदान देने वाले मुख्य उपायों की पहचान की जाती है, साथ ही दीर्घकालिक पर्यावरणीय लाभ प्राप्त करने के मुख्य तरीके भी बताए जाते हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिकी और अर्थशास्त्र में प्रस्तावित रणनीतियों का कार्यान्वयन वैश्विक आर्थिक और पर्यावरणीय स्थिरता के लिए उपयोगी हो सकता है।

बेल्लो अहमद अब्बा, (2020)[8] ने अपने अध्ययन में स्पष्ठ किया है कि वैश्विक अर्थव्यवस्था पर कोविड-19 महामारी के प्रभाव की जांच की गई है। अध्ययन में कोविड-19 वैश्विक सांख्यिकी, तेल की कीमत, नीतिगत प्रतिक्रियाओं और शेयर बाजार के नवीनतम साहित्य की समीक्षा करते हुए एक विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह पाया गया कि कोविड-19 200 से अधिक देशों में फैल चुका है और आर्थिक लागत स्वास्थ्य प्रभाव से अधिक

समय तक रह सकती है। इस प्रकोप के कारण तेल की कीमत में अभूतपूर्व गिरावट आई जिसने तेल पर निर्भर देशों की अर्थव्यवस्थाओं को तबाह कर दिया। कोविड-19 के झटके का प्रभाव, प्रसार को कम करने के लिए किए गए चरम उपायों जैसे कि संगरोध, लॉकडाउन, यात्रा और आंदोलन प्रतिबंध के प्रभाव से कम होने की संभावना है। अध्ययन में प्रसार को कम करने के चिकित्सा प्रोटोकॉल को लागू करने और अर्थव्यवस्थाओं को तेजी से शुरू करने के लिए उत्पादक क्षेत्रों पर लक्षित राजकोषीय प्रतिक्रिया के लिए सभी देशों द्वारा समन्वित कार्रवाई की सिफारिश की गई है। इसके लिए उपभोक्ताओं के लिए अधिक उपशामक उपायों और व्यवसायों को बेलआउट की आवश्यकता होगी।

काये, ए.डी., और अन्य, (2021)[9] ने अपने अध्ययन में स्पष्ठ किया है कि अंतर्राष्ट्रीय अस्पताल और स्वास्थ्य सेवा सुविधाएं कोविड -19 महामारी से संबंधित भयावह वित्तीय चुनौतियों का सामना कर रही हैं। अमेरिकन हॉस्पिटल एसोसिएशन का अनुमान है कि अमेरिका के अस्पतालों और स्वास्थ्य सेवा प्रणालियों के लिए राजस्व में $202.6 बिलियन का वित्तीय नुकसान हुआ है, या औसतन $50.7 बिलियन प्रति माह। इसके अलावा, कोविड-19 के लिए प्रभावी स्वास्थ्य सेवा प्रतिक्रिया प्रदान करने के लिए निम्न और मध्यम आय वाले देशों को हर चार सप्ताह में US$52 बिलियन (प्रति व्यक्ति US$ 8.60 के बराबर) का खर्च उठाना पड़ सकता है। अमेरिका में सबसे अधिक दैनिक कोविड-19 नए मामलों की स्थिति में, यह बोझ रोगी देखभाल, सर्जरी और सर्जिकल परिणामों को प्रभावित करेगा। वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण से, विश्व बैंक का अनुमान है कि वैश्विक विकास में लगभग 8 प्रतिशत की कमी आने का अनुमान है, जिसका सबसे अधिक प्रभाव गरीब देशों पर पड़ेगा, और संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि इस वर्ष वैश्विक अर्थव्यवस्था को लगभग 2 ट्रिलियन डॉलर का नुकसान होगा। कुल मिलाकर, दुनिया भर में स्वास्थ्य सुविधाओं द्वारा अनुभव किए गए संघर्षों में तैयारी की कमी एक प्रमुख योगदानकर्ता थी। स्वास्थ्य कर्मियों के लिए व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरण (पीपीई), अस्पताल के उपकरण, सैनिटाइजिंग आपूर्ति, टॉयलेट पेपर और पानी जैसी वस्तुओं की कमी थी। कोविड-19 द्वारा इन कमियों को उजागर किया गया और इसने दुनिया भर के स्वास्थ्य संगठनों को महामारी की तैयारी के लिए नई आवश्यक योजनाओं का आविष्कार करने के लिए प्रेरित किया। इस पेपर में, हम अमेरिका और अंतरराष्ट्रीय अस्पतालों, स्वास्थ्य सुविधाओं, सर्जरी और सर्जिकल परिणामों पर कोविड-19 के आर्थिक प्रभाव पर चर्चा करेंगे। भविष्य में, अमेरिका और दुनिया भर के देशों को आपदा या महामारी की स्थिति में मार्गदर्शक के रूप में उपयोग करने के लिए कार्य योजना तैयार करने से लाभ होगा।

भास्कर बागची, और अन्य (2020)[10] ने अपने अध्ययन में स्पष्ठ किया है कि जैसा कि हमारी पूरी दुनिया कोविड-19 महामारी का सामना करने के लिए संघर्ष कर रही है, वैश्विक अर्थव्यवस्था पर इसका प्रभाव बढ़ रहा है - OECD ने चेतावनी देते हुए कहा है कि वर्तमान महामारी 2008-2009 में आई बड़ी मंदी के बाद अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा है। UNCTAD, संयुक्त राष्ट्र की व्यापार और विकास एजेंसी, ने पहले ही 2020 में वैश्विक विकास दर के 2 प्रतिशत से नीचे जाने की चेतावनी दी है, जो अंततः वैश्विक अर्थव्यवस्था के कुल मूल्य से 1 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर कम कर सकती है। UNCTAD के वैश्वीकरण और विकास रणनीति प्रभाग के निदेशक रिचर्ड कोजुल-राइट ने टिप्पणी की - ''हम इस वर्ष वैश्विक अर्थव्यवस्था में दो प्रतिशत से कम की मंदी की कल्पना करते हैं, और संभवतः इसकी कीमत 1 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर होगी, जो सितंबर 2019 में लोगों द्वारा पूर्वानुमानित की गई थी।'' कच्चे तेल के उत्पादन और कीमतों को लेकर बढ़ती अनिश्चितता और चीन से शुरू हुई आपूर्ति-श्रृंखला में व्यवधान की आशंकाओं के कारण प्रमुख शेयर सूचकांकों में गिरावट के कारण, श्री कोजुल-राइट ने यह भी बताया कि कुछ देशों के कोविड-19 प्रकोप से अप्रभावित रहने की संभावना है।

जोसेफ ई. गगनॉन, स्टीवन बी. कामिन, जॉन किर्न्स, (2023)[11] ने अपने अध्ययन में स्पष्ठ किया है कि 2020 और 2021 के दौरान वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद के वैश्विक प्रक्षेपवक्र पर कोविड-19 महामारी के प्रभाव को मापने के पहले प्रयासों में से एक का वर्णन करता है। यह कोविड-19 के आर्थिक प्रभावों को प्रसारित करने में घरेलू चर और वैश्विक व्यापार की भूमिका के बीच अंतर करने के पहले प्रयासों में से एक है। हम 2020 Q1 से 2021 Q4 की अवधि में 90 देशों के लिए महामारी चर पर वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद में तिमाही वृद्धि के पैनल डेटा प्रतिगमन का अनुमान लगाते हैं। हम पाते हैं कि कोविड-19 मौतों की संख्या पर रीडिंग का हमारे समग्र नमूने में बहुत कम प्रभाव पड़ा। दूसरी ओर, वायरस के प्रसार को प्रतिबंधित करने के लिए सरकारों द्वारा उठाए गए लॉकडाउन उपायों की कठोरता में परिवर्तन जीडीपी पर एक महत्वपूर्ण प्रभाव था। महामारी के आर्थिक प्रभाव अमीर और गरीब देशों के बीच भिन्न थेः कोविड-19 मौतों ने उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में जीडीपी पर कुछ हद तक अधिक दबाव डाला, हालांकि यह अंतर सांख्यिकीय रूप से महत्वपूर्ण नहीं था, जबकि लॉकडाउन प्रतिबंध उभरती और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक गतिविधि के लिए अधिक हानिकारक थे। इन घरेलू महामारी प्रभावों के अलावा, वैश्विक व्यापार एक महत्वपूर्ण चौनल का प्रतिनिधित्व करता है जिसके माध्यम से महामारी के आर्थिक प्रभाव राष्ट्रीय सीमाओं के पार फैल गए। यह निष्कर्ष इस बात को रेखांकित करता है कि कैसे वैश्वीकरण प्रत्येक देश को न केवल कोविड-19 महामारी से होने वाले चिकित्सा संक्रमण के प्रति, बल्कि आर्थिक संक्रमण के प्रति भी कमजोर बनाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. द न्यूयॉर्क टाइम्स, 2020 May 28. Updated May 29, 2020.
2. झांग, डी., हू, एम. और जी, क्यू. (2020), ''फाइनेंसियल मार्केट्स अंडर थे ग्लोबल पान्डेमिक ऑफ कोविद-19'', फाइनेंस रिसर्च लेटर्स, 36, पृष्ठः 101-528।
3. बेल्लो अहमद अब्बा, (2020), ''इम्पैक्ट ऑफ कोविद-19 पान्डेमिक ओंन ग्लोबल इकॉनमी'', एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल, पृष्ठः 1-9।
4. बाल्डविन आर, और वेडर डी मौरो बी., (2020), ''इकोनॉमिक्स इन थे टीमे ऑफ कोविद-19'', लंदनः सीईपीआर प्रेस।
5. पीटरसन के ओजिली, और थैंकम अरुण, (2020), ''स्पिलवर ऑफ कोविद-19ः इम्पैक्ट ओंन थे ग्लोबल इकॉनमी'', एसएसआरएन, पृष्ठः 1-29।
6. वारविक मैककिबिन, और रोशेन फर्नांडो, (2023), ''थे ग्लोबल इकनोमिक इम्पैटस ऑफ थे कोविड-19 पान्डेमिक'', इकनोमिक मॉडलिंग, 142, पृष्ठः 1-62।
7. होम्स, ई.सी. एट अल. (2021) "SARS-CoV-2 की उत्पत्तिरू एक महत्वपूर्ण समीक्षा'', सेल, 184(19), पृष्ठः 4848-4856।
8. जिनजिन मा, (2020), ''रिसर्च ओंन थे इम्पैक्ट ऑफ कोविड़ 19 ओंन ग्लोबल इकॉनमी'', आईओंपी कांफ्रेंस सीरीजः एअर्थ एंड एनवायर्नमेंटल साइंस, 546(3), प्रष्ठः 1-7।

9. विलेना युरेविना जिलेंको, एल्मिरा फेलोव्ना अमिरोवा, डेनिस एवगेनिविच लोमाकिन, (2021) ''थे इम्पैक्ट ऑफ कोविद-19 पान्डेमिक ओंन थे ग्लोबल इकॉनमी एंड एनवायरनमेंट'', एएसईआरएस प्रकाशन, पृष्ठ: 1236-1241।
10. बेल्लो अहमद अब्बा, (2020), ''इम्पैक्ट ऑफ कोविद-19 पान्डेमिक ओंन ग्लोबल इकॉनमी'', एसएसआरएन इलेक्ट्रॉनिक जर्नल, पृष्ठ: 1-9।
11. काये, ए.डी., और अन्य, (2021), ''इकनोमिक इम्पैक्ट ऑफ कोविद-19 पान्डेमिक ओंन हैल्थकारे फैसिलिटीज एंड सिस्टम्स: इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव्स'', बेस्ट प्रैक्टिस रिसर्च क्लीनिकल अनेस्थेसिओलोग्य, 35(3), पृष्ठ: 293-306।
12. भास्कर बागची, सुस्मिता चटर्जी, रक्तिम घोष और ध्रुबरंजन दंडपत, (2020), ''इम्पैक्ट ऑफ कोविद-19 ओंन ग्लोबल इकॉनमी'', कोरोनावायरस आउटब्रेक एंड द ग्रेट लोखड़ाउन, पृष्ठ: 15-26।
13. जोसेफ ई. गगनॉन, स्टीवन बी. कामिन, जॉन किर्न्स, (2023), ''थे इम्पैक्ट ऑफ थे कोविद-19 पान्डेमिक ओंन ग्लोबल जीडीपी ग्रोथ'', जर्नल ऑफ थे जापानीज एंड इंटरनेशनल ईकोनोमिएस, पृष्ठ: 101-258।

वैश्वीकरण के प्रभाव में भारतीय संस्कृतिः एक समीक्षात्मक अध्ययन

प्रशांत कुमार

शोधार्थी, स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांशः

आज वैश्वीकरण के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है। हम ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जिसमें आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान में शीघ्रता से बढ़ोतरी हुई है तथा हमारा देश भारत भी इस प्रक्रिया का हिस्सा बनकर उभरा है। जहाँ एक तरफ वैश्वीकरण की वजह से भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार दुनिया भर में हुआ है, वहीं दूसरी तरफ पश्चात संस्कृति के हॉबी होने से हमारी संस्कृति के ऊपर खतरे के बादल भी मंडराने लगे हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय संस्कृति और परंपरा को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। वास्तव में वैश्वीकरण ने हमारी स्थानीय संस्कृति व परंपरा में सेंध लगाकर हमारे ऊपर विदेशी संस्कृति को थोपने का प्रयास किया है। इस प्रयास से स्थानीय पहचान के ऊपर कठोराघात हुआ तथा जनता में असुरक्षा की भावना बढ़ गई है।

शब्द बीज - वैश्वीकरण, उदारीकरण, भूस्थानीकरण, सांस्कृतिक परिवर्तन, बाजारवाद, इत्यादि।

प्रस्तावनाः

साधारण शब्दों में पूरी दुनिया में एक केंद्रीय व्यवस्था का होना ही वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण है। यह विश्व के चारों तरफ अर्थव्यवस्था का बढ़ता हुआ एकीकरण है। आरंभिक दौर में वैश्वीकरण को विश्व के आर्थिक पक्षों तक ही समेट कर देखा जाता था किंतु अब इसे व्यापक संदर्भ में देखा जा रहा है। इसके अंतर्गत सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक गतिविधियों के साथ जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दों को शामिल करके देखा जा रहा है। इन सब के अलावे मीडिया, तकनीकी और संस्कृति जैसे कारक भी वैश्वीकरण के प्रभाव से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए हैं। हम आर्थिक रूप से देखते हैं तो पता चलता है कि वैश्वीकरण ने भारत को एक शक्ति के रूप में स्थापित किया है, किंतु इसकी वजह से आय की असमानता जैसी स्थिति भी उत्पन्न हुई है। सामाजिक स्तर पर वैश्वीकरण की वजह से सामाजिक संरचना में परिवर्तन हुआ है। हमारी पारंपरिक मूल्यों एवं रीति-रिवाज पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ठीक इसी तरह से वैश्वीकरण की वजह से हमारी संस्कृति का प्रचार- प्रसार दुनिया भर में हुआ है लेकिन हमारी संस्कृति के लिए खतरा की स्थिति भी उत्पन्न हुई है। इतना ही नहीं पर्यावरण रूप से भी वैश्वीकरण ने प्रभाव डाला है, इसके प्रभाव में आकर जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण की स्थिति उत्पन्न हुई है।

अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि हमें वैश्वीकरण के प्रभावों को समझ कर इसके सकारात्मक पहलुओं को ही अपने की जरूरत है, ताकि हमारी संस्कृति की हिफाजत सुनिश्चित हो सके तथा इसके प्रभाव को सकारात्मक दिशा में ले जाना संभव हो सके। वैश्वीकरण के प्रभाव को ठीक से समझने के लिए हमें इसके इतिहास को भी देखना जरूरी है। वर्ष 1991 में वैश्वीकरण की शुरुआत हुई थी और भारत अपनी अर्थव्यवस्था को उदार बनाया था। आगे चलकर वैश्वीकरण की गति तीव्र हो गई। आज भारत ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया पर इसके प्रभाव को देखा और महसूस किया सकता है।

मूल विषयः

मनुष्य की विचारधारा के साथ समाज में भी परिवर्तन का होना स्वाभाविक क्रिया है। हम जानते हैं कि समाज और संस्कृति के बीच पारस्परिक संबंध है। यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तन के साथ संस्कृति भी परिवर्तित होती रहती है। वक्त की रफ्तार के साथ समाज में परिवर्तन की क्रिया जारी ही रहती है। वर्तमान परिपेक्ष में देखा जाए तो वैश्वीकरण ने संस्कृति परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह सामाजिक- सांस्कृतिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनकर उभरा है। भारतीय संस्कृति को वैश्वीकरण ने विभिन्न तरह से प्रभावित किया है। भारतीय रहन-सहन, वेशभूषा, सृजनात्मकता, क्रियाकलाप, भाषा की प्राथमिकता, स्त्री- पुरुष संबंध, एकल परिवार के प्रति बढ़ता रुझान, नए क्रियाकलापो को प्राथमिकता, सोशल मीडिया, फिल्मों के प्रति रुचि, सामाजिक रीति-रिवाजो के प्रति विश्वास आदि वैश्वीकरण के कारण ही प्रभावित हुए हैं। भारतीय युवाओं में पश्चिमी संस्कृति को अपनाने की होर मची है। स्पष्ट है कि वैश्वीकरण पारिवारिक संरचना, सामाजिक मूल्यों के साथ हमारी मनोवृतियों को भी तेजी से बदल रहा है। संयुक्त परिवार की अवधारणा जो भारतीय संस्कृति की अन्य विशेषताओं में से एक थी, उसकी जगह एकल परिवार ने ले लिया है। स्त्री- पुरुष के संबंध में हुए बदलाव का एक महत्वपूर्ण कारण वैश्वीकरण है। स्त्रियों के रोजगार तथा शिक्षा के अवसरों के विस्तार के कारण उनकी सार्वजनिक स्थलों पर मौजूदगी बढ़ी है। इससे समाज में तलाक तथा विवाहेतर संबधो के प्रति परंपरागत सोच में बदलाव हुआ है।

वैश्वीकरण के कारण भारतीय खान-पान की आदतें, वेशभूषा, समारोह एवं पर्व त्यौहार भी काफी बदल गए। विदेशी फास्ट फूड, रेस्तरां एवं मॉल कल्चर में हुई वृद्धि के कारण, उपभोक्तावादी संस्कृति में वृद्धि हुई है। भारतीय उपभोक्ताओं के पास विकल्पों की उपलब्धता भी बढ़ गई है। वैश्वीकरण के कारण भारत में भी उपभोक्तावादी संस्कृति का उद्‌भव और विकास हुआ है। इस संस्कृत में भौतिक वस्तुओं के एकत्रीकरण को ही व्यक्तिगत सफलता का पर्याय माना जाता है। इससे एक ऐसी बाजारवादी संस्कृति का जन्म हुआ है, जिसमें नित्य नए उत्पाद खरीदे और बेचे जाते हैं। ऐसा करने में ही बाजारवादी संस्कृति का पोषण निहित है। इसमें व्यक्ति ऐसी वस्तुएं भी खरीदता है जिसके होने नहीं होने से जीवन की गुणवत्ता पर असर नहीं पड़ता है।

फैशन के प्रति हमारा जो रुझान बढ़ा है इससे स्पष्ट होता है कि हम यहाँ भी वैश्वीकरण के प्रभाव से प्रभावित हैं। महंगी वस्तुएं विदेशी ब्रांडों तथा कपड़ों के प्रति हमारी उत्सुकता तेजी से बढ़ रही है। ऐसी स्थिति बनी हुई है कि अब लोग कपड़ों से अधिक ब्रांडों को पहचानते हैं। आज कंपनियों के कामकाज में ब्रांड मेकिंग एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है और हम अलग ही संस्कृत में ढलते जा रहे हैं। इस संस्कृति को और भी बढ़ावा देने में विज्ञापनों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। यह एक ऐसी संस्कृति है जिसमें धन को संजोकर रखने की बजाय अधिकाधिक खर्च करना महत्वपूर्ण काम बन गया है। गहन अध्ययन से साफ होता है कि 1970 के दशक में नगरों की वृद्धि में उत्पादन उद्योग की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। अब खाद्य, कला, संगीत, पर्यटन और फैशन की भूमिका भी बढ़ गई। ये सभी कारक संयुक्त रूप से नगरों की वृद्धि को आकर प्रदान करने के कार्य में संलग्न हैं।

निजी तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों का तेजी से प्रसार हो रहा है। इन सब के संयुक्त प्रभाव से एक नवीन किस्म की संस्कृति का उदय हुआ है, जिसे हम शहरी संस्कृति की संज्ञा से अलंकृत करते हैं। निगम संस्कृति गतिशील रहकर प्रबंधन की नवीन रीति तथा परंपराओं को बढ़ावा देती रही है। दूसरी तरफ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फैलाव तथा सूचना एवं प्रौद्योगिकी में आई क्रांति के परिणाम स्वरुप अवसरों की उपलब्धता में वृद्धि होने के कारण भारत के महानगरों में ऊर्ध्वगामी पेशेवरों का वर्ग बन कर तैयार हो गया है। ये पेशेवर फैशन डिजाइन, स्टॉक बाजार से लेकर बहुराष्ट्रीय बैंकों, सॉफ्टवेयर फार्मों तथा मीडिया के क्षेत्र में कार्यरत हैं। इन पेशेवरों की कार्य अनुसूची वास्तव में तनावपूर्ण हुआ करती है। उनके वेतन भत्ते अधिक होते हैं तथा बाजार में तेजी से बढ़ते उपभोक्ता उत्पादों के वे प्रमुख ग्राहक हुआ करते हैं।

खास बात यह है कि किसी संस्कृति को ऐसे परिवर्तनशील तथा स्थिर सत्य के रूप में नहीं देखा जा सकता है जो सामाजिक परिवर्तन के कारण ढह जाएगी या फिर जस की तस अवस्था में बनी रहेगी। स्पष्ट है कि भूमंडलीकरण के कारण स्थानीय परंपराएं ही नहीं, अपितु नई भूमंडलीय परंपराएं भी निर्मित तथा विकसित हो रही। भूमंडलीकरण के संदर्भ में अक्सर दावा किया जाता रहा है कि इसके प्रभाव में आकर सभी संस्कृतियाँ एक समान हो जाएंगी। इससे संबंधित एक मत यह भी है कि संस्कृतियों में भूस्थानीकरण की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ती जा रही है। भूस्थानीकरण का मतलब ही है भूमंडलीकरण के साथ स्थानीयता का मिश्रण। यह भी कहा जा सकता है कि यह संपूर्ण प्रक्रिया स्वत: परिवर्तित नहीं होती है इनमें भूमंडलीकरण के वाणिज्यिक हित भी मिले होते हैं। यही कारण है कि विदेशी कंपनियां बाजार बढ़ाने के लिए स्थानीय परंपरा के अनुरूप खुद को ढालती हैं। स्थानीय भाषा, गीत एवं त्योहार के साथ वस्तु एवं सेवाओं को बढ़ावा देती है।

संगीत के क्षेत्र में देखा जाए तो भांगड़ा पॉप, इंडी पॉप तथा रीमिक्स गीतों की बढ़ती हुई लोकप्रियता भूमंडलीकरण की ही देन कहलाएगी। महिलाओं के संदर्भ में हम पाते हैं कि भूमंडलीकरण की वजह से ही महिलाओं को अधिक समावेशी तथा लोकतांत्रिक रूप मिलना संभव हो सका है। संस्कृति पहचान के नाम पर परंपरागत स्वरूप का समर्थन करने वाले लोग महिलाओं के खिलाफ होने वाले भेदभाव से पूर्ण व्यवहारों और लोकतांत्रिक प्रथाओं को सांस्कृतिक पहचान का नाम देकर ही बचते हैं। इस बात को कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि विगत दशकों में महिलाओं की भागीदारी विभिन्न क्षेत्रों में काफी बढ़ी है, यह भूमंडलीकरण का ही प्रभाव और परिणाम है।

1991 के बाद विदेशी कंपनियों ने भारतीय सिनेमा को प्रचार प्रसार का सशक्त माध्यम बनाया। परिणाम के रूप में हम 24 घंटे चलने वाली टेलीविजन शो को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। सच यह भी है कि भूमंडलीकरण के बाद परिवर्तित फिल्मों ने हम भारतीय को विलासिता पूर्ण जीवन की तरफ खींच कर ले आया। ऐसी फिल्मों की वजह से लोग खुद ब खुद बाजार में उपलब्ध सामानों का उपयोग और उपभोग करने हेतु मजबूर हो गए। वर्तमान में हम फिल्म को यथार्थवादी नजरिए से देखते हैं, ना कि आदर्शवादी नजरिया से प्रेरित होकर। ऐसी विषयों पर भी फिल्में बनाई जा रही है जिनकी हमने इससे पूर्व कल्पना की नहीं की थी।

विगत कुछ वर्षों में सोशल नेटवर्किंग की प्रसिद्धि काफी तेज गति से बढ़ी है, जो व्यक्तिगत रूप से मित्रों तथा परिवारों के बीच संपर्क स्थापित करने का अवसर प्रदान करती है। व्यापार के क्षेत्र में भी देखा जाए तो सोशल हिंदी मीडिया उपयोगी साबित हुई है। यह विज्ञापन तथा मार्केटिंग का एक मजबूत माध्यम के रूप में दिख रही है, लेकिन इसके अत्यधिक उपयोग के करण गंभीर परिणाम भी भुगतने पर रहे हैं। इससे न केवल समय की बर्बादी होती है, बल्कि व्यक्ति की पहचान के साथ विवरण भी चोरी हो रही है। यह तकनीकी धोखाधड़ी, हैकिंग, वायरस हमले जैसे ना जाने कितनी समस्याओं को जन्म दे रही हैं। इस प्रकार की घटनाएं अब भारतीय समाज में आम हो गई हैं।

स्वदेशी शिल्प, साहित्य परंपरा तथा ज्ञान व्यवस्थाओं पर भी भूमंडलीकरण का प्रभाव हुआ है। परंपरागत संस्कृति रूपों तथा उन पर आधारित व्यापारों पर भी भूमंडलीकरण ने कब्जा जमा रखा है। भूमंडलीकरण ने दुनिया में एक नेटवर्किंग समिति को जन्म दिया है इसकी वजह से विश्व के अलग-अलग देशों के साथ अन्त: संबंध की स्थापना हुई है। बावजूद इसके कहा जा सकता है कि इसमें अभी कुशलता एवं गुणात्मक सुधार लाने की जरूरत है। हालांकि, इस दिशा में भारत ने भी अपनी पहल तेज कर दी है। सरकार के द्वारा विभिन्न कार्यक्रम एवं योजनाएं संचालित की जा रही हैं। कुशल मानव संसाधन को बढ़ावा देने के लिए कौशल विकास अभियान एवं डिजिटलीकरण के लिए डिजिटल इंडिया मिशन की शुरुआत इसका सुंदर उदाहरण है। कुल मिलाकर भूमंडलीकरण की जद में आकर भारतीय व्यापार की संस्कृति भी प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुई है।

अध्ययन का उद्देश्यः

इस शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य वैश्वीकरण की बहुआयामी प्रक्रिया और भारतीय संस्कृति के पारंपरिक ढांचे के बीच होने वाली अंत:क्रिया का विश्लेषण करना है। यह अध्ययन इस बात की पड़ताल करता है कि वैश्विक प्रवाह ने किस प्रकार भारतीय समाज के बुनियादी मूल्यों, जैसे कि परिवार संस्था, विवाह के स्वरूप और सामाजिक नैतिकता को पुनर्गठित किया है। शोध का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य यह समझना है कि पश्चिमी जीवनशैली और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव में आकर भारतीय खान-पान, वेशभूषा और भाषा ने अपनी मौलिकता को किस सीमा तक खोया है या उनमें किस तरह का अनुकूलन हुआ है। यह अध्ययन केवल नकारात्मक प्रभावों तक सीमित न रहकर इस बात पर भी ध्यान केंद्रित करता है कि वैश्वीकरण ने भारतीय संस्कृति को वैश्विक मंच पर किस प्रकार प्रचारित किया है, जैसे कि योग, अध्यात्म और भारतीय संगीत का अंतरराष्ट्रीयकरण। शोध का उद्देश्य उस सांस्कृतिक हाइब्रिडिटी की पहचान करना है, जहाँ वैश्विक तकनीक और स्थानीय परंपराएं मिलकर एक नया सामाजिक विमर्श खड़ा कर रही हैं। अंततः यह शोध इस बात का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है कि भारतीय संस्कृति अपनी विविधता और जड़ों को बनाए रखते हुए आधुनिकता की चुनौतियों का सामना करने में कितनी सक्षम रही है।

निष्कर्षः

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमारी संस्कृति को जितनी अधिक बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध हुई है उतना ही विनाश का कारण बनकर उभरी है। यह जरूरी हो गया है कि हम अपनी संस्कृति की हिफाजत करें तथा वैश्वीकरण के प्रभाव को सकारात्मक दिशा प्रदान करने में अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करें। वैश्वीकरण एकरूपता को जन्म दे सकता है क्योंकि, स्थानीय भाषाएं एवं संस्कृति पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव में आकर दब सकती है। पश्चिमी मीडिया, उपभोक्ता वस्तुएं एवं भाषाओं के प्रसार से परंपरागत प्रथाएं कमजोर होती जा रही हैं। हालांकि, इस बात को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि वैश्वीकरण ने संस्कृत आदान-प्रदान के मार्ग को सुगम बनाया है। इससे हमारी संस्कृति का प्रसार दुनिया भर में हुआ है। खास बात यह है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया हमेशा संस्कृति अंत की वजह नहीं बनती है बल्कि, संस्कृति के लिए संरक्षण तथा पुनर्जीवन के नए अवसर भी वैश्वीकरण के कारण मिल जाया करते हैं। आज के इस डिजिटल युग में स्थानीय समुदाय अपनी संस्कृति की हिफाजत करते हुए दुनिया के साथ सक्रिय रूप से जुड़ सकते हैं। अंत में इतना ही कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के इस दौर में संस्कृतियों तथा परंपराओं का भविष्य इस बात पर निर्भर करेगा कि वह संस्कृति और परंपरा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के मध्य संतुलन किस प्रकार बनती है।

संदर्भ सूचीः

1. डॉ सुरेश चंद्र सिंहल-(2005-06)- समकालीन राजनीतिक मुद्दे , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ.- 89 - 90
2. प्रो. एम.एल. गुप्ता एवं डॉ. डी.डी. शर्मा (2009)- भारतीय समाज, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, पृ.- 142
2. वही पृ.- 144
3. अजय कुमार (2016)- अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के सिद्धांत, रेप्रो इंडिया लि. , मुंबई, पृ.- 66
4. एम. एन. श्रीनिवास (2015)- आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.- 115
5. राम आहुजा (2018)- भारतीय समाजः मुद्दे और समस्याएँ, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, पृ.-213
6. वैश्वीकरण विकिपीडिया

कवर्धा रियासतः साहित्य, संस्कृति और मानवीय मूल्यों का अध्ययन

देवलाल उइके, शशिकला सिन्हा

शासकीय माता शबरी नवीन कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय बिलासपुर (छ. ग.)

सारांशः

छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक रियासतों में कवर्धा रियासत का स्थान विशिष्ट और गौरवपूर्ण रहा है। यह रियासत केवल राजनीतिक गतिविधियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि साहित्य, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में भी इसकी उल्लेखनीय भूमिका रही है। कवर्धा का साहित्य आम जनजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ था, जिसमें लोगों की भावनाएँ, नैतिक सोच और सामाजिक चेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। इस साहित्य ने समाज को नैतिक मार्गदर्शन देने के साथ-साथ सामाजिक समरसता को भी सुदृढ़ किया। कवर्धा की संस्कृति में लोक पर्वों, लोक नृत्यों, पारंपरिक संगीत और आदिवासी परंपराओं का सुंदर समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ की सांस्कृतिक परंपराएँ प्रकृति के प्रति सम्मान, सामूहिक जीवन मूल्यों और सामाजिक सहभागिता को प्रोत्साहित करती रही हैं। सहनशीलता, करुणा, सामाजिक सद्भाव और पारस्परिक सहयोग जैसे मानवीय मूल्य कवर्धा समाज की पहचान रहे हैं, जिन्होंने इसे एक समृद्ध और संतुलित सामाजिक संरचना प्रदान की। यह शोध पत्र कवर्धा रियासत के साहित्यिक योगदान, सांस्कृतिक विरासत और मानवीय मूल्यों का समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कवर्धा न केवल एक राजनीतिक इकाई थी, बल्कि एक ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था भी थी, जिसने क्षेत्रीय चेतना, मानवीय संवेदनशीलता और सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुख्य शब्दः कवर्धा रियासत, साहित्य, संस्कृति, मानवीय मूल्य, लोकपरंपरा, छत्तीसगढ़

भूमिका

छत्तीसगढ़ का इतिहास अनेक छोटी-बड़ी रियासतों की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक गतिविधियों से निर्मित हुआ है। ब्रिटिश काल में यह क्षेत्र Central Provinces and Berar के अंतर्गत आता था, जहाँ बस्तर, सरगुजा, रायगढ़, खैरागढ़, कवर्धा तथा अन्य रियासतों ने स्थानीय शासन, संस्कृति और जनजीवन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन रियासतों ने केवल प्रशासनिक इकाइयों के रूप में ही नहीं, बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में भी कार्य किया। (भारत सरकार, 1908, मेनन, 1956)

छत्तीसगढ़ की ऐतिहासिक रियासतों में कवर्धा रियासत का स्थान विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण रहा है। यह रियासत केवल राजनीतिक गतिविधियों तक सीमित न रहकर साहित्य, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन की दृष्टि से भी उल्लेखनीय रही है। यहाँ का साहित्य जनजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ था, जिसमें नैतिक चेतना, सामाजिक समरसता और लोकमानस की अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। साथ ही, कवर्धा क्षेत्र की सांस्कृतिक परंपराएँ लोकपर्वों, लोकनृत्यों, लोकगीतों तथा आदिवासी परंपराओं के सुंदर समन्वय के रूप में विकसित हुईं। (अलंग, वर्मा) इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई है क्योंकि कवर्धा रियासत पर केंद्रित साहित्यिक और सांस्कृतिक शोध अपेक्षाकृत सीमित हैं, जबकि इसकी ऐतिहासिक भूमिका क्षेत्रीय चेतना, सामाजिक संतुलन और मानवीय मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण रही है। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य कवर्धा रियासत के साहित्यिक योगदान, सांस्कृतिक विरासत तथा मानवीय मूल्यों के स्वरूप का विश्लेषण करना है, जिससे छत्तीसगढ़ की समग्र सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा को बेहतर ढंग से समझा जा सके। (पाण्डेय, शर्मा) इस शोध की सीमा कवर्धा रियासत के ऐतिहासिक कालखंड, साहित्यिक परंपराओं, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा सामाजिक मूल्यों के अध्ययन तक सीमित रखी गई है। शोध पद्धति के अंतर्गत ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसमें उपलब्ध ग्रंथों, सरकारी अभिलेखों तथा द्वितीयक स्रोतों का तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। (भारत सरकार, 1908, रसेल, 1916)

कवर्धा रियासत का ऐतिहासिक परिचय

"भौगोलिक स्थिति"

कवर्धा रियासत छत्तीसगढ़ के मध्य क्षेत्र में स्थित थी और यह वनाच्छादित पठारी भूभाग से घिरी हुई थी। इसकी भौगोलिक स्थिति ने यहाँ के निवासियों के जीवन, आजीविका और सांस्कृतिक गतिविधियों को गहराई से प्रभावित किया। यह क्षेत्र कृषि, वनोपज तथा पशुपालन पर आधारित अर्थव्यवस्था के लिए जाना जाता था। प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता और दुर्गम भूभाग के कारण कवर्धा क्षेत्र में स्थानीय परंपराओं और सामाजिक संरचनाओं का संरक्षण लंबे समय तक बना रहा। (भारत सरकार, 1908, पाण्डेय)

"राजनीतिक पृष्ठभूमि''

कवर्धा रियासत का विकास छत्तीसगढ़ की अन्य रियासतों की भांति सामंती शासन व्यवस्था के अंतर्गत हुआ। ब्रिटिश शासन काल में यह रियासत Central Provinces and Berar प्रशासनिक ढांचे के अधीन रही, जहाँ शासकों को आंतरिक मामलों में सीमित स्वायत्तता प्राप्त थी, जबकि बाह्य प्रशासन ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण में था। कवर्धा के शासकों ने स्थानीय प्रशासन, न्याय व्यवस्था तथा राजस्व प्रणाली को संगठित कर क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने का प्रयास किया। स्वतंत्रता के पश्चात् यह रियासत भारतीय संघ में विलीन हो गई। (मेनन, 1956, भारत सरकार, 1908)

"सामाजिक संरचना''

कवर्धा रियासत की सामाजिक संरचना विविध जातीय और जनजातीय समुदायों से निर्मित थी। यहाँ आदिवासी समाज, कृषक वर्ग तथा अन्य पारंपरिक समुदायों के बीच सहअस्तित्व और सहयोग की भावना प्रबल थी। सामाजिक जीवन लोकपरंपराओं, धार्मिक विश्वासों और सामूहिक गतिविधियों पर आधारित था। ग्रामीण जीवन में पंचायत व्यवस्था, सामुदायिक श्रम तथा परस्पर सहयोग जैसी परंपराएँ सामाजिक संतुलन बनाए रखने में सहायक रहीं। यह सामाजिक संरचना मानवीय मूल्यों, सहिष्णुता और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने वाली थी। (रसेल, 1916, वर्मा)

कवर्धा रियासत का साहित्यिक योगदान

लोक साहित्य की परंपरा

कवर्धा रियासत में लोक साहित्य की परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। यहाँ के लोकगीत, कथाएँ, गाथाएँ और कहावतें जनजीवन की भावनाओं, संघर्षों और आशाओं को अभिव्यक्त करती हैं। ये रचनाएँ मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई और समाज में नैतिक शिक्षा तथा सांस्कृतिक चेतना के प्रसार का माध्यम बनीं। लोक साहित्य ने सामान्य जन के जीवन अनुभवों को सरल भाषा और प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया। (वर्माय शर्मा)

साहित्य में सामाजिक चेतना और नैतिक मूल्यों का प्रतिबिंब

कवर्धा क्षेत्र के साहित्य में सामाजिक न्याय, सहिष्णुता, करुणा और परस्पर सहयोग जैसे मानवीय मूल्यों का स्पष्ट चित्रण मिलता है। लोककथाओं और गीतों में नारी सम्मान, श्रम की महत्ता और सामूहिक जीवन की भावना को विशेष स्थान प्राप्त है। इस प्रकार का साहित्य समाज को नैतिक मार्गदर्शन देने के साथ-साथ सामाजिक संतुलन बनाए रखने का भी कार्य करता रहा। (पाण्डेयय रसेल, 1916)

जनजीवन और साहित्य का अंतर्संबंध

कवर्धा रियासत का साहित्य जनजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ था। कृषि, वन जीवन, ऋतु परिवर्तन, उत्सव और धार्मिक अनुष्ठान साहित्य के प्रमुख विषय रहे हैं। यह साहित्य न केवल जीवन की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करता था, बल्कि सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता को भी सुदृढ़ करता था। इस प्रकार कवर्धा का साहित्य स्थानीय समाज की चेतना और सांस्कृतिक पहचान का सशक्त माध्यम बना। (भारत सरकार, 1908य शर्मा)

सांस्कृतिक विरासत

लोक पर्व और उत्सव परंपरा

कवर्धा रियासत की सांस्कृतिक पहचान लोक पर्वों और सामूहिक उत्सवों से गहराई से जुड़ी हुई थी। कृषि चक्र, ऋतु परिवर्तन और प्राकृतिक घटनाओं से जुड़े पर्व समाज में सामूहिक सहभागिता, आनंद और सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देते थे। ये उत्सव सामाजिक जीवन में परंपरा और आधुनिकता के संतुलन को बनाए रखने का माध्यम बने। (वर्माय शर्मा)

लोकनृत्य, लोकगीत और संगीत परंपरा

कवर्धा क्षेत्र में लोकनृत्य और लोकगीत सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन रहे हैं। विवाह, पर्व, फसल कटाई और धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत तथा नृत्य जनमानस की भावनाओं और सामाजिक चेतना को व्यक्त करते थे। संगीत परंपरा में ढोल, मांदर, नगाड़ा जैसे वाद्य यंत्रों का प्रयोग सांस्कृतिक जीवंतता को दर्शाता है। (पाण्डेय य वर्मा)

आदिवासी परंपराएँ और सांस्कृतिक समन्वय

कवर्धा रियासत की संस्कृति में आदिवासी परंपराओं का विशेष योगदान रहा है। यहाँ निवास करने वाले जनजातीय समुदायों की धार्मिक मान्यताएँ, अनुष्ठान और जीवन पद्धतियाँ स्थानीय संस्कृति का अभिन्न अंग बनीं। इन परंपराओं ने मुख्यधारा की सांस्कृतिक धारा के साथ समन्वय स्थापित कर एक समृद्ध और संतुलित सांस्कृतिक संरचना का निर्माण किया। (रसेल, 1916य शर्मा)

प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण और सामुदायिक जीवन

कवर्धा की सांस्कृतिक परंपराएँ प्रकृति के प्रति सम्मान और संरक्षण की भावना से प्रेरित रही हैं। वन, नदी, पर्वत और भूमि को जीवनदायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया, जिससे सामुदायिक जीवन में पर्यावरण संतुलन और सामाजिक सहयोग की भावना विकसित हुई। यह दृष्टिकोण स्थानीय संस्कृति को नैतिक और मानवीय मूल्यों से जोड़ता है। (भारत सरकार, 1908य वर्मा)

मानवीय मूल्य और सामाजिक जीवन

सहिष्णुता और सामाजिक सद्भाव

कवर्धा रियासत का सामाजिक जीवन सहिष्णुता और आपसी सम्मान पर आधारित था। विविध जातीय और जनजातीय समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व देखने को मिलता है। सामाजिक मतभेदों के बावजूद सामूहिक जीवन की भावना बनी रही, जिससे सामाजिक संतुलन और सौहार्द कायम रहा। यह प्रवृत्ति कवर्धा समाज की मानवीय संवेदनशीलता को दर्शाती है। (रसेल, 1916य वर्मा)

करुणा, सहयोग और सामुदायिक जीवन

कवर्धा क्षेत्र में पारस्परिक सहयोग और सामुदायिक श्रम सामाजिक जीवन की महत्वपूर्ण विशेषता थी। कृषि कार्यों, पर्वों और संकट की घड़ियों में सामूहिक सहभागिता समाज की मूल संरचना को सुदृढ़ करती थी। करुणा और सहायता की भावना सामाजिक व्यवहार का अभिन्न अंग रही, जिससे समाज में विश्वास और एकता बनी रही। (पाण्डेयय शर्मा)

नैतिक चेतना और सामाजिक अनुशासन

लोक परंपराओं, कथाओं और धार्मिक विश्वासों के माध्यम से समाज में नैतिक चेतना का विकास हुआ। सत्य, न्याय, श्रम और संयम जैसे मूल्य सामाजिक आचरण का आधार बने। पंचायत जैसी संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक अनुशासन और न्याय व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयास किया जाता था, जिससे सामाजिक स्थिरता बनी रहती थी। (भारत सरकार, 1908य रसेल, 1916)

सामाजिक संतुलन और मानवीय दृष्टिकोण

कवर्धा रियासत का सामाजिक ढांचा संतुलन और समरसता पर आधारित था। व्यक्ति और समाज के बीच संबंध सहयोगात्मक थे, न कि प्रतिस्पर्धात्मक। इस मानवीय दृष्टिकोण ने सामाजिक जीवन को अधिक संवेदनशील, नैतिक और स्थायी बनाया, जो कवर्धा समाज की सांस्कृतिक पहचान का प्रमुख आधार रहा। (वर्माय शर्मा)

विश्लेषण एवं विवेचना

कवर्धा रियासत का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यह केवल एक राजनीतिक इकाई नहीं थी, बल्कि एक सजीव सामाजिक-सांस्कृतिक संस्था के रूप में विकसित हुई। इसके साहित्य, लोक परंपराओं और सामाजिक जीवन में मानवीय मूल्यों की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। रसेल (1916) और भारत सरकार (1908) के अध्ययन यह संकेत देते हैं कि छत्तीसगढ़ क्षेत्र की रियासतों में सामाजिक संरचना स्थानीय परंपराओं और सामुदायिक जीवन पद्धतियों पर आधारित थी, जिसका कवर्धा रियासत में भी सशक्त रूप देखने को मिलता है।

कवर्धा के लोक साहित्य में नैतिक चेतना, सामाजिक न्याय और मानवीय संवेदनशीलता की झलक मिलती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि साहित्य केवल मनोरंजन का साधन न होकर समाज को दिशा देने वाला माध्यम भी था। शर्मा और वर्मा के अनुसार, लोक परंपराएँ सामाजिक अनुशासन, सहयोग और सामूहिक चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही हैं। यही प्रवृत्ति कवर्धा रियासत की सांस्कृतिक संरचना में भी दिखाई देती है।

सांस्कृतिक दृष्टि से कवर्धा रियासत में लोकपर्वों, नृत्यों, गीतों और आदिवासी परंपराओं का सुंदर समन्वय दिखाई देता है। यह समन्वय सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतीक है। मेनन (1956) के अनुसार, भारतीय रियासतों का सामाजिक-सांस्कृतिक योगदान उनके राजनीतिक इतिहास जितना ही महत्वपूर्ण रहा है, और कवर्धा रियासत इस दृष्टि से एक उल्लेखनीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार, कवर्धा रियासत का साहित्यिक, सांस्कृतिक और मानवीय अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि यह रियासत क्षेत्रीय चेतना, सामाजिक संतुलन और मानवीय मूल्यों के विकास की एक महत्वपूर्ण केंद्र रही है।

निष्कर्ष

इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि कवर्धा रियासत केवल एक ऐतिहासिक राजनीतिक इकाई नहीं थी, बल्कि एक सशक्त सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था भी थी, जिसने साहित्य, संस्कृति और मानवीय मूल्यों के संरक्षण एवं संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसके लोक साहित्य में सामाजिक चेतना, नैतिकता और जनजीवन की सजीव अभिव्यक्ति मिलती है, जो समाज को नैतिक दिशा देने का कार्य करती रही। कवर्धा की सांस्कृतिक विरासत लोकपर्वों, लोकनृत्यों, लोकगीतों और आदिवासी परंपराओं के समन्वय के रूप में विकसित हुई, जिसने सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक निरंतरता को सुदृढ़ किया। यह सांस्कृतिक संरचना प्रकृति के प्रति सम्मान, सामूहिक जीवन और सहयोग की भावना पर आधारित रही। (वर्माय भारत सरकार, 1908)

अत: यह कहा जा सकता है कि कवर्धा रियासत का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन छत्तीसगढ़ के सामाजिक इतिहास को समझने में सहायक है। वर्तमान संदर्भ में भी इसके मानवीय मूल्य और सामुदायिक जीवन दृष्टिकोण समाज में सहिष्णुता, सद्भाव और सहयोग की भावना को मजबूत करने की प्रेरणा देते हैं। इस दृष्टि से दोर्धा रियासत का अध्ययन न केवल ऐतिहासिक महत्व रखता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक पुनर्मूल्यांकन के लिए भी उपयोगी सिद्ध होता है। (मेनन, 1956य पाण्डेय)

संदर्भ ग्रंथ

1. रसेल, आर. वी. (1916). 'द ट्राइब्स एंड कास्ट्स ऑफ द सेंट्रल प्रोविन्सेस ऑफ इंडिया'. लंदन: मैकमिलन एंड कंपनी.
2. मेनन, वी. पी. (1956). 'द स्टोरी ऑफ द इंटीग्रेशन ऑफ इंडियन स्टेट्स'. नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन.
3. भारत सरकार (1908). 'इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इंडिया: सेंट्रल प्रोविन्सेस एंड बरार'. लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. अलंग, संजय. 'छत्तीसगढ़ की पूर्व रियासतें और जमींदारियाँ'. रायपुर: छत्तीसगढ़ साहित्य अकादमी.
5. शर्मा, रामनाथ. 'छत्तीसगढ़ का सांस्कृतिक इतिहास'. रायपुर: लोक संस्कृति प्रकाशन.
6. पाण्डेय, बद्रीप्रसाद. 'छत्तीसगढ़ का इतिहास'. बिलासपुर: साहित्य भवन.
7. वर्मा, शिवकुमार. 'छत्तीसगढ़ की लोक परंपराएँ और संस्कृति'. रायपुर: संस्कृति विभाग, छत्तीसगढ़ शासन.

शिवराजविजय की भाषा शैली एवं काव्यवैशिष्ट्य

डॉ० तबस्सुम

'शिवराजविजय' श्री अम्बिकादत्त व्यास की लोकप्रिय गद्य रचना है, जिसे संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है। शिवराजविजय उन्नीसवीं शताब्दी का एक उल्लेखनीय गद्य काव्य है। 'शिवराजविजय' 1870 ई0 में लिखा गया था जो काशी से 1901 ई0 में प्रकाशित हुआ। शिवराजविजय का कथानक ऐतिहासिक है जिसमें महाराष्ट्र केशरी वीर शिवाजी के चरित्र का कुशलतापूर्वक चित्रण किया गया है। इसकी भाषा तथा शैली प्रभाव रोचकता से परिपूर्ण है।

भाषा व्यक्ति के भावों को दूसरे तक पहुँचाने का साधन है। इसे जिस रूप में रखा जाए, जिस प्रकार से रखा जाए, वह भाषा शैली कही जाती है। भाव की उदात्तता का शैली का प्रभावन ही काव्य को उत्कृष्ट बनाता है। 'शिवराजविजय' की भाषा शैली भी प्रशंसनीय है और व्यासजी ने इस वर्णन प्रधान कृति की गतिशीलता का भी पूर्ण ध्यान रखा है। शिवराजविजय की लेखनी में दण्डी और बाण की शैली की सफल अनुकृति देखी जा सकती है। व्यास जी को साहित्य-समीक्षकों ने 'अभिवनव बाण' की संज्ञा से समादूत किया है।

शिवराजविजय में अवसरानुकूल भाषा एवं शैली का प्रयोग देखा जाता है। व्यास जी ने समास एवं व्यास दोनों ही शैलियों का प्रयोग किया है। उन्होंने कहीं दीर्घ समास बहुला पदावली का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर सरल और लघु पदावली का।

व्यास जी ने प्रकृति का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। प्रकृति की सुरम्य सुरम्य सुषमा का चित्रण करते हुए व्यास जी ने यहाँ शब्द-योजना के अनुसार गौड़ी रीति का प्रयोग किया है जो देखने योग्य है-

''कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम पवित्र पानीयं परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि कुल-कूजित-पूजितं सर आसीत। दक्षिणतश्चौको निर्झर-झर्झर-ध्वनि- ध्वनित -दिगन्तरः फल पटलाऽऽक्रमणाधिक - चपलित - चञ्चुपतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक - विनत - शाख -समूह -व्याप्तः सुन्दरः -कन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।''.....[1]

भाषा की दृष्टि से शिवराजविजय अत्यंक आकर्षक कृति है। इसमें संस्कृत भाषा का वास्तविक रूप-प्रस्फुटित हुआ है। मधुर पद विन्यास से तथा क्लिष्टता और कृत्रिमता के सर्वथा अभाव से शिवराजविजय स्वाभाविक तथा सहज सुन्दर है। शिवराजविजय में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य-इन तीनों गुणों का समुचित समन्वय हुआ है। स्वाभाविक पद विन्यास के साथ भावसौष्ठव तथा प्रवाह भी प्रचूर है। वाग्विस्तार के स्थान पर वे शब्दों के परिमित प्रयोग द्वारा अपने भावों की मार्मिक व्यञ्जना कर देते हैं। वे अवसरानुकूल अपने भावों के अनुरूप भाषा को क्लिष्ट अथवा प्रसादयुक्त बना लेते हैं। माधुर्य, प्रसादगुण तथा गाञ्चाली रीति का यह उदाहरण द्रष्ट्व्य है-

''ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं च पारस्परिक विरोध -ज्वर -ग्रस्तं विस्मृत - राजनीतिं भारतवर्ष - दुर्भाग्यायमाणमाकलटयानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्ड मण्डलमकण्टकम-कीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः रिङ्गत्तरङ्ग - भङ्गागङगाऽपि शोणित - शोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि चेवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि।'' .....[2]

इस गद्यखण्ड में 'महारत्नमिव' इस स्थल पर उपमा अलंकार है। 'अस्थिगिरयः' यहाँ पर रूपक अलंकार है। 'अकीटकिट्टम्' 'रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा गङ्गा' 'शोणितशोण शोणीकृता' आदि पदों की नैसर्गिकी शोभा मनोहारिणी है। इसी प्रकार माधुर्थ, प्रसाद गुण तथा पाञ्चाली रीति यहाँ पर सन्दर्शित हो रही है।

चूर्णिका गद्य शैली में व्यास जी रचना करते हुए कहते हैं -

"अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एवं बालिकायाः सकरूण-रोदनम्।

ततः ''कि मति? कुत इति? केयमिति? कथमिति''? पृच्छापखशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्याम बटुमादिश्य..... .....।''.....[3]

एक अन्य उदाहरण देखें -

''भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्द-मान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुहिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दों, कौमुदी - कपटने सुधा धारा मिव वर्षति गगने अस्मन्नीतिवार्ता शुश्रूषुषु इव मौनमाकलत्सु पतग - कुलेषु, कैरव - विकाश - हर्ष - प्रकाश.....क्रन्दनमश्रोषम्.....[4]

प्रस्तुत गद्यखण्ड में 'समुदिते' से प्रारम्भ कर 'पतगकुलेषु' पर्यन्त आये हुए 'इव' शब्द उत्प्रेक्षावाचक है। चन्द्रमा में चन्दनबिन्दू की, आकाश से अमृतधारा बरसने की और पक्षियों में नीतिवार्ता सुनने की सम्भावना की गई है। अतः इन स्थलों पर उत्प्रेक्षालंकार है। 'यामिनी-कामिनी' में रात्रि के ऊपर कामिनी का आरोप किया गया है, अतः यहाँ रूपक अलंकार है। पूर्व की पंक्तियों में प्रसाद गुण तथा शान्त रस है। अन्त में करूण रस भी विद्यमान है। यहाँ चूर्णक नामक गद्य 'वैदर्मी रीति' का प्रयोग किया गया है।

श्रीअम्बिकादत्त व्यास जी ने शिवराज में विभिन्न विषयों का कलापूर्ण वर्णन किया है और प्रकृति सौन्दर्य के भी अनेक हृदयग्राही चित्र अंकित हुये हैं। पुस्तक का प्रारम्भ ही अरूणोदय में होता है तथा प्रभात का यह वर्णन अपने में पूर्ण एवं सार्थक है-

"एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्ड- दिशः, दीपको ब्रह्माण्डमाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोक विमोकः कोकलोकस्य, अबलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्व - व्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः..... .....। [5]

सर्वत्र सजीव रोचक एवं स्वाभाविक तथा सरल भाषा में संवाद-विधान औपन्यासिक कथानक का प्राण हुआ करता है। शिवराज विजय में संवादो की हृदयग्राहिता का यही रहस्य है। इसमें संवादों के अनावश्यक विस्तार का सर्वथा परित्याग किया गया है। संवादों में भाषा इतनी मुहावरेदार है कि वह विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है.....

''दौवारिकः..... आम्, अग्रे कथ्यताम।
सन्यासी.....वयं च सन्यासिनो
वनेषु गिरिकिन्दरेषु च विचराम।.
सर्व रसायन-तत्त्वं विद्यः।
दौवारिकः.....स्यादेवम्, अग्रे अग्रे?
सन्यासी.....तद् यदि त्वं मां
प्रविशन्तं न.....शक्नुयाः।''.....6

उपर्युक्त उदाहरणों से पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि व्यास जी ने भाषा एवं भाव का मनोहर साम्य उपस्थित कर शैली द्वारा प्रभावकारी रूप देकर साहित्य रसिकों के लिए मनः प्रसादन रसायन प्रस्तुत किया है। शिवराज विजय का भाषा सौन्दर्य सराहनीय है। हम देखते हैं कि उसमें भावानुरूप भाषा ही प्रयुक्त हुई है तथा भाषा सर्वत्र भाव का अनुसरण करती है। अतः वह पाठकों के चित्त पर अपना प्रभाव डालने में समर्थ भी रही है।

इस प्रकार हम देख पाते हैं कि शिवराजविजय भाषा और भाव दोनों की दृष्टियाँ से पूर्ण सफल कृति है। शिवराजविजय काव्यगत वैशिष्ट्य की दृष्टि से एक सफल काव्य है। इसमें काव्यत्व के सभी गुण विद्यमान हैं। भाषा एवं भाव का अपूर्ण सामञ्जस्य विद्यमान है। भावों का सार्थक्य, भाषा की प्रवहणशीलता तथा कथानक की गतिशीलता मन को आकर्षिक करने वाली है। समूचा उपन्यास विद्यात्मकगुणवत्ता को संजोये हुए है।

संदर्भ -

1. शिवराजविजय प्रथम निश्वास, 4, पृष्ठ संख्या 10
2. शिवराजविजय प्रथम निश्वास, 25, पृष्ठ संख्या 68
3. शिवराजविजय प्रथम निश्वास, 10, पृष्ठ संख्या 23
4. शिवराजविजय प्रथम निश्वास, 11, पृष्ठ संख्या 25
5. शिवराजविजय प्रथम निश्वास, 1, पृष्ठ संख्या 3
6. शिवराजविजय द्वितीय निश्वास, 8, पृष्ठ संख्या 123

भारतीय दर्शन में नारी की स्थिति और सशक्तिकरण की अवधारणा

डॉ० पवन पाठक

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, फाफामऊ प्रयागराज

सारांश

भारतीय दर्शन में नारी की स्थिति केवल सामाजिक संरचना, पारिवारिक भूमिका अथवा जैविक पहचान तक सीमित नहीं रही है, बल्कि उसे आध्यात्मिक, दार्शनिक, नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सृष्टि की मूल शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। नारी को 'प्रकृति', 'शक्ति', 'माया', 'श्रद्धा', 'प्रज्ञा' और 'करुणा' जैसे दार्शनिक प्रतीकों में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि नारी सशक्तिकरण की अवधारणा भारतीय चिंतन में किसी आधुनिक या पाश्चात्य प्रभाव का परिणाम नहीं है, बल्कि यह भारतीय दर्शन की मूल संरचना में अंतर्निहित रही है। इस शोध में वैदिक साहित्य, उपनिषदिक चिंतन, स्मृति परंपरा, बौद्ध एवं जैन दर्शन, शाक्त दर्शन, भक्ति आंदोलन तथा आधुनिक भारतीय दार्शनिक एवं सामाजिक चिंतन के आलोक में नारी की स्थिति का क्रमिक एवं समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि यद्यपि ऐतिहासिक एवं सामाजिक कारणों से व्यवहारिक स्तर पर नारी की स्थिति में अवनति हुई, तथापि भारतीय दर्शन का दार्शनिक आधार नारी की गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और सशक्तिकरण के पक्ष में रहा है। यह शोध आधुनिक नारी विमर्श के संदर्भ में भारतीय दर्शन की प्रासंगिकता को पुनः स्थापित करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्दः भारतीय दर्शन, नारी, शक्ति, सशक्तिकरण, वेद, उपनिषद, शाक्त, भक्ति, आधुनिक चिंतन

भूमिकाः किसी भी सभ्यता की बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक परिपक्वता का मूल्यांकन उस समाज में नारी की स्थिति के माध्यम से किया जा सकता है। नारी केवल समाज की आधी जनसंख्या नहीं है, बल्कि वह संस्कृति की संवाहिका, मूल्यों की संरक्षिका और भावी पीढ़ियों की निर्मात्री भी है। इस दृष्टि से नारी की स्थिति किसी भी दर्शन की मानव-दृष्टि को समझने की कुंजी प्रदान करती है। भारतीय दर्शन जीवन को केवल भौतिक या सामाजिक धरातल पर नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और समग्र दृष्टि से देखता है। भारतीय चिंतन परंपरा में नारी को पुरुष की सहचरी मात्र न मानकर उसे सृष्टि की मूल चेतना और शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। 'अर्धनारीश्वर' की संकल्पना इस तथ्य का प्रतीक है कि पुरुष और नारी परस्पर पूरक हैं, न कि विरोधी। आधुनिक काल में 'महिला सशक्तिकरण' की अवधारणा को प्रायः शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और विधिक अधिकारों तक सीमित कर दिया जाता है। यद्यपि ये सभी आयाम महत्वपूर्ण हैं, तथापि भारतीय दर्शन में सशक्तिकरण का अर्थ कहीं अधिक व्यापक है। यहाँ सशक्तिकरण आत्मबोध, नैतिक स्वायत्तता, आध्यात्मिक समानता और ब्रह्मज्ञान की अधिकारीता से जुड़ा हुआ है।

वैदिक साहित्य में नारी की स्थिति- भारतीय दर्शन का प्राचीनतम और आधारभूत स्रोत वैदिक साहित्य है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में नारी की स्थिति अत्यंत सम्मानजनक और सशक्त रूप में प्रस्तुत हुई है। वैदिक काल में नारी को केवल गृहिणी नहीं, बल्कि शिक्षिता, दार्शनिक और धार्मिक अनुष्ठानों की सहभागी माना गया। ऋग्वेद में अनेक ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिनमें घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, रोमशा और गार्गी प्रमुख हैं। इन ऋषिकाओं द्वारा रचित सूक्त इस बात का प्रमाण हैं कि स्त्रियाँ वैदिक चिंतन की सक्रिय निर्माता थीं, न कि केवल उसकी उपभोक्ता। ऋग्वेद का प्रसिद्ध सूक्त ''अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्'' नारी को सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यहाँ नारी स्वयं को राष्ट्र की संगठक और संपदा की धारक घोषित करती है, जो वैदिक समाज में नारी सशक्तिकरण का उच्चतम उदाहरण है। वैदिक काल में स्त्रियों को उपनयन संस्कार, वेदाध्ययन, यज्ञोपवीत धारण और दार्शनिक संवाद में भागीदारी प्राप्त थी। यह स्थिति यह दर्शाती है कि प्रारंभिक भारतीय समाज में नारी को बौद्धिक और आध्यात्मिक समानता प्राप्त थी।

उपनिषदिक दर्शन में नारी का स्थान- उपनिषदिक दर्शन भारतीय दर्शन का दार्शनिक शिखर माना जाता है। यहाँ आत्मा, ब्रह्म और मोक्ष जैसे गूढ़ दार्शनिक विषयों पर चिंतन किया गया है। उपनिषदों में नारी को ब्रह्मज्ञान की पूर्ण अधिकारी माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच हुआ संवाद नारी की तर्कशीलता और दार्शनिक क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण है। गार्गी के प्रश्न केवल आध्यात्मिक जिज्ञासा नहीं, बल्कि गहन दार्शनिक विवेचना का प्रमाण हैं। मैत्रेयी का संवाद यह स्पष्ट करता है कि नारी केवल सांसारिक सुखों में रुचि नहीं रखती, बल्कि उसे आत्मज्ञान और अमरत्व की खोज है। याज्ञवल्क्य द्वारा मैत्रेयी को ब्रह्मविद्या का उपदेश देना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि नारी को ज्ञान के क्षेत्र में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त था।

स्मृति परम्परा और नारी की स्थिति- स्मृति साहित्य, विशेषतः मनुस्मृति, में नारी की स्थिति को लेकर विरोधाभासी दृष्टिकोण दिखाई देता है। एक ओर नारी के सम्मान और पूजनीयता पर बल दिया गया है-''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''। तो दूसरी ओर नारी को पिता, पति और पुत्र के अधीन बताया गया है। यह द्वंद्व दार्शनिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ के बीच के संघर्ष को दर्शाता है। यह आवश्यक है कि स्मृति ग्रंथों को उनके ऐतिहासिक और सामाजिक

संदर्भ में समझा जाए। इन्हें भारतीय दर्शन का अंतिम सत्य मान लेना उचित नहीं है, क्योंकि भारतीय दर्शन एक गतिशील और विकासशील परंपरा है। स्मृति ग्रंथों में निहित संरक्षणात्मक दृष्टिकोण को कुछ विद्वानों ने समकालीन सामाजिक संदर्भ में नारी की सुरक्षा और सम्मान सुनिश्चित करने के उद्देश्य से व्याख्यायित किया है, हालाँकि इसका दुरुपयोग भी हुआ है।

बौद्ध दर्शन में नारी की भूमिका- बौद्ध दर्शन करुणा, समता और निर्वाण की अवधारणा पर आधारित है। बुद्ध ने जाति, वर्ग और लिंग के भेद को गौण माना। महाप्रजापति गौतमी के नेतृत्व में भिक्षुणी संघ की स्थापना नारी सशक्तिकरण का ऐतिहासिक उदाहरण है। यद्यपि प्रारंभ में कुछ सामाजिक प्रतिबंध लगाए गए, तथापि बौद्ध दर्शन का मूल सिद्धांत नारी की आध्यात्मिक समानता को स्वीकार करता है। निर्वाण की प्राप्ति में स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं है। बौद्ध ग्रंथों में विदुषी भिक्षुणियों के उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने धम्म की गहरी समझ प्राप्त की और शिक्षक के रूप में कार्य किया। बौद्ध परंपरा में नारी की आध्यात्मिक क्षमता को कभी संदेह की दृष्टि से नहीं देखा गया।

जैन दर्शन और नारी- जैन दर्शन में आत्मा की शुद्धता और मोक्ष की प्राप्ति प्रमुख लक्ष्य है। श्वेताम्बर परम्परा में नारी को मोक्ष की अधिकारी माना गया है, जबकि दिगंबर परंपरा में इस विषय पर मतभेद दिखाई देता है। इसके बावजूद जैन दर्शन में नारी को नैतिक और आध्यात्मिक साधना की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की गई है। जैन इतिहास में अनेक साध्वियों और शासिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने दार्शनिक चिंतन और आचरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। जैन दर्शन का सार तत्व यह है कि आत्मा का लिंग से कोई संबंध नहीं है, और मोक्ष का मार्ग सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है।

शाक्त दर्शनः नारी का शक्ति रूप में प्रतिष्ठापन- शाक्त दर्शन में नारी को शक्ति और ब्रह्म की सजीव अभिव्यक्ति माना गया है। देवी को सृष्टि की मूल शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। दुर्गा, काली, लक्ष्मी और सरस्वती जैसे देवी रूप नारी की विविध शक्तियों का प्रतीक हैं। शाक्त परंपरा में शक्ति के बिना शिव भी शव हैंकृयह कथन नारी की अनिवार्यता और सर्वोच्चता को दार्शनिक रूप से स्थापित करता है। शाक्त दर्शन ने नारी को सृष्टि, पालन और संहार की शक्ति के केंद्र में रखकर उसे दार्शनिक चिंतन की अधिष्ठात्री बना दिया। इस परंपरा में नारी की पूजा केवल आराधना नहीं, बल्कि उसके भीतर निहित दिव्य शक्ति के प्रति सचेतनता है।

भक्ति आंदोलन और नारी सशक्तिकरण- भक्ति आंदोलन ने सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ते हुए नारी को ईश्वर-प्राप्ति का स्वतंत्र मार्ग प्रदान किया। मीराबाई, अक्कमहादेवी, ललद्यद, आंडाल और जनाबाई जैसी संत स्त्रियाँ नारी आत्मस्वरूप की निर्भीक अभिव्यक्ति हैं। इन संतों ने लिंग, जाति और सामाजिक हैसियत के बंधनों को अस्वीकार करते हुए ईश्वर की सीधी अनुभूति पर बल दिया। भक्ति आंदोलन ने नारी को धर्म और आध्यात्म के क्षेत्र में एक स्वतंत्र और सक्रिय एजेंट के रूप में प्रस्तुत किया। इन संतों की रचनाएँ और जीवन-दर्शन इस बात का प्रमाण हैं कि नारी के लिए आध्यात्मिक स्वतंत्रता और सामाजिक मुक्ति का मार्ग भारतीय दर्शन में सदैव विद्यमान रहा है।

आधुनिक भारतीय चिंतन में नारी सशक्तिकरण- आधुनिक कालखंड में राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, डॉ.0 भीमराव आंबेडकर, श्री अरविंद और सरला देवी चौधरानी जैसे चिंतकों ने नारी सशक्तिकरण को सामाजिक न्याय, शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन और विधिक अधिकारों से जोड़ा। विवेकानंद के अनुसार, ''जब तक स्त्रियाँ सशक्त नहीं होंगी, समाज का कल्याण संभव नहीं।'' उन्होंने नारी को 'देवी' और 'शक्ति' के रूप में देखा और उनकी शिक्षा तथा आत्मनिर्भरता पर बल दिया। महात्मा गांधी ने सत्याग्रह और स्वदेशी आंदोलन में नारी की सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित किया और उन्हें सामाजिक परिवर्तन की अग्रदूत माना। डॉ0 आंबेडकर ने संविधान के माध्यम से नारी को समान अधिकार दिलाने और जाति व लिंग के उत्पीड़न से मुक्ति के लिए ऐतिहासिक प्रयास किए। आधुनिक भारतीय दर्शन ने नारी सशक्तिकरण को एक समग्र दृष्टि से देखा, जिसमें आध्यात्मिक समानता, बौद्धिक विकास, आर्थिक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय सभी सम्मिलित हैं।

निष्कर्षः भारतीय दर्शन में नारी की स्थिति मूलतः सशक्त, स्वतंत्र और गरिमामय रही है। ऐतिहासिक परिस्थितियों के कारण व्यवहारिक स्तर पर अवनति अवश्य हुई, किंतु दार्शनिक आधार सदैव नारी सशक्तिकरण के पक्ष में रहा है। वैदिक ऋषिकाओं से लेकर उपनिषदिक विदुषियों, बौद्ध भिक्षुणियों, शाक्त देवी परंपरा, भक्ति संतों और आधुनिक चिंतकों तक, नारी को आत्मबोध, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। आधुनिक भारत में नारी सशक्तिकरण की दिशा में अग्रसर होना वस्तुतः भारतीय दार्शनिक परंपरा की पुनर्प्रतिष्ठा करना है। भारतीय दर्शन नारी को केवल अधिकारों की मांग करने वाला एक पक्ष नहीं, बल्कि समग्र सृष्टि की सृजनात्मक और पोषणकारी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। अतः नारी सशक्तिकरण की अवधारणा को भारतीय दर्शन के इस व्यापक संदर्भ में ही समझना चाहिए, जहाँ नारी की गरिमा और समानता का आधार केवल सामाजिक न्याय नहीं, बल्कि दार्शनिक सत्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आंबेडकर, भीमराव रामजी. (2014). स्त्री और जाति. नई दिल्ली: क्रिटिकल क्वेस्ट।
2. दासगुप्ता, एस0एन0 (1975). भारतीय दर्शन का इतिहास (खंड 1-5). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
3. गांधी, मोहनदास करमचंद. (1997). महात्मा गांधी के संकलित कार्य (खंड 1-100). नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग, भारत सरकार।
4. मनु0 (2006). मनुस्मृति (जी0 बुहलर, अनुवादक). नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास। (मूल ग्रंथ: ई0पू0 200-ई0 200)
5. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (1951). भारतीय दर्शन (खंड 1-2). लंदन: जॉर्ज ऐलन एंड अनविन।
6. ऋग्वेद. (2005). ऋग्वेद (आर0टी0एच0 ग्रिफिथ, अनुवादक). नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास। (मूल ग्रंथ: ई.पू. 1500-1200)
7. उपनिषद्. (2008). प्रमुख उपनिषद् (सर्वपल्ली राधाकृष्णन, अनुवादक). नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स इंडिया।
8. विवेकानंद, स्वामी. (2015). स्वामी विवेकानंद के सम्पूर्ण ग्रंथ (खंड 1-9). कोलकाता: अद्वैत आश्रम।
9. जिमर, हाइनरिख. (2012). भारतीय दर्शन. प्रिंसटन, न्यू जर्सी: प्रिंसटन विश्वविद्यालय प्रेस।

नागार्जुन के उपन्यासों में सामाजिक वैषम्य की अभिव्यक्ति

डॉ० मुकेश कुमार महतो

पूर्व शोधार्थी, हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा

जन-चेतना से सम्पन्न हिन्दी उपन्यासकारों की परम्परा में नागार्जुन का नाम अग्रगण्य है। इस संदर्भ में डॉ. कर्ण सिंह चौहान लिखते हैं- "नागार्जुन के अधिकांश उपन्यास उस काल में छपकर सामने आए, जब साहित्यिक हलकों में प्रयोगवाद और नयी कविता का जोर बढ़ रहा था। नयी कहानी के नाम से शुरू हुए आन्दोलन में भी मध्यवर्गीय मानसिकता वाले रचनाकार नये गुल खिलने के चक्कर में थे। इन नये आन्दोलनों के बीच रचनाकारों का एक बड़ा तबका होता भी था, जो शीत युद्ध की राजनीति से प्रेरित था और साहित्य के बुनियादी सवालों से ध्यान हटाने के लिए अनेकानेक नये नारे दे रहा था। कथा साहित्य में भी प्रेमचंद के बाद ऐसे कई मशहूर नाम उभरे जो उसकी परिधि को व्यक्तिवाद की सीमाओं में कैद कर रहे थे। ऐसे में नागार्जुन ने अपने उपन्यासों को शोषित-पीड़ित वर्गों की मौजूदा स्थिति पर टिकाने का साहस दिखाया। इसलिए इस बीच चले तमाम साहित्यान्दोलनों से अलग-अलग रहे हुए उन्होंने यह अलख जगाए रखी।"[1]

नागार्जुन बीसवीं सदी के उपन्यासों में एक युग का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसकी पहचान उनके उपन्यासों का यथार्थवादी इनके उपन्यासों के कथानक की पृष्ठभूमि बिहार का मिथिलांचल क्षेत्र रहा है। अपने उपन्यासों में इन्होंने अंचल निवासियों के रहन-सहन, खान-पान, बोलचाल, आस्था और धर्म, पूजा-पद्धिति और उनकी मान्यताओं तथा प्रथाओं का वास्तविक चित्रण किया है। जिस समाज का उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रण किया है, वह उनका अपना है और उसी समाज में रहकर उन्होंने उसके दु:ख-दर्द को देखा, भोगा और अनुभव किया है। विभिन्न वर्गों की समस्याओं की उन्हें विस्तृत जानकारी थी। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने छुआ-छूत, ऊँच-नीच के भेद-भाव, जात-पांत, अंधविश्वास, पाखंड आदि सामाजिक विषमताओं का घोर विरोध करते हुए लोगों का ध्यान इस तरफ खींचा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में सामाजिक सत्य का उद्घाटन किया है।

किसी भी भाषा के साहित्य में विषमता को समाप्त कर समता की स्थापना और समरसता के बीजारोपण का उद्देश्य निहित होता है और इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु विषमतामूलक प्रसंगों को अधिकांश साहित्यकारों ने अपने साहित्य में रेखांकित किया है। नागार्जुन के सामाजिक उपन्यासों में भी विषमतामूलक प्रसंगों की बहुलता है।

हम जिस समाज में रह रहे हैं, वह विषमतामूलक ही है। यह विषमता कई रूपों में हमारे समाज में विद्यमान है, जैसे- जैविक- विषमता, स्त्री-पुरुष विषमता, जाति-धर्म विषमता, आर्थिक विषमता, धार्मिक विषमता, राजनीतिक विषमता और सामाजिक विषमता।

अंधविश्वास और अनास्था से उपजी लगभग सभी प्रकार के सामाजिक विषमता के अनेक प्रसंग नागार्जुन के उपन्यासों में यत्र-तत्र दृष्टव्य हैं- नागार्जुन स्वयं इस विषमता के घोर विरोधी ही स्त्री-पुरुष विषमता उजागर करते हुए उनके उपन्यासों 'पारो' की पार्वती लेखक के विचारों को व्यक्त करती है। अपने मेरे भाई बिरजू से कहती है- "हे भगवान लाख दंड दे मगर कि औरत बनाकर इस देश में जन्म न दें।"[2] 'रतिनाथ की चाची' में भी उपन्यासकार ने गौरी से ऐसे ही शब्द कहलवाए हैं- "हे भगवान अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊ, भले ही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाज में फिर कभी पैदा न होऊँ।"[3]

उनके 'गरीबनाथ' उपन्यास में जातीय विषमता के विविध प्रसंग दृष्टिगत होते हैं- "पिछले दो-तीन वर्षों में जातियों और छोटी जातियों के आपसी झमेले बेहद बढ़ गए थे। यह कड़वाहट छोटे-छोटे गाँवों तक पहुँच चुकी थी..... पुलिस विभाग में नियुक्तियों, तबादलों, प्रमोशनों का आधार भी खास -खास जातियों के हितों को सामने रखकर ही बनाया जाने लगा था। योग्यता की उपेक्षा पहले से ज्यादा होने लगी थी।"[4] यहाँ नागार्जुन ने विषमता का रेखांकित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि यह विषमता केवल सामान्य समाज में नहीं है, वरन सरकारी महकमों में भी है। यह घर-परिवार, गाँव-समाज, नगर, सरकारी गैर-सरकारी संस्थानों इत्यादि हर जगह व्याप्त है।

नागार्जुन धार्मिक अंधविश्वासों और पाखंडों के विरोधी रहे हैं। वह जन-सामान्य को धार्मिक अंधविश्वासों में फंसकर स्वयं का अहित करते नहीं देखना चाहते। उनके विचार में ब्राह्मणों का धर्म आडंबर मात्र है, यह उनके स्वार्थ सिद्धि का माध्यम बन चुका है। इस धार्मिक ब्राह्मांडबर का यथार्थ चित्रण उन्होंने 'बाबा बटेसरनाथ, 'इमरतिया' और 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में किया है। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में जब रतिनाथ अपने मजदूर कुल्ली राउत के सामने रास्ते के तालाब के किनारे बैठकर शीघ्रता से जैसे-तैसे संध्या करता है, तो कुल्ली राउत यह सब देखकर उसे टोक देता है- "तुम तो नीलमाधव के बंशधर हो, तुम्हें इतनी जल्दी नहीं करनी चाहिए ।"[5] तब रतिनाथ कहता है- "अरे यहाँ कौन देखता है? देखना चलकर तरकुलवा में घंटा भर नाक न दबाये रहा तो जो कहो।"[6] कुल्ली राउत मुस्कुरा कर कहता है- "लो बा पके गुण सीख न गयो!"[7] रतिनाथ को कुल्ली राउत के इस बात में सत्य के दर्शन होते हैं और यह सोचता है कि उच्च वर्ग के ब्राह्मण और निम्नवर्ग के राउत की विषम आर्थिक स्थिति का कारण वस्तुत: धर्म और जाति के विधि-विधान ही हैं।

'जमनिया बाबा' उपन्यास में भी नागार्जुन ने धार्मिक आडंबर के प्रश्न को उठाया है। इसमें नर: बलि और पशु बलि की परंपरा पर भी उन्होंने आवाज उठायी है। निग्न जातीय लोग उच्च और पढ़े-लिखे लोगों की अपेक्षा अधिक अंधविश्वासी होते हैं, जिसका कारण उनके मध्य शिक्षा का अभाव है। इस तथ्य को नागार्जुन ने अपने उपन्यासों के विभिन्न प्रसंगों में रेखांकित किया है- "मैंने बहुत सोच-समझकर जमनिया को अपना अड्डा बनाया हैं। पहली बात तो यह थी कि मुझे पिछड़ी जातियों से विशेष प्रेम है। साधुओं का जितना आदर वे करती हैं, उतना और कोई नहीं करता। ऊँची जातियों के बड़े लोग मूर्ख साधुओं का मखौल उड़ाते हैं। भेष और रंग के पीछे वे ज्ञात की परख करते हैं। बड़ी-बड़ी बातें करने वाले साधु ही उन्हें प्रभावित कर सकता है। हमारे जैसे के लिए अनपढ़ भगत ही काम का साबित होगा। जमनिया के इर्द-गिर्द लाखों की तादाद में गरीब और अनपढ़ लोग फैले हुए है।"[8] नागार्जुन ने समाज में फैले विभिन्न प्रकार के विषमता का कुत्सित रूप अपनी आँखों से देखा था। यही कारण है कि इनकी रचनाओं में जहाँ कहीं भी अवसर मिला, उन्होंने विषमता को रेखांकित किया है और इसी में उनका ध्यान सामाजिक विषमता की ओर भी गया है इस विषमता को उन्होंने 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में उकेरा है- "उसकी मंशा थी, हिन्दी-अंग्रेजी पढ़ने की जयनारायण को जब यह पता चला कि चार-पांच रूपये सिर्फ किताबों में लग जायेंगे, तो तय किया नहीं, कभी नहीं। यह नहीं हो सकता। प्रात: स्मरणीय नील माधव उपाध्याय का वंशघर म्लेछ भाषा पढ़ेगा, उस दिन धरती उलट जाएगी और आसमान से अंगारे बरसने लगेंगे। वकील, बलास्टर बनाकर प्याज-लहसुन और अंडा नहीं खाना है- स्त्री को, उसे अपने पूर्वजों की कीर्ति-रक्षा करनी है.....बस, एक कटा-मैला अमरकोश कहीं से उठा लाए और बेटे के हाथ में उसे थमाते हुए कहा- "क्या करना है अंग्रेजी पढ़कर? क्रिस्तान बनना है।"[9] नागार्जुन ने जातिगत वैषम्य को अपने उपन्यासों में अत्यंत सजगता से दिखाया है। इस दृष्टि से उनका 'बलचनमा' उपन्यास उल्लेखनीय है। नागार्जुन जातिगत व्यवस्था में स्वयं उसी सवर्ण ब्राह्मण वर्ग से आते थे, जिसकी 'बलचनमा' खिचाई कर रहा होता है। सर्वहारा वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति उनके उपन्यासों में सहजता से देखी जा सकती है- "मैं भाई जी को मना कर दूँगी। नौकर-चाकर जितना नासमझ रहे, उतना अच्छा भाभी। हमारे अजिया ससुर का कहना था कि छोटी जात वालों को जो एक आखर का ज्ञान देता है, उसका अपना ही तेज घटता है और और जो कोई शुद्ध को समूची पोथी दे उसके पितर स्वर्ग छोड़कर नरक में रहने को मजबूतर होते हैं।"[10]

नागार्जुन अपने समाज के प्रत्येक प्रकार के विषमता के विरोधी थे और उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से पाठकों का ध्यान इस ओर खींचा भी है। स्त्री-पुरुष और जातिगत विषमता को रेखांकित करते हुए, उन्होंने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में यह दिखाने का प्रयास किया है कि सवर्ण विधवा स्त्री की दोबारा शादी नहीं हो सकती है, किन्तु सवर्ण पुरूष बाईस-बाईस तक शादियाँ कर सकते थे। यहाँ एक छोटा बालक भी जानता है कि सवर्ण विधवा का कहीं भला ब्याह होता है? "एक दिन दूर की किसी भाभी ने खुलासा करते हुए कहा- "लाल, तुम्हारी चाची की अगर दूसरी शादी हो गयी होती तो ठीक था,। इस पर रतिनाथ ने भाभी को फटकारते हुए बतलाया था कि पंडित की लड़की होकर तुम ऐसी बातें करती है। दूसरी तीसरी शादी क्या कभी किसी विधवा या सधवा ब्राह्मणी ने की है।"[11] तो वहीं दूसरी ओर "इन्द्रमणि को अपनी तीन कन्याओं का भरण-पोषण आजन्म करना पड़ा, क्योंकि चार में से तीन दामाद परम अभिजात महादरिद्र और बिकौआ थे।"[12] बिकौआ उन्हें कहा जाता था जो अपनी कुलीनता बेच-बेच कर अपनी जीविका चलाते थे। एक-एक व्यक्ति बाईस-बाईस तक शदियाँ करते थे। उनका जीवन ससुरालों में ही कट जाता था। समाज में उनकी काफी इज्जत थी। आदरपूर्वक आमंत्रित करके लोग उनसे अपनी कन्या का पाणिग्रहण करवाते थे। तीन, चार और पांच दफे बिकनेवाले बिकौआ अब भी मैथिल ब्राह्मणों में यदा-कदा दिखाई पड़ जाते हैं।"[13]

इस प्रकार हम देखते हैं कि नागार्जुन के उपन्यास सामाजिक विषमता के अनेक प्रसंगों पर प्रकाश डालते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से तमाम सामाजिक विषमताओं पर प्रहार किया है। उन्होंने अपने उपन्यास साहित्य में गाँव के निम्नवर्गीय पात्रों को स्थान दिया है। उनकी सहानुभूति सदैव सर्वहारा वर्ग के प्रति हैं। स्वयं अभिजात ब्राह्मण होते हुए भी अपने ही जाति के बाह्याडंबरों के विरोध में खड़े दिखाई देते हैं और सदैव सर्वहारा वर्ग के प्रति ब्राह्मणों में जातिगत वैषम्य का विरोध करते हुए उनके हित में आवाज बुलंद करते हैं। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में "समाजवाद का स्वप्न देखने वाले नागार्जुन इस दौर में जनवाद की रक्षा के लिए बराबर खड्गहस्त रहे हैं।"[14]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नागार्जुन ने समाज के संघर्ष और उसमें विद्यमान विषमताओं का चित्रण अपने उपन्यासों में किया है और अपने उपन्यासों के माध्यम से इन विषमताओं का विरोध भी किया है। इनकी दृष्टि में सब समान हैं, सब बराबर है, 'इमरतिया' उपन्यास का मस्तरात ऐसे ही विचारों को अभिव्यक्त करते हुए रहता है- "इसी तरह मेहतर भी सफाई का काम कर चुकने के बाद नहा धो ले, कपड़े बदल ले, फिर हमारे साथ बैठकर पूजा-पाठ में क्यों नहीं शामिल होगा? आत्मा तो एक ही है शरीर का चोला अलग-अलग हो सकता है।"[15]

संदर्भ-सूची-

1. नागार्जुन की चुनी रचनाएँ, भाग-1, पृ.-11
2. नागार्जुन, 'पारोश, कुलानंद मिश्र द्वारा रचित रूपांतर, प्रथम संस्करण, 1947, पृ.55
3. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, पृ.147
4. नागार्जुन की रचनावली, (गरीबदास) सं शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, 2011, पृ. 481
5. रतिनाथ की चाची, नागार्जुन, अभिनव प्रकाशन, 1977, पृ.55
6. वही, पृ.55

7. वही, पृ.55
8. नागार्जुन रचनावली, (जमुनिया का बाबा), सं. शोभाकान्त, राजकमल प्र. 2011, पृ.380
9. वही (भाग-5), रतिनाथ की चाची, पृ.33
10. नागार्जुन रचनावली, भाग-4, बलचनमा, पृ.207
11. वही, (रतिनाथ की चाची), संपा. शोभाकान्त, राजकमल प्रकाशन, पृ. 15
12. वही, पृ.24
13. वही, पृ. 24
14. आलोचना, डॉ. नामवर सिंह, अंक-56-57, पृ.02
15. इमरतिया, नागार्जुन, पृ. 35

ललित निबंधों की परम्परा और कुबेरनाथ राय

डॉ० आलोक यादव

सहा० प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, शिया पी०जी० कालेज, लखनऊ

शोध सार:- हिन्दी गद्य साहित्य में निबन्धों की सुदीर्घ परम्परा मिलती है। निबन्धों की अनेक शैलियाँ हिन्दी साहित्य में मिलती हैं। इन निबन्धों की दुनिया में सबसे अप्रतिम निबन्ध शैली है-'ललित शैली'। ललित निबन्धों में कुबेरनाथ राय का अद्वितीय स्थान हैं। जीवन, समाज, राष्ट्र, लोक और शास्त्र के तमाम क्षेत्रों में उनके निबन्धों की अलग पहचान है।

बीज शब्द:- साहित्य, कला, लोक-जीवन, लोक-संस्कृति, समाज, मानवता, परम्परा, संवेदना आदि।

हिन्दी गद्य लेखन में निबन्धों का स्वरूप सबसे प्रौढ़ माना जाता है। इसकी विकास-परम्परा में ललित-निबन्धों का कथ्य और शिल्प अनोखा है। ललित निबन्धों ने निबन्धों की दुनिया को विविधवर्णी बनाकर एक नया आयाम दिया।

निबन्धों के क्षेत्र में 'ललित निबन्ध' की मान्य परम्परा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेखन से प्रारम्भ होती है। व्यक्तिव्यंजक निबन्धों के इस विकसित रूप के बीज हमें भारतेन्दु-युग के निबन्धों से ही मिल जाते हैं। इस युग के निबन्ध कहीं सामाजिक वैशम्य पर कटाक्ष करते हैं तो कहीं अल्हड़पन की मस्ती में युग की असमर्थता का दर्शन कराते हैं। निबन्धों की जो विधा इस युग में नाटकीयता को लेकर चली, वह शुद्ध निबन्ध की तरह है, लेकिन जो निबन्ध अतीत के गौरव को समृद्धिशील बनाने तथा हमारे असमर्थता पर व्यंग्य करते हैं, वे ललित निबन्ध के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

भट्ट जी के निबन्ध जहाँ एक ओर निर्भीक राष्ट्रीयता का उद्घोष करते हैं, वहीं दूसरी ओर नैतिक मूल्यों का उन्मेष भी करते हैं। प्रतापनारायण मिश्र विनोद-शैली को अपनाकर व्यक्तित्व की अपनी अटूट छाप जहाँ निबन्धों पर छोड़ते हैं, वहीं बालमुकुन्द गुप्त जी शोषण के प्रति क्षोभ-भावना को उद्घाटित करते हैं। ऐसा नहीं कि ललित निबन्ध का कोई सीमित क्षेत्र हो, जहाँ निबन्धकार अपनी कला-कौशल से सीमित विषयों को बाँधने का प्रयास करता हो। अध्यापक पूर्णसिंह तो मानवतावादी मूल्यों को शाश्वत मूल्यों से जोड़कर उसको एक नवीन पहचान दी। बाबू गुलाब राय ने छायावादी-व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य-प्रियता को ग्रहण कर ललित निबन्धों को एक आकार दिया।

इस प्रकार हम पाते हैं कि भारतेन्दु-युग में व्यक्तिव्यंजक-निबन्धों की जो परम्परा चली, वह किसी सीमा में अपने को न बाँधकर सम्पूर्ण मानव मूल्यों का बोध कराती हुई चलती है। इसमें कहीं परिहास तो कहीं विनोद, कहीं चुलबुलाहट तो कहीं पाण्डित्व हैं तो कहीं गम्भीर विषयों का विश्लेषण भी। इस प्रकार 'ललित निबन्धों' की दृष्टि से सर्वप्रथम भारतेन्दु-युग के बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों पर हमारी नजर जाती है। 19वीं शताब्दी पूर्वाद्ध के गद्य लेखकों में लल्लूलाल, सदल मिश्र, मुंशी सदासुखलाल और इंशाअल्लाह खां ऐसे लेखक थे जिन्होंने प्रारम्भिक गद्य को अभिव्यंजनात्मक रूप प्रदान किया। इनमें इंशाअल्ला खां अपने गद्य में रोचकता या लालित्व लाने में प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

हिन्दी में निबन्धों के आरम्भ के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। अपितु हिन्दी निबंधों की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु हरिशचन्द्र द्वारा ही माना जाता है। भारतेन्दु युग के रचनाकारों में भारतेन्द्र हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र के निबंध लेखन में निजता के दर्शन होने के साथ उनके द्वारा सृजित निबंधों में युगानुकूल मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। श्री वल्लभ शुक्ल के शब्दों में-राष्ट्रीय जीवन में अंकुरित होते नवीन विचारों को सामान्य जीवन तक पहुंचाने में निबंध सशक्त एवं सफल सिद्ध हुए। इसी कारण से भारतेन्दु युग में सर्वाधिक सर्जना निबंधों की हुई। स्वाभाविक था कि जनसाधारण को उद्वेधित करने वाली गद्य-रचना की सर्जना बेकन के गहन और गूढ़ विचारों की गम्भीर शैली नहीं हो सकती थी। बल्कि अधिक सरल, सुबोध एवं शिथिलता की शैली में प्रत्येक सम्भावित विषयों पर निबंधों की रचना हुई। प्रारम्भिक कृतियां इसी से वैज्ञानिक और बोझिल न होकर कृतिकार की वैयक्तिक छाप के साथ सुगम, सहज हुई। अत: इस युग में ललित निबंध को ही निबंधकारों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में व्यक्त किया है।

अत: धीरे-धीरे ललित निबंध की परम्परा आगे बढी। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, रामवृक्ष बेनीपुरी, हरिशंकर परसाई, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय, श्रीलाल शुक्ल, अष्टभुजा शुक्ला आदि निबंधकारों ने श्रेष्ठ ललित निबंध लिखकर ललित निबंध की परम्परा को उत्कर्ष पहुँचाया। ललित निबंधों की अपनी एक विशिष्ट साहित्यिक छटा है। यह छटा कहानी और कविता की शक्ति से सम्पन्न तो है ही, साथ ही हिन्दी आलोचना की शक्ति ने भी छटामान बनाया है। तात्पर्य यह है कि ललित निबन्धों के पास कविता, कहानी, आलोचना आदि विधाओं का सहारा भी प्राप्त है। कई कहानियाँ भी हैं जो अपने मूल चरित्र में कहानी होते हुए भी ललित निबन्ध होने का भान देती हैं।

ललित निबन्ध आज के साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: कम दिखाई पड़ते हैं। परन्तु यहाँ भी उल्लेखनीय है कि 'व्यंग्य निबन्ध' खूब लिखे जा रहे हैं। इन व्यंग्य निबन्धों को ललित निबन्ध के विकास और विस्तार के रूप में भी समझा जा सकता है। कुबेरनाथ राय के ललित निबन्धों में व्यंग्य के गहरे पुट हैं। परन्तु वे व्यंग्य निबन्ध नहीं कहे जाते। इसी तरह शरद जोशी, के0पी0 सक्सेना, सी0 भाष्कर राव, बालेन्दु शेखर तिवारी, ज्ञान चतुर्वेदी तथा रवीन्द्र पाण्डेय जैसे नये-पुराने व्यंग्य-लेखकों में लालित्य की भरपूर सम्भावनाएँ हैं। यह अलग बात है कि व्यंग्य के पुट की प्रचुरता के चलते उन्हें ललित निबन्ध की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

कुबेरनाथ राय का नाम ललित निबंधकारों की श्रेणी में श्रेष्ठता के साथ लिया जाता है। उन्होंने निबंध ही नहीं अपितु रिपोतार्ज आदि लिखकर हिन्दी गद्य का विकास किया। उनके लेखन में प्राचीनता व नवीनता का समन्वित स्वरूप उभरता है। कुबेरनाथ राय ने ललित निबंधों की जिस नयी पद्धति को अपनाया, उस पर पाश्चात्य पद्धति का प्रभाव दिखाई देता है। जिसमें गरिमा, सौष्ठव, मर्यादा व नूतन-रस बोध की अभिव्यक्ति है।

अद्यतन युग के श्रेष्ठ ललित निबन्धकारों में कुबेरनाथ राय का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। उनकी सृजनात्मकता, सफल व सजीव अभिव्यक्ति ललित निबन्धों में स्पष्ट होती है। इसी के साथ ही उनकी नूतन उद्भावना-शक्ति, भाव-प्रवणता, अव-अभिव्यंजना, नवल-विचार, कल्पना-रस आदि के दर्शन होते हैं। 'दिनमान' में सही लिखा है-'यदि संस्कार परम्परावादी हों, तो क्या दृष्टि आधुनिक ही हो सकती? यानी आप अपने प्राचीन को आत्मसात कर, पचाकर कुछ ऐसा कह सके जो वर्तमान में इतना समानधर्मी लगे कि आप उसकी बांह थामकर भविष्य की ओर बढ़ सकें। इस प्रश्न का जितना साफ उत्तर कुबेरनाथ राय के निबंध पढ़कर मिलता हैं उतना किसी कृति में नहीं मिलता। इन निबंधों को पढ़ना एक नया अनुभव प्राप्त करना है। अत्यंत सशक्त और आकर्षक शैली में लिखे श्री राय के इन निबंधों को आप भी वैसे ही पढ़े जैसे -प्रिया नील कंठी' के निबंध बच्चन जी ने पढ़े और फिर उन्हीं के स्वर में आप भी कहें शायद ही किसी उपन्यासकार को इतनी रूचि से पढ़ा हो।

कुबेरनाथ राय की भाषा लालित्यपूर्ण होने के साथ-साथ पाण्डित्यपूर्ण, दार्शनिक व अभिव्यंजनात्मक है। भाषा में संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, देशज व ग्रामीण शब्दों की प्रचुरता मिलती है। मुहावरों व कहावतों का प्रयोग भी खूब देखने को मिलता है। कुबेरनाथ राय जी ने एक ओर जहां लोक-जीवन व लोक-संस्कृति को आधार बनाकर निबंधों का सृजन किया है तो दूसरी ओर पुरातन परम्पराओं को तोड़ने का आग्रह करते हुए आधुनिक विसंगत जीवन-मूल्यों पर प्रहार भी किया है। उन्होंने ललित निबंध की नई पद्धति विकसित करने में योग दिया है। कुबेरनाथ राय भारतीय संस्कृति, इतिहास, पुराण और लोक-जीवन में शोध-कर्ताओं के रूप में उभर कर भारतीय मनीषा और हिन्दी निबंध को अपने योगदान से समृद्ध करते हुए नजर आते हैं।

कुबेरनाथ राय अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में ललित निबन्ध का चुनाव करते हैं। इनके प्रमुख ललित निबन्ध-संग्रह-'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गन्धमादन', 'विषादयोग', 'निषाद बाँसुरी', 'मन पवन की नौका' आदि हैं। वे प्राचीनता को नवीन दृष्टि प्रदान कर निबन्धों की महत्ता स्थापित करते हैं। संस्कृति और लोकजीवन में उन्हें विशेष प्रेम है। राय जी ने मौलिक, प्रखर व पाण्डित्यपूर्ण अभिव्यक्ति दी है। इन निबन्धों के माध्यम से उन्होंने दिग्भ्रमित भारतीयों को पुनः उनकी महान संस्कृति के उज्जवल रूप का दिग्दर्शन कराया है। प्राचीन मूल्यों की सार्थकता प्रकट करके उनके प्रति सम्मान व्यक्त किया है और भारतीय गौरव को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया है। राय जी प्रखर प्रतिभा सम्पन्न निबन्धकार हैं। उनकी नजर अत्यन्त तीक्ष्ण एवं पैनी है। नीरस और शुष्क भाव इनका संस्पर्श पाकर रस का स्रोत बन जाते हैं। गम्भीर विषयों को लेकर इनके ललित निबन्धों में लालित्य व माधुर्य विद्यमान है।

कुबेरनाथ राय का पहला निबन्ध मार्च-1964 के 'धर्मयुग' के एक अंक में प्रकाशित हुआ। उनकी सम्पादकीय टिप्पणी में श्री राय का परिचय इस प्रकार दिया गया था- ''चिन्तन और अनुभूति में ललित निबन्धों की परम्परा में एक सर्वथा नवीन हस्ताक्षर प्रौढ़ बन गया और राय अपनी शैली के कारण सुपरिचित निबन्धकार बन गये हैं। इसमें मौलिकता का सर्वत्र दर्शन होते हैं। इन्होंने इसे एक एक नया आयाम दिया। इनके निबन्ध हल्के नहीं हैं और न ही हास्य-व्यंग्य करते हैं जैसे-''इस देश का वामपंथी उन लोगों द्वारा, जो देश के बारे में वस्तुतः कुछ नहीं जानते, एक स्वयंघाती दुराग्रह पाल रहा है। यह दुराग्रह है हिन्दुत्व का उन्मूलन और इस्लाम के साथ सह-अस्तित्व। यह भाव वामपंथियों के ऊपर प्रेत की तरह चढ़ बैठा है। इसी से वह अन्य सम्प्रदायों की गर्भित से गर्भित मांग का समर्थन करने में नहीं हिचकते, क्योंकि अपनी हिन्दू-विरोधी व्यूह-रचना में यह विकृत राजनीति सहायक ज्ञान होती है।''[1]

इनके ललित निबन्धों में स्वच्छन्दता के गुण दिखाई देते है। डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना का कथन है- ''राय जी अपने दुरारूढ़ कल्पनाओं को दखिनियाँ पवन के द्वारा अपने ललित निबन्धों की वसन्त के मादक एवं मोहक छवि से सुशोभित किया है। उनकी इस कल्पना के इन्द्रधनुषी रंग-बिरंगी छटा निबन्ध -गगन में सर्वत्र छिटक उठी है। उन्हें जब जहाँ अवकाश मिलता है, वहीं कल्पना के विशद पंखों पर सवार होकर उड़ान भरने लगते हैं और पाठकों के मन को भी अपने साथ सौन्दर्य उद्यान की सैर कराने लगते है।''[2]

उनके निबन्धों में मनोहारी सौन्दर्य देखने को मिलती हैं - ''मैं हूँ काम, विमत्त गज, हाथियों के स्वर्ण कानन में निर्भीक विचरण कर रहा हूँ। नदी का नीला जल है। नीली झील के सिरहाने चाँद बैठा है। चाँदनी नदी-नदी स्रोत में अपनी झंह धो रही है। हवाओं में चतुर्दिक एक चुप-चुप का गोपन संगीत रंग गया है।''[3]

राय जी विषयसूत्र पकड़कर स्वच्छन्द रूप से विचरण करते हैं। तारतम्य कहीं पर भी भंग नहीं होता। उनके लेखन में आवन्तरण-प्रसंग एवं विविध सन्दर्भ अत्यधिक सहजता से आते है। कहीं भी वलात् आरोपित अथवा कृत्रिम नहीं लगता। एक सहज प्रवाह निबन्धों में जिसे पकड़कर पाठक रससिक्त हो उठता है। उदाहरण के लिए उनके निबन्ध 'रस-आखेटक' को लिया जा सकता है। लेखक प्रोफेसर बनने की बचपन की इच्छा से इस ललित निबन्ध का प्रारम्भ करता है और फिर प्रोफेसरों की असमर्थता, अयोग्यता एवं दीनता का पोल खोलता है। अपनी यायावरी प्रकृति को बताकर स्वयं को बीसवीं सदी का रसलोलुप यायावर बनाता है। इसी सन्दर्भ में वैष्णव कवियों की सगुणोपासना पद्धति पर वह टिप्पणी करने लगता है।

वह एक बार ग्रीष्मावकाश में अपने गांव में विश्राम करने के लिए धरती, हवा, हरीतिमा को नायिका के रूप में देखता है। फिर ग्रीष्म की विशेषताओं का वर्णन कर सिवान, मथार और दीवारों का दृश्य बता महुवे के फूलों को देखता है तो उसे अपने गांव के चमारों का ग्रीष्मकालीन भोजन याद आ जाता है कि वे पशुओं के गोबर में से अधपचे-अन्न के कणों को बीनकर धोकर सुखा लेते हैं और गर्मी के बेकारी के दिनों में उसे खाते हैं। यह सब याद कर लेखक आक्रोश से भर जाता है।

कुबेरनाथ राय के ललित निबन्ध भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। लोकमाटी की गन्ध से सराबोर ये ललित निबन्ध अत्यन्त सजीव एवं आकर्षक हैं। इन्होने लालित्य को नया आयाम दिया तथा सम्भावनाओं का नया द्वार खोल है। 'गूलर का फूल', 'सनातन नीम', 'आछी का पेड़' 'जरथुस्र और मैं' 'अवरुद्ध

तेत्रा', 'प्रतीक्षारत धनुष', 'सन्तापी के बेटे' 'शामी वृक्ष पर लटकते शव' जैसे निबन्ध प्रतीकात्मक हैं। लेखक कई प्रयोगों को एक साथ मिलाते हुए पुराने प्रतीकों की भी व्याख्या करता है। उनकी निबन्धों में दृष्टि अत्यन्त चिन्तशील है, नये रसबोध से भरी और नयी कविता से प्रभावित शिल्प की है। 'गूलर का फूल' उस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ रचना है।

'समीक्षा' पत्रिका में उनके निबन्धों के संदर्भ में लिखा गया है- ''विषय की विविधता एवं व्यापकता, सूक्ष्मता, आंचलिकता या स्वाभाविक पुट, भाषा-शैली की प्रौढ़ता किसी पाठक के चित्त का अनुरंजन नहीं करती। चिन्तन एवं अनुभूति की अभिव्यक्ति जिस कलात्मक ढंग से हुई है, उससे कौन पाठक अभिभूत नहीं होता। इन्हीं विशेषताओं के बल पर आज वे हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं विद्यानिवास मिश्र जैसे अप्रतिम, अद्वितीय, प्रौढ़ एवं सुस्थिर ललित निबन्धकारों की परम्परा को और अधिक गतिमान बनाने वालों में माने जाने लगे हैं।''[4] इनके ललित निबन्ध में नि:सन्देह विस्तार है, गहराई है, उदात्तता है, रोचकता है, माधुर्य और मूल्यबोध है।

जीवन, समाज, संसार और प्रकृति के अनेक स्वरूपों और संवेदनी अनुभवों को समेटकर राय जी अपने निबन्धों के साथ साहित्य की धारा को समृद्ध करते है। जिसमें जीवन और समाज के अनेक रूप और रंग संवेदना के स्तर पर अर्प्रतिम अभिव्यक्ति पाते हैं। ऐसी अभिव्यक्तियाँ अन्यत्र दुर्लभ है।

सन्दर्भ:-

1. महाकवि की तर्जनी, डॉ0 कुबुरेनाथ राय प्रतिश्रुति प्रकाशन, सं0-2024, पृ0-202
2. हिन्दी के प्रतिनिधि निबन्धकार, डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ0-405
3. विरात नदी के चन्द्र मधु, डा0 कुबेर नाथ राय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, सं0-1983, पृ0-405
4. 'समीक्षा' पत्रिका-डॉ0 देवेन्द्रनाथ शर्मा तथा गोपाल राय, पृ0-71

आधुनिक साहित्य में समाहित लोक-दृष्टि

डॉ० देवेन्द्र शुक्ल

अध्यक्ष हिंदी विभाग, शोध अनुसंधान केंद्र, जे.एल.एन. कॉलेज, शक्ति (छत्तीसगढ़)

सारांश

साहित्य में लोक-दृष्टि सामान्य जन-जीवन, संस्कृति, परंपराओं, और अनुभवों की सहज अभिव्यक्ति है। यह लोकगीतों, कथाओं और कहावतों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से हस्तांतरित होती है, जिसमें सामूहिक चेतना, प्रकृति प्रेम, हर्ष-विषाद और मानवीय मूल्य समाहित होते हैं। यह उच्च साहित्य से भिन्न, समाज के मूल तत्त्वों का चित्रण करती है।

लोक साहित्य में सामान्य जन-जीवन के सुख-दुख, कामगारों के अनुभव, और उनके संघर्षों का सजीव चित्रण होता है। यह विवाह, त्योहार, त्यौहार, लोकगाथाएँ, और संस्कारों को सहेजकर रखती है, जो किसी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक हैं। लोक -दृष्टिमें व्यक्ति की अपेक्षा 'समुदाय' का भाव प्रधान होता है। यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के उदाहरण के रूप में जड़-चेतन में एकता दिखाती है। यह बिना किसी कृत्रिमता के लोकमानस के हृदय की सच्ची भावनाओं को प्रकट करती है, जो अनुभवों और अनुभूतियों पर आधारित होती है। लोक साहित्य में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि लोक-जीवन का अभिन्न अंग होती है, जो गीतों में गूंजती है। इसमें कहावतों और लोकोक्तियों के माध्यम से लोक-नैतिकता और जीवन के अनुभवों का निचोड़ मिलता है।

मूल शब्द: साहित्य, लोक-दृष्टि, सामान्य जन-जीवन, संस्कृति, परंपरा, अनुभव, सहज अभिव्यक्ति, लोकगीत, कथा और कहावत, सामाजिक विकास

प्रस्तावना

साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है।

साहित्य में मूलत: तीन विशेषताएँ होती हैं जो इसके महत्त्व को रेखांकित करती हैं। उदाहरणस्वरूप साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करने का कार्य करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। साहित्य को समाज का दर्पण भी माना जाता है। हालाँकि जहाँ दर्पण मानवीय बाह्य विकृतियों और विशेषताओं का दर्शन कराता है वहीं साहित्य मानव की आंतरिक विकृतियों और खूबियों को चिह्नित करता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों के निवारण हेतु अपेक्षित परिवर्तनों को भी साहित्य में स्थान देता है। साहित्यकार से जिन वृहत्तर अथवा गंभीर उत्तरदायित्वों की अपेक्षा रहती है उनका संबंध केवल व्यवस्था के स्थायित्व और व्यवस्था परिवर्तन के नियोजन से ही नहीं है, बल्कि उन आधारभूत मूल्यों से है जिनसे इनका निर्णय होता है कि वे वांछित दिशाएँ कौन-सी है, और जहाँ इच्छित परिणामों और हितों की टकराहट दिखाई पड़ती है, वहाँ पर मूल्यों का पदानुक्रम कैसे निर्धारित होता है?

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज दर्शन का लक्ष्य क्या है?

'हितेन सह इति सष्टिमूह तस्याभाव: साहित्यम्।'

यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र-वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल-कंटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है।

साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। व्यक्तिगत हानि उठाकर भी उन्होंने शासकीय मान्यताओं

के खिलाफ जाकर समाज के निर्माण हेतु कदम उठाए। कभी-कभी लेखक समाज के शोषित वर्ग के इतना करीब होता है कि उसके कष्टों को वह स्वयं भी अनुभव करने लगता है। तुलसी, कबीर, रैदास आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों का समाजीकरण किया था जिसने आगे चलकर अविकसित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में समाज में स्थान पाया। मुंशी प्रेमचंद के एक कथन को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा, ''जो दलित है, पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व है।''

साहित्य में 'लोक- दृष्टि' का समावेश

आधुनिक साहित्य में 'लोक -दृष्टि' का समावेश एक ऐसी प्रक्रिया है जहाँ पारंपरिक मान्यताओं, लोकगीतों और जनसामान्य की सामूहिक चेतना को आधुनिक संदर्भों और विधाओं में ढाला गया है। आधुनिक साहित्यकार लोक जीवन की सरलता, उसके संघर्षों और सांस्कृतिक जड़ों को अपनी रचनाओं का आधार बनाकर साहित्य को अधिक जीवंत और समाज के करीब लाते हैं।

आधुनिक साहित्य में लोक-दृष्टि के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं:

- जनपदीय चेतना का उदय: आधुनिक हिंदी कविता, विशेषकर 1980 और 90 के दशक के बाद से, स्थानीय बोलियों और जनपदीय संवेदनाओं से गहराई से जुड़ी है। केदारनाथ सिंह जैसे कवियों की रचनाओं में लोक बिंबों और ग्रामीण परिवेश का प्रभावी चित्रण मिलता है।
- लोक विधाओं का आधुनिक प्रयोग: आधुनिक साहित्य में लोकगीतों (जैसे लावणी, कजरी, चौती) और लोकनाट्यों की शैलियों को अपनाया गया है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' और 'परती: परिकथा' में आंचलिकता और लोक संस्कृति का अनूठा समन्वय देखने को मिलता है।
- सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ: लोक साहित्य ने समकालीन राजनीतिक और सामाजिक बदलावों को भी आत्मसात किया है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश और बिहार के लोकगीतों में इंदिरा गांधी या लालू यादव जैसे राजनीतिक व्यक्तित्वों का उल्लेख लोक की आधुनिकता को स्वीकार करने की प्रवृत्ति को दर्शाता है।
- सांस्कृतिक पहचान और संरक्षण: आधुनिक संचार माध्यमों और सोशल मीडिया ने लोक संस्कृति को वैश्विक मंच प्रदान किया है, जिससे नगरीय सभ्यता और ग्रामीण लोक संस्कृति के बीच की दूरी कम हुई है। यह 'लोक संस्कृति' बनाम 'लोकप्रिय संस्कृति' (पॉप कल्चर) के द्वंद्व में भी अपनी पहचान बनाए हुए है।
- मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना: लोक साहित्य में निहित सहजता, प्रेम और पारिवारिकता जैसे मूल मानवीय गुण आधुनिक साहित्य को अधिक उदार और समतावादी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

संक्षेप में, आधुनिक साहित्य में लोक-दृष्टि केवल अतीत का मोह नहीं है, बल्कि यह आधुनिक जीवन की जटिलताओं और यांत्रिकता के बीच मनुष्य की स्वाभाविक जड़ों को खोजने का एक सशक्त प्रयास है।

लोक-साहित्य के प्रकार

लोक-साहित्य के मुख्यतः चार भेद कहे जाते हैं; लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा और लोक-नाट्य। लोक-गाथा और लोक-कथा में भेद इतना ही है कि लोक-गाथा एक लम्बे आख्यान-गीत के रूप में चलती है और इसमें प्रबन्ध-योजना गाथा-प्रधान न होकर रस-प्रधान होती है, जबकि लोक-कथा गद्यात्मक होने के साथ-साथ कथा प्रधान या दूसरे शब्दों में घटना-प्रधान हुआ करती है। लोक-नाट्य जनसुलभ रंगमंच को -दृष्टिमें रखकर आंगिक और वाचिक अभिनय पर आधृत स्वांग या लीला तक सीमित रहता है। इसमें सामायिकता का विशेष ध्यान रहने के कारण स्थायी प्रभाव डालने की क्षमता नहीं होती है। लोक-कथाओं और लोक-गाथाओं में कथा-शिल्प ही प्रमुख रहता है, केवल लोक-गान ऐसा प्रकार है, जिसमें अपने समग्र रूप में शिल्प-विधान विकसित हो सकता है, इन चारों प्रकार के रूपों में शिल्प-विधान के ये अंग समान रूप से अपेक्षित हैं।

लोकसाहित्य की प्रवृत्तियाँ

लोकसाहित्य की जो अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ हैं वे उतनी ही प्राचीन हैं जितना प्राचीन यह साहित्य है। इन प्रवृत्तियों की पुष्टि को ही विशाल एवं विभिन्न रचना कराने का श्रेय है। सुविधा के लिए इन्हें निम्नलिखित प्रकारों में बाँटा जा सकता है :

देवी देवताओं एवं प्राकृतिक उपलब्धियों पर आधारित साहित्य

आदिकालीन मानव के प्रकृतिप्रदत्त विभिन्न कल्याणकारी परिणामों से प्रभावित होने के कारण उनपर जो विश्वास आरोपि किया इससे संबद्ध साहित्य इसके अंतर्गत आता है। इसमें भक्ति एवं भय दोनों प्रकार की भावनाएँ सन्निहित होती हैं। देवी देवताओं की पूजा के लिए रचित तथा अंधविश्वासों से संबद्ध साहित्य (टोना, टोटका, मंत्र एवं जादू इत्यादि) इसी के अंतर्गत है। इनमें कुछ विश्वासों को आंचलिक और कुछ को व्यापक महत्व दिया जाता है। स्थानीय उपलब्धियों पर स्थानीय और व्यापक पर व्यापक रचनाएँ मिलती हैं। धरती, आकाश, कुँआ, तालाब, नदी, नाला, डीह, ड्योहार, मरी मसान, वृक्ष, फसल, पौधा, पशु, दैत्य दानव देवी देवता, कुलदेवता, ब्रह्म एवं तीर्थ आदि पर जो मंत्र या गीत प्रचलित हैं वे इसी के अंग हैं। जब भी ग्रामीण कोई शुभ कार्य (जन्म से लेकर मरण तक के सभी संस्कार तथा खेती बारी, फसल की पूजा, गृहनिर्माण, कूपनिर्माण, मंदिर एवं धर्मशाला का निर्माण और परमार्थ संबंधी अन्य कार्य) प्रारंभ करते हैं तो उससे संबद्ध देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए जिन गीतों अथवा मंत्रों का प्रयोग होता है वे सब इस साहित्य में आते हैं। रोगों के निदान के लिए भी बजाय ओषधि के गीतों एवं मंत्रों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए शीतला माता के गीतों को लिया जा सकता है। पृथक्-पृथक् देवी देवताओं के लिए पृथक्-पृथक् मंत्र, गीत, पूजन एवं भोग आदि की सामग्रियाँ पता नहीं कब से निर्धारित की जा चुकी हैं। किसी को कुछ पसंद होता है परंतु ब्रह्म को इन सब के स्थान पर जनेऊ चाहिए। इन्हीं के अनुसार गीत एव मंत्र तो बदलते ही हैं, साथ ही पुजारी भी बदलते रहते हैं।

लोकाचार के लिए रचित साहित्य

इसके अंतर्गत आचार विचार एवं व्यावहारिकता तथा विभिन्न लोकमान्यताओं से संबद्ध साहित्य आता है। आचार-विचार के लिए रचित साहित्य में भावनाओं और मान्यताओं का प्रवेश है किंतु व्यवहार के लिए रचे गए साहित्य में यह बात कम देखने को मिलती है। व्यवहार की विशेषता लोकसाहित्य में मुख्य रूप से देखने को मिलती है। आपसी व्यवहार की बात तो जाने दें। यहाँ साँप को भी दूध पिलाया जाता है। वृक्ष (बरगद, पीपल) को भी बाबा कहा जाता है और बदली तथा नदियाँ बहन का रूप धारण करती हैं। इसी तरह अनेक अमानवीय तत्वों से तथा हिंसक जंतुओं से संबंध जोड़कर सारी सृष्टि को एक रूप में बाँधा गया है। इस संदर्भ में रचे हुए साहित्य का मूल उद्देश्य व्यावहारिकता के आधार पर सरल एवं सुखी जीवन व्यतीत करना है। यही कारण है कि जनजीवन एक रिश्ते में बँधा हुआ है और जातीय भेदभाव, जो भीषण रूप से व्याप्त हैं, उसकी दीवार को तोड़ नहीं सके हैं। दादी दादा, भाई बहन आदि के रिश्ते पूरे गाँव में बिना किसी जातीय भेदभाव के चला करते हैं। विभिन्न अवसरों के लिए प्रचलित लोकाचार भी इसी विधा के अंग हैं।

वैज्ञानिकता पर आधारित साहित्य

इस साहित्य के अंतर्गत ऋतुविद्या, स्वास्थ्यविज्ञान, कृषिविज्ञान, एवं शकुन आदि से संबद्ध साहित्य आता है। लोकजीवन में इस प्रकार के साहित्य को आधुनिक वैज्ञानिक युग में काफी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इनमें पूर्वाचार्यों द्वारा निर्धारित अनुभूमियों, नियमों एवं तत्सम्बंधी उपदेशात्मक बातों का समावेश होता है। यह मान्यताएँ प्राय: परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरती है किंतु साथ ही कुछ अपवाद भी हैं। ऋतुविज्ञान के अंतर्गत अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं अल्पवृष्टि के कारणों तथा तज्जन्य क्षतियों और उनसे बचने के उपायों की ओर संकेत किए गए हैं। इस प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य के आधार परंपरागत अनुभव ही होते हैं। चूँकि वह अनुभव बहुत पक्के होते हैं इसलिए लोकगीतों की भाँति इनके बनने बिगड़ने की संभावनाएँ कम हुआ करती हैं।

यही दशा कृषिविज्ञान के लिए रचे गए साहित्य की है। इसके अंतर्गत खेती से संबद्ध प्राय: आवश्यक बातें कह दी गई हैं। खेत की जुताई किस तरह हो, किस प्रकार के खेत में किस प्रकार की बुआई की जाए, बीज की मात्रा कितनी हो, सिंचाई कब की जाए, निरवाही एवं गुड़ाई कब की जाए तथा किस समय फसल की कटाई हो, यह सब बातें तो वैज्ञानिक साहित्य के अंतर्गत आती ही हैं, इनके अतिरिक्त फसल सम्बंधी रोगों तथा उपचारों का भी वर्णन मिलता है। कृषि कार्यों में काम आनेवाले उपकरणों तथा बैलों की पहचान आदि पर भी भारी मात्रा में साहित्यरचना की गई है। बैलों के अतिरिक्त अन्य पालतू पशुपक्षियों के बारे में भी प्रचुर संकेत मिलते हैं। बैलों के बाद सार्वजनिक साहित्य घोड़ों की पहचान के संबंध में प्राप्त होता है। चूँकि आधुनिक वैज्ञानिक वाहनों के कारण अब घोड़े कम रखे जाते हैं इसलिए इस प्रकार के साहित्य का धीरे धीरे अभाव होता जा रहा है। गाँव-गाँव में ट्रैक्टरों के पहुँच जाने से बैलों की पहचान के बारे में लिखे गए साहित्य की भी आगे शायद यही दशा होगी। अन्य पालतू पशुओं में गाय, भैंस एवं कुत्तों की चरचा आती है किंतु इनपर नाम मात्र के लिए संकेत किया गया है। पक्षियों में तोता, मैना, कौआ, मुनियाँ, मोर, कोयल तथा कबूतर आदि के बारे में संकेत दिए गए हैं। ग्रामीणों के उपयोग में जितने प्रकार के पशुपक्षी आते हैं उन सबकी पहिचान एवं उनसे होनेवाले लाभहानि के बारे में इस साहित्य के अंतर्गत संकेत प्राप्त होते हैं।

स्वास्थ्यविज्ञान में विभिन्न रोगों के लक्षण और उनसे बचने के उपाय तथा औषधियों की ओर संकेत मिलता है। कौन सा रोग क्यों उत्पन्न होता है तथा किन आचरणों से रोग उत्पन्न नहीं होता या दूर हो जाता है आदि बातें इसे अंतर्गत आती हैं। साथ ही स्वास्थ्यप्रदायिनी दिनचर्या के लिए कुछ आदेश भी दिए गए हैं। जड़ी बूटियों की पहचान, उनके उपयोग तथा इससे उत्पन्न लाभहानि की चर्चा भी इस विभाग के विषय हैं। इस तरह के संकेत प्राय: आदेश के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं और वे पद्यों में हैं।

यही विधा कृषिविज्ञान एवं शकुनविज्ञान के लिए रचे गए साहित्य में भी अपनाई गई है। शकुनविचार संबंधी साहित्य में मुख्य रूप से यात्रा आरंभ करने के लिए कालक्रमानुसार शुभ लक्षणों को देखते हुए या तो आदेश दिए गए हैं या अपशकुतों के कारण यात्रारंभ के लिए मनाही की गई है। यदि यात्रा बहुत ही आवश्यक हो और दिनों की गणना में उसका समय अनुकूल न पड़ता हो तो उससे वचने के लिए उपाय बताए गए हैं। ऋतुओं, मानव लक्षणों एवं पशुपक्षियों की विभिन्न हरकतों द्वारा भी शकुन अपशकुन की जानकारी इस प्रकार के साहित्य के अंतर्गत कराई जाती है। जैसे वर्षा काल में घर नहीं छोड़ना चाहिए, मुंडेरे पर यदि प्रात: काल काग बोले तो उसे किसी प्रिय जन के आगमन की सूचना समझनी चाहिए, इत्यादि।

जातीय लोकसाहित्य

संपूर्ण लोकसाहित्य का एक सर्वमान्य रूप तो होता ही है किंतु साथ ही विभिन्न जातियों की परंपरागत संस्कृति पर आधारित साहित्य भी होता है। इनमें उन जातियों के निजी देवी देवता, कुल देवता के आदेश तथा आचार्यों एवं संत महात्माओं द्वारा बताए गए नियम, उपनियम और उनकी वाणी शामिल होती है। विभिन्न जातियों जैसे- नाई, धोबी, अहीर, कुर्मी, कोयरी, नोनियाँ, बार, भाट आदि एवं वन्य तथा अन्य जातियों की पृथक् पृथक् संस्कृति जातीय लोकसाहित्य के अंतर्गत आती है। यदि यह कहा जाए कि कहीं का संपूर्ण लोकसाहित्य वहाँ की विभिन्न जातियों की सामूहिक संस्कृति का प्रतीक होता है और अनुपयुक्त नहीं होगा। जातीय साहित्य को निकाल देने पर लोकसाहित्य का जो रूप बच जाएगा वह उसका सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करेगा।

निष्कर्ष

लोक सहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, इसलिए उसमें जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। साहित्य समाज को स्वस्थ कलात्मक ज्ञानवर्धक मनोरंजन प्रदान करता है जिससे सामाजिक संस्कारों का परिष्कार होता है। रचनाएँ समाज की धार्मिक भावना, भक्ति, समाजसेवा के माध्यम से मूल्यों के संदर्भ में मनुष्य हित की सर्वोच्चता का अनुसंधान करती हैं। यही -दृष्टिकोण साहित्य को मनुष्य जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध करते हैं।

लोक साहित्य को लोक संस्कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना जा सकता है क्योंकि इसमें लोक संस्कृति के सभी अंगों की झलक मिलती है। किसी भी समाज की मान्यताएँ, अंधविश्वास, त्योहार, रीति-रिवाज, गीत, गाथा, किस्से-कहानियाँ, कहावतें, मुहावरे आदि का परिचय हमें लोक साहित्य के द्वारा ही मिल सकता है। यही कारण है कि समाज-विज्ञान के शोधकर्ता भी लोक साहित्य के अध्ययन में रुचि लेते हैं। लोक साहित्य के अध्ययन से इतिहास, भूगोल, पुरातत्त्व (Archeology), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र (Anthropology), धर्मशास्त्र आदि अनेक समाज-विज्ञानों के महत्त्वपूर्ण तथ्य मिल सकते हैं। लोक साहित्य के अध्ययन द्वारा चिकित्साशास्त्र, मौसम-विज्ञान और भाषाविज्ञान के लिए भी आवश्यक सूत्र पाए जा सकते हैं।

साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह कितनी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साहित्य 'लोकमंगल' की भावना से समन्वित होता है।

उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिये कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की।

आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है। वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला है। व्यापक मानवीय एवं राष्ट्रीय हित इसमें निहित हैं। हाल के दिनों में संचार साधनों के प्रसार और सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्यिक अभिवृत्तियाँ समाज के नवनिर्माण में अपना योगदान अधिक सशक्तता से दे रही हैं। हालाँकि बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझें कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्त्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है।

सन्दर्भ

1. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ0सं0-03
2. पं0 रामनरेश त्रिपाठी, कविता कौमुदी, भाग-3, पृ0 सं0-173
3. डॉ. विधा चौहान, लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ0सं0-110
4. सांकृत्यायन, राहुल; उपाध्याय, कृष्णदेव, संपा. (1960). हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास. हिंदी का लोकसाहित्य. 16. काशी: नागरी प्रचारिणी सभा. पृ. 9.
5. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ0सं0-375
6. लक्ष्मीनारायण लाल, बया का घोंसला, पृ0सं0-68
7. फणीश्वर नाथ 'रेणु', मैला आँचल, पृ0सं0-93
8. महादेवी वर्मा, मेरा परिवार, पृ0सं0 49-50
9. डॉ. गोवर्द्धन सिंह, महादेवी का गद्य साहित्य, विश्लेषण और स्वरूप, पृ0सं0-69
10. तुलसीदास की कवितावली
11. वैभव सिंह, कहानी: विचारधारा और यथार्थ, पृ0सं0-28
12. उपाध्याय, कृष्णदेव. लोक-संस्कृति की रूपरेखा (2009 संस्क.). इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ. 24. आइएसबीएन 9788180313776.
13. रवीन्द्र भ्रमर, लोक-साहित्य की भूमिका, साहित्य सदन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1991, पृष्ठ - 11
14. Charlotte Sophia Burne (1914). The Handbook of Folklore (PDF). Relics of popular antiquities by The Folklore Society. London: Sidwick & Jackson Ltd. पृप. 1-5.

बिहार में कृषि ऋण सहकारी समितियां: योगदान एवं प्रभाव

सुभय कुमार

शोध छात्र, अर्थशात्र स्नातकोत्तर विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रो० (डॉ.) रविन्द्र कुमार चौधरी

शोध निर्देशक, प्राचार्य- एम. जे. के. महाविद्यालय, बेतिया (पश्चिम चंपारण)
संकाय अध्यक्ष-समाज विज्ञान संकाय, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

प्राकृतिक रूप से उपजाऊ मिट्टी, पर्याप्त वर्षा, समृद्ध जल संसाधन और अनुकूल जलवायु से संपन्न बिहार देश में दूसरी हरित क्रांति का नेतृत्व करने के लिए उच्च कृषि उत्पादकता की दृष्टि से सक्षम है। इसके महत्व को समझते हुए, बिहार सरकार ने 2008 से कृषि रोड मैप के माध्यम से कृषि विकास के लिए योजनाबद्ध दृष्टिकोण अपनाया है। इसका उद्देश्य खाद्य फसलों के उत्पादन और उत्पादकता को लागत प्रभावी तरीके से बढ़ाना और इसे आजीविका का एक व्यवहार्य साधन बनाना है। इस दृष्टिकोण में रियायती दर पर प्रमाणित बीजों की उपलब्धता सुनिश्चित करने, भंडारण स्थान सृजित करने, जैविक खेती को बढ़ावा देने, कृषि मशीनीकरण और चावल सघनता प्रणाली (एसआरआई) की नई तकनीक को अपनाने पर विशेष बल दिया गया है।

यद्यपि कृषि उत्पादकता बढ़ाने में संस्थागत ऋण का अत्यधिक महत्व है, फिर भी बिहार राज्य में औपचारिक ऋण वितरण प्रणाली की भूमिका उत्साहजनक नहीं रही है। मार्च 2015 तक बिहार में क्रेडिट डिपॉजिट (सीडी) अनुपात 44.03 प्रतिशत था, जबकि राष्ट्रीय औसत 78 प्रतिशत था। राज्य की वार्षिक ऋण योजना (एसीपी) का लक्ष्य रू.74 लाख करोड़ (गैर-प्राथमिकता क्षेत्र सहित) और कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों का लक्ष्य रू.0.36 लाख करोड़ है, जो प्रति व्यक्ति घ6800 से भी कम ऋण के बराबर है।

बिहार की कृषि में ऋण लोचशीलता (0.574) को देखते हुए, संस्थागत ऋण वितरण प्रणाली को मजबूत करने की तत्काल आवश्यकता है। इसके लिए सभी बैंकों, विशेष रूप से वाणिज्यिक बैंकों को, राज्य में कृषि समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए अपनी भूमिका पूरी गंभीरता से निभाने के लिए प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इस संबंध में आगे का रास्ता इस शोधपत्र में सुझाया गया है।

मूल शब्द: बिहार, ग्रामीण विकास, सहकारिता, स्वयं सहायता समूह, कृषि ऋण सहकारी समितियां (PACS), जीविका, भूमंडलीकरण

परिचय

ग्रामीण विकास को किसी भी विकासशील समाज के लिए समावेशी प्रगति का मूल आधार माना जाता है। भारत में औपनिवेशिक काल की नीतियों ने भू-राजस्व व्यवस्था, कृषि, आधारभुत ढांचा और समाजिक संरचना में जो बदलाव किए, उसका प्रभाव ग्रामीण विकास की प्रगति पर पड़ता रहा। भारत में जो "समृद्धि और गरीबी का विरोधाभास" दिखता है, उसकी जड़ें औपनिवेशिक काल में ही हैं। भौगोलिक स्थिति, वैश्विक संपर्क और साम्राज्यवादी नीतियों ने कुछ समूहों को लाभ पहुंचाया जबकि कई क्षेत्रों में गरीबी और पिछड़ापन बढ़ा।[1]

स्वतंत्रता के बाद भारत ने ग्रामीण क्षेत्रों के सामाजिक-आर्थिक उत्थान हेतु जिस योजनाबद्ध विकास मॉडल को अपनाया, उसमें राज्यों की भूमिका केन्द्र में रही। किंतु 1991 के बाद लागू आर्थिक सुधारों ने विकास की प्रक्रिया में जिस बाजार-उन्मुख नीतियों को प्रमुखता प्रदान किया, उसके बाद ग्रामीण अर्थव्यवस्था और संस्थागत ढांचे में गहरे परिवर्तन देखने को मिले।

बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था ऐतिहासिक रुप से कृषि, श्रम-प्रधान गतिविधि और पारंपरिक सामाजिक संबंधों पर आधारित रही है। भूमि का असमान वितरण, गरीबी, सीमित औद्योगिक विकास तथा समाजिक पिछड़ापन ने यहां ग्रामीण विकास को जटिल बना दिया है।[2]

2000 में बिहार के विभाजन के बाद अधिकांश खनिज संसाधन (कोयला, लोहा आदि), भारी उद्योग (स्टील, माइनिंग) और राजस्व का बड़ा हिस्सा नए राज्य झारखंड में चले जाने से भी आर्थिक दबाव बढ़ा। ऐसी परिस्थिति में सहकारी संस्थाएं एवं स्वयं सहायता समूह न केवल आर्थिक सहायता के साधन बने बल्कि समाजिक सहभागिता और सामूहिक सशक्तिकरण के प्रभावी उपकरण के रुप में भी उभरे।[3]

भूमंडलीकरण और ग्रामीण विकास के वैचारिक आयाम

भूमंडलीकरण को समान्यत: पूंजी, तकनीक, श्रम और बाजार के अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया के रुप में देखा जाता है। इसमें विश्व के अलग-अलग देश परस्पर एक दूसरे के साथ जुड़ते हैं और उनके बीच सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक एकीकरण के साथ-साथ निर्भरता बढ़ती है। इसमें पूरा विश्व विज्ञान-प्रौद्योगिकी, संचार, व्यापार तथा सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से एक "वैश्विक गांव" की तरह कार्य करता है। ग्रामीण विकास का तात्पर्य ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक समृद्धि, गरीबी उन्मूलन, आधारभुत ढांचे का विकास और सतत जीवन शैली से है। दोनों के बीच जो वैचारिक आयाम है, वह अलग-अलग विचारधाराओं से प्रभावित है जो भूमंडलीकरण को ग्रामीण विकास के लिए अवसर या चुनौती के रुप में देखता है।[4]

नव-उदारवादी विचारधारा

इस विचारधारा के अनुसार भूमंडलीकरण मुक्त बाजार, निजीकरण, व्यापार उदारीकरण, और न्युनतम सरकारी हस्तक्षेप पर जोर देता है। यह ग्रामीण विकास के लिए अवसर प्रदान करता है जिसमें कृषि के व्यवसायीकरण को बढ़ावा मिलता है।

उन्नत प्रौद्योगिकी, निवेश और वैश्विक बाजार तक पहुंच बढने से कृषि उत्पादन और उत्पादक्ता का लाभ ग्रामीण क्षेत्र को मिलता है जिससे आय में वृद्धि होती है।

लेकिन देखा जाए तो इस विचारधारा में मुख्य लाभ कॉर्पोरेट जगत को ही प्राप्त है जबकि छोटे और सीमांत किसानों में आय अस्थिरता की समस्या बनी रहती है।[5]

बिहार में सहकारिता और स्वयं सहायता समूह का ऐतिहासिक विकास

बिहार में सहकारी आंदोलन की शुरुआत औपनिवेशिक काल में हुई जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों को महाजनों और साहूकारों के शोषण से बचना था। 'कोआपरेटिव क्रेडिट सोसाइटी एक्ट 1904' ने औपचारिक रुप से इसकी नींव रखी जो मुख्य रुप से ग्रामीण ऋण प्रदान करने पर केन्द्रित था। बिहार में इसकी शुरुआत 1909 में रोहिका यूनियन ऑफ कोआपरेटिव क्रेडिट सोसायटी लिमिटेड से हुई।

1919 में भारत शासन अधिनियम के तहत सहकारिता को प्रांतीय विषय बना दिया गया, जिससे बिहार में स्थानीय स्तर पर विकास को बढावा मिला।

1935 में बिहार और उड़ीसा सहकारी सोसायटी अधिनियम-प्ट पारित हुआ, जो सहकारी सोसायटियों के प्रबंधन और रजिस्ट्रार की शक्तियों को मजबूत करने वाला था।

1936-37 में उड़ीसा के अलग होने के बाद बिहार राज्य सहकारी बैंक की स्थापना हुई जो पहले बिहार और उड़ीसा राज्य सहकारी बैंक के रुप में कार्यरत था।

स्वतंत्रता के बाद 1951-56 की पहली पंचवर्षीय योजना में सहकारिता को ग्रामीण विकास के लिए महत्वपूर्ण माना गया। 1956 में पटना में अखिल भारतीय सहकारी कांग्रेस आयोजित हुई जिसमें राज्य की भागीदारी को सीमित करने का निर्णय लिया गया। 1983 में दुग्ध सहकारी संघ (COMFED) की स्थापना हुई जो 'सुधा डेयरी' ब्रांड के अंतर्गत कार्य करता है और राज्य में दुग्ध उत्पादन को बढावा देता है।[6]

1996 में बिहार में समानांतर सहकारी विधान (Bihar self&supporting Co&operative Society Act, 1996) लागू किया गया जो स्वायत्त और लोकतांत्रिक सहकारिता को बढावा देता है।

1990 के आर्थिक सुधारों के दौर में सहकारी संस्थाओं को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सरकारी संरक्षण की कमी, राजनैतिक हस्तक्षेप, कमजोर प्रबंधन और वित्तीय अनुशासन की कमी ने इन संस्थाओं की प्रभावशीलता को हतोत्साहित किया है। इन सब के बावजूद कृषि साख समितियां (PACS), दुग्ध सहकारिता और विपणन सहकारी संस्था ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक रही हैं।

स्वयं सहायता समूह आंदोलन भारत में 1980 के दशक में शुरु हुआ लेकिन बिहार में इसका तेजी से विकास 'जीविका' कार्यक्रम के साथ हुआ जो महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण पर केंद्रित है। स्वयं सहायता समूह मॉडल की विशेषता सामूहिक बचत, आंतरिक ऋण व्यवस्था और बैंक-लिंकिंग कार्यक्रम है। इस मॉडल ने ग्रामीण गरीबों को औपचारिक वित्तीय प्रणली से जोड़ते हुए आत्मनिर्भरता और सहभागिता की भावना को सुदृढ किया।[7]

बिहार ग्रामीण विकास में सहकारी संस्थाओं की भूमिका

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है, जहां अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में रहती है। ग्रामीण विकास का संबंध कृषि उत्पादन वृद्धि, गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, महिला सशक्तिकरण तथा समाजिक न्याय से है। सहकारी संस्थाएं इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं जो लोगों को संगठित करके सस्ता ऋण, सामग्री वितरण, विपणन तथा प्रशिक्षण प्रदान करती है। 'सहकार से समृद्धि' के सिद्धांत पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत होती है।[8]

प्राथमिक कृषि साख समितियां (PACS) तथा बिहार राज्य सहकारी बैंक किसानों को समय-समय पर सस्ता ऋण उपलब्ध कराता है। इससे किसानों को फसल, बीज, खाद आदि के लिए अल्पकालिक ऋण प्राप्त होते हैं। बिहार राज्य फसल सहायता योजना, ब्याज सब्सिडी तथा ज़ब्ब से किसानों की ऋण समस्या कम होती है तथा उत्पादन को बढावा मिलता है। चबै बहुउद्देश्यीय होते जा रहे हैं जो गोदाम, खरीद, विपणन, कस्टम हायरिंग तथा प्रधानमंत्री कृषि समृद्धि केंद्र के रुप में कार्य कर रही हैं। इससे उत्पादों के विरुद्ध बिचौलियों से छुटकारा मिलता है तथा बेहतर मूल्य प्राप्त होता है। बिहार में चबै को 25 से अधिक गतिविधियों (डेयरी, मत्स्य, CSC, जन औषधि आदि) के लिए सशक्त किया गया है।

बिहार के ग्रामीण अर्थव्यवस्था में डेयरी और मत्स्यपालन दो महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं जो विशेष रुप से महिलाओं के सशक्तिकरण में बड़ी भूमिका निभाते हैं। ये सहकारी संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं को रोजगार, आय वृद्धि तथा निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करते हैं। COMFED (बिहार राज्य दुग्ध सहकारी संघ) के तहत 'सुधा ब्रांड' ने ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाया है। महिलाएं स्वयं सहायता समूह से जुड़कर दूध संग्रह केंद्र चलाती हैं, जिससे उनकी आय 30-40 फीसदी बढ़ी है।

Fish Farmer Producer Group (FFPG) द्वारा महिलाओं को गांव के तालाब 5 वर्ष के लिए मुफ्त दिए जाते हैं। ये महिलाओं को प्रशिक्षण, मछली बीज, फीड तथा बाजार लिंकेज उपलब्ध कराते हैं

जिससे महिलाओं के आय में वृद्धि होती है और वे आर्थिक निर्णय लेने में सक्षम हो पाती हैं।

वैश्वीकरण के दौर में जब निजी बाजार की शक्तियां मजबूत हुई, तब सहकारी संस्थाएं छोटे किसानों के लिए सुरक्षा तंत्र के रुप में कार्य करती रही हैं। सहकारी ढांचा ग्रामीण समाज में सामूहिक निर्णय निर्माण और संसाधनों के न्यायसंगत वितरण को प्रोत्साहित करता है, जो दीर्घकालिक विकास के लिए आवश्यक माना जाता है।[9]

बिहार में कृषि ऋण सहकारी समितियाँ (iSDl-PACS) ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिका

बिहार की सहकारी समितियाँ, बिहार सहकारी सोसायटियों अधिनियम, 1935 और बिहार स्व-सहायक सहकारी सोसायटियों अधिनियम, 1996 के अधीन हैं। सहकारी समितियाँ ने राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों में विशेष रूप से कमजोर वर्गों के लोगों की आर्थिक उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राज्य ने इन समितियाँ को संगठित और मजबूत करने के लिए विभिन्न पहलुओं को अंजाम देने का प्रयास किया है। प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियाँ (पैक्स), डेयरी सहकारी समितियाँ, मत्स्य सहकारी समितियाँ, हाथकरघा टेक्सटाइल और वीवर्स सहकारी समितियाँ आदि जैसे विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 26,000 सहकारी समितियों को पंजीकृत किया गया है। राष्ट्रीय सहकारी डेटाबेस के अनुसार, राज्य में कार्यरत 26,640 प्राथमिक सहकारी समितियाँ हैं जिनमें लगभग 1.6 करोड़ सदस्य हैं। लगभग 18% (4,763) समितियाँ राजधानी शहर पटना में पंजीकृत हैं जिनके 10,93,642 सदस्य हैं। पैक्स सबसे प्रमुख क्षेत्र है जिसमें 8,476 (31%) समितियाँ हैं और 1,36,29,113 सदस्य हैं, उसके बाद डेयरी सेक्टर है जिसमें 7,662 समितियाँ हैं जिनके 5,68,474 सदस्य हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की कवरेज की बात की जाए, तो देखा गया है कि 21,618 समितियाँ ग्रामीण क्षेत्रों में हैं जबकि 5,022 समितियाँ शहरी क्षेत्रों में हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पैक्स के साथ 100% ग्राम पंचायतों की कवर की गई है।[10]

बिहार में कृषि ऋण सहकारी समितियाँ (पैक्स-PACS) ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय सहायता और कृषि आदान (बीज, खाद) प्रदान करने में अहम भूमिका निभाती हैं।

राज्य में लगभग 26,000 से अधिक पंजीकृत सहकारी समितियाँ हैं। ये समितियाँ 100% ग्राम पंचायतों को कवर करती हैं, जो किसानों को 7% ब्याज पर ऋण और समय पर भुगतान करने पर 4% का लाभ देती हैं।[11]

बिहार में कृषि ऋण सहकारी समितियों की मुख्य बातें:

- प्राथमिक कृषि ऋण सहकारी समितियाँ (PACS): बिहार में 8,476 से अधिक पैक्स हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण प्रदान करती हैं।
- ऋण सीमा और सुविधाएं: 1 जनवरी 2025 से, किसान 2 लाख रुपये तक का कोलेटरल-फ्री (बिना जमीन गिरवी रखे) ऋण जिला सहकारी बैंकों से प्राप्त कर सकते हैं।
- विविधीकरण: पैक्स अब केवल ऋण ही नहीं, बल्कि उर्वरक, बीज, कस्टम हायरिंग सेंटर और 100% ग्राम पंचायत कवरेज के साथ बहु-सेवा केंद्रों के रूप में कार्य कर रही हैं।
- ऋण माफी योजना (2025): यदि किसान सहकारी बैंकों से ऋण लेकर भुगतान में असमर्थ हैं, तो वे एक निश्चित समय सीमा के भीतर मूलधन चुकाकर ब्याज माफी का लाभ उठा सकते हैं।
- सहकारी ढांचा: राज्य में कृषि ऋण के लिए प्राथमिक स्तर पर पैक्स और जिला स्तर पर सहकारी भूमि विकास बैंक काम करते हैं।

प्रमुख सहकारी संगठन:

- डी.एन.एस. क्षेत्रीय सहकारी प्रबंध संस्थान, पटना: यह 1954-55 में स्थापित, सहकारी कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय एजेंसी है, जो 100% भारत सरकार द्वारा वित्तपोषित है।
- विभिन्न समितियाँ: ग्रामीण क्षेत्रों में डेयरी, मत्स्य पालन और हाथकरघा से संबंधित कई सहकारी समितियाँ भी सक्रिय हैं।

सहकारिता एवं स्वयं सहायता समूह से जुड़ी चुनौतियां

बिहार में सहकारिता एवं स्वयं सहायता समूह ग्रामीण विकास के लिए एक प्रमुख व्यवस्था के रुप में मौजूद हैं। हालांकि अभी भी जमीनी स्तर पर इन से जुड़ी कई सारी चुनौतियां मौजूद हैं। सहकारी व्यवस्था के रुप में प्राथमिक कृषि साख समितियों (PACS) का नेटवर्क बहुत बड़ा है, लेकिन इसकी प्रभावशीलता में कई सारी बाधाएं हैं:[11]

अधिकांश सहकारी बैंक और समितियां NPA (Non-Performing Asset) यानी जब किसी वित्तीय संस्था द्वारा दिए गए लोन की किस्त 90 या उससे अधिक दिन तक प्राप्त न हो।) और खराब रिकवरी रेट से ग्रसित हैं, जिससे किसानों को सही समय पर कर्ज नहीं मिल पाता।[12]

अनाज भंडारण हेतु गोदाम और कोल्ड स्टोरेज की कमी होने से किसानों को अपनी उपज कम दामों पर बेचनी पड़ती है। इसके लिए सब्सिडी के माध्यम से सौर ऊर्जा पर चलने वाली मिनी कोल्ड स्टोरेज के निर्माण पर जोर दिया जा सकता है, जिससे कि किसानों के उपज को बर्बाद होने से बचाया जा सके और उन्हें उचित मूल्य की प्राप्ति हो सके।

सदस्यों को सहकारी नियमों और आधुनिक कृषि तकनीकों की सही जानकारी नहीं होती, जिससे वे सक्रिय रुप से अपना योगदान नहीं दे पाते।

सहकारी समितियां प्राय: स्थानीय राजनैतिक व्यवस्था का शिकार होती हैं जिससे इनमें पारदर्शिता का अभाव देखने को मिलता है और फंड्स का सही इस्तेमाल भी नहीं हो पाता है। इसके लिए समितियों के संचालन हेतु केवल राजनैतिक व्यवस्था ही नहीं बल्कि पेशेवर विशेषज्ञों की भी नियुक्ति की जा सकती है।[13]

बिहार में जीविका परियोजना ने स्वयं सहायता समूह के रुप में भले ही लाखों महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों से जोड़ रखा है, लेकिन इसकी सफलता में अभी भी कई सारी बाधाएं हैं-

- अधिकांश स्वयं सहायता समूह केवल ऋण लेने और चुकाने तक ही सीमित हैं। उनके पास उच्च मूल्य वाले उत्पाद (Value-added Products) को तैयार करने की तकनीकी कौशल की कमी है।
- ग्रामीण महिलाएं अपना समान तो बना लेती हैं लेकिन उन्हें बड़े शहरों के बाजारों या e-commerce प्लेटफॉर्म से जुड़ने में समस्या आती है। इससे बिचौलिए को मुनाफा कमाने का अवसर मिल जाता है।
- कई ऐसे समूह हैं जहां महिलाएं कर्ज तो लेती हैं लेकिन उसका निवेश किसी प्रोडक्टिव काम में नहीं लगा कर घरेलू खर्चे में कर देती हैं, जिससे वो ऋण जाल में उलझती जाती हैं।
- डिजिटल लेन-देन और ऑनलाइन बैंकिंग के मामले में ग्रामीण महिलाएं अभी भी तकनीक के साथ ताल-मेल बैठाने में पिछड़ी हुई हैं।

उपरोक्त के अलावा बिहार से पुरुषों का बड़े पैमाने पर पलायन होने के कारण सहकारी कार्यों का बोझ महिलाओं पर आ जाता है, जबकि अक्सर वे संपत्ति का अधिकार नहीं रखती। बिहार में हर साल आने वाली बाढ भी सहकारी समितियों और स्वयं सहायता समूह की आर्थिक गतिविधियों को पूरी तरह ठप कर देती हैं।[15]

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ठ होता है कि बिहार के ग्रामीण विकास में सहकारिता एवं स्वयं सहायता समूह मात्र आर्थिक ही नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन के भी साधन रहे हैं। भूमंडलीकरण के दौर में एक ओर वैश्विक अर्थव्यवस्था ने नई तकनीक और बाजार का द्वार खोला है वहीं इसने दूसरी तरफ ग्रामीण समाज के सामने अस्तित्व का संकट उत्पन्न किया है। इस संक्रमण की स्थिति में सहकारिता एवं स्वयं सहायता समूह ने आत्मनिर्भरता एवं समाजिक सहभागिता के माध्यम से ग्रामीण समाज को सशक्त बनाया है। COMFED ('सुधा ब्रांड') जैसी सहकारी संस्था ने यह साबित किया है कि यदि ग्रामीण किसान संगठित हों तो वे बहुराष्ट्रीय कंपनी की प्रतिस्पर्द्धा के बीच खड़े ही नहीं रह सकते बल्कि लाभ भी कमा सकते हैं। जीविका ने यह साबित किया है कि जहां पारंपरिक बैंकिंग व्यवस्था ग्रामीण गरीबों तक पहुंच बनाने में कमजोर रही हैं, वहीं स्वयं सहायता समूह ने समाजिक पूंजी को आर्थिक शक्तिमें बदल दिया। भविष्य में समावेशी और टीकाऊ ग्रामीण विकास के लिए इन संस्थाओं को और अधिक सुदृढ करने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

1. भल्ला, जी.एस. और गुरमेल सिंह (2010), "भारतीय कृषि का विकास: जिला स्तरीय अध्ययन", योजना आयोग, भारत सरकार। http://planningcommission.nic.in/reports/sereport/ser/ser_gia2604.pdf पर उपलब्ध ।
2. बिहार सरकार (2015), "आर्थिक सर्वेक्षण 2014-15", वित्त विभाग, पटना http:// finance.bih.nic.in/Documents/Reports/Economic-Survey-2015-EN.pdf.
3. भारत सरकार, "कृषि जनगणना 2010-11, सभी सामाजिक समूहों और सीमांत आकार के समूहों के लिए राज्यवार परिचालन जोतों की संख्या और क्षेत्रफल", कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय, http://agcensus.nic.in/document/agcensus2010/agcen2010rep.htm
4. भारत सरकार (2008), " बिहार का कृषि विकास: अवसर और चुनौतियाँ - बिहार पर विशेष कार्य बल की एक रिपोर्ट", http://planningcommission.gov.in/aboutus/taskforce/tsk_adoc.pdf
5. भारत सरकार (2013), "बारहवीं पंचवर्षीय योजना (2012-2017)", आर्थिक क्षेत्र, खंड प्प, योजना आयोग, सेज पब्लिकेशन इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, www.sagepub.in (तालिका 12 और 13)।
6. गुलाटी, अशोक, (2013), "बिहार में तीसरा फसल शिखर सम्मेलन", सितंबर 2013, इकोनॉमिक टाइम्स में प्रकाशित,http://articles.economictimes.indiatimes.com/2013-09-17/news/42148746_1_farmers-crop-productionminimumsupport-price
7. भारत सरकार (2014), "बागवानी की पुस्तिका"।
8. NABARD (2015), "भारत में कृषि ऋण की उत्पादकता - राज्य स्तरीय डेटा का उपयोग करते हुए भारत में कृषि के लिए संस्थागत ऋण की हालिया भूमिका का आकलन", मुंबई।

9. आरबीआई (2008), फसल ऋणों के लिए उधार प्रक्रियाओं के सरलीकरण पर परिपत्र, आरबीआई/ 2008-09/ 140. आरपीसीडी.पीएलएफएस. बीसी. संख्या 22 /05.04.02/ 2008-09 दिनांक 26 अगस्त 2008।
10. भारतीय रिजर्व बैंक (2014), "अनुमोदन और उपयोग के स्थान के अनुसार अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों का राज्यवार बकाया ऋण, मार्च 2014, तालिका 1.7", https://rbidocs.rbi.org.in/rdocs/ Publications/PDFs/107T9698DE69B4D043FF9D583FE4322DEBF0.PDF
11. सेन, एस.आर. (1984), "पूर्वी भारत में कृषि उत्पादन पर डॉ. सेन समिति"।
12. राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति, बिहार, 2013, 45वीं एसएलबीसी बैठक का एजेंडा और कार्यवृत्त, http://slbcbihar.com/
13. राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति, बिहार, 2014, 48वीं एसएलबीसी बैठक का एजेंडा और कार्यवृत्त, http://slbcbihar.com/
14. राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति, बिहार, 2015, 52 वीं एसएलबीसी बैठक का एजेंडा और कार्यवृत्त, http://slbcbihar.com/
15. ओडिशा राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति, दिनांक 12 जुलाई 2015, http://www.slbcorissa.com/BNS.html उस पश्चिम बंगाल राज्य स्तरीय बैंकर्स समिति, दिनांक 12 जुलाई 2015, http://www.slbcbengal.com/ ImplementationAnnualCreditPlan.asp

कहानी साहित्य में नारी-प्रश्नः सैद्धांतिक अवधारणाएँ और व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ

डॉ० गीता

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, शिब्ली नेशनल पी० जी० कालेज, आजमगढ़

साधारणतया स्त्री शब्द का प्रयोग व्यस्क नारी के लिए किया जाता है। 'स्त्री शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करे तो ऋग्वेद में 'ग्नाः' शब्द स्त्री द्योतक है। स्त्री को 'ग्ना' इसलिए कहा गया है कि पुरुष संसर्ग की कामना से इनके पास जाते है, गमन करते हैं। संस्कृत साहित्य में 'स्त्री' शब्द सबसे अधिक प्रचलित है। स्त्री शब्द 'स्त्यै' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है-'शब्द करना, आवाज करना, एकत्र होना, लज्जा से संकुचित होना आदि।' 'बृहद् हिन्दी शब्द कोश' (खण्ड दो) में 'स्त्री' का अर्थ इस रूप में वर्णित है-'मनुष्य जाति की वह उपजाति जिसके सदस्य गर्भधारण करने वाले अंगों तथा स्तनों से युक्त होते हैं।' भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में स्त्री की सृष्टि तथा स्त्री के सम्बन्ध में दिये गये वक्तव्यों द्वारा स्त्री की अवधारणा को समझा जा सकता है-'हिन्दू दृष्टि में स्त्री का प्राचीनतम् दार्शनिक विश्लेषण बृहदारण्ययक उपनिषद् में मिलता है। जिसके अनुसार, 'एक ही मूल तत्त्व है। उस चिन्मय तत्त्व को ही 'पुरुष' कहते हैं। वह 'पुरुषविधः आत्मा' अन्य की आकांक्षा करता है। एकाकी उसका मन नहीं रमता। अन्य की आकांक्षा करते ही वह दो भागों में परिणित हो जाता है। उनमें से एक भाग पति दूसरा भाग पत्नी बना, क्योंकि आत्मा ने अपनी एक ही देह के दो भाग किये थे, जिससे इस सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन हुआ।'[1] शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप इसी बात का प्रमाण है। जहाँ स्त्री-पुरुष को एक दूसरे का पूरक माना गया है। स्त्री की सृष्टि के बारे में 'डिजिट ऑफ दि मून' में स्त्री की रचना के बारे में बताया गया है जिसका सार है-'आरम्भ में सृष्टिकर्त्ता जब स्त्री की रचना पर आया, तो उसने पाया कि वह सारी सामग्री आदमी की बनावट में खर्च कर चुका है, तो उसने बहुत सोच-विचार के बाद जो किया, वह था-उसने चाँद की गोलाई ली लताओं की कोमलता, बेलों का चिपकना, दूब का काँपना, नरकुल की नजाकत, फूलों का खिलना, पत्तियों का हलकापन, हाथी की सूँड का सुडौलपन, हिरनों की नजर, मक्खियों का एकत्र होना, सूरज की किरणों की खुशी, बादलों का रोना, हवा की चंचलता, खरगोश का डर, मोरों का घमण्ड, तोते की छाती से कोमलता, वज्र से कठोरता, शहद की मिठास, चीते की निर्दयता, चकवे की वफादारी, आग की धधक और बर्फ की ठंड, कोयल की कूक, सारस का छल और इन सब को मिलाकर स्त्री को रचा और मनुष्य को दे दिया।' यह विडम्बना ही है कि स्त्री की इस रचना में स्त्री के सभी अंगो और गुणों का बखान हुआ है सिवाय मानसिक संरचना और बुद्धि के। अर्थात् स्त्रियों में सोचने समझने जैसी कोई क्षमता नहीं होती। मार्टिन लूथर के शब्दों में, बुद्धिमान बनने की कामना से बढ़कर स्त्री के लिए और कोई बुरी बात नहीं है। शंकराचार्य ने 'नारी को नरक का द्वार' कहा है, वहीं बाइबिल में स्त्री को सारे अनर्थो या अहितों का मूल कहा गया है।

रवीन्द्र नाथ टैगोर ने भी स्त्री रचना के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही अवधारणा दी है जिससे पुरुषों की इसी सोच का पता चलता है कि स्त्री में मस्तिष्क, बुद्धि नाम की कोई चीज नहीं होती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार, 'जब विधाता पुरुष का निर्माण कर रहा था तब वह एक स्कूल मास्टर था, किन्तु जब नारी-निर्माण के लिए उद्धत हुआ तो वह सहसा एक कलाकार हो गया और उसे हाथ में केवल रंग और तुलिका थी।'[2] किन्तु ये सभी धारणायें स्त्री के बारे में है, ना कि स्त्री के विभिन्न पदरूप माता, बहन, पुत्री, पत्नी, बहू, सास, दासी, आदि के बारे में। इतिहास उठा कर देख ले सृष्टि के आरम्भ से ही स्त्री के ये विभिन्न रूप समाज और परिवार में सम्मान व आदर के पात्र रहे है। निन्दा हुई है तो सिर्फ स्त्री की। स्त्री जब तक इन रूपों में बंधी है ठीक है, इससे आजाद होते ही वह चरित्रहीन है, निन्दा की हकदार है, किन्तु संसार में सभी के विचार एक हो यह सम्भव नहीं। आधुनिक युग में आकर कुछ लोगों ने स्त्री की समस्या को समझा और उन्हें भी सिर्फ एक हाड़-मांस की देह ना मानकर एक संवेदनशील प्राणी माना। प्रेमचन्द के अनुसार, 'स्त्री संवेदना है काया नहीं।'[3] स्त्री के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है-'इस संसार में यदि नारी नहीं होती, तो सभ्यता और संस्कृति न होती। अपने विविध रूपों में स्त्री ने पुरुष को संवर्धन, प्रोत्साहन और शक्ति दी है और प्रकृति को संस्कृति के रूप में ले आने तथा विकृति की ओर जाने से रोकने में समर्थ हुई हैं।'[4] अर्थात् स्त्री आज से नहीं बल्कि युगों से दासता से मुक्ति चाहती रही है स्त्री के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समानता का संघर्ष स्त्री-मुक्ति का संघर्ष है, और इसका साहित्यिक वैचारिक रूप ही स्त्री-विमर्श है। हम कह सकते है कि स्त्री-विमर्श का सरोकार जीवन और साहित्य में स्त्री-मुक्ति के प्रयासों से है।

साहित्य में 'विमर्श' शब्द व्यापक अर्थो में प्रयुक्त हुआ है, जबकि इसका शाब्दिक अर्थ है स्पर्श करना, देखना, विचार करना। विमर्श शब्द का अंग्रेजी प्रतिशब्द 'क्पेबवनतेम' है जिसका अर्थ सम्भाषण, वार्तालाप, उपदेश आदि है। विमर्श शब्द, स्त्री शब्द के साथ जुड़कर सम्पूर्ण जाति और समाज का प्रतिनिधित्व करने लगता है। स्त्री-विमर्श के पर्याय के रूप में हम सुविधानुसार स्त्री आन्दोलन, स्त्री-मुक्ति, नारीवाद, स्त्रीवाद, फेमिनिज्म, महिला सशक्तिकरण, आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। स्त्री-विमर्श की अवधारणा को जानने के लिए इसके जन्म स्थान अर्थात् पश्चिम के स्त्रीवादियों की स्त्री-मुक्ति से सम्बन्धित विचारों को जानना भी बहुत जरूरी है।

विलियम थाम्पसन ने स्त्री की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिए उनका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना जरूरी बताया है, इनके अनुसार, 'महिलाओं के समान अधिकार तभी सार्थक होंगे जब निजी सम्पत्ति और प्रतियोगिता के स्थान पर समाज का आधार साझा मिल्कियत और सहकार होगा।'[5] इसी के साथ स्त्री-मुक्ति या स्वतन्त्रता आवश्यक क्यों है? को बताते हुए कहा है- 'जिस प्रकार औरत की गुलामी ने आदमी को अज्ञानता और निष्ठुरता के क्षेत्रों में जकड़ रखा है उसी प्रकार उसकी मुक्ति से आदमी को ज्ञान, स्वतंत्रता और सुख का पुरस्कार मिलेगा।'[6] एंगेल्स ने भी अपनी पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' में स्त्रियों की प्रगति के लिए उनका आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होना आवश्यक बताया है। उनके अनुसार, 'परिवार के दायरे में पति बुर्जुआ होता है तथा पत्नी सर्वहारा। नारी की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि सभी नारियों को सार्वजनिक उद्यम में ले आना होगा।'[7]

फ्रांस की स्त्रीवादी लेखिका सीमोन द बोउवार, जिन्होंने स्त्री की स्थिति में सुधार के लिए कभी किसी आन्दोलन की बात नहीं की। उनके अनुसार स्त्री-मुक्ति जैसे सामाजिक समस्या का सिर्फ एक ही समाधान है व्यक्तिवाद। उनके अनुसार रूढ़ियों को ठुकराओं, निदान हासिल हो जायेगें। उन्होंने स्त्री शरीर को ही स्त्री-मुक्ति की राह में सबसे बड़ी दीवार बताया। उन्होंने कहा कि, 'अपनी शारीरिक सीमाओं से उबरकर ही औरत एक पूर्ण मनुष्य बन सकती है।'[8] अर्थात् स्त्री का सबसे कमजोर पक्ष उसकी शारीरिक बनावट है वरना आत्मिक और मानसिक स्तर पर वह पुरुष से कमतर नहीं है। इसीलिए हमेशा से ही स्त्री को दबाने के लिए पुरुष ने उसके शरीर को ही निशाना बनाया है। पत्नी है तो उसे माँ बनाकर कर्तव्यों की रस्सी से बांध कर घर में कैद किया। स्त्री है तो उसके चरित्र पर उँगली उठा कर उसे दरवाजों के भीतर रहने पर मजबूर किया गया।

स्त्री विमर्श की अवधारणा को स्पष्ट करती हुई अनामिका कहती हैं-'स्त्री आन्दोलन पितृसत्तात्मक समाज में पल रहे स्त्री-सम्बन्धी पूर्वाग्रहों से पुरुषों की क्रमिक मुक्ति को असम्भव नहीं मानता। दोषी पुरुष नहीं, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक पुरुषों को लगातार एक ही पाठ पढ़ाती है कि स्त्रियाँ उनसे हीनतर है, उनके भोग का साधन-मात्र।'[9] यह सत्य है कि स्त्री सम्बन्धि यह पूर्वाग्रह ही है जो उसे नियन्त्रित करते है, क्योंकि शिशु के मस्तिष्क में बचपन से ही यह भेद सामाजिकरण की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न किया जाता है कि स्त्री जैविक और सामाजिक रूप से पुरुष से भिन्न है। जिसके कारण पुरुष स्त्रियों के प्रति अपनी संकुचित मानसिकता से कभी भी पूरी तरह उबर नहीं पाते। स्त्री और पुरुष की लड़ाई का व्याकरण अन्य किसी भी तरह के जंग से अलग होता है। यहाँ किसी एक की जीत या हार से समस्या सुलझने वाली नहीं है, क्योंकि स्त्री-पुरुष के बीच की लड़ाई का हित-निकाय एक ही है- परिवार। जो दोनों की अमूल्य निधि है, कम से कम भारत में तो जरूर है। अनामिका के शब्दों में 'कुल मिलाकर यह एक ऐसी लड़ाई है जिसमें सत्ता का हस्तांतरण उतना महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं जितना दृष्टियों और व्यक्तियों का शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और सामंजस्य।'[10] पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष दोनों की इस विषम स्थिति को समझाते हुए डॉ. जगदीश्वर चतुर्वेदी ने कहा है-'आमतौर पर स्त्री-विमर्श स्त्री-पुरुष में बुनियादी फर्क मानकर चलता है। यह फर्क लिंग, संस्कृति, भाषा एवं सृजन के धरातल पर स्पष्ट तौर से नजर आता है। पितृसत्ता प्रधान समाज में स्त्री की उन्नति तब ही संभव है जब पुरुष अपने को सुधारें। स्त्री सुधार का प्रश्न पुरुष सुधार से जुड़ा है।'[11]

सच है स्त्री और पुरुष दोनों जैविक रूप से भिन्न है, किन्तु पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरुद्ध दोनों को एक दूसरे के खिलाफ नहीं बल्कि एक दूसरे के पूरक के रूप में संघर्षशील होना चाहिए, क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अर्न्तगत पुरुष-स्त्री का नहीं बल्कि शक्तिशाली शक्तिहीन का शोषण करता है। स्त्रियों का स्त्रियों के विकास की राह में रुकावट बनना इसका उदाहरण है। अत: स्त्री-विमर्श पुरुष वर्ग के खिलाफ जंग नहीं बल्कि मानवाधिकार की प्राप्ति का संघर्ष है। इस बात की पुष्टि डॉ0 निर्मला जैन के इस कथन से हो जाती है-'स्त्री-पुरुष का आन्दोलन स्त्री बनाम पुरुष की बजाय एक नागरिक के रूप में अधिकारों पर आधारित होना चाहिए उसकी सबसे बड़ी शक्ति है कि वह माँ बन सकती है। यह बात स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ बनाती है, पर यह सृजन शक्ति ही सबसे बड़ी सीमा बन जा रही है।'[12] डॉ0 शशिकला त्रिपाठी के अनुसार-'स्त्री विमर्श का मतलब यह नहीं है कि पुरुष बहिष्कार, पुरुष से टकराव या लुकाठी लेकर घर फूंक दिया जाय। स्त्री विमर्श का मतलब है सह अस्तित्व की भावना। स्त्री संदर्भ या स्त्री-मुक्ति का मतलब है स्त्री को समानता का, बराबरी का दर्जा दिया जाए। यह दर्जा वह पुरुष नहीं देगा। स्त्री को आगे बढ़कर खुद लेना होगा।'[13]

स्त्री-विमर्श में उठने वाले सवाल केवल स्त्रियों से जुड़े नहीं है, अपितु पितृसत्तात्मक व्यवस्था तथा इस व्यवस्था में पुरुष की स्थिति से भी संबंधित है। स्त्री-विमर्श ने पितृक मूल्यों, वर्जनाओं, मापदण्डों पर संदेह करते हुए उन पर प्रश्न चिन्ह लगाया और उन्हें समस्याग्रस्त बनाया है। स्त्री-विमर्श ने नारी समस्या को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में उठाया है। उसने समाज-रचना के वर्ग तथा वर्ण की विसंगतियों, शोषक-शासक, पुरुष मात्र के भोग-विलास, नारियों के संत्रास, अमानवीय शोषण तथा सभी वर्गो-वर्णों में स्त्री-पराधीनता का बड़ा तीखा व मार्मिक वर्णन किया है। वास्तव में स्त्रीवाद, पितृसत्ता के विलोम है। पितृसत्ता जहाँ स्त्रियों के तमाम तरह के बंधनों व रूढ़ियों में जकड़ती है वहीं इन बन्धनों से मुक्त होने के लिए किया गया विद्रोह स्त्रीवाद है।

निष्कर्ष स्वरूप कहें तो स्त्री का अपने शरीर व जीवन पर स्वयं के नियन्त्रण व अधिकार का संघर्ष ही स्त्रीवाद है। भारत के संदर्भ में कहे तो स्त्री-पुरुष की वही पुरानी वैदिक सभ्यता वाली स्थिति को प्राप्त करने के लिए किया गया प्रयास स्त्री-विमर्श है। अन्तर सिर्फ इतना है कि इस बार वह अपनी आर्थिक स्वतन्त्रा के प्रति भी सचेत है। अन्तत: कह सकते हैं कि, स्त्रीवाद, घर-बाहर दोनों जगहों पर स्त्री की समानता व सम्मान की बात करता है। स्त्रीवाद, स्त्रियों को सदियों पुराने-ऐसे रीति-रिवाजों जो शोषण का प्रतीक हो के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। स्त्रीवाद, मौजूदा, पितृसत्तात्मक सामाजिक ढाँचे को बदलकर औरत-मर्द की समानता पर आधारित सामाजिक ढाँचे की स्थापना का प्रयास है। स्त्रीवाद, मानवीकरण की एक प्रक्रिया है जो समाज में इन्सानी मूल्यों को आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है। इसीलिए यह स्त्री और पुरुषों दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है। स्त्रीवाद आज की दुनिया का एक प्रमुख नारा है जो मूलत: पश्चिमी देशों के अनुभवों पर आधारित है। स्त्रीवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि को जानने के लिए स्त्री-सम्बन्धि विचार जो दर्शन व इतिहास में रहे हैं, उन्हें समझना अति आवश्यक है। स्त्री सम्बन्धी विभिन्न पाश्चात्य दार्शनिकों के विचार निम्नलिखित है-

प्लेटो के अनुसार, 'स्त्री की काया के साथ तो कोई स्त्री दर्शनादि गम्भीर कार्यों में शिरकत करने के योग्य नहीं समझी जा सकती, पर इसकी उम्मीद जरूर है कि मृत्यु के बाद कायान्तरण हो, वह पुरुष का चोला पहनें और तब संभाले राज-काज।'[14] सुकरात भी स्त्रियों की स्वभावगत कमजोरियों के कारण उन्हें बौद्धिकता पूर्ण गम्भीर कार्यों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझते हैं। उदाहरणार्थ, 'सुकरात कहते हैं कि सच्चे दार्शनिक को तो मृत्यु से बिल्कुल डर नहीं

लगता, और स्त्रियाँ मृत्यु का नाम सुनते ही रोने-कलपने लगती हैं।'[15] स्त्रियों के सम्बन्ध में अरस्तू का दृष्टिकोण कुछ सकारात्मक था। उनका कहना था कि,'स्त्रियों को घर के कामकाज और बच्चे जनने और बड़े करने में इतना लिप्त रहना पड़ता है कि चिन्तन-मनन आदि उच्चतर वृत्तियों के लिए उन्हें फुर्सत नहीं मिलती और इस तरह वे पार्थिव और नीच बनी रहती हैं।[16] कान्ट के अनुसार स्त्रियों में समझदारी जैसी कोई चीज नहीं होती, यह सिर्फ अपनी 'सुरुचि' के अधीन होकर ही कोई कार्य करती हैं। हीगल भी स्त्रियों की सीमाओं के बारे में बात करते हुए कहते हैं-'विकास की आरम्भिक अपरिपक्व अवस्था का प्रतिबिम्बन स्त्री के सरल चित्त में होता है- घर-गुहस्थी, भावनात्मक सुरक्षा, आदि छोटी चिन्ताओं से ये इस कदर भरी होती है कि नाक के आगे इन्हें कुछ सूझता ही नहीं; 'प्राइवेट स्फियर' लाँघकर 'पब्लिक स्फियर' के वृहत्तर उद्देश्यों के बारे में सोचना इनसे सधता नहीं; इसलिए इन्हें 'नागरिक' तो माना ही नहीं जा सकता; अधिक से अधिक ये इतना कर सकती हैं कि पुरुषों को वृहत्तर सामाजिक उद्देश्य साधने की प्रेरणा और सुविधा दें, उनके पाँव की जंजीर न बन जाएँ।'[17]

एंजेल्स ने स्त्री की दासता के पीछे वैयक्तिक सम्पत्ति तथा इसके उत्तराधिकार को प्रमुख कारण मानते हुए कहा-'वैयक्तिक सम्पत्ति की धारणा के विकास का सीधा सम्बन्ध सम्पत्ति के उचित उत्तराधिकारी यानि 'अपनी' सन्तान के सन्धान से था और 'सन्तान' अपनी हो-इसकी गारण्टी तभी हो सकती थी जब सन्तानधारिणी गिरफ्त में रहे यानि उसकी स्वतन्त्रा पर अंकुश लगाया जाएँ।'[18] इन्हीं लोगों की तरह वाल्तेयर, दिदेरो, मान्टेस्क्यू तथा रूसों जैसे विचारकों का भी यहीं मानना था कि स्त्रियाँ मूलत: अपनी भावनाओं और आवेग की उपज होती है। ज्ञान-प्रसार आन्दोलन के नेताओं की इस मानसिकता के बावजूद सामाजिक परिवर्तन हुए और इन परिवर्तनों ने स्त्रियों को उनके अधिकारों के प्रति जागृत किया। इन सब के मध्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि खुद स्त्रियों ने ही पुरुषों से समानत की बात करते हुए कलम उठाई। इसी काल में 'मेरी वालस्टानक्राफ्ट' की प्रसिद्ध पुस्तक 'विन्डीकेशन आफ दी राइट्स आफ वुमेन' प्रकाशित हुई। जिसने स्त्रियों की अधिकार की लड़ाई को एक नया रूप दिया। इस पुस्तक में 'इस बात पर सबसे अधिक बल दिया गया है कि 'महिलाओं और पुरुषों के बीच का फर्क उनकी निजी प्रकृति से नहीं बल्कि शिक्षा और महिलाओं को मिलने वाले सामाजिक परिवेश की वजह से है।'[19] मेरी वालस्टानक्राफ्ट ने यह मानने से पूर्णत: इनकार किया कि स्त्रियाँ बुद्धि के मामले में पुरुषों से कम है अथवा छुईमुईपन, नाजुकता तथा सतहीपन उनका नैसर्गिक गुण है।

स्त्रियों के अधिकारों की यह विचारधारा सेंट साईमन, फूरियर, राबर्ट ओवेन, विलियम थाम्पसन जैसे काल्पनिक समाजवादियों के चिंतन द्वारा और विकसित हुई। काल्पनिक समाजवादियों के कार्यों से स्त्रीवादी आंन्दोलन के और भी कई मुद्दे सामने आये। जिसे 'सरला माहेश्वरी' जी ने अपनी पुस्तक 'नारी प्रश्न' में व्याख्यायित किया है। उनके अनुसार, 'पहला मुद्दा यह है कि स्त्री-पुरुष को समान अधिकार वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं मिल सकते हैं, इस व्यवस्था को पूरी तरह बदलना होगा; निजी संपत्ति का नाश करना होगा और एक नये समाज की रचना करनी होगी, जिससे स्त्रियां आर्थिक दृष्टि से तथा कानूनी दृष्टि से भी स्वतंत्र होगी। दूसरा, उन्होंने स्त्री और पुरुष के बीच श्रम के परम्परागत विभाजन पर करारा प्रहार किया। उत्पादन कार्य में महिलाओं की समान भागीदारी के साथ ही घरेलू कामों में पुरुषों द्वारा हाथ बंटाने की जिम्मेदारी पर भी उन्होंने बल दिया। तीसरा, परिवार नाम की संस्था की धज्जियां उड़ाई; इसे पुरुष शक्ति के स्रोत के रूप में बताया गया, जो समाजवादी विचारधारा के बिल्कुल विरूद्ध है तथा स्वतंत्रता चयन के अधिकार का दमन करता है।'[20] पश्चिम में स्त्री-आन्दोलन के विकास की बात करे तो 19वीं सदी आते-आते स्त्रियों के समान अधिकार की मांग ने एक राजनीतिक रूप अख्तियार कर लिया था। इस समय के प्रमुख स्त्रीवादी विचारकों में इंग्लैण्ड के 'जान स्टुअर्ट मिल' तथा उनकी पत्नी 'हेरीएट टेलर', अमरीका की 'एलिजाबेथ केडी स्टैन्टन' प्रमुख है। स्टैन्टन सिर्फ एक लेखिका ही नही थी, वे अमरीका के स्त्री आन्दोलन की एक सक्रिय कार्यकर्ता भी थी। उन्होंने प्रसिद्ध 'सेनेकाफाल कान्वेंशन आफ 1848' लिखा था; जिसमें महिलाओं के लिए मतदान, संपत्ति, शिक्षा, रोजगार, राजनीति और गिरिजाघरों में सार्वजनिक भागीदारी के अधिकारों की जोरदार ढंग से मांग उठायी गयी थी।

अब तक के स्त्रीवादियों के द्वारा स्त्रियों के लिए जनतांत्रिक अधिकारों की जो मांग उठायी गयी थी, वह 19वीं सदी के अंत तक ब्रिटेन तथा अमरीका जैसे देशों में कानूनी तौर पर मान लिया गया, जबकि वास्तविकता अभी भी कोसो दूर थी। किन्तु अब तक की मेहनत रंग लाई, स्त्रियों में शिक्षा का विस्तार हुआ, वे घर से बाहर निकली, ऑफिस-अदालतों में काम करने लगी। इसका सबसे सकारात्मक पक्ष ये था कि अब घरों से बाहर स्त्रियों ने विभिन्न प्रकार के संगठनों का निर्माण किया। ऐसे माहौल में मतदान का वह अधिकार, जिसका वालस्टानक्राफ्ट के लेख में संकेत मात्र है तथा 1948 के सेनेकाफाल कन्वेंशन में एक क्रांन्तिकारी मांग के रूप में उठाया गया था, वह मतदान का अधिकार 20वीं सदी के आरम्भ में ब्रिटेन और अमरीका जैसे देशों के महिला आन्दोलन का एक प्रमुख मांग बन गया। मतदान के इस आन्दोलन में अलग-अलग विचारों को मानने वाले लोग शामिल थे, जैसे उदारतावादी व लैंगिक समानता को मानने वाले कुछ लोग इसमें शामिल हुए वही कुछ लोग ऐसे भी थे जो सिर्फ शिक्षित लोगों को मतदान का अधिकार देने के पक्ष में थे तो कुछ ऐसे भी लोग थे जो स्त्रियाँ के साथ ही मजदूर वर्ग, काले लोगों तथा अप्रवासी स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार दिये जाने की मांग उठा रहे थे। उदारतावाद और विद्रोही नारीवाद के मध्य विभिन्न मुद्दों को लेकर हमेशा विभेद रहा है जैसे, राज्य के बारे में। उदारतावादी राज्य को एक निरपेक्ष संस्था मानते थे उनके अनुसार यदि इसमें स्त्रियों को शामिल किया जाय तो राज्य का विकास ही नहीं होगा। उदारतावादी स्त्रीवाद का पूरा जोर समान कानूनी और राजनीतिक अधिकारों की मांग पर था। वहीं विद्रोही स्त्रीवादी राज सत्ता को पितृसत्तात्मक उत्पीड़न के हथियार के अलावा और कुछ नहीं समझती थीं। राज्य द्वारा स्त्रियों की सुरक्षा के लिए बनायें गये कानूनों का इनकी नजर में कोई अहमियत नहीं थी। मसलन, बैलरी ब्रायसन के शब्दों में-'कानून यदि महिलाओं को जुल्म करने वाले पति को त्यागने का अधिकार देता है तो विद्राही नारीवादियों के अनुसार पति के जुल्म से उसकी रक्षा के लिये इतना ही काफी नहीं है, क्योंकि उस कानून को लागू करने का दायित्व उस नारी-विरोधी पुलिस का होगा जो एक नारी-विरोधी राज सत्ता के ढ़ाचे में काम कर रही है।'[21] विद्रोही नारीवाद के अनुसार स्त्रियाँ सिर्फ स्त्री होने के कारण आर्थिक शोषण का शिकार होती है।

मार्क्सवाद के विचार से-'स्त्रियों की यह अवस्था न स्त्रियों के विकास के लिये और न समाज की बेहतरी के लिये कल्याणकारी है। स्त्रियां भी पुरुषों की तरह मनुष्य है और उनके कन्धों पर भी समाज का उत्तरदायित्व उतना ही है जितना कि पुरुषों के कंधे पर। जब तक स्त्री का शारीरिक और मानसिक

विकास निर्बाध रूप से न होगा, उसके द्वारा उत्पन्न संतान भी उचित रूप से उन्नत न होगी। स्त्री को केवल उपयोग और भोग की वस्तु बना कर रखना मनुष्य के जन्म के स्रोत को बिगाड़ना है। समाज की उन्नति और वृद्धि के लिये स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज में स्त्रियों के समान अधिकार के लिये इन्हें भी पैदावार के कार्य में भाग लेकर उसका फल पाने का समान अवसर होना चाहिए।'[22] प्रारम्भिक स्त्रीवादियों ने जो तमाम सवाल स्त्री-आन्दोलन के रूप में उठाये थे उनमें से अधिकांशत: आज समाज का नैसर्गिक अंग बन चुके है, किन्तु पाँचों उगलियाँ एक बराबर नहीं होती । दुनिया के अनेक देशों में महिलाएं आज भी न्यूनतम नागरिक अधिकारों से वंचित हैं। स्त्रियों का स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना आज भी विरोधों और चुनौतियों से भरा है। पश्चिमी समाज की बात करें तो द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् उनके जीवन में कई बड़े परितर्वतन हुए। नई तकनीकी व मशीनों ने काम की परिस्थितियों तथा घर के अन्दर के परिवेश को काफी प्रभावित किया जिसका सीधा फायदा स्त्रियों को मिला। आज पश्चिमी जगत में अधिकांश नारियां आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ी है। जहां यह मान की बात है वही एक दु:खद भविष्य की तश्वीर भी दिखायी दे रही है 'परिवार के टूटने' के रूप में। इसलिए आज आवश्यकता है कि स्त्रियां अपने परिवार से सम्बन्धित जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपने अधिकारों को प्राप्त करें। इसके लिए उन्हें एक व्यापक स्वायत्त स्त्री आन्दोलन को विकसित करना होगा।

सन्दर्भ

1. वृहदारण्यक (1/4/9-2)
2. डॉ. कल्पना वर्मा (संपादक)-स्त्री विमर्श पृष्ठ संख्या-66
3. वही, पृष्ठ संख्या-266
4. चन्द्रबली त्रिपाठी-भारतीय समाज में नारी आदर्शो का विकास, भूमिका
5. सरला माहेश्वरी-नारी प्रश्न, पृष्ठ संख्या-17
6. वही, पृष्ठ संख्या-18
7. वही, पृष्ठ संख्या-20
8. वहीं पृष्ठ संख्या-17
9. अनामिका-स्त्रीत्व का मानचित्र, पृष्ठ संख्या-11
10. वही, पृष्ठ संख्या-11
11. जगदीश्वर चतुर्वेदी-स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, पृष्ठ संख्या-167
12. पत्रिका, उत्तर प्रदेश (स्त्री-विशेषांक) मई 2003
13. पत्रिका, अनुसंधान, संपादक: प्रो. राम किशोर, जनवरी, 2012
14. अनामिका-स्त्रीत्व का मानचित्र, पृष्ठ संख्या- 18
15. वहीं, पृष्ठ संख्या-18
16. वहीं, पृष्ठ संख्या-19
17. वही, पृष्ठ संख्या-21
18. वहीं, पृष्ठ संख्या-22
19. सरला माहेश्वरी-नारी प्रश्न, पृष्ठ संख्या-15
20. वहीं, पृष्ठ संख्या-16
21. वही, पृष्ठ संख्या-42
22. यशपाल-मार्क्सवादी, पृष्ठ संख्या-88

महादेवी के साहित्य में विरह-वेदना

डॉ० तानाबाई पाटिल

शोलापुर, महाराष्ट्र

छायावाद-व्योम की अरून्धती, एवं साहित्य की समस्त विधाओं की स्रष्टा महादेवी वर्मा ने अपनी प्रतिभा के प्रसाद से हिन्दी भारती के प्रासाद की भव्यता और सौन्दर्य-श्री की अभिवृद्धि के लिए स्तुत्य प्रयास किया है।

महादेवी की कविता में वेदना और करुणा की स्पष्ट झलक मिलती है। छायावादी की कल्पना प्रवणता, भावातिशयता, वेदनात्मक रहस्यवादिता आदि विविध विशेषताएँ इस कवयित्री में संगमित हो सकती हैं। अपनी करुण गाथा सुनाने के लिए महादेवी ऐसी पृष्ठभूमि तैयार कर लेती है कि वह जीवन में एकांत संगीत से लेकर वियोग तक की अनुभूतियों की व्यंजना स्पष्ट रूप से कर देती हैं। उन्होंने करुणा को ही सहचरी सदृश देखा और विरह में ही मिलन माना है। उनके जीवन में तो विषाद इस तरह भर गया है कि विषादहीन जीवन की कल्पना भी नहीं करती, तभी तो वह लिखती हैं–

''मैं नीर भरी दु:ख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना, इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली
मैं नीर भरी दु:ख की बदली।''[1]

महादेवी ने अपने जीवन के विषाद को भगवान शंकर की भाँति ही पान कर लिया। उनका कंठ नीला अवश्य पड़ गया, लेकिन होठों की सहजंगिनी मुस्कान कभी लुप्त नहीं हुई।

सजल गीतों की गायिका एवं अज्ञात प्रियतम की आराधिका महादेवी वर्मा आधुनिक युग की 'मीरा' भी कही जाती हैं। आलोचकों ने इन्हें 'पीड़ावाद की कवयित्री' भी कहा हैं। महादेवी ने स्वयं लिखा है–

''दु:ख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें मनुष्यता की सीढ़ी तक न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद भी जीवन को अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक-एक जल बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।''

इसी प्रसंग में वह आगे चलकर कहती हैं–''मुझे दु:ख के दोनों ही रूप प्रिय हैं, एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बंधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े असीम चेतना का क्रंदन है।''[2]

वे पीड़ा में प्रियतम और प्रियतम में पीड़ा को खोजती हैं। वे सदा मिटाने के अधिकार को अपने पास संभालकर रखने के लिए तत्पर रहती है। तभी तो वह कहती हैं–''पीड़ा मेरे मानस से भींगे पट-सी लिपटी है।''

महादेवी वर्मा की यह पीड़ा वैयक्तिक न होकर सामन्ती पाशों से बद्ध एवं सामाजिक रूढ़ियों से ग्रस्त भारतीय नारी जीवन की उन्मुक्त पीड़ा है। छायावादी काल में भारतीय नारी जीवन की सिसकती पीड़ा को जोड़ देना महादेवी के काव्य का भौतिक योगदान है। ''महादेवी जी की यह विशेषता है कि छायावाद ने व्यक्ति और समाज की जिस व्यापक असंतोष भावना को अभिव्यक्ति दी, उसमें उन्होंने भारतीय नारी के असंतोष, निराशा और आकांक्षा का स्वर भी जोड़ दिया।''[3]

कवयित्री को मिलन अभीष्ट नहीं, क्योंकि उसमें जड़ता है और क्रियाशीलता का अभाव है। वे शुरू से अंत तक विरह-गीत से जुड़ी रहीं। उनका कहना है–

''पर न अन्तिम छन्द का मैं अभी तक गा सकी हूँ।''

महादेवी ने दाम्पत्य भाव से उस असीम प्रियतम के प्रति अपने प्रेम की आकुलता हृदय से प्रकट की है। उनका यह भाव ही रहस्यवाद का रूप है। परमात्मा से अपनी अभिन्न राग जताते हुए कहती हैं–

''बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी,
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।''[4]

जयशंकर प्रसाद ने सचमुच अनुभव किया था- 'मानव जीवन वेदी पर परिणय है– विरह–मिलन का।''

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है– ''छायावादी काव्य में प्रसाद ने यदि प्रकृति तत्त्व को मिलाया, निराला ने मुक्तक छन्द दिया, पन्त ने शब्दों की खराद पर चढ़ाकर सुडौल और सरस बनाया तो महादेवी जी ने उसमें प्राण डाले।''[5]

''महादेवी के विरह-गीत अपनी अनुपम अनुभूतियों और चित्रमयी व्यंजना के कारण हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है।

आधुनिक युग की कवयित्री महादेवी वर्मा की कविताओं में विरह का ऐसा अविरल प्रवाह है, जो आज भी हम सबके लिए अस्पष्ट, जटिल एवं दुर्बोध ता का विषय बना हुआ है। कवयित्री ने स्वयं अपने इस वेदना भाव को 'पीड़ा', 'वेदना' आदि शब्दों में चित्रित किया है-

''मेरी मधुमय पीड़ा को कोई
पर ढूँढ़ न पाये।''
पा लिया मैंने किसे इस वेदना
के मधुर क्रय में,
बिछाती भी सपनों के जाल,
तुम्हारी वह करुणा की कोर
गई वह अधरों की मुस्कान,
मुझे मधुमय में पीड़ा में बोर।''[6]

उपरोक्त पंक्तियों में वेदना या पीड़ा के साथ 'मधुर' विशेषण का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है। जैसे– 'मधुमय पीड़ा' वेदना के मधुर क्रय', 'मधुमय पीड़ा'।

वास्तव में पीड़ा या वेदना सुखकारी नहीं होती, फिर इसे मधुमय कहना अनुचित प्रतीत होता है। जो मधुमय होता है, वह तो सुखकारी, आनंद-प्रदायिनी और प्रसन्नता का द्योतक होता है। महादेवी की बातों से ऐसा लगता है कि एक ओर उनके हृदय में अपने प्रियतम के लिए अमित आह्लाद है तो दूसरी ओर उनसे न मिलने की अत्यधिक पीड़ा भी है। वह अपनी अधरों की मुस्कान में भी पीड़ा को ढूँढ़ने का प्रयास करती है। 'प्रेम' या 'प्रणय' में ही ऐसी नोंक–झोंक और 'मीठी या तीखी' बातों की अनुभूति होती है। सच्ची प्रेमिका को ही मधुमय और पीड़ा दोनों की अनुभूति एक साथ हो सकती है। महादेवी की इस 'मधुमय पीड़ा' को 'प्रेम' का पर्यायवाची कहा जा सकता है।

महादेवी का यह वदेना-भाव अन्य प्रणय भाव के ही समतुल्य है। उनकी वेदना का प्रादुर्भाव कहीं किसी की 'चितवन' तो कहीं किसी के 'अधरों की मुस्कान' को बताया जाता है।

निम्नांकित पंक्तियाँ इसी भाव को चित्रित करती हैं–

''पर शेष नहीं होगी यह मेरे
प्राणों की क्रीड़ा ।
तुमको पीड़ा में ढूँढा,
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।''[7]

आलोचकों ने इस 'पीड़ा' शब्द का जो अर्थ लगाया है, वह सही नहीं लगता महादेवी वर्मा के प्रसिद्ध व्याख्याता श्री विश्वम्भर मानव लिखते हैं-''अंतिम पीड़ा शब्द का अर्थ है–'पीड़ामय हृदय'। जिसके लिये इतनी पीड़ा सही है, उस निष्ठुर से मिलाया है, उसकी प्राप्ति पर वे अपने साथ उपकार करने वाली को भूल जाएँ, इतनी अकृतज्ञ महादेवी नहीं हैं। पर, लक्ष्य 'तुम' ही है, पीड़ा नहीं।''

वास्तव में यहाँ पीड़ा शब्द का अर्थ 'प्रणय' ही है। प्रेम की अनुभूति से ही कवयित्री को उस असीम प्रियतम की प्राप्ति होती है और वह उस प्रियतम में भी पीड़ा को खोजना चाहती है। हर प्रेमिका यह जानना चाहती है कि उसका प्रियतम भी उससे प्रेम करता है या नहीं? महादेवी जी के इस 'पीड़ा' शब्द के अर्थ प्रेम नहीं मानते हुए जैनेन्द्र जी इस पर आक्षेप करते हुए लिखते हैं ''घायल घाव नहीं चाहता है। मालूम होता है, उनकी गति घायल की है ही नहीं।''

श्री सतपाल बुध भी लिख डालते हैं–''अवश्य ही वेदना उनको प्रिय भी है और इसका उनके जीवन-दर्शन से अनिवार्य रूप से संबंध भी है। तो क्या जो बात किसी को प्रिय हो, वही उसका जीवन-दर्शन भी होगी? ऐसा आवश्यक है, किन्तु महादेवी जैसी परिपक्व बुद्धिशीला महिला के लिए आवश्यकता तो नहीं क्योंकि हम उनसे किसी सस्ती भावुकता की आशा नहीं कर सकते, और फिर कितनी ही कविताओं में वेदना साध्य बन गई है।''[8]

महादेवी अद्वैतवाद में विश्वास कर परमात्मा से एकाकार के बाद मोक्ष पाना नहीं चाहती, बल्कि वह तो द्वैतवाद युक्त प्रणय के मिथ्या अनुभव से ही संतुष्ट होना चाहती हैं। वह अपनी भावनाओं को निम्न पंक्तियों में दर्शाती है–

''प्रिय! मैं लेती बाँध मुक्ति
सौ-सौ लघुतम बन्धन अपने में,
तुम्हें बाँध पाती सपने में।''[9]

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि कवयित्री ने 'वेदना' या 'पीड़ा' शब्द का उल्लेख 'प्रणय' यानि 'प्रेम' के अर्थ में ही किया है। अत: महादेवी के प्रेम में वेदना की अधिकता है।

महादेवी अज्ञात प्रियतम के चितवन से होकर वह हमेशा के लिए प्रेम के बंधन में बँध जाती है।

''इन ललचाई पलकों पर,
पहरा था जब वीड़ा का।
साम्राज्य मुझे दे डाला,
उस चितवन ने पीड़ा का।''

महादेवी अपने अलौकिक प्रेम में भी प्रकृति के विभिन्न अवयवों में, उसके क्रियाकलापों में अपने सपनों को साकार करना चाहती हैं–

''जिस दिन निखरे तारों से,
बोलीं किरणों की अलकें,
सो जाओ अलसाई हैं,
सुकुमार तुम्हारी पलकें।''

प्रियतम के आने की आहट उन्हें उमंग, उल्लास और माधुर्य से सराबोर कर देती है। बादलों का हँसना-मुस्कराना और बिजली का चमकना उनके प्रेम को द्विगुणित कर देते हैं।

पुलक–पुलक उर, सिहर–सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर–भर?
तुम विद्युत बन, आओ पाहुन!
मेरी पलकों में पग धर–धर।''

मिलनाकांक्षा से अभीष्ट मधुर स्वप्नों में गोते लगाती हुई कवयित्री लिखती हैं–

''अब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल।
देखोगे तुम देव, अमरता खेलेगी, मिटने का खेल।।''

अपने गीतिकाव्य के माध्यम से भी कवयित्री प्रियतम को रिझाने की कोशिश करती हैं–

'हे नभ की दीपावलियों,
तुम पल भर को बुझ जाना।
मेरे प्रियतम को भाता है,
तम के पर्दे में आना।।''

जब कवयित्री को यह आभास हो जाता है कि शरीर के रहते इस जीवन में प्रियतम का साक्षात्कार नहीं हो सकता तो वह बहुत व्यथित हो जाती हैं और कहती हैं–

''मिलन का नाम मत ले,
विरह में मै चिर हूँ।''

प्रेम की विभिन्न दशाओं का वर्णन वे बड़ी ही भावुकता से अपने काव्य में करती हैं। कभी गर्व भाव से तो कभी निर्वेद तो कभी दैन्य भाव से अपनी वेदना प्रकट करती है–

वह गर्व से कहती हैं–

''उनसे कैसे छोटा है,
मेरा यह भिक्षुक जीवन?''
उनमें अनन्त करुणा है,
इसमें असीम सूनापन।''

फिर निर्वेद भाव से कहती है–

''चिन्ता क्या है हे निर्मम बुझ
जाये दीपक मेरा।
हो जायेगा तेरा ही पीड़ा का
राज्य अँधेरा।।''

अपने दैन्यभाव में कवयित्री प्रियतम के असीम रूप में अपने को समाहित कर देना चाहती हैं–

''सिन्धु को क्या परिचय दें देव! बिगड़ते बनते बीचि विलास।
क्षुद्र हैं मेरे बुद्‌बुद् प्राण तुम्हीं में
सृष्टि तुम्हीं में नाश।।''

कवयित्री के हृदय का रूदन ही संभवत: 'मर्मर का रूदन' है। कवयित्री को अपने प्रियतम से जितना ही अनुराग है, उतना ही विरह-भाव से स्नेह भी है। वह विरह–वेदना से स्वयं तड़पती हैं, साथ ही संसार के दीन–दुखियों के प्रति भी अपनी संवेदना प्रकट करती हैं। उनके मन में व्यक्तिगत सम्पदा के प्रति निर्वेद का करूण भाव भी दृष्टिगोचर होता है।

कवयित्री अपने निर्गुण, निराकार, अलौकिक प्रियतम के साथ भी आँख मिचौली का खेल खेलती हैं तो कभी उनकी अस्पष्ट छवि प्रकृति के सौन्दर्य में पाती हैं–

''मैं फूलों में रोती वे बालारूण में मुसकाते,
मैं पथ में बिछ जाती वे सौरभ में उड़ जाते।''[9]

प्रियतम से प्रथम मिलन की बात वह स्पष्ट शब्दों में कहती है–

''झटक जाता था पागल बात,
धूलि में तुहिन-कणों का हार।
सिखाने जीवन का संगीत, तभी तुम आये थे इस पास।।''

इस प्रकार महादेवी वर्मा विरह-वेदना की कवयित्री है। जो प्रकृति अपने प्रियतम (पुरुष) से मिलने के लिए अनन्तकाल से व्यग्र दीखती है, महादेवी मानो उस की साक्षात् प्रतिमा थी।[10]

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद–1 द्वारा प्रकाशित पृष्ठ सं०–108–109
2. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली–06, पृष्ठ सं०–502
3. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली-06, पृष्ठ सं०–503
4. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए. महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद-01 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–81-82
5. डॉ० शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, चौदहवाँ संस्करण–1994 अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली–06, पृष्ठ सं० 503
6. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त–साहित्यिक निबंध, लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद-01, संशोधित नवम् संस्करण–1987, पृष्ठ सं०–768
7. महादेवी वर्मा–सन्धिनी, संस्करण–2004, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गॉधी रोड इलाहाबाद-01 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–41
8. सं० डॉ० सत्यरंजन–साहित्य–संसार, त्रैमासिक, वर्ष–2, अंक–1, अप्रैल–जून, 1966, पृष्ठ सं० 23
9. सं० उपेन्द्र सेवक–आतंक–साप्ताहिक पत्रिका, दिसंबर 1997, पृष्ठ सं०–5
10. महादेवी वर्मा–सन्धिनी संस्करण–2004, लोकभारती प्रकशन, 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहबाद–1 द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ सं०–43

कुँवर नारायण के काव्य में मानवीय मूल्य

तारकेश्वर

शोधार्थी, संत गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरुद, जिला - धमतरी (छ. ग.)

डॉ० आर. के. पाण्डेय

शोध-निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष-हिन्दी, संत गुरु घासीदास शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुरुद, जिला - धमतरी (छ. ग.)

शोध-सार : साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ, पद्म भूषण, मेडल ऑफ वॉरसा यूनिवर्सिटी, प्रीमियों फेरेनिया जैसे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित कुँवर नारायण हिन्दी के एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं। वे एक कवि, कहानीकार, निबंधकार तथा समीक्षक के साथ ही प्रखर चिंतक एवं विचारक भी हैं। बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी होने के बाद भी कुँवर नारायण मूलत: कवि हैं। उनकी कविता सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, श्रद्धा, कृतज्ञता, ईमानदारी, सहिष्णुता, सहृदयता, न्याय, समानता जैसे मानवीय मूल्यों से भरी हुई है। कुँवर नारायण मनुष्यता पर गहरी आस्था रखने वाले उच्चतर मानवीय मूल्यों के कवि हैं। उनकी आँखों में बेहतर भविष्य का सपना है जिसे वे कभी मरने नहीं देते। वे मानवता के साथ खड़े होकर अन्याय तथा अत्याचार का तीव्रता से विरोध करते हैं। कवि अपने परिवेश के प्रति संवेदनशीलता के साथ कृतज्ञतर होना चाहता है; वह जीवन को उसकी पूर्णता में स्वीकार कर अधिक मनुष्यतर होना चाहता है। मनुष्यतर होना अमानवीयता के समय में मानवीयता पर आस्था का द्योतक है। मानवीय मूल्य वह कसौटी है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है। कुँवर नारायण की कविता पशुता की ओर जा रहे मानव-समाज में मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए प्रतिबद्ध है।

बीज-शब्द : मानवीय मूल्य, नैतिकता, प्रेम, करुणा, सदाचार, कुँवर नारायण

कुँवर नारायण हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने वाले समर्थ रचनाकारों में से हैं। नई कविता के प्रथम पंक्ति के कवियों में उनका नाम आदर सहित लिया जाता है। जिस प्रकार उनके कृतित्व में विविधता है, उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व भी अत्यंत व्यापक है। वे जीवनपर्यंत कविता के साथ ही कहानी, निबंध, आलोचना आदि पर भी अपनी लेखनी चलाते रहे। उनमें परम्परा-बोध के साथ ही यथार्थ-बोध तथा भविष्य के प्रति एक दूरदृष्टि दिखाई देती है। कुँवर नारायण सहृदय कवि होने के साथ ही एक प्रखर चिंतक भी हैं। वे आधुनिक युग की जटिलताओं के मध्य सरल-सहज जीवन के पक्षधर हैं। उनकी कविता रूढ़ियों, संकीर्णताओं तथा जर्जर मान्यताओं को तोड़कर मनुष्य को मनुष्य से एक करती है।

मूल्य किसी वस्तु के संबंध में एक अमूर्त धारणा है जिसे देखा नहीं जा सकता, केवल चेतना से अनुभूत किया जा सकता है। यह वस्तु में निहित होते हुए भी वस्तुनिष्ठ नहीं होता। प्रत्येक वस्तु का मूल्य प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है, अत: कहा जा सकता है कि मूल्य एक व्यक्ति-सापेक्ष अवधारणा है। मूल्य का निर्धारण करने वाला व्यक्ति है, इसीलिए जगदीश गुप्त ने कहा है कि "वैयक्तिक प्रतीति को मूल्य-बोध का एक आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य आधार मानना होगा।"[1] किसी वस्तु (मूर्त और अमूर्त दोनों) का मूल्य उतना ही अधिक होगा जितना उसमें व्यक्ति अथवा समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता होगी। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में मूल्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है- "जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करे, वही मूल्य है।"[2] अर्थात् मूल्य वह है जिससे जीवन की अर्थवत्ता सिद्ध होती हो। जीवन की सार्थकता के लिए मानव द्वारा निर्मित अथवा आविष्कृत मूल्य मानव-मूल्य या मानवीय-मूल्य कहलाते हैं। "मानव मूल्यों का तात्पर्य उन मूल्यों से है, जो मानव के आंतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं तथा उनके संवेदनात्मक व्यक्तित्व से सबसे अधिक सीधे और गहन रूप से सम्बद्ध हैं।"[3]

बीसवीं शताब्दी में हुए दो महायुद्धों ने मानवीय मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया। देश की स्वतंत्रता के साथ ही विभाजन की त्रासदी से धार्मिक कट्टरता को बढ़ावा मिला। सामूहिक नरसंहार और बलात्कार जैसी जघन्य घटनाएँ मानवीय क्रूरता और बर्बरता को ही उजागर करती हैं। आजादी के बाद से राजनीति सहित प्रत्येक क्षेत्र का स्तर गिरता ही गया है। राजनीति स्वार्थसिद्धि का माध्यम बन गई। व्यवस्था को भ्रष्टाचार का घुन लग गया। धर्म अंधविश्वास का अड्डा हो गया। समाज अपराधियों का जमघट बन गया। प्रतिदिन भ्रष्टाचार, चोरी, अपहरण, हत्या की खबरों से अखबार भरे रहते हैं। जैसे-जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास ने मानव जीवन को भौतिक सुख-सुविधाओं से समृद्ध किया, उसके साथ ही मानवीय मूल्यों का तेजी से ह्रास हुआ है। प्रेम, करुणा, आस्था, नैतिकता, ईमानदारी जैसे मूल्य मध्यकालीन शब्द बनकर रह गए हैं। आज मनुष्य अधिक स्वार्थी हो गया है। ऐसी स्थिति में मानवीय मूल्यों पर सिरे से विचार करना आवश्यक हो जाता है।

नई कविता के अधिकांश कवि यथार्थ की कठोरता से हार मानकर मानवता पर विश्वास खो चुके थे। वे जीवन की निरर्थकता को सत्य मानकर निराशा में डूबे हुए थे। इसके विपरीत कुँवर नारायण अपनी कविता में प्रेम, करुणा, सत्य, अहिंसा, आस्था, श्रद्धा, कृतज्ञता, ईमानदारी, सहिष्णुता, सहृदयता जैसे उच्चतर मूल्यों को पुन: स्थापित करने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। कुँवर नारायण से जब पूछा गया कि समकालीन कविता के प्रमुख सरोकार कौन-कौन से हैं?

तब उनका जवाब था- "मनुष्य-मनुष्य के बीच संबंधों के व्यापक संसार के निर्माण की कोशिश, सामाजिक न्याय, नैतिक बल, पाठक तक पहुँचने की चिन्ता, मानवीयता को बचाए रखने का सरोकार। ये कुछ जरूरी बातें हैं जिनकी मैं चिन्ता करता हूँ... लिखते हुए इन्हें कविता में ट्रांसफॉर्म करने की मेरी कोशिश होती है।"[4] कवि को लगता है कि आज बड़े-बड़े शब्द अपनी अर्थवत्ता खो चुके हैं, इसीलिए वे शब्द नहीं, एक विश्वास की खोज में हैं-

"आज मैं शब्द नहीं
किसी ऐसे विश्वास की खोज में हूँ
जिसे आदमी में पा सकूँ।" [5]

ऐसे समय में जब सारे मूल्य निरर्थक सिद्ध हो चुके थे, आदमी में विश्वास की खोज कवि की मनुष्यता पर अटूट आस्था का परिचायक है। "ताकत के तंत्रों द्वारा घृणा, विद्वेष और बर्बरता की शिकार बनाई जा रही दुनिया में कुँवर एक जिद की तरह बार-बार प्रेम और मनुष्यता की ओर लौटते हैं..."[6] प्रेम वह आधार है जिसके सहारे कवि यथार्थ से संघर्ष करता है। संवेदना की डोर से वह सबसे जुड़े रहना चाहता है। वह बार-बार सिद्ध करता है कि विपरीत परिस्थितियों में भी वह टूटा नहीं-

"लौटना है मुझे
प्रेम की तरफ
विश्वास बनाये रखना है
मनुष्य में
सिद्ध करते रहना है
कि मैं टूटा नहीं" [7]

इस विश्वास से ही कुँवर नारायण जीवटता की शक्ति पाते हैं। वे तमाम कठिनाइयों को भोगते हुए सबके हित के लिए संघर्षरत हैं। उनका संघर्ष दोतरफा हैख़ एक ओर वे बाहरी परिस्थितियों से जूझ रहे हैं तो दूसरी ओर उनका स्वयं से भी युद्ध चल रहा है। वे चेहरे पर 'नोकदार मूँछ' लगाने से और कमर में 'लोहे की पूँछ' बाँधने से इनकार करते हैं। लोगों को तरेर कर देखने वाली 'भूखी शेर-आँखों' में वे कृतज्ञता का भाव देखना चाहते हैं। वे 'जगह बेजगह कुचला पड़ा पिद्दी-सा जानवर' नहीं होना चाहते। वे अधिक मनुष्यतर और पूर्णतर होने का प्रण लेते हैं-

"अबकी अगर लौटा तो
हताहत नहीं
सबके हिताहित को सोचता
पूर्णतर लौटूँगा" [8]

कुँवर नारायण मनुष्य और मनुष्य के बीच समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त एक ऐसा संबंध स्थापित करना चाहते हैं जिसका आधार मैत्री हो। लक्ष्मीकांत वर्मा अपनी किताब 'नई कविता के प्रतिमान' में लिखते हैं, "आज जो मानवीय आस्था के प्रति अधिक जोर देने की आवश्यकता अनुभव हो रही है उसका एक कारण और शायद प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य को मनुष्य के रूप में न देखकर उसे विभिन्न वर्गों, खानों और सम्प्रदायों के रूप में देखा जाता है।"[9] आज मनुष्य का जीवन स्वार्थ के इर्द-गिर्द सिकुड़ कर रह गया है। कुँवर नारायण इस सिकुड़ती जिन्दगी को अमरत्व का विस्तार देना चाहते हैं-

"सिकुड़ती जिन्दगी को
दे सकूँ मैं स्वयं से आगे
किसी अमरत्व का विस्तार :" [10]

कुँवर नारायण की कविता व्यक्ति को आत्ममुग्धता की खोह से निकाल कर समष्टि से जोड़ने में लगी हुई है। "उपभोक्तावाद, नवपूँजीवाद, लम्पटता, हिंसा, असहिष्णुता, क्षुद्रता, स्वार्थ, अमानवीयता और आत्यंतिक भौतिकता इत्यादि को कवि ने विमर्श का विषय बनाया है।... क्योंकि इनके कारण ही मनुष्यता का महापतन जारी है।"[11] जब पूरी मानवता भौतिक वस्तुओं के संग्रह और शक्ति के उद्दंड प्रदर्शन में लगी हुई है तब कवि पशु से मनुष्य होने को पराक्रम की तरह देखता है-

"एक अंधी शक्ति के उद्दंड प्रदर्शन से
कहीं अधिक सार्थक हो सकता था
एक पशु से मनुष्य हो सकने का
विनम्र पराक्रम।" [12]

आज पशु से मनुष्य होना सबसे जरूरी और सबसे कष्टकर काम है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने छोटे से अहं को भरने के लिए सब कुछ जीतने में लगा हुआ है, वहाँ कवि की स्वीकारोक्ति है कि "मैंने अक्सर इस ऊलजलूल दुनिया को दस सिरों से सोचने और बीस हाथों से पाने की कोशिश में अपने लिए बेहद मुश्किल बना लिया है।" कुँवर नारायण दुनिया से छीना-झपटी का नहीं, बल्कि परस्पर स्नेह का संबंध रखना चाहते हैं। वे सब कुछ जीत लेने में नहीं, अंत तक हिम्मत न हारने में यकीन रखते हैं-

"जब तुम अपने मस्तक पर बर्फ का पहला तूफान झेलोगे
और काँपोगे नहीं-
तब तुम पाओगे कि कोई फर्क
नहीं सब कुछ जीत लेने में
और अंत तक हिम्मत न हारने में।" [13]

सच्चाई के लिए लड़ना अपने आप में जीत है। कवि अंतिम साँस तक सच्चाई के साथ खड़े रहने को साहस कहता है। झूठ को पकड़ना मुश्किल होता है, क्योंकि वह हमेशा सच का मुखौटा ओढ़कर आता है। वह इतनी जोर से बोलता है कि सच्चाई की आवाज दब जाती है। आज के दौर में जब चारों ओर झूठ का ही बोलबाला है, कुँवर नारायण सच कहने वालों को भी दहाड़ने की सलाह देते हैं, ताकि वे भी सुन सकें जो जरा ऊँचा सुनते हैं-

"डरो मत
अगर तुम सच कह रहे हो
तो तुम आफत नहीं
एक सच्ची ताकत हो।" [14]

कुँवर नारायण का विश्वास न तो सत्ताधारियों पर है और न ही पूँजीपतियों पर। वे उस आम आदमी की ओर नजर टिकाए हुए हैं जिसके भीतर अभी भी जरा सा ईमान बाकी है। कवि उस सच्चाई के बीज को पुष्पित-पल्लवित करने में जुटा हुआ है जिस पर सुंदर भविष्य का फल लगेगा। वे ही समाज की असली ताकत हैं जिनके पास सेनाएँ नहीं, भविष्य के लिए कुछ सपने और विपरीत परिस्थितियों में जोखिम उठाने का साहस है। कवि उस व्यक्ति का आदर्श प्रस्तुत करता है जो दूसरों पर शासन नहीं करना चाहता, बल्कि आपसी सद्भाव के साथ जीना चाहता है। प्यार और करुणा की दृष्टि से वह जीवन को नया अर्थ देना चाहता है-

"प्यार और करुणा से सोचें
तो जीने का अर्थ बदल जाता है।" [15]

प्यार और करुणा वे मूल्य हैं जिन पर मनुष्यता टिकी हुई है। ये मूल्य व्यक्ति को स्वयं और समाज के प्रति अधिक संवेदनशील बनाते हैं। यह यथार्थ से पलायन नहीं है, बल्कि जीवन को अधिक मानवीय बनाने का उपक्रम है। कवि की दृढ़ मान्यता है कि आक्रामकता का मनोविज्ञान हिंसक प्रवृत्तियों को उकसाता है। अति महत्वाकांक्षी और निष्ठुर शासक की प्रजा कभी सुखी नहीं हो सकती। कवि राजनीति को हिंसा और आतंक की जगह मानव मूल्यों से संचालित होते देखना चाहता है-

"सदाचार और सद्विचारों की
एक महिमा होती है
जिससे उत्प्रेरित मानव मूल्यों से भी
अनुशासित हो सकता है
एक राज्य और समाज।" [16]

कुँवर नारायण सदियों से चली आ रही हिंसा, घृणा और द्वेष का समाधान एक हार्दिक क्षमायाचना में देखते हैं। भारतीय मनीषियों ने प्रायश्चित को एक मूल्य के रूप में स्थापित किया था। मनुष्य मिट्टी का पुतला है, उससे भूल होना स्वाभाविक है। कवि के अनुसार कोई भूल ऐसी नहीं जिसका प्रायश्चित न किया जा सके और कोई अपराधी ऐसा नहीं जिसे क्षमा न किया जा सके-

"एक सच्चा पश्चातापख्रएक प्रायश्चित
एक हार्दिक क्षमायाचना से भी
परिशुद्ध की जा सकती है
भूलचूक की पिछली जमीन," [17]

अपनी भूल स्वीकारना और क्षमा माँगना हीनता का नहीं, महानता का द्योतक है। जब व्यक्ति के मन से परायापन मिट जाता है तब उसके भीतर समूची सृष्टि के प्रति कल्याण का भाव जागृत होता है। कवि को उन्हीं से उम्मीद है जो स्वार्थ के केन्द्र से संचालित नहीं होते, जो सबके हित में अपना हित देखते हैं-

"कुछ उम्मीद है तो उन्हीं से
जो छीनते नहीं, बाँटते हैं
जिनमें सब का हित हो,
दिखाते हैं एक साधु मार्ग
भयानक बीहड़ों और युद्ध-क्षेत्रों से
बच कर निकलता हुआ।" [18]

युद्ध-क्षेत्र में भी अहिंसा की उम्मीद कुँवर नारायण को अन्य कवियों से विशिष्ट बनाती है। यह उम्मीद ही उन्हें अदम्य जिजीविषा के साथ निरंतर कर्मरत रहने की प्रेरणा देती है। इसी विश्वास के दम पर उनकी कविता भयानक बीहड़ों में फूल खिलाने को तत्पर है। कुँवर जी के शब्दों में, "मेरी समझ में कविता का खास काम आज भी, हमेशा की तरह, हमारे अंदर उन सद्वृत्तियों और मानवीय भावनाओं को जगाए रखना है जो आदमी और आदमी के बीच मधुर संबंधों का आधार बन सकें। यह आधार केवल वस्तुगत नहीं हो सकता। आपसी संबंधों को किसी न किसी रूप में ऐसी नैतिक, न्यायिक और मार्मिक अनुभूतियों और अनुभवों से जोड़ते रहना होगा जिसके केन्द्र में सबका हित हो - केवल कुछ का नहीं।"[19] मनुष्यता पर अटूट आस्था रखने वाला कवि लोगों को यह विश्वास दिलाना चाहता है कि दुनिया में कभी भी ईमान के खाते बंद नहीं होंगे-

"विश्वास बनाये रखना
कभी बंद नहीं होंगे दुनिया में
ईमान के खाते।" [20]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कुँवर नारायण की कविता मानवीय मूल्यों को अपने भीतर समेटे हुए है। उनकी कविता न तो किसी वाद के पक्ष में खड़ी होती है और न ही किसी विचारधारा का विरोध करती है। वह न तो रीति के नाम पर प्राचीन मान्यताओं का समर्थन करती है और न ही आधुनिकता के नाम पर शाश्वत मूल्यों को अस्वीकार करती है। वह न तो कोई नया सिद्धांत प्रतिपादित करती है और न ही किसी पंथ या परम्परा की अनुगामिनी है। कुँवर नारायण की कविता समस्त सीमाओं और रूढ़ियों को तोड़ कर विश्व के प्रत्येक मानव को मानवता के व्यापक धरातल से जोड़ती है। कुँवर नारायण न तो अतिवैयक्तिक हैं और न ही तथाकथित समाजवादी। वे व्यक्ति और समाज दोनों का महत्व स्वीकारते हुए उनमें समन्वय स्थापित करते हैं। उनके लिए इस समन्वय का आधार वे मूल्य हैं जो मानव को अधिक मनुष्यतर बनाते हैं। गिरिधर राठी कहते हैं- "अगर कुँवर नारायण की कविता का घोषणा-पत्र एक पंक्ति में लिखना हो तो कहा जा सकता है कि उनकी 'कविता अमानवीयकरण के विरुद्ध युद्ध है।'" कुँवर नारायण नितांत मानवीय मूल्यों के कवि हैं।

संदर्भ-ग्रंथ :

1. गुप्त, जगदीश. नई कविता : स्वरूप और समस्याएँ. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 1969. पृ. 14.
2. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, पृ. 14.
3. प्रसाद, कमला. आधुनिक हिन्दी कविता. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2017. पृ. 301.
4. भारद्वाज, विनोद (सं.). तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010. पृ. 27.
5. नारायण, कुँवर. कोई दूसरा नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1993, चौथी आवृत्ती 2011. पृ. 90.
6. निश्चल, ओम (सं.). अन्वय. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2018. पृ. 166.
7. नारायण, कुँवर. कोई दूसरा नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1993, चौथी आवृत्ती 2011. पृ. 160.
8. वही. पृ. 9.
9. वर्मा, लक्ष्मीकांत. नई कविता के प्रतिमान. भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद. पृ. 157.
10. नारायण, कुँवर. चक्रव्यूह. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1995, पहली आवृत्ती 2011. पृ. 128.
11. निश्चल, ओम (सं.). अन्विति. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2018. पृ. 411.
12. नारायण, कुँवर. इन दिनों. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002. पृ. 115.
13. नारायण, कुँवर. अपने सामने. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, चौथा संस्करण 1989, पहली आवृत्ती 2003. पृ. 12.
14. नारायण, कुँवर. हाशिए का गवाह. मेधा बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009. पृ. 39.
15. नारायण, कुँवर. कुमारजीव. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2015. पृ. 135.
16. वही. पृ. 172.
17. नारायण, कुँवर. वाजश्रवा के बहाने. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2010. पृ. 91.
18. नारायण, कुँवर. कुमारजीव. भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2015. पृ. 102.
19. भारद्वाज, विनोद (सं.). मेरे साक्षात्कार. किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2010. पृ. 45.
20. नारायण, कुँवर. कोई दूसरा नहीं. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1993, चौथी आवृत्ती 2011. पृ. 159.
21. मिश्र, यतीन्द्र; (सं.). कुँवर नारायण: उपस्थिति. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2010. पृ. 147.

कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका (छत्तीसगढ़ राज्य के गरियाबंद जिले के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ० मनीषा महापात्र

शोध निर्देशिका, प्राध्यापक (समाजशास्त्र) शास० दू० ब० महिला स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय, कालीबाड़ी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

वेणु कुमार साहू

शोधार्थी, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नातकोत्तर (स्वशासी), महाविद्यालय, कालीबाड़ी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

सारांश: कमार जनजाति भारत सरकार द्वारा चिन्हित छत्तीसगढ़ राज्य की विशेष रूप में पिछड़ी हुई जनजातियों में से एक प्रमुख जनजाति है। कमार जनजाति का निवास मुख्य रूप से छग राज्य के गरियाबंद,धमतरी, महासमुंद, एंव कांकेर जिले में है। यह जनजाति प्राचीन काल से ही प्रकृति के साथ धनिष्ठ एवं आत्मीय संबंध बनाए हुए है। यह अध्ययन कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका विषय पर आधारित है द्य इस अध्ययन हेतु गरियाबंद जिले के 2 कमार बाहुल्य ग्राम का चयन किया गया है। इस अध्ययन में 30 उत्तरदाताओं के माध्यम से कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका को जानने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष से यह ज्ञात होता है कि कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका है। इस जनजाति का पर्यावरण के साथ संबंध सह-अस्तित्व,सरंक्षण एवं पारिस्थितिक संतुलन पर आधारित है जो कि पर्यावरण संरक्षण का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कीवर्ड: कमार एजनजाति एपर्यावरण संरक्षण

प्रस्तावना: कमार जनजाति भारत सरकार द्वारा चिन्हित विशेष रूप से पिछड़ी हुई जनजातियों में से एक प्रमुख जनजाति है। जनजाति एक ऐसा मानव समूह है, जिनका निवास प्राय: घने जंगलो, ऊँचे पर्वतों, मरुस्थलों एव पहाड़ी क्षेत्रों में होता है। 'गिलिन एवं गिलिन' के अनुसार "स्थानीय आदम समूह के किभी भी संग्रह को जो कि सामान्य क्षेत्र में रहता हो, सामान्य भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का अनुसरण करता हो उसे जनजाति कहते है।" कमार जनजाति का निवास मुख्य रूप से छग राज्य के गरियाबंद, धमतरी, महासमुद्र एक कांकेर जिले में है। यह जनजाति निवास क्षेत्र के आधार पर दो समूहों बुन्दरजीवा और पहाड़िया में विभक्त है। कमार अननाति अपनी उत्पति लोक मान्यता के अनुसार गरियाबंद जिले के मैनपुर विकासखंड के 'देवडोंगर' ग्राम से मानते है जहां इनके प्रमुख देवता 'वामनदेव' स्थापित है। यह एक पितृवंशीय समुदाय है। इनके प्रमुख गोत्र नेताम, कुंजाम, मरकाम, मरई, सोढ़ी, जगत, छैदेया, नाग इत्यादि है। कमार जनघ्जाति की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार बांस हस्तशिल्प है। इसके अतिरिक्त वनोपज संकलन, आखेट, पशुपालन, एव कृषि कार्य भी आजीविका का साधन है। कमार जनजाति छग की सर्वाधिक गोदना गुदवाने वाली जनजाति मानी जाती है। कमार जनजाति के लोग परस्पर संचार हेतु श्कमारीश बोली का प्रयोग करते है।

कमार जनजाति का पर्यावरण के साथ अत्यंत घनिष्ठ संबंध है। पर्यावरण दो शब्दो से मिलकर बना है - 'परि' और 'आवरण'। 'परि' का अर्थ है चारों ओर, 'आवरण' का अर्थ है घिरा हुआ। इसप्रकार पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है - वह आवरण जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। 'हर्सकोविट्ज' के अनुसार "जो तथ्य मानव के जीवन और विकास को प्रभावित करते है उन सम्पूर्ण तथ्यों का योग पर्यावरण कहलाता है।" इस प्रकार पर्यावरण से आशय उस समस्त प्राकृतिक एवं मानवीय परिवेश है से है, जो जीवों के जीवन, विकास और अस्तित्व को प्रभावित करता है। इनमें वे सभी तत्व शामिल है, जिनके साथ मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति तथा अन्य जीव प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से जुड़े रहते है।

शोध अध्ययन की समीक्षा:

दुबे, श्यामाचरण (1951) का अध्ययन छत्तीसगढ़ की कमार जनजाति पर आधारित एक प्रामाणिक नृविज्ञानात्मक शोध है। इसमें कमारों की सामाजिक-आर्थिक संरचना, धार्मिक विश्वास, सांस्कृतिक परंपराएँ और जीवन-शैली का वर्णन है। यह दर्शाता है कि उनका जीवन प्रकृति पर आधारित है और आजीविका शिकार, पशुपालन एवं वनोपज पर निर्भर रही है। अध्ययन आधुनिकता, प्रशासन, वन कानूनों और बाहरी हस्तक्षेप के प्रभावों को रेखांकित करता है, जिनसे कमार जनजाति के पारंपरिक जीवन, पहचान, संस्कृति और आजीविका में परिवर्तन व चुनौतियाँ उत्पन्न हुई है।

शर्मा, विनोद (1993) ने कमार जनजाति का सामाजिक-मानवशास्त्रीय अध्ययन गरियाबंद जिले के 150 परिवारों पर किया। अध्ययन का उद्देश्य कमार जनजाति में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना था। निष्कर्षत: शिक्षा स्तर में वृद्धि पाई गई, अधिकांश परिवार मजदूरी पर निर्भर हैं और पूर्णत: आत्मनिर्भर नहीं हैं। कर्ज लेने की प्रवृत्ति अधिक होने से साहूकारों द्वारा शोषण का सामना करना पड़ता है। राजनीतिक जागरूकता भी कम है और मतदान परंपरागत मान्यताओं पर आधारित है। कुल मिलाकर, कमार जनजाति आज भी सामाजिक न्याय और आत्मनिर्भरता के लिए संघर्षरत है।

ध्रुव, तोषणी (2018) के अध्ययन में छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में कमार जनजाति के विकास में कमार विकास प्रकोष्ठ की भूमिका का विश्लेषण किया गया। 300 उत्तरदाताओं पर आधारित इस अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि प्रकोष्ठ की स्थापना के बाद कमार जनजाति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, जीवन स्तर, जागरूकता और शिक्षा में सुधार हुआ। विकास योजनाओं का लाभ ग्राम पंचायत स्तर तक पहुँचा, जिससे जनजाति सशक्त हुई। निष्कर्षत: कमार विकास प्रकोष्ठ ने कमार जनजाति के समग्र उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अध्ययन का उद्देश्य:

1. कमार जनजाति का पर्यावरण के साथ संबध का अध्ययन।
2. कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका का अध्ययन।

शोध प्रविधि एवं सामग्री संकलन :- प्रस्तुत अध्ययन कमार जनजाति की पर्यावरण संरक्षण में भूमिका विषय पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु 2 कमार ग्राम आमझर तथा बरबहरा का चयन किया गया है। दोनों कमार जनजाति बाहुल्य ग्राम है तथा गरियाबंद विकासखंड के अन्तर्गत आते है। जिनमें से 30 उत्तरदाताओ का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के माध्यम से किया गया है। इस अध्ययन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक आकड़ो का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों के संकलन हेतु अवलोकन एवं साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत के रूप पुस्तकें, संदर्भग्रंथ, पत्र-पत्रिकाएँ, शैक्षणिक जर्नल, एवं सरकारी रिपोर्ट का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक शोध प्ररचना पर आधारित है, जिसमे कमार जनजाति का पर्यावरण के साथ संबध एवं पर्यावरण संरक्षण में भूमिका का गहन विश्लेषण किया गया है।

विश्लेषण :- कमार जनजाति का जीवन प्रकृति के साथ गहरे संबंध पर आधारित है। उनकी पारंपरिक जीवन-शैली, धार्मिक मान्यताएँ और सामाजिक नियम पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसे निम्नलिखित बिंदुओं में विस्तार से समझा जा सकता है-

1. जंगलों का संरक्षण - कमार जनजाति जंगल को अपने जीवन का आधार मानती है। वे जंगलों की अंधाधुंध कटाई नहीं करते और आवश्यकता के अनुसार ही लकड़ी तथा अन्य संसाधनों का उपयोग करते हैं। इससे वन क्षेत्र और जैव विविधता सुरक्षित रहती है।
2. टोटमवाद के माध्यम से संरक्षण - कमार जनजाति में टोटमवाद की परंपरा पाई जाती है। इसमें किसी विशेष पशु, पक्षी या वृक्ष को कुल-देवता माना जाता है। उस टोटम को नुकसान पहुँचाना वर्जित होता है, जिससे कई जीव-जंतु और पौधों की प्रजातियाँ सुरक्षित रहती हैं।
3. प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग - कमार जनजाति प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सीमित मात्रा में करती है। वे केवल अपनी आवश्यकता के अनुसार ही जंगल से लकड़ी, फल, कंद-मूल एवं अन्य वनोपज लेते है द्यजिससे पर्यावरण का संतुलन बना रहे द्य
4. लघु वनोपज का सरंक्षण - कमर जनजाति महुआ, तेंदूपत्ता, जंगली फल, शहद आदि लघु वनोपज का संग्रह करती है, लेकिन वे पेड़ों को नुकसान पहुँचाए बिना इन्हें प्राप्त करते हैं। इससे वन संसाधनों का संरक्षण होता है।
5. औषधीय पौधों का ज्ञान - कमार जनजाति के पास वन में पाए जाने वाले औषधीय पौधों का पारंपरिक ज्ञान होता है। वे इन पौधों का उपयोग दवाइयों के रूप में करते हैं और उन्हें नष्ट होने से बचाते हैं।
6. प्रकृति पूजा की परंपरा - कमार जनजाति में पेड़-पौधों, नदियों, पहाड़ों और अन्य प्राकृतिक तत्वों की पूजा की जाती है। धार्मिक आस्था के कारण वे इन प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करते हैं।
7. पर्यावरण अनुकूल आवास - कमार जनजाति के घर मिट्टी, लकड़ी और घास-फूस से बनाए जाते हैं। यह पर्यावरण के अनुकूल होते हैं और प्राकृतिक संसाधनों का सीमित उपयोग करते हैं।
8. पारंपरिक कृषि पद्धति - कमार जनजाति पारंपरिक खेती करती है जिसमें रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का कम उपयोग होता है। इससे भूमि की उर्वरता और पर्यावरण सुरक्षित रहता है।
9. जल स्रोतों का संरक्षण - कमार जनजाति नदियों, तालाबों और झरनों को पवित्र मानती है। वे इन जल स्रोतों को प्रदूषित नहीं करते और उनके आसपास स्वच्छता बनाए रखते हैं।
10. जैव विविधता का संरक्षण - कमार जनजाति जंगल में रहने वाले विभिन्न पशु-पक्षियों और पौधों को प्रकृति का हिस्सा मानती है। इसलिए वे अनावश्यक शिकार या वन विनाश से बचते हैं, जिससे जैव विविधता सुरक्षित रहती है।

निष्कर्ष - निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि कमार जनजाति का जीवन प्रकृति और पर्यावरण के साथ गहरे संबंध पर आधारित है। उनकी पारंपरिक जीवन-शैली, धार्मिक आस्थाएँ, टोटमवाद तथा प्राकृतिक संसाधनों के संतुलित उपयोग की परंपरा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान देती है। वे जंगल, जल स्रोतों, पशु-पक्षियों और वनस्पतियों को प्रकृति का अभिन्न अंग मानते हैं और उनके संरक्षण का प्रयास करते हैं। इस प्रकार कमर जनजाति की संस्कृति और जीवन-पद्धति हमें यह संदेश देती है कि प्रकृति के साथ संतुलित और सामंजस्यपूर्ण संबंध बनाकर ही पर्यावरण का संरक्षण संभव है।

सन्दर्भ सूची:-

1. दुबे,एस.सी.(1951):'द कमार' द यूनिवर्सल पब्लिशर्स लिमिटेड लखनऊ।
2. शर्मा, विनोद कुमार (1993): कमार जनजाति का सामाजिक मानवशास्त्रीय अध्ययन, शोध प्रबंध पं. रविशकर शुक्ल विवि. रायपुर , पृ.20
3. ध्रुव, तोषणी (2018): कमार जनजाति के विकास में कमार विकास प्रकोष्ठ का योगदान, शोध प्रबंध, पं. रविषंकर वि.वि. रायपुर, 2018 पृ. 190-195
4. सिंह, के. एस. (1994). अनुसूचित जनजातियाँ, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. दास, एस. के. (2003). छत्तीसगढ़ की जनजातियाँ: संस्कृति और पारिस्थितिकी। कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
6. पांडेय, जी. (2010). टोटेमवाद और भारत की जनजातीय आस्थाएँ, जनजातीय अध्ययन पत्रिका, 15(2), पृ.45-58
7. राव, बी. एस. (1980). जनजातीय विश्वास और पारिस्थितिकी: सांस्कृतिक मानवविज्ञान का अध्ययन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
8. मेहता, आर. (2005). मध्य भारत की जनजातियाँ: पारिस्थितिकी और विश्वास प्रणाली, इंडियन एंथ्रोपोलॉजिस्ट, 33(1),पृ.23-39
9. अमरोहित, गीतेश कुमार (2023): छग की जनजातियाँ, सरस्वती बुक्स प्रकाशन भिलाई।
10. कमार विशेष पिछड़ी जनजाति का आधारभूत सर्वेक्षण प्रतिवेदन 2020, अटल नगर, नवा रायपुर, छग शासन।

भारतीय लोकतंत्र में सूचना के अधिकार का प्रभावः एक अवलोकन

डॉ० मो० शर्फुद्दीन

एम. ए. (राजनीति विज्ञान), पीएच-डी., जयप्रकाश यूनिवर्सिटी, छपरा (सारण), बिहार

शोध आलेख का सारतत्वः

लोकतंत्र और 'सूचना का अधिकार' एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं, क्योंकि किसी भी सशक्त लोकतंत्र की आधारशिला पारदर्शिता, जवाबदेही और नागरिक भागीदारी पर टिकी होती है। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली में जनता को यह अधिकार होना चाहिए कि वे सरकारी नीतियों, योजनाओं और निर्णयों के बारे में सूचित रहें, जिससे वे अपने प्रतिनिधियों से जवाबदेही सुनिश्चित कर सकें। सूचना का अधिकार एक ऐसा कानूनी साधन है, जो नागरिकों को प्रशासनिक प्रक्रियाओं में भाग लेने, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण रखने और नीति-निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने में सक्षम बनाता है। भारत में 2005 में लागू सूचना का अधिकार अधिनियम लोकतांत्रिक मूल्यों को सुदृढ़ करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था। इस कानून के माध्यम से सरकारी कार्यों में पारदर्शिता बढ़ी और आम नागरिकों को निर्णय-प्रक्रिया को प्रभावित करने का अवसर मिला। हालांकि, इसके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए प्रशासनिक बाधाओं, भ्रष्टाचार और सूचना के दुरुपयोग जैसी चुनौतियों का समाधान आवश्यक है। प्रस्तुत शोध आलेख में लोकतंत्र में सूचना के अधिकार के प्रभाव का विवेचन अपेक्षित है।

प्रमुख शब्दावली: लोकतंत्र,समानता, स्वतंत्रता, न्याय, बंधुत्व, लोक कल्याणकारी राज्य, समता मूलक समाज, कानून का शासन, प्राकृतिक न्याय, सुशासन आदि।

प्रस्तावनाः

सूचना का अधिकार (RTI- Right to Information) एक ऐसा अधिकार है, जो नागरिकों को सरकार और सार्वजनिक संस्थानों के कार्यों, नीतियों और निर्णयों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है। इसका उद्देश्य पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित करना है. ताकि नागरिक बेहतर तरीके से अपने अधिकारों का उपयोग कर सकें और सरकार के कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभा सके। सूचना के अधिकार की अवधारणा का इतिहास प्राचीन काल से ही अस्तित्व में है। प्राचीन लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में जनता को निर्णयों और नीतियों में भागीदारी का अधिकार था। आधुनिक युग में इस विचार का विकास 18वीं और 19वीं शताब्दी में यूरोप और अमेरिका में लोकतांत्रिक क्रांतियों के दौरान हुआ सूचना के अधिकार की कानूनी शुरुआत स्वीडन में हुई, जहाँ 1766 में 'फ्रीडम ऑफ द प्रेस एक्ट पारित किया गया।[1] यह पहला ऐसा कानून था जिसने नागरिकों को सरकारी दस्तावेजों तक पहुंच प्रदान की। इसके बाद, अन्य देशों ने भी इस दिशा में कदम उठाए। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र और अन्य अन्तरर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रयासों के तहत, सूचना के अधिकार को मानव अधिकार के रूप में मान्यता दी गई। 1948 में घोषित मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुच्छेद-19 में सूचना और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया गया इसके बाद, 1966 में अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक और राजनीतिक अधिकार संधि (ICCPR) ने इस अधिकार को और मजबूत किया।[2]

सूचना के अधिकार की आवश्यकता विभिन्न कारणों से उत्पन्न हुई। पहला, यह लोकतांत्रिक समाज की नींव है। किसी भी लोकतंत्र में पारदर्शिता और उत्तरदायित्व सुनिश्चित करने के लिए यह आवश्यक है कि नागरिक सरकार के कार्यों और निर्णयों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें। दूसरा, यह भ्रष्टाचार को रोकने का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। जब सरकारी कार्य और नीतियों सार्वजनिक निगरानी के अधीन होती है,तो भ्रष्टाचार की संभावनाएँ कम हो जाती है। तीसरा, यह नागरिकों को सशक्त बनाता है और उन्हें सरकारी निर्णयों में भागीदारी का अवसर प्रदान करता है। इसके अलावा, सूचना का अधिकार न्यायिक प्रक्रिया में भी सहायता करता है। यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में जानकारी हो, जिससे वे न्याय प्राप्त करने के लिए प्रभावी कदम उठा सके। साथ ही, यह सामाजिक और आर्थिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है. क्योंकि सही जानकारी के अभाव में नागरिक सरकारी योजनाओं और नीतियों का लाभ नहीं उता पाते। सूचना के अधिकार का महत्व आज के समय में और भी बढ़ गया है, जब दुनिया भर में सूचना प्रौद्योगिकी और डिजिटल माध्यमों का व्यापक प्रसार हो चुका है। सही और सटीक जानकारी के बिना, नागरिक न केवल गलतफहमी और भ्रम का शिकार हो सकते हैं, बल्कि वे अपनी क्षमताओं का पूरा उपयोग भी नहीं कर पाते। यह अधिकार उन्हें सशक्त बनाता है और उन्हें सरकार तथा अन्य सार्वजनिक संस्थानों से जवाबदेही सुनिश्चित करने का साधन प्रदान करता है। वर्तमान में, दुनिया के अधिकांश देशों में सूचना के अधिकार के कानून लागू है। भारत में यह अधिकार 2005 में 'सूचना का अधिकार अधिनियम' (RTI Act) के तहत लागू किया गया।[3] इस अधिनियम ने भारतीय नागरिकों को किसी भी सरकारी कार्यालय से सूचना प्राप्त करने का अधिकार दिया यह अधिनियम एक क्रांतिकारी कदम था। जिसने प्रशासनिक पारदर्शिता और नागरिक सशक्तिकरण को

नई दिशा दी। सूचना के अधिकार के कार्यान्वयन में कई चुनौतियाँ भी है। कई बार सरकारी विभागों में जानकारी छिपाने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसके अलावा, जटिल प्रक्रिया, तकनीकी बाधाएँ और लोगों में जागरूकता की कमी भी इस अधिकार के प्रभावी उपयोग में बाधा बनती है। इन चुनौतियों के बावजूद, सूचना का अधिकार एक ऐसा उपकरण है. जो न केवल नागरिकों को सशक्त करता है, बल्कि सरकार और प्रशासन को भी पारदर्शी और उत्तरदायी बनाता है। यह लोकतंत्र को मजबूत करता है और नागरिकों तथा सरकार के बीच विश्वास का वातावरण तैयार करता है। विश्व में सूचना के अधिकार की स्थापना ने यह साबित कर दिया है कि पारदर्शिता और उत्तरदायित्व किसी भी समाज की प्रगति और विकास के लिए अनिवार्य है। यह अधिकार न केवल सरकार और जनता के बीच एक मजबूत संवाद स्थापित करता है, बल्कि एक ऐसा माहौल भी तैयार करता है. जहाँ सच्चाई, न्याय और समानता को प्राथमिकता दी जाती है। सूचना का अधिकार केवल एक कानूनी साधन नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त विचारधारा है। जो प्रत्येक नागरिक को अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक बनाती है। यह समाज में बदलाव और सुधार का माध्यम है, जो एक उज्जवल और समावेशी भविष्य की दिशा में हमें अग्रसर करता है।

भारत में सूचना का अधिकार (RTI) एक महत्वपूर्ण कानूनी और सामाजिक परिवर्तन का प्रतीक है, जिसने नागरिकों को सरकारी कार्यों और नीतियों में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का साधन प्रदान किया है। यह अधिकार भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बनाने का एक महत्वपूर्ण स्तम्भ है, जिसके माध्यम से नागरिक न केवल अपने अधिकारों को समझ सकते हैं, बल्कि सरकार के कार्यों में सक्रिय भूमिका भी निभा सकते है। इसका इतिहास, आवश्यकता और महत्व भारतीय प्रशासनिक और सामाजिक संरचना में गहराई से जुड़े हुए है। भारत में सूचना के अधिकार का इतिहास 1970 के दशक से जुड़ा हुआ है। इस अधिकार की माँग सबसे पहले राजस्थान के मजदूर किसान शक्ति सगठन (MKSS) ने उठाई थी।[4] इस संगठन ने सरकारी परियोजनाओं में भ्रष्टाचार और गड़बड़ियों को उजागर करने के लिए सरकारी दस्तावेजों तक पहुँच की माँग की। इसके बाद, 1990 के दशक में यह आदोलन व्यापक रूप से फैला और पूरे देश में पारदर्शिता की आवश्यकता पर जोर दिया गया सूचना के अधिकार के लिए कानूनी रूप से पहली पहल 2002 में की गई, जब श्फ्रीडम ऑफ इंफॉर्मेशन एक्ट पारित किया गया हालाँकि, यह कानून प्रभावी ढंग से लागू नहीं हो सका इसके बाद, 2005 में सूचना का अधिकार अधिनियम (RTI Act) को पारित किया गया, जिसने प्रत्येक भारतीय नागरिक को सरकारी विभागों से सूचना प्राप्त करने का कानूनी अधिकार दिया यह अधिनियम 12 अक्टूबर, 2005 से प्रभावी हुआ और तब से यह भारत में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का एक मजबूत माध्यम बन गया।[5]

भारत में सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (RTI Act) एक महत्वपूर्ण कानून है, जिसने नागरिकों को सरकार और प्रशासन के कार्यों में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिशिका करने का प्रभावी साधन प्रदान किया इस अधिनियम के तहत हर भारतीय नागरिक को यह अधिकार मिला कि वह कंन्द्र और राज्य सरकारों के तहत आने वाले सार्वजनिक प्राधिकरणों से किसी भी प्रकार की सूचना प्राप्त कर सके। यह अधिनियम लोकतंत्र को मजबूत करने और नागरिकों को सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके प्रमुख प्रावधान और समय-समय पर हुए संशोधन इसे और अधिक प्रासंगिक बनाते है।

सूचना के अधिकार अधिनियम, 2005 के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित है :[6]

1. सूचना माँगने का अधिकार नागरिक किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण से सूचना माँग सकते है। सूबना का अर्थ है किसी भी रूप में रिकॉर्ड, दस्तावेज, ई-मेल परामर्श प्रेस विज्ञप्ति आदेश, रिपोर्ट आदि।
2. समय सीमा सूचना प्राप्त करने के लिए एक निश्चित समय सीमा निर्धारित की गई है। सामान्य मामलों में सूचना 30 दिनों के भीतर प्रदान की जानी चाहिए। यदि मामला जीवन या स्वतंत्रता से जुड़ा हो, तो यह अवधि 48 घंटे तक सीमित है।
3. सूचना का अपवाद: कुछ प्रकार की जानकारी जैसे राष्ट्रीय सुरक्षा गोपनीयता, व्यक्तिगत जानकारी, विदेश संबंध और न्यायालय में विचाराधीन मामले इस अधिनियम के दायरे से बाहर रखे गए है।
4. सूचना आयोग का गठन: अधिनियम के तहत केंद्रीय सूचना आयोग (CIC) और राज्य सूचना आयोग (SIC) का गठन किया गया ये संस्थाएँ सूचना देने से जुड़े विवादों को सुलझाने और अपील सुनने का कार्य करती है।
5. जुर्माना और दंड: यदि कोई सूचना अधिकारी जानकारी देने में विफल रहता है या गलत सूचना देता है, तो उस पर प्रति दिन 250 रुपये का जुर्माना लगाया जा सकता है, जो अधिकतम 25,000 रुपये तक हो सकता है।
6. फीस का निर्धारण: नागरिक मामूली शुल्क देकर सूचना प्राप्त कर सकते है। गरीबी रेखा से नीचे (BPL) के नागरिकों को शुल्क से छूट दी गई है।
7. प्रशिक्षण और जागरूकता अधिनियम के तहत सार्वजनिक प्राधिकरणों के लिए यह अनिवार्य है कि वे रिकॉर्ड को व्यवस्थित रखें और जनता को सूचना के अधिकार के प्रति जागरूक करें।

सूचना के अधिकार अधिनियम लागू होने के बाद से इसमें कई सुधार और संशोधन किए गए है। संशोधन अधिनियम, 2019 में केंद्रीय और राज्य सूवना आयुक्तों की नियुक्ति कार्यकाल. और वेतन-भत्तों से संबंधित प्रावधानों में बदलाव किया गया पहले सूचना आयुक्त का कार्यकाल 5 साल था, लेकिन अब इसे केन्द्र सरकार की विवेकाधीन बना दिया गया है। इसके अलावा, उनकी सैलरी और अन्य शर्तों को भी केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में रखा गया इस संशोधन की व्यापक आलोचना हुई, क्योंकि इसे सूचना आयोग की स्वायत्तता को कमजोर करने वाला माना गया समय के साथ सूचना के अधिकार को अधिक प्रभावी बनाने के लिए सूचना के डिजिटल माध्यमों का उपयोग बढ़ा है। अब नागरिक ऑनलाइन पोर्टल के माध्यम से त्ज् आवेदन दाखिल कर सकते है। न्यायालयों ने समय-समय पर RTI अधिनियम की व्याख्या की है।[7] उदाहरण के लिए, उच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि राजनीतिक दल भी RTI के तहत सूचना देने के लिए बाध्य है, क्योंकि वे सार्वजनिक हित में कार्य करते है। हालाकि, इस पर विवाद जारी है। समय-समय पर यह देखा गया है कि कई मामलों में सूचना देने में देरी की जाती है या सूचना देने से मना कर दिया जाता है। इसे सुधारने के लिए राज्यों और केन्द्र स्तर पर ठोस कदम उठाए गए हैं। सूचना के अधिकार अधिनियम ने नागरिकों को सरकार के कार्यों में पारदर्शिता लाने और भ्रष्टाचार को उजागर करने का साधन दिया है। हालाँकि, इसमें हुए संशोधनों और क्रियान्वयन की प्रक्रिया को लेकर अभी भी कई चुनौतियाँ हैं। इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए नागरिकों और अधिकारियों को

जागरूक करना और एक सशक्त अपील प्रणाली विकसित करना आवश्यक है। यह अधिनियम न केवल प्रशासन में पारदर्शिता को बढ़ावा देता है, बल्कि भारतीय लोकतंत्र को अधिक उत्तरदायी और सशक्त बनाने की दिशा में भी एक महत्वपूर्ण कदम है।

भारत में सूचना के अधिकार की आवश्यकता कई सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक कारणों से उत्पन्न हुई।[8] सबसे पहले, यह अधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था का मूल आधार है।

लोकतंत्र में जनता सर्वोच्च होती है, और सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। यह उत्तरदायित्व तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब नागरिकों को यह पता हो कि सरकार उनके नाम पर क्या कर रही है और कैसे कर रही है। दूसरा, यह अधिकार भ्रष्टाचार को रोकने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ भ्रष्टाचार एक बड़ी समस्या है, वहाँ सूचना का अधिकार जनता को सरकारी योजनाओं और परियोजनाओं में पारदर्शिता लाने का अवसर प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, कई सरकारी योजनाओं में लाभार्थियों की सूची सार्वजनिक करने के बाद भ्रष्टाचार के कई मामले उजागर हुए। तीसरा, यह अधिकार नागरिकों को सशक्त बनाता है। जब नागरिकों को सरकारी नीतियों और योजनाओं की जानकारी होती है, तो वे इन योजनाओं का लाभ उठाने में सक्षम होते है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि सरकारी स्तर पर उसके क्षेत्र में क्या योजनाएँ चलाई जा रही हैं, तो वह अपने अधिकारों के प्रति अधिक सजग हो सकता है। इसके अलावा, सूचना का अधिकार न्याय प्राप्ति के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह अधिकार नागरिकों को यह समझने में मदद करता है कि उनके अधिकारों का हनन कहाँ और कैसे हो रहा है, और वे इसके खिलाफ क्या कदम उठा सकते है।

भारत में सूचना का अधिकार अधिनियम के कई महत्वपूर्ण प्रावधान है। इसके तहत, प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार है कि वह किसी भी सरकारी विभाग से सूचना मांग सके।[9] सूचना प्राप्त करने के लिए आवेदन का एक सरल प्रारूप बनाया गया है, जिसमें न्यूनतम शुल्क पर जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके तहत, सरकारी अधिकारियों के लिए यह अनिवार्य है कि वे 30 दिनों के भीतर सूचना प्रदान करें। यदि सूचना देने में देरी होती है, तो संबंधित अधिकारी पर जुर्माना लगाया जा सकता है। इस अधिनियम के तहत कई संस्थाएँ बनाई गई है. जैसे कि केंद्रीय सूचना आयोग और राज्य सूचना आयोग, जो नागरिकों की शिकायतों का निवारण करते है। यह सुनिश्चित करता है कि यदि किसी व्यक्ति को सूचना देने से मना किया जाता है, तो वह अपील कर सके।

सूचना के अधिकार का भारत में महत्व कई स्तरों पर महसूस किया गया है। सबसे पहले, इसने सरकार और नागरिकों के बीच पारदर्शिता को बढ़ावा दिया है। सरकारी विभागों में कामकाज को पारदर्शी बनाने और नागरिकों को सूचित करने की दिशा में यह अधिनियम एक क्रांति साबित हुआ है। इसने सामाजिक जागरूकता और नागरिक सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अब सरकारी योजनाओं और परियोजनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि उन्हें उनका लाभ मिल रहा है। उदाहरण के लिए, मनरेगा योजना के तहत मजदूरों को उनके अधिकार सुनिश्चित करने में सूचना के अधिकार ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस अधिनियम ने प्रशासनिक जवाबदेही को बढ़ाया है।[10] सरकारी अधिकारियों और विभागों को अब यह समझ में आ गया है कि उनकी गतिविधियों पर नजर रखी जा रही है। इससे कामकाज में सुधार और समय पर कार्य निष्पादन की प्रवृत्ति बढ़ी है। सूचना के अधिकार अधिनियम के कार्यान्वयन में कई चुनौतियों भी है। कई बार सरकारी अधिकारी जानकारी प्रदान करने में देरी करते हैं या जानबूझकर गलत जानकारी देते है। इसके अलावा, ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में लोगों में जागरूकता की कमी भी एक बड़ी समस्या है। कई लोग यह नहीं जानते कि वे इस अधिकार का उपयोग कैसे कर सकते है। कुछ मामलों में, सरकारी विभाग सुरक्षा और गोपनीयता का हवाला देकर सूचना देने से इनकार करते है। हालाकि, यह अधिनियम कुछ विशेष परिस्थितियों में गोपनीयता को मान्यता देता है, लेकिन इसका दुरुपयोग भी किया जाता है। इन चुनौतियों के बावजूद, सूचना का अधिकार भारतीय लोकतंत्र के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। यह न केवल नागरिकों को सशक्त बनाता है, बल्कि एक पारदर्शी और उत्तरदायी प्रशासन की नींव भी रखता है। यह अधिकार समाज में सामाजिक न्याय, समानता, और कानून के शासन को बढ़ावा देता है। सूचना का अधिकार केवल एक कानूनी प्रावधान नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक और नैतिक आन्दोलन है, जो प्रत्येक नागरिक को यह समझने और अपनाने की प्रेरणा देता है कि वह अपनी सरकार के प्रति उत्तरदायित्व सुनिश्चित कर सकता है। यह अधिकार भारतीय लोकतंत्र की शक्ति को और मजबूत करता है और एक समावेशी और पारदर्शी समाज के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत में सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (RTI) ने भारतीय लोकतंत्र में गहरा और सकारात्मक प्रभाव डाला है। यह अधिनियम नागरिकों को सरकार और सार्वजनिक प्राधिकरणों के कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का साधन प्रदान करता है। यह लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को मजबूत करने और शासन में नागरिकों की भागीदारी बढ़ाने में सहायक रहा है। सूचना का अधिकार भारतीय लोकतंत्र में पारदर्शिता लाने का सबसे प्रभावी उपकरण साबित हुआ है। पहले सरकारी योजनाओं और नीतियों से संबंधित जानकारी आम नागरिकों की पहुंच से बाहर रहती थी। इससे भ्रष्टाचार और प्रशासनिक गड़बड़ियों की संभावनाएँ बढ़ जाती थी। त्ज् ने इस स्थिति को बदल दिया है। अब नागरिक सरकारी दस्तावेजों, रिपोटों योजनाओं और निर्णयों की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते है। इससे शासन में पारदर्शिता आई है और प्रशासन के कामकाज पर जनता की निगरानी बढ़ी है। इस अधिनियम का सबसे बड़ा प्रभाव भ्रष्टाचार को उजागर करने में देखा गया है। मनरेगा, सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS), और शौचालय निर्माण जैसी योजनाओं में भ्रष्टाचार के कई मामले सूचना के अधिकार के माध्यम से सामने आए है। उदाहरण के तौर पर कई ऐसे मामले सामने आए जहाँ लाभार्थियों के नाम सूची में दर्ज थे लेकिन उन्हें योजनाओं का लाभ नहीं मिलीं त्ज् ने इन अनियमितताओं को उजागर करने में मदद की और सुधार के लिए दबाव बनाया सूचना के अधिकार ने नागरिकों को उनके अधिकारों और सरकारी योजनाओं के प्रति अधिक जागरूक बनाया है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लोग अब जानने लगे हैं कि उनके क्षेत्र में कौन-कौन सी सरकारी योजनाएँ लागू हो रही हैं और उनका लाभ उन्हें मिल रहा है या नहीं। इससे नागरिक न केवल अपने अधिकारों को पहचानने लगे हैं, बल्कि सरकार के कामकाज में अपनी भागीदारी भी बढ़ाने लगे हैं। सूचना का अधिकार प्रशासनिक जवाबदेही सुनिश्चित करने का एक सशक्त माध्यम है। सरकारी अधिकारी अब अपने कार्यों और निर्णयों के लिए जिम्मेदार ठहराए जाने लगे है। इसने सरकारी प्रक्रियाओं में पारदर्शिता लाने के साथ-साथ प्रशासन की कार्यक्षमता को भी बढ़ावा दिया है।[11] सूचना के अधिकार के प्रभाव को पूरी तरह से महसूस करने के लिए इसे लागू करने में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई है। कई बार सरकारी विभाग जानबूझकर सूचना देने में देरी करते हैं या अपूर्ण जानकारी प्रदान करते है। इसके अलावा, कुछ मामलों में सूचना माँगने

वालों को धमकाया गया है या नुकसान पहुँचाने की कोशिश की गई है। इसके बावजूद, RII ने लोकतंत्र को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाई है। यह न केवल नागरिकों को सशक्त बनाता है, बल्कि सरकार को भी अधिक उत्तरदायी और पारदर्शी बनाता है।[12] यह भारतीय लोकतंत्र में नागरिक और सरकार के बीच विश्वास बढ़ाने का काम करता है। सूचना का अधिकार अधिनियम ने भारतीय लोकतंत्र को गहराई से प्रभावित किया है। यह न केवल शासन प्रणाली को पारदर्शी और उत्तरदायी बनाता है, बल्कि नागरिकों को उनकी शक्ति और अधिकारों का एहसास कराता है। आने वाले समय में, यदि इसे अधिक प्रभावी तरीके से लागू किया जाए, तो यह भारतीय लोकतंत्र को और मजबूत और समावेशी बना सकता है।

भारतीय लोकतंत्र में सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम, 2005 ने नागरिकों को शासन और प्रशासन में पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का सशक्त माध्यम प्रदान किया है। यह अधिनियम भारतीय लोकतंत्र की नींव को मजबूत करने और नागरिकों को सशक्त बनाने का एक प्रभावी उपकरण साबित हुआ है। 'भारतीय लोकतंत्र में सूचना के अधिकार का प्रभाव : विश्लेषणात्मक अध्ययन विषय पर शोध का औचित्य समझने के लिए इस अधिनियम के महत्व, इसके कार्यान्वयन की आवश्यकता और इसके समाज पर प्रभाव का विश्लेषण करना आवश्यक है। सूचना का अधिकार भारतीय लोकतंत्र में एक क्रांतिकारी कदम है, क्योंकि यह नागरिकों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाता है। यह अधिनियम प्रशासनिक पारदर्शिता लाने के साथ-साथ नागरिकों और सरकार के बीच विश्वास कायम करने का कार्य करता है। लोकतंत्र की सफलता का आधार जनता की भागीदारी है। और RTI नागरिकों को सरकारी कार्यों और नीतियों में शामिल होने का अवसर प्रदान करता है। ऐसे में इस विषय पर अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि यह अधिनियम कैसे भारतीय लोकतंत्र को मजबूत और अधिक जवाबदेह बना रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ भ्रष्टाचार और प्रशासनिक गड़बड़ियों की शिकायतें आम है, वहीं RTI ने सरकार को पारदर्शिता के लिए मजबूर किया है। इसने नागरिकों को यह अधिकार दिया है कि वे सरकारी योजनाओं, परियोजनाओं और नीतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकें और उनके कार्यान्वयन की निगरानी कर सकें। ऐसे में इस विषय पर शोध यह स्पष्ट कर सकता है कि त्ज् कैसे भ्रष्टाचार को उजागर करने और सामाजिक न्याय को सुनिश्चित करने में योगदान दे रहा है। RTI का प्रभाव केवल प्रशासनिक कार्यों तक सीमित नहीं है। यह सामाजिक जागरूकता और नागरिक सशक्तिकरण को भी बढ़ावा देता है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में लोग अब सरकारी योजनाओं और उनके लाभ के बारे में अधिक जागरूक हो रहे है। इस अधिनियम ने समाज में हशिए पर खड़े लोगों को भी अपनी आवाज उठाने का अवसर प्रदान किया है। यह अध्ययन यह समझने में सहायक होगा कि सूचना के अधिकार ने समाज के विभिन्न वर्गों पर क्या प्रभाव डाला है और यह उन्हें किस हद तक सशक्त कर रहा है। सूचना के अधिकार के कार्यान्वयन में कई चुनौतियां भी हैं, जैसे सूचना मागने वालों को धमकी मिलना, जानकारी में देरी या अपूर्णता, और जागरूकता की कमी। इस शोध आलेख के अध्ययन का औचित्य यह भी है कि यह उन बाधाओं और चुनौतियों की पहचान करने में मदद करेगा, जो इस अधिनियम के प्रभाव को सीमित कर रही है और उनके समाधान के लिए प्रभावी नीतियों का सुझाव देगा। स्पष्टत: श्भारतीय लोकतंत्र में सूचना के अधिकार का प्रभाव का अध्ययन न केवल भारतीय लोकतंत्र की स्थिति को बेहतर ढंग से समझने में मदद कर सकता है तथा सूचना का अधिकार एक समावेशी और पारदर्शी समाज के निर्माण में योगदान दे सकता है।

संदर्भ सूची :

1 फ्रीडम ऑफ द प्रेस एक्ट (1766), फ्रीडम ऑफ द प्रेस एक्ट , स्वीडन, पृष्ठ 1-2
2 यूनाइटेड नेशन्स (1948), यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स, अनुच्छेद 19, पृष्ठ 12
3 भारत सरकार (2005), सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, विधि एवं न्याय मंत्रालय, नई दिल्ली, पृष्ठ 1-5
4 मजदूर किसान शक्ति संगठन (1996), जन सुनवाई एवं सूचना आंदोलन दस्तावेज, राजस्थान, पृष्ठ 10
5 भारत सरकार (2005), सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, राजपत्र अधिसूचना, नई दिल्ली, पृष्ठ 3
6 शर्मा, आर.के. (2012), सूचना का अधिकार: सिद्धांत और व्यवहार, दीप एंड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 45
7 सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया (2013), त्ज् एवं राजनीतिक दल मामला (ADR dsl), नई दिल्ली, पृष्ठ 8
8 गुप्ता, एस.पी. (2015), भारतीय लोकतंत्र और सूचना का अधिकार, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ 67
9 सिंह, महावीर (2010), सूचना का अधिकार और प्रशासनिक पारदर्शिता, अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 102
10 चंद्र, बिपिन (2009), भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 159
11 मिश्रा, के.के. (2018), सुशासन और सूचना का अधिकार, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, वाराणसी, पृष्ठ 88
12 वर्मा, वी.पी. (2016), भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ 210

सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन

निमेष कुमार सिंह

शोधार्थी, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़, (सम्बद्ध - वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

डॉ० निशात परवीन

शोध निर्देशिका, विभागाध्यक्ष/सेवानिवृत शिक्षा संकाय, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कालेज, आजमगढ़, (सम्बद्ध - वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर)

संक्षिप्त सारांश-'संयुक्त राष्ट्र संघ' ने भी शिक्षा के अधिकार को मानवाधिकार की मान्यता प्रदान की है। शिक्षा के अधिकार को मानवाधिकार के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के अनुच्छेद 26 में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय संविधान की धारा 14 में स्थान दिया गया है। प्रत्येक राष्ट्र की सरकार अपने प्रत्येक नागरिक को नि:शुल्क अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय विधि से सम्बद्ध है। भारत में भी अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों तथा देश के बच्चों के प्रति अपने दायित्व निर्वहन के प्रयास हेतु अनेक कार्यक्रम चलाये हैं तथा अधिनियम पारित किये गये हैं। इन सब में मील का पत्थर साबित होने वाला कानून है, ''शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009)''। नि:शुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की माँग सन् 1882 ई0 में दादा भाई नौरोजी ने 'भारतीय शिक्षा आयोग' के सामने रखी थी। सन् 1911 में प्रसिद्ध राजनैतिक नेता व शिक्षाविद् श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए अपना प्रसिद्ध 'गोखले बिल' प्रस्तुत किया। सन् 1918 में विट्ठलभाई पटेल के प्रयासों से एक कानून बनाकर मुम्बई म्यूनिसिपल क्षेत्र में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की गयी।

मुख्य शब्द:- शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, मध्यमान, मानक विचलन, मानक त्रुटि, गर्ि व ब्त् मूल्य इत्यादि।

प्रस्तावना:- शिक्षा का अधिकार अधिनियम की मूलभावना का बीजारोपण स्वतंत्र भारत के संविधान में ही कर दिया गया था। यह संविधान विधान सभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया गया और 26 जनवरी, 1950 को लागू किया गया। संविधान के भाग-4 ''राज्य के नीति के निर्देशक तत्त्व'' के अनुच्छेद-45 में बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध था, जिसके अनुसार ''राज्य इस संविधान के प्रारम्भ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बच्चों को 14 वर्ष की आयु पूरी करने तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा'', किन्तु संविधान के लागू होने के (61) वर्षों के पश्चात् भी इसे पूरा नहीं किया जा सका। संविधान संशोधन (86वाँ) अधिनियम-2002 द्वारा इस दिशा में कुछ प्रगति की गयी और संविधान के भाग-3 ''मूल अधिकार'' के अन्तर्गत अनुच्छेद-21 के पश्चात् 21 ''क'' और जोड़ दिया गया। इस संविधान संशोधन में विद्यमान अनुच्छेद-45 के विषय को 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के पूर्व बाल्यावस्था देखभाल व ''शिक्षा के उपबन्ध'' के रूप में करके अग्रांकित से प्रतिस्थापित कर दिया गया। ''राज्य पूर्व बाल्यावस्था के सभी बच्चों जब तक कि वे 6 वर्ष की आयु पूरी नहीं कर लेते तब तक उनकी देखभाल एवं शिक्षा देने का प्रयास करेगा।'' शिक्षा को अधिकार के रूप में स्वीकार करने के साथ ही संविधान के भाग-4क ''मूल कर्त्तव्य'' के अनुच्छेद-51 ''क'' में ग्यारहवें कर्त्तव्य के रूप में अग्रांकित को भी जोड़ा गया'' जो माता-पिता या अभिभावक हैं। 6 से 14 वर्ष के अपने बच्चे अथवा पाल्य जैसी भी स्थिति हो, को शिक्षा के अवसरों को प्रदान करेगा।'' इस प्रकार संविधान द्वारा बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करने का दायित्व शासन के साथ-साथ माता-पिता या अभिभावक का भी निर्धारित किया गया। संसद में 4 अगस्त 2009 को बच्चों को नि:शुल्क और अनिवार्य ''शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' पारित हो गया है। राष्ट्रपति का अनुमोदन भी इसे प्राप्त हो चुका और 27 अगस्त 2009 को इसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित कर दिया गया है।

अध्ययन का औचित्य:- बड़ौदा के महाराज सायजीराव गायकवाड़ ने सन् 1893 में प्रयोगात्मक रूप में अमरेली ताल्लुके में तथा बाद में सन् 1906 में अपनी सम्पूर्ण रियासत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की थी। यद्यपि गोपालकृष्ण गोखले द्वारा सन् 1910 में इम्पीरियल लेलिस्लेटिव काउसिल _Imperial Legislative Council¼ में प्रस्तुत अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा प्रस्ताव पारित नहीं हो सका। इस प्रस्ताव ने जनता का ध्यान अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की ओर आकर्षित किया। इस श्रृंखला में प्रथम सफल प्रयास प्रख्यात विधानवेत्ता व वक्तृत्वकला के आचार्य श्री विट्ठल भाई पटेल का रहा। उनके सद्प्रयासों से सन् 1918 में 'पटेल कानून' के नाम से प्रसिद्ध प्रस्ताव पास हुआ जिसमें बम्बई महानगरी क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया था। कुछ समय बाद इसका अनुसरण अन्य राज्यों ने भी किया। सन् 1919 में 'बिहार' 'बंगाल' 'उत्तर प्रदेश' व 'उड़ीसा' में सन् 1920 में 'मध्य प्रदेश' व तमिलनाडु' में सन् 1926 में असम में सन् 1930 में 'कश्मीर' में, तथा सन् 1931 में 'मैसूर' में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के अधिनियम बनाये गये। किन्तु

अधिनियम बनने के बावजूद इस दिशा में कोई भी विशेष व्यावहारिक कार्य ठोस ढंग से नहीं किया गया। सन् 1937 में जब प्रान्तीय स्वायत्त शासन की स्थापना हुई, तब देश में लोकप्रिय मंत्रिमंण्डलों में प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता के लिए विशेष प्रयास किये। परन्तु प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थिति मुश्किल से दो वर्ष भी नहीं रह पायी थी, कि द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ गया तथा सभी योजनायें स्थगित हो गयी। इसके कुछ समय बाद ही इन सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। परिणामत: स्वतन्त्रता पूर्व तक प्राथमिक शिक्षा की अनिवार्यता की दिशा में कोई विशेष प्रगति सम्भव न हो सकी।

साहित्यावलोकन:- सम्बन्धित साहित्य के सर्वेक्षण से तात्पर्य अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोशों, पत्र-पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है जिनके अध्ययन के माध्यम से अनुसंधानकर्त्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं का निर्माण, अध्ययन की रूप रेखा तैयार करने एवं कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

चतुर्वेदी रश्मि (2011) - ''01 अप्रैल 2010 का दिन शिक्षा जगत में उल्लास का दिन रहा है। देश के करोड़ों बच्चों के भविष्य को एक कानूनी गारंटी दिलाने का दिन। सामाजिक न्याय, विकास अवसरों और नए सपने का दिन 01 अप्रैल 2010 से शिक्षा के अधिकार का कानून देश में लागू हो गया है। जिस देश में करोड़ों बच्चे स्कूलों से बाहर हो, छोटे-छोटे होटलों, दुकानों और घरों में काम करते हुए अपना बचपन खो चुके हो, वहाँ शिक्षा के मौलिक संवैधनिक अधिकार के लागू होने का दिन हर प्रकार से ऐतिहासिक माना भी चाहिए। छ: से चौदह वर्ष की आयु वर्ग के हर बालक तथा बालिकाओं को स्कूल मिले, स्कूल समय पर खूले, अध्यापक उपस्थित हो, ज्ञान तथा कौशल मिले, इससे अच्छा तथा आशाजनक और क्या हो सकता है? वित्त मंत्री प्रवण मुखर्जी का कहना है कि सरकार मुफ्त और निवार्य शिक्षा के अधिकार के कानून की मदद से देश के शिक्षा परिदृश्य को पूरी तरह तरह बदलने को तैयार है। सरकार का कहना है कि सभी बच्चों को समता और भेदभाव रहित सिद्धान्त के आधार पर क्वालिटी एजूकेशन सहजता के साथ उपलब्ध कराना है। इस बार से बजट में स्कूली शिक्षा के लिए 31 हजार 36 करोड़ रूपये रखे गये हैं जो मौजूदा वर्षो की तुलना में यह राशि 3.236 करोड़ रुपये ज्यादा है। इसके साथ ही राज्यों को वर्ष 2010-11 में प्रारम्भिक शिक्षा के लिए 3.675 करोड़ अनुशांसित अनुदानों के तहत अलग से दिये जायेगे। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधिकारियों का कहना है कि शिक्षा के अधिकार कानून को अमली जामा पहनाने का काम शुरु हो गया है। बजट में इस बात का ध्यान रखा गया है कि इस कानून के क्रियान्वयन में केन्द्र की तरफ से राशि में कमी न हो। यह पूरी योजना राज्यों के सक्रिय सहयोग से ही मूर्त रूप ले सकती है।

निश्चय ही सरकार द्वारा उठाया गया यह कदम सराहनीय है। इस कानून में वंचित तबकों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के परिवारों के बच्चों को उनके नजदीक के इन निजी विद्यालयों में जो कि सौ फीसदी यानि आंशिक सरकारी अनुदान प्राप्त कर रहे हैं। पच्चीस फीसदी आरक्षण का अधिकार दिया गया है। यह कदम सामाजिक एकीकरण की प्रक्रिया को मजबूत करने में कारगर होगा। कानून के प्रावधानों के अनुसार सत्र 2010-12 से इन बच्चों का पहला समूह निजी स्कूलों में दाखिला होगा और आने वाले कुछ सालों में यह प्रक्रिया पूरी होगी। तब इन स्कूलों की कक्षा एक से आठ तक के कुल बच्चों में से 25% बच्चे वंचित परिवारों के होगे। सभी निजी स्कूलों को यह भी सुनिश्चित करना होगा, कि यह बच्चे दूसरे बच्चों के साथ एक ही समय, एक ही कक्षा में पढ़ सकें, बजाय इसके कि उनके लिये अलग-अलग, अलग समय पर कक्षाएँ आयोजित हों, जैसा कि आमतौर पर होता है। मेरे विचार में अगर निजी शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा यह कानून सही तरीके से लागू किया जाये तो यह कदम देश के मौजूदा सामाजिक सांस्कृति स्वरूप को सकारात्मक रूप से बदलने में कामयाब होगा।''

यादव राजकुमार (2012) - ''2002 में 86वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से अनुच्छेद 21 (ए) को शामिल किया गया था। इसमें प्राथमिक शिक्षा के अधिकार को स्वंत्रन्तता के अधिकार का हिस्सा बनाते हुये कहा है कि राज्य 06 से 14 वर्ष के बच्चों को मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। और भारतीय संसद ने 04 अगस्त 2009 को मुहर लगा दी और 01 अप्रैल 2010 को लागू हो गया और भारत 135 देशों में शामिल हो गया।''

श्रीवास्तव (2012) - ''देश के करोड़ों बच्चों को 01 अप्रैल 2010 से मुफ्त शिक्षा अनिवार्य तौर पर पाने का अधिकार मिल गया है। यह उनका बुनियादी हक है और यदि इसमें कहीं कोताही हो तो बच्चों की तरफ से अदालत से भी यह हक मांगा जा सकेगा। केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल का दावा तो यह है कि इससे देश के करीब एक करोड़ बच्चों को फायदा होगा। उनके अनुसार इससे 06 - 14 वर्ष के बीच की उम्र के इन बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा पाने का अधिकार मिल जाने से शिक्षा हासिल करके अपनी और अपने परिवार की गरीबी दूर करने और विकास की मुख्यधारा में शामिल हो पाने का नया अवसर मिलेगा। मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 को लागू करने की जिम्मेदारी केन्द्र और राज्य सरकारों के अलावा न्यायापालिका और शैक्षिक प्रशासन की भी होगी। इस कानून के लागू होने से जहाँ संप्रसग सरकार का चुनावी वायदा पूरा हो रहा है, वहीं स्थानीय प्रशासन से लेकर माँ-बाप तक के कंधों पर इसे शिद्दत से लागू कराने की नई जिम्मेदारी भी गयी है। देश के दूरदराज इलाकों में शिक्षा का परिदृश्य और वहाँ की जमीनी हकीकत क्या किसी से छुपी हैं ? क्या सिर्फ कानून बन जाने से देश भरके बच्चों की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का रास्ता तय हो जाएगा। सच तो यह है कि उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, महाराष्ट, पश्चिम बंगाल, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर राज्यों के दूरदराज और दुर्गम, जगंलों और पहाड़ी इलाकों में इससे काम नहीं चलेगा। वहाँ की भौगोलिक और सामाजिक समस्याओं का दिल्ली में अंदाजा भी नहीं लगाया जा सकता। इन इलाकों में पीने के पानी तक का पुखता इंतजाम नहीं है। ऐसे हालात में बच्चों को स्कूल न भेजना अभिभावक का बहाना नहीं मजबूरी भी है। माता-पिता अपने बच्चे को पढ़ाना चाहें, तो भी हजार दिक्कतें हैं। मसलन, ऐसे अनेक इलाकों में आज भी पढ़ाई एक विलासिता है। किसी तरह माँ-बाप अपने बच्चे को पैदल या किसी वाहन में भी 08-10 किलोमीटर दूर किसी गाँव या कस्बे के स्कूल में पढ़ने भेजने का इंतजाम कर भी दे तो इसकी गारंटी नहीं कि वहाँ पढ़ाने को शिक्षक मिल ही जाएंगे।

दरअसल, गाँव के स्कूलों में शिक्षक नियुक्ति भले ले लें, लेकिन वहाँ हाजिरी देना कोई नहीं चाहता। शिक्षा से सम्बन्धित अनेक कमेटियाँ इस बात की ओर इशारा कर कोई नहीं चाहता। शिक्षा से सम्बन्धित अनेक जाँच कमेटियाँ इस बात की ओर इशारा कर चुकी हैं कि स्कूल शहरों से नियुक्ति पाए उन हजारों शिक्षकों के लिए सिर्फ मासिक पगार लेने का माध्यम हैं। वे वहाँ पढ़ाना तो दूर जाना भी गवारा नहीं करते। महीने दो महीने में जाकर वेतन उठा लेते हैं और साथ ही सरपंच ग्रामसेवक या जिला शिक्षा विभाग के लोगों से सांठगांठ कर सूचना मिलने पर बड़े अधिकारियों के इंस्पेक्शन के दौरान वहाँ ऐसे पहुँच जाते

हैं, जैसे न जाने कब से मुस्तैदी से डयूटी दे रहे हों। असल में शहरी युवक नौकरी की खातिर समझौता तो कर लेते हैं, लेकिन उनका मन गाँव में लगे कैसे और वह भी, जब कि उन पर कोई अकुंश ही न हो। यदि कोई गाँव में बसा शिक्षक मिल जाए तो यह गारंटी नहीं कि वह शिक्षक अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने में पूरी जान देगा। अब तो विद्या धन की सौदेबाजी होने लगी है। शिक्षक गाँवों की आरामगाह मानते हैं। बिरले ही ऐसे शिक्षक होंगे, जो अपने विद्यार्थियों का हित चिंतन करते हैं। बीच में छत्तीसगढ़ सरकार ने अंग्रेजी की पढ़ाई प्राथमिक स्तर से ही अनिवार्य कर दी थी। उसके करीब दो साल बाद ऐसी कई खबरें मिली, जिनमें बच्चे अंग्रेजी वर्णमाला का एक भी अक्षर नहीं पहचाना सके। भारत के बेहिसाब गाँवों की यही सच्चाई है। एक सच्चाई और भी है मिड-डे-मिल की। दोपहर का यह भोजन बेशक काम-काज से थके बच्चों को स्कूल की दहलीज तक खींच लाता हैं, लेकिन वहाँ उन्हें स्वच्छ और सेहतमन्द भोजन मिलने की गारंटी नहीं है। देश भर से घटिया अनाज, मिड-डे-मील में छिपकली, कीड़े, सड़े अनाज और भोजन के मेनू, मात्रा में अनियमितता आदि की खबरें मिलती रहती है। बच्चों के लिए 14 वर्ष तक लगातार अगली कक्षा में प्रोन्नत करना और नये स्कूल में दाखिले के लिये स्थानांतरण प्रमाण-पत्र या किसी अन्य चीज की दरकार न होना जरूर गाँव के लिए खुशनुमा खबरें हैं। इससे स्कूलों में फेल-पास करने की धमकी या प्रलोभन देने की शिक्षकों की दादगिरी पर जरूर अंकुश लगेगा पर इसका एक और पहलू यह है कि नए स्कूलों में दाखिले के नाम पर मनमानी बढ़ेगी। समस्या यह नहीं कि सरकार की इस पहलकदमी का क्या होगा ? समस्या यह है कि सरकान ने उनकी तरफ जो हाथ बढ़ाया हैं, वे उसे कैसे थामेंगे? इसकी वजह बोली और समझ की बाधा है। वे अपने हक भली-भाँति समझकर उसका उपयोग कर सके, यह भी जिम्मेदारी सरकार की है। लिहाजा, उसके लिए ऐसे हमजुबां लोगों का इंतजाम करना होगा, जो सरकार की बात पूरी तरह समझकर उन्हें भली-भाँति उनके हक से वाकिफ करा सकें। एक कोण देश में लड़कियों की शिक्षा को लेकर संकुचित मानसिकता का भी है। देश के राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और पश्चिम उत्तर प्रदेश के कुछ इलाकों में आज भी लड़कियों की शिक्षा का चलन नहीं है। लोग उन्हें स्कूल भेजने से कतराते हैं। आम धारणा यह है कि पढ़-लिखकर लड़की क्या अफसर बनेगी? समाज का यह तबका आज भी शिक्षा की अहमियत को पचा नहीं पा रही हैं। लड़कियाँ आज भी वहाँ बच्चों को पालने-पोसने, बर्तन-बासन करने और ढोर डंगर की सेवा के लिए हैं। सरकार के लिए ऐसे समाज में हरेक बच्चे के लिए शिक्षा का हक सुनिश्चित करना भी बड़ी चुनौती है। इसकी वजह यह है कि समाज का यह तबका बाहरी लोगों को खूद में पैठने की इजाजत नहीं देता। ऐसे इलाकों की मानसिकता बदलने को सरकार कौन-सी जुगत भिड़ाएगी। सरकार का मानना है कि वह तीन साल के अन्दर देश के सभी स्कूलों में अच्छी पढ़ाई के लिए सम्पूर्ण सुविधाएँ उपलब्ध करा देगी। हकीकत यह है कि दूर-दराज के इलाकों में आज भी कहीं-कहीं स्कूल की कोई इमारत नहीं है। कहीं-कहीं तो ये स्कूल खुद नन्हें छात्रों द्वारा बनाए बाँस की खपच्चियों के झोपड़ीनुमा ठिकानों में चलते हैं और बारिश के चार महीनों में पढ़ाई की छुट्टी होती है। आजादी के बाद से इमारत, अध्यापक, पाठ्यक्रम सामग्री और पेयजल तक से महरूम ऐसे स्कूलों में सरकार के पास क्या कोई जादुई छड़ी है, जो इतने समय में सारा इंतजाम हो जाएगा ? सरकार की चाल के हिसाब से तो ऐसे इलाकों की पहचान में ही साल-दो साल गल जाएंगे। फिर स्कूलों के ढांचागत् विकास को लेकर जो राशि भेजी जाएगी, उसका सही उपयोग हो यह सुनिश्चित करने के लिए सरकार के पास क्या फार्मूला है ? शिक्षा के अधिकार को दुनियाभर में अहम मानव अधिकार के तौर पर मान्यता है। इसे सबसे पहले मानवाधिकार सम्बन्धी सार्वभौम घोषणापत्र 1948 (यूनिवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स 1948) के तहत मान्यता मिली थी। इससे पहले अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन 1920 में अपनी एक सिफारिश में शिक्षा के अधिकार अधिनियम को मानवाधिकार बताया था। उसके बाद से जैसे शिक्षा के अधिकार को लेकर विश्वव्यापी अभियान छिड़ गया। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में शिक्षा के अधिकार पर बात होने लगी। कई देशों ने अपने संविधान और विकास योजनाओं में बच्चों के इस अधिकार को शामिल किया। शिक्षा के सवाल पर छिड़ी बहस की मूल भावना यही थी कि शिक्षा से व्यक्ति की दक्षता, क्षमता और आत्मविश्वास का विकास होगा और उसमें अधिकार की सुरक्षा के प्रति समझदारी बढ़ेगी।

कपिल सिब्बल के इस कानून के लिए सबसे बड़ी चुनौती शिक्षा के इस अधिकार के प्रति समझ पैदा करने की है। उन्हें समझ राज्यों के शासक वर्ग से लेकर गाँव के शिक्षक और सरपंच, ग्राम सेवक, स्वास्थ्यकर्मियों, बच्चों के अभिभावकों और बच्चों तक कई स्तर पर पैदा करनी होगी। उन्हें यह समझना होगा कि उनके शिक्षा के बुनियादी अधिकार के तहत यदि किसी भी सरकारी स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने का हक हासिल है तो उसे उनके दायरे में पहुँचाकर उनकी पढ़ाई सुनिश्चित करना सरकार की जिम्मेदारी है। यह सरकार ही तय करेगी कि दुनिया के 7.5 करोड़ निरक्षर लोगों की तादाद में और इजाफा न हो इसके अलावा इन बच्चों को स्कूल के प्रांगण में सामाजिक सुरक्षा और समानता का हक दिलाना भी सरकार का दायित्व है। विधेयक के जरिए आर्थिक तौर पर कमजोर बच्चों के लिए निजी स्कूलों की पहली कक्षा में 25 फीसदी आरक्षण तो कर दिया है, पर उन बच्चों के मन में भेदभाव और हीन भावना के बीज नहीं पड़े, उनकी नंगहाली का मजाक न उड़े इसकी निगरानी भी सरकार की जिम्मेदारी है। दिल्ली के पब्लिक स्कूलों में पहले से आर्थिक तौर पर कमजोर परिवार के बच्चों के लिए आरक्षण है। ज्यादातर ऐसे परिवारों को बड़े स्कूलों में दाखिले के अपने इस हक के बारे में जानकारी नहीं हैं जिन बच्चों को आरक्षण के आधार पर स्कूलों में दाखिल मिल गया है। ऐसे सरकार की नाक के नीचे वे कैसी मानसिक पीड़ा से गुजर रहे हैं, सरकार को इसका मुआयना भी करवाना चाहिए। तमाम चुनौतियों के बीच यह कदम शिक्षित भारत का सपना साकार करने वाला है। सरकार को इसको लागू करने में थोड़ी गम्भीरता दिखानी पडेघ्गी। गाँवों के इस देश की जमीनी हकीकत को समझकर चलना होगा।''

अध्ययन का उद्देश्यः- प्रस्तुत अध्ययन में शोधकर्त्ता द्वारा अध्ययन के उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि '' सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन का अध्ययन करना।''

शोध अध्ययन की परिकल्पनाः- उद्देश्य की पूर्ति हेतु शून्य परिकल्पना निर्मित की गई थी कि '''सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के क्रियान्वयन की मात्रा में सार्थक अन्तर नहीं हैं।''

शोध विधिः- प्रस्तुत अध्ययन विवरणात्मक प्रकार का अध्ययन है। जिसमें वर्तमान से सम्बन्धित घटनाओं का विशलेषणात्मक विवरण होता है इसकी सर्वेक्षण विधि के तहत आंकड़ों का संकलन करते हुए निरीक्षण किया जाता है। जिसमें आंकड़ों की सहायता से वर्तमान घटनाओं पर प्रकाश डाला जाता है। सर्वेक्षण का इंगलिश रूपान्तर Survey दो शब्दों Sur+vey से मिलकर बना है। मूल रुप से, Sur (Sor) तथा अमतल (veeir) पर आधारित है, जबकि Sor

का अर्थ over तथा veeir का अर्थ जव सववा होता है। इस प्रकार Survey का सम्मिलित मूल अर्थ 'ऊपर से देखना' अवलोकन अथवा अन्वेषण होता है। शब्द कोष के अनुसार भी सर्वेक्षण का अर्थ प्राय: सरकारी आलोचनात्मक निरीक्षण होता है, जिसका उद्देश्य एक क्षेंत्र की किसी एक स्थिति अथवा उसके प्रचलन के सम्बन्ध में यथार्थ सूचना प्रदान करना होता है, जैसे स्कूलों का सर्वेक्षण।

समष्टि:- समष्टि किसी भी शोध में शामिल की जाने वाली निश्चित भू-भाग के व्याष्टियों के समूह से होता है। प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि आजमगढ़ मण्डल के समस्त प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर के निजी व सरकारी विद्यालयों के शिक्षक थे।

प्रतिदर्श:- किसी भी समष्टि से पूर्ण प्रतिनिधित्व करने वाला अंश प्रतिदर्श कहलाता है। जिसमें प्रस्तुत अध्ययन में कुल 300 शिक्षकों का चयन किया गया था। जो अपने समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। जो समष्टि का 5.9% थी। अनुसन्धान में प्राय: प्राचलिक विधि का प्रयोग सम्भव नहीं होता, क्योंकि इस विधि के द्वारा अध्ययन समय व सुविधा के दृष्टिकोण से सापेक्षिकत: अत्याधिक खर्चीला व जटिल होता है। इसके विपरीत, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से अप्रचलित विधि द्वारा अध्ययन पर्याप्त मात्रा में सुगम, सरल, अल्प-व्ययी तथा शुद्ध रहता है। अप्रचलित विधि के अध्ययन का आधार प्रतिदर्श होता है।

प्रतिदर्श एक समष्टि का वह अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिलम्ब रहता है। पी0 वी0 यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु-चित्र होता है। प्रस्तुत अध्ययन में कुल 300 शिक्षकों को शामिल किया गया जिनमें आजमगढ़, बलिया, मऊ से क्रमश: 100-100 तथा सरकारी व निजी विद्यालयों से आधे-आधे थे।

वर्ग	*निजी विद्यालय*	*सरकारी विद्यालय*	*योग*
आजमगढ़	50	50	100
बलिया	50	50	100
मऊ	50	50	100
योग	150	150	300

शोध उपकरण:- प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण स्वनिर्मित था जिसका मानकीकरण किया गया था।

आँकड़ों का संकलन करने के लिये 30 कथनों की अनुसूची बनाई गयी थी जो हाँ/नहीं पर आधारित थी जिसमें हाँ पर प्रतिक्रिया देने पर 01 अंक और नहीं पर 0 अंक प्रदान किया गया था। अर्द्धविच्छेद विश्वसनीयता गुणांक 0.68 तथा विशेषज्ञ वैधता गुणांक 0.82 प्राप्त हुआ था। व्याख्या के लिये मानक प्रतिशतांक ही प्रयोग किया गया था जितना उच्च प्रतिशत रहा उतना ही क्रियान्वयन सही पाया गया।

उद्देश्य से सम्बन्धित विश्लेषण तथा व्याख्या:- प्रस्तुत अध्ययन का प्रथम उद्देश्य निर्धारित किया गया था कि ''सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2009) के क्रियान्वयन का अध्ययन करना'' इसके लिये निम्नलिखित विश्लेषण तालिका तैयार हुयी।

तालिका-1: सरकारी विद्यालय के शिक्षकों की प्रतिक्रिया

क्र.सं.	*कथन*	*प्रतिक्रिया/मात्रा*
1.	शिक्षा का अधिकार मौलिक अधिकार है।	100
2.	उम्र 06 से 14 वर्ष के बच्चे सभी आ रहे है।	82
3.	बच्चों को पुस्तकें, यूनीफार्म दिया जा रहा है।	78
4.	मध्याहन आहार की गुणवत्ता मिलती है।	52
5.	जातिगत् भेदभाव नहीं होता है।	88
6.	धार्मिक भेदभाव नहीं होता है।	92
7.	निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत सीटों पर इनकी व्यवस्था है।	12
8.	बच्चों का नामांकन बढ़ा है।	89
9.	शिक्षक बच्चों को प्रेरित करते है।	78
10.	अधिकारी निगरानी कर रहे है।	92
11.	विद्यालय के अगल-बगल गरीबी के कारण बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं है।	48
12.	बच्चे उत्साहित है।	72
13.	विद्यालय में स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था है।	82
14.	विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिये अलग-अलग शैचालय है।	98
15.	सफाईकर्मी नियमित जाता है।	52
16.	आसन व्यवस्था पर्याप्त है।	48
17.	कक्ष साफ सुथरे हवादार है।	42

18.	पुस्तकों के साथ कम्प्यूटर प्रशिक्षण भी दिया जाता है।	12
19.	समय-समय प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था है।	12
20.	बच्चों के खेलने का सामान पर्याप्त है।	23
21.	क्रीड़ा मैदान हरा-भरा है।	18
22.	शिक्षक बच्चों के साथ सहभाग करते है।	72
23.	शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त है।	23
24.	शिक्षक विषय के ज्ञान के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान देते है।	46
25.	बाल सभा करायी जाती है।	97
26.	नियमित प्रार्थना होती है।	100
27.	पी.टी. करायी जाती है।	44
28.	पोषण युक्त खाद्य पदार्थ वितरित होता है।	38
29.	बच्चों के ड्रेस स्वच्छ रहते हैं।	52
30	बच्चों को सफाई के प्रति जागरुक किया जाता है।	78

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि कथन-01 पर शिक्षकों ने 100% हाँ कहा है कि शिक्षा मौलिक आधिकार है। कथन-02 पर 82% शिक्षकों ने प्रतिक्रिया दी कि 06 से 14 वर्ष के बच्चे विद्यालय आ रहे है जबकि शेष 18% ने इस पर नहीं कहा अत: जागरुकता में कहीं लापरवाही स्कूल प्रशासन की है जिसके सुधार की आवश्यकता है। कथन-03 पर 78% शिक्षक प्रतिक्रिया दे रहे हैं कि बच्चों को नि:शुल्क पुस्तकें व यूनिफार्म दिया जा रहा है जबकि 22% ने नहीं पर बताया और समय से सुविधा न मिलना इसका कारण स्पष्ट होना। अत: सरकारी तंत्रों को सक्रिय रहकर समय पर इन सभी व्यवस्था को की जानी चाहिये। कथन-04 पर 52% शिक्षकों मध्याहन आहार की गुणवत्ता पर हाँ के लिये प्रति क्रिया दिया और 48% ने नहीं पर कहा जिससे स्पष्ट होता है कि कहीं तो अधिकारियों और हेडमास्टर की मिलीभगत से गुणवत्ता में कमी आ रही है जिस पर सरकार को निगरानी करनी पड़ेगी। कथन-05 पर 88% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिया कि विद्यालयों में जातिगत भेदभाव नहीं होता है परन्तु 12% इसके विरूद्ध रहे जो यह स्पष्ट करता है कि थोड़े बहुत भेदभाव की गंजाइश बनी हुयी है। कथन-06 पर 92% ने स्पष्ट किया कि धर्मगत् भेदभाव नहीं होता है इसका मतलब है कि विभिन्न धमों के बच्चे विद्यालय में पढ़ते है परन्तु थोड़ा बहुत इस प्रकार का भेदभाव है जो कि नहीं होनी चाहिये। कथन-07 पर मात्र 12% ने हाँ बताया हैं के निजी विद्यालयों में 25% सीट आरक्षित है परन्तु 88% ने नहीं में बताकर सिरे से नकार दिया जिसमें ज्यादातर निजी विद्यालय के शिक्षक थे। इस पर सरकार को कड़ा कदम उठाना चाहिये कि निजी विद्यालय नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा की दिशा में काम करें तभी शिक्षा के अधिकार अधिनियम का सही क्रियान्वयन हो पायेगा। कथन-08 पर 89% ने कहाँ कि नामांकन बढ़ा है जबकि 11% इसे नकारे हैं यहाँ भी प्रयास करने की जरुरत है। कथन-09 में 78% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दी अर्थात् शिक्षक प्रेरित करते हैं को मान लिया जबकि 22% ने नकारा हैं कि शिक्षक पढ़ाकर घर जाते है वे प्रेरित इत्यादि के लिये अलग से समय बच्चों को नहीं देते है। कथन-10 पर 92% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कि अधिकारी निगरानी करते है परन्तु 8% दूर-दराज के क्षेत्रों के अध्यापकों ने बताया कभी कोई नहीं आता है जिसमें सुधार होना चाहिये। कथन-11 पर 48% शिक्षकों ने हाँ पर सहमति दिये जो यह कहते है कि विद्यालय के अलग-बगल गरीबी के कारण कोई बच्चा शिक्षा से वंचित नहीं है जबकि 52% शिक्षक इसको सिरे से नकार दिये कि गरीब आदमी अपने बच्चों से बालश्रम कराते हैं जो कि गलत है परन्तु सुनते नहीं सरकार को इस दिशा में प्रयास करना चाहिये। कथन-12 पर 72% शिक्षकों ने हाँ पर अपनी प्रतिक्रिया दिया है कि बच्चे उत्साहित होकर आते है जबकि 28% कहते है कि अभिभावक की जबरदस्ती के कारण आते है इसके लिये विद्यालय पर्यावरण में खेलने की समान और क्रीड़ा मैदान में क्रीड़ा के शिक्षक को खेलाना चाहिये ताकि बच्चे पढ़ने व खेलने तथा खाने की दिशा में अग्रसर हों। कथन-13 पर 82% शिक्षकों ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कहते है कि विद्यालय में स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था है जबकि 18% कहते है कि केवल हैंड पम्प हैं जो प्राय: खराब पड़ते है। इस तरफ प्रशासन को ध्यान देना चाहिये। कथन-14 पर 98% ने हाँ में सहमति दिया है कि विद्यालय में छात्र-छात्राओं के लिये शौचालय अलग-अलग है जो कि अच्छी बात हैं यह प्रयास सराहनीय है। कथन-15 पर 52% ने हाँ में कहा कि सफाईकर्मी नियमित आते है जबकि 48% कहते हैं कि सफाईकर्मी लापरवाह है जिसके लिये प्रशासन को सख्त होना चाहिये। कथन-16 पर 48% ने हाँ में प्रतिक्रिया दिये कि आसन व्यवस्था पर्याप्त पूर्ण नहीं है जिस पर सरकार को ध्यान देना है। कथन-17 पर 42% ने हाँ पर सहमति दिया है कि कक्ष साफ सुथरे तथा हवादार है जबकि 58% ने इसके विपक्ष बताया है सरकार को इस बात पर ध्यान देना चाहिये। कथन-18 पर 12% ने हाँ पर कहा कि पुस्तकों के साथ कम्प्यूटर प्रशिक्षण दिया जाता है अर्थात् वे विद्यालय जो मॉडल व कम्पोजिट प्रकार के हैं। 88% का कहना है कि सभी सरकारी प्राथमिक विद्यालय को कम्प्यूटर प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये। कथन-19 पर हाँ के पक्ष में भी मात्र 12% ने ही प्रतिक्रिया दिया है कि समय-समय पर प्राथमिक विद्यालय चिकित्सा दी जाती है जबकि 88% का कहना है कि कभी-कभी साल में एकाक बार ऐसा होता है ऐसा नियमित नहीं है सरकार की नियमित देखरेख की व्यवस्था चिकित्सकों द्वारा की जानी चाहिये। कथन-20 पर 23% शिक्षकों ने हाँ कहा है कि बच्चों के खेलने का समान पर्याप्त है जबकि 77% का कहना है कि पर्याप्त नहीं हैं। इस दिशा में प्रशासन को ध्यान में रखना चाहिये। कथन-21 पर 18% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दी है कि क्रीड़ा मैदान हरा भरा है परन्तु 82% विपक्ष में हैं इस दिशा में सरकार को ध्यान देना चाहिये। कथन-22 पर 72% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये है कि शिक्षक छात्रों के साथ सहभाग करते है परन्तु 28% विरुद्ध हैं विद्यालय प्रशासन को ध्यान रखना चाहिये। कथन-23 पर हाँ की दिशा में प्रतिक्रिा 23% है कि शिक्षण सहायक सामग्री पर्याप्त हैं परन्तु 77% विरुद्ध है कि मॉडल व कम्पोजिट विद्यालयों में ऐसा हो सकता है परन्तु अन्य में नहीं अर्थात् सरकार सभी पर बराबर ध्यान देगी तभी शिक्षा के अधिकार अधिनियम-2009 सक्रिय होगा। कथन-24 पर हाँ की प्रतिक्रिया का प्रतिशत मात्रा 46% है कि शिक्षक विषय के ज्ञान

के साथ-साथ शारीरिक शिक्षा का ज्ञान देते है जबकि 54% ने कहा सभी शिक्षकों में अध्यापन के साथ-साथ खेलकूद की व्यवस्था से भी जुड़ना होगा। कथन-25 पर 97% ने हाँ पर प्रतिक्रिया दिये कि बाल सभा करायी जाती है जो बच्चों के विकास के लिये आवश्यक भी है। कथन-26 पर 100% ने शिक्षकों सहमति दिया कि नियमित प्रार्थना होती हैं जो कि अच्छी बात है। कथन-27 पर 44% ने हाँ पर प्रतिक्रिया किया कि पी0टी0 करायी जाती है जबकि 56% ने कहा नियमित नहीं है जो कि शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं इसे नियमित करने पर विद्यालय प्रशासन को ध्यान देना चाहिये। कथन-28 पर 38% ने हाँ कहा कि विद्यार्थियों को पोषण युक्त खाद्य पदार्थ दिया जाता है जबकि 62% ने कहा कि खाना दिया जाता है पोषण युक्त ऐसा अनिवार्य हीं है यह ध्यान देने योग्य है। कथन-29 पर 32% ने हाँ कहा कि बच्चों के ड्रेस स्वच्छ होते है जबकि 48% ने कहा कि ऐसा सम्भव नहीं हो पाता है। कथन-30 पर 78% ने हाँ पर प्रतिक्रिया किये कि बच्चों की सफाई के प्रति जागरुक किया जाता है जबकि 22% ने कहा कि इस दिशा में विद्यालय लापरवाह है जिसके लिये सरकारी निगरानी आवश्यक है।

शोध निष्कर्ष:- प्रस्तुत अध्ययन के विश्लेषण व व्याख्या से निष्कर्ष प्राप्त हुये। सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक शिक्षा के अनिवार्य अधिनियम (2009) के क्रियान्वयन करने में समर्पित है।

शैक्षिक निहितार्थ:- प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक शिक्षा को महत्वपूर्ण बनाने से सम्बन्धित है तथा गरीब व पिछड़े बच्चों को शिक्षा की मुख्य धारा में जोड़ने के लिये किया गया सरकारी प्रयास सराहनीय है। यह अधिनियम शिक्षा को मौलिक अधिकार की श्रेणी में लाता है जिससे समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े व कमजोर परिवार के बच्चों मुख्य धारा में सामान्य बच्चों के साथ शिक्षा ले सकें व देश के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकें। इस दिशा में सरकार की दृढ़ता ने संयुक्त राष्ट्र संघ के इस महाअभियान को अंगीकार करते हुये अंततः (2009) में यह अधिनियम संवैधानिक दर्जा पाया और 01 अप्रैल 2010 से लागू कर दिया गया। उस समय की कांग्रेस सरकार के तत्कालीन प्रधानमन्त्री माननीय मनमोहन सिंह ने देश की शैक्षिक विकास की दिशा में एक मील का पत्थर स्थापित किया जो अपने 12 वर्षों की यात्रा में देश के विभिन्न क्षेत्रों से वंचित व दलित तथा पिछड़ों के परिवार के बच्चों को शिक्षा के मुख्यधारा में जोड़ता चला जा रहा है। यह सराहनीय पहल को मूर्तरूप देने में सरकार अपनी मानीटरिंग कर रही है परन्तु उसकी गति मन्द है। सरकारी प्रयास के साथ-साथ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को इस दिशा में अपना योगदान देने होंगे और समर्पित होकर अपने आस-पास के सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़े बच्चों को विद्यालय तक पहुँचाना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

- चतुर्वेदी रश्मि (2011); ''शिक्षा का अधिकार: एक कारगर कदम'' शोधपत्र।
- यादव राजकुमार (2012); ''भारत में शिक्षा का अधिकार'' रिसर्च गेट।
- श्रीवास्तव (2012); ''शिक्षा अधिकार कानून लागू करने में व्यावहारिक समस्याएं'' इक्कीसवीं सदीं का भारत आयोग पब्लिशिंग दिल्ली।
- गुप्ता अश्वनी (2013); ''वर्तमान प्राथमिक शिक्षा में अध्यापक, अभिभावक एवं छात्र की भूमिका'' शोधपत्र।
- मालवीय मुकेश (2014); ''संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में शैक्षिक असंतुलन'' भारत सरकार रिपोर्ट पर सेमिनार।
- शर्मा जय प्रकाश (2015); ''शिक्षा का अधिकार: दशा एवं दिशा'' सरकार रिपोर्ट पर सेमिनार शैक्षिक योजना व प्रशासन नयी दिल्ली।
- राय कमला (2015); ''शिक्षा का अधिकार: वर्तमान एवं भविष्य'' शैक्षिक लेन।
- सिंह राकेश (2018); ''शिक्षा एक मौलिक अधिकार'' शोधपत्र।
- यादव यशवन्त (2019); ''शिक्षा के अधिकार अधिनियम में संशोधन एवं आवश्यकता'' एज्यूकेशन पालिसी इन इंण्डिया।
- यादव दीनानाथ (2020); ''शिक्षा का अधिकार: प्रावधान, चुनौतियाँ एवम् समाधान'' शैक्षिक रिपोर्ट मानव संसाधन मंत्रालय।
- पांडे रामानन्द (2021); ''सामाजिक संरचना: शिक्षा का अधिकार'' कुरुक्षेत्र।
- जोसेफ जरीन (2021); ''बिहार, उत्तर प्रदेश और झारखण्ड राज्यों के सन्दर्भ में शिक्षा के अधिकार का एक महत्वपूर्ण विश्लेषण: एक सिंहावलोकन'' IJSR.
- दूबे सुरेन्द्र (2022); ''शिक्षा का अधिकार कानून: प्रमुख चुनौतियाँ'' शैक्षिक निबन्ध विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
- मिश्र रामश्वर नाथ (2022); ''मौलिक शिक्षा: एक विकास क्रम'' योजना।
- सिंह नरेन्द्र कुमार (2022); ''ज्ञान मूल्य एवं शिक्षा का अधिकार'' शोधपत्र।

मैथिली साहित्य में लोकसंगीत

डॉ० हेमलता कुमारी

संगीत शिक्षिका, +2 राम श्रृंगारी कन्या उच्च विद्यालय, कमतौल, दरभंगा

सारांश

मिथिला की संस्कृति अतिप्राचीन काल से समृद्ध रही है। यहां की संस्कृति में लोक कला, मानस की अभिव्यंजना के प्रमुख साधनों में एक है। जिसमें जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं से अनुकूलता या संगति पाने की एक विशिष्ट प्रवृति होती है। परिणाम स्वरूप इसकी अभिव्यक्ति में तद्नुकूल विविधता परिलक्षित होती है। लोक संस्कृति की अन्य विधाओं के सदृश मिथिला में लोककला का विशिष्ट स्थान है।

प्रस्तुत आलेख में मिथिला लोक संस्कृति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन किया गया है जिसमें मिथिला के इतिहास तथा इसकी संस्कृति, विशेषकर लोक संस्कृति के विविध आयामों जैसे- लोकधर्म, लोक साहित्य, लोककला, मिथिला की प्रदर्शनकारी लोककलाएँ आदि पर अब तक किए गए अध्ययनों को खंगालने की कोशिश की गई है निसंदेह मिथिला लोक संस्कृति की प्राचीनता एवं नैसर्गिकता अप्रतिम है जो आज भी अपनी पहचान तथा वजूद को बाजारवाद के प्रचंड झंझावतों को झेलते हुए भी कायम है।

मूल शब्दः मिथिला, लोकसंस्कृति, लोकधर्म, लोकसाहित्य, लोककला, लोकगीत, लोकसंगीत आदि।

प्रस्तावना

मैथिली मुख्यतः भारत के उत्तर-पूर्व बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश, बंगाल, उड़ीसा, असाम और नेपाल देश के साथ विभिन्न देश की भाषा है। बिहार के 21 जिलों में (मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, मुजफ्फरपुर, खगड़िया, कटिहार, अररिया, किशनगंज, सुपौल, मधेपुरा, मुंगेर, भागलपुर, सहरसा, पूर्णिया, सीतामढ़ी, शिवहर, वैशाली, बाँका, लखीसराय, जमुई और बेगूसराय) और नेपाल के सात जिलों में (धनुषा जिला, महोत्तरी जिला, सिराहा जिला, सर्लाही जिला, सप्तरी जिला, सुनसरी जिला और मोरंग जिला) यह प्रमुख रूप से बोली जाती है। इसका क्षेत्र लगभग 30,000 वर्गमील में व्याप्त है। मैथिली भाषा का सांस्कृतिक केंद्र भारत में मधुबनी, दरभंगा,सितामढ्ढी, सहरसा, मुज्जफपुर, देवघर,भागलपुर और नेपाल में जनकपुर है।[1]

बांग्ला भाषा, असमिया और उड़िया के साथ-साथ इसकी उत्पत्ति मागधी प्राकृत से हुई है। कुछ अंशों में ये बंगला और कुछ अंशों में हिंदी से मिलती जुलती है।

अन्य स्वतंत्र साहित्यिक भाषाओं की तरह मैथिली की अपनी प्राचीन लिपि है जिसे 'तिरहुता' या मिथिलाक्षर कहते हैं। इसका विकास नवीं शताब्दी ईव में शुरू हो गया था। आजकल छपी हुई पुस्तकों में अधिकांश देवनागरी का ही प्रयोग होने लगा है।[2]

लोकसाहित्य

लोक के द्वारा एवं लोक के लिए सृजित तथा लोक को अभिव्यंजित करता लोक साहित्य श्रुति और स्मृति परम्परा से संरक्षित होता है। आदिम प्रवृति और परम्पराधारित, अभिजात्य संस्कार से भिन्न जनपदीय भाषा में मुखरित मैथिली लोकसाहित्य मानवीय उद्गार की मौखिक अभिव्यक्ति है। डॉ. रामदेव झा ने लोकजीवन में प्रचलित परम्परा-प्रवाह में निर्मित श्रुति साहित्य को लोकसाहित्य कहा है जबकि सत्यव्रत सिंहा इसे लोकानुरंजनी साहित्य कहते हैं। विगत दशकों में लोकसाहित्य के अध्ययन अनुशीलन की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ ली है, क्योंकि यह विश्व साहित्य का मूलाधार है।[3]

डॉ. जयकांत मिश्र (इन्ट्रोडक्शन टू दी फोक लिटरेचर ऑफ मिथिला, इलाहाबाद, 1950 ई0), डॉ. तेज नारायण लाल (मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, आगरा 1962 ई0), डॉ. ताराकान्त मिश्र, डॉ. अणिमा सिंह, डॉ. प्रफुल्ल कुमार सिंह मौन (मैथिली लोकसाहित्य भूमिका, 1976 ई0), डॉ. रामदेव झा आदि ने लोकसाहित्य को समग्र रूप से मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। इसकी अध्ययन परम्परा का श्री गणेश जार्ज ग्रियर्सन (पीजेन्ट लाइफ, 1885 ई0) ने किया था।[4]

मैथिली लोक साहित्य का फलक व्यापक है-

1. गेयात्मक लोक साहित्य (गाथा गीत एवं लोकगीतों के प्रकार),
2. कथनात्मक लोक साहित्य (लोककथा, लोकोक्ति, बुझौवल आदि),
3. लोकनाट्य साहित्य (लोकधर्मी, नाट्य, गद्य-पद्य मिश्रित),
4. आनुष्ठानिक लोकसाहित्य (आचार, अभिचार विषयक लोकमंत्र आदि)।

मैथिली लोकसंगीत

मैथिली साहित्य में लोकसंगीत मिथिलांचल की जीवंत सांस्कृतिक धरोहर है, जो जीवन के हर पड़ावख्जन्म से मरण तक ख्र को सुरों में पिरोती है। यह अत्यंत मधुर, मार्मिक और ऋतु-आधारित होती है, जिसमें सोहर, समदाउन, विवाह गीत, कजरी, और बटगमनी प्रमुख हैं। यह भावात्मक अभिव्यक्ति, देवी-देवताओं की स्तुति और मिथिला की अनूठी पहचान का प्रतीक है।[5]

मैथिली साहित्य में लोकसंगीत की प्रमुख विधाएँ:

- संस्कार गीत: जन्म के अवसर पर 'सोहर' (राम-कृष्ण विषयक) और विवाह के समय विवाह गीत, समदाउन, और लगनी गाए जाते हैं, जो भावपूर्ण होते हैं।
- ऋतु गीत: चौती, चान्चर, और मलार जैसे गीत ऋतुओं के अनुसाथ गाए जाते हैं, जो प्रकृति और मानव मन के जुड़ाव को दर्शाते हैं।
- गाथा गीत: दीना-भद्री, सलहेस, और वसावन की गाथाएँ शोषण के विरुद्ध प्रतिकार का स्वर मुखर करती हैं।
- अन्य विधाएँ: जँतसाथ (जाँता पीसते समय), बटगमनी, और देवी-देवताओं की स्तुति (नचारी, महेशवाणी) मिथिला के जनजीवन का अभिन्न अंग हैं।[6]

मुख्य विशेषताएं:

1. मार्मिकता: मैथिली लोकगीत अत्यंत हृदयस्पर्शी और मधुर होते हैं।
2. सांस्कृतिक धरोहर: ये मिथिलांचल के आचार, व्यवहार और संस्कारों को सजीव रखते हैं।
3. विविधता: विवाह से लेकर द्विरागमन तक के लिए अलग-अलग राग और गीत प्रचलित हैं।

मैथिली साहित्य की यह विधा मिथिला की संस्कृति और संवेदना की पहचान है।[7]

मिथिला में लोकगाथा

लोकगाथा मिथिला के मौखिक इतिहास का महत्त्वपूर्ण स्त्रोत और अनमोल धरोहर है, जिसमें समाज की आस्था, विश्वास, राग-भास, जीवन-संघर्ष और उक्ष्वास प्रतिबिम्बित है।

किसी भाषा की लोकगाथा साहित्य के विविध रूप को अपने कलेवर में अक्षय भंडार की तरह समेटे रहती है।

लोकगाथा लोक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। हमारे विचार से शिष्ट साहित्य में जो स्थान महाकाव्य का है, वही स्थान लोक साहित्य में लोकगाथा का है। सही अर्थ में लोकगाथा लोक साहित्य का महाकाव्य है। महाकाव्य के जो नायक होते हैं, वे इतिहास प्रसिद्ध होते हैं और लोकगाथा के नायक लोक प्रसिद्ध। महाकाव्य के नायक उच्चकुलमूल के होते हैं तो लोकगाथा के नायक सामान्य जन से उदित होते हैं।[8]

मिथिला में जितनी भी जातियाँ हैं सबों में एकाध नायक की गाथा प्रचलित है, जो श्रुति परम्परा से पुस्त-दर-पुस्त चली आई है।

मिथिला का लोक साहित्य लोकगाथा और लोकमंत्र का विपुल भंडार है। मिथिला में लोकगाथा का विवेचन करने से अनेक अविस्मरणीय चरित्र का यहाँ अवतरण हुआ है।

मिथिला का विस्तृत भू-भाग लोरिक की वीर-गाथा भूमि है, तो सल्हेस, कुसमा, दोना और कजरी, मांजरि, रंगलोक, नैकाबनिजारा सब का उद्दाम प्रेम और चूहड़मल की कार्यस्थली रही हे। मिथिला की लोकगाथा में मुख्यत: वीर-रस के साथ शृंगार रस का अद्भूत सम्मिश्रण हम देखते हैं। इस सभी लोक गाथाओं में मिथिला संस्कृति का ऐतिहासिक सामग्रियाँ भी उपलब्ध है। जो मिथिला के इतिहास को नई दिशा देती है। लवहरि कुशहरि लोकगाथा में रामकाव्य परम्परा का विकास देखने को मिलता है, तो धनपाल, रणपाल, विजयमल सलहेस आदि लोकगाथाओं में मध्यकालीन शौर्य और वराक्रम का उल्लेख मिलता है। अनंग-कुसमा, रोमियो-जुलियट के रोमांस का प्रत्यक्ष उदाहरण है।[9]

दूलरा दयाल, मिथिला के भगीरथ है तो दीना-भद्री शोषण और उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्ष का प्रतीक है।

नैकाबनिजारा मिथिला के वाणिज्य-व्यवसाय का द्योतक है तो मोहली-सुल्तान और सती मांजरि में मुसलमानों के सामाजिक जीवन का यथार्थ विवरण मिलता है। ये लोकगाथायें मिथिला के लोकगाथा का रत्न माना गया है।

इस तरह मिथिला में लोकगाथा, जो साहित्य का अभिन्न अंग है जो सम्पूर्ण समाज के इतिवृति एवं इतिहास को उजागर करता है। वस्तुत: मिथिला की लोकगाथा समाज की रचना है एवं इसमें द्विजेत्तर जाति का सामाजिक एवं सांस्कृतिक वस्तुस्थिति का यथार्थ परिचय मिलता है। यह वंचित वर्ग का ऐतिहासिक दस्तावेज है।

लोकगाथा लोकप्रिय संस्कृति में उत्पन्न होनेवाली अपने आप में सम्पूर्ण इतिहास है, जो जन्म से लेकर मृत्यु तक की गाथा गाता है।

मिथिला की लोक संस्कृति धर्म केन्द्रित है, जिसका प्रत्यक्षीकरण थान, गहबर, लोकदेवा, देवता, व्रत-अनुष्ठान, पर्व-त्योहार, भगैत, सुमरिन डाल-पूजन, प्रकृति-पूजन आदि से होता है। लोक जन्म से देवी कृपा, आपदा विपदा को देवी प्रकोप एवं उन्नत कृषि को देवी प्रसाद मानते हैं। धर्म के प्रति लोक आस्था की प्रांजल अभिव्यक्ति इस रूप में हुई है- धर्म अनुपालन में यदि हानि भी हो तो भी धर्म का मार्ग नहीं छोड़ना चाहिए।

मिथिला संस्कृति का इतिहास जितना ही समृद्ध है उतना ही रोचक है तथा उतना ही लोकरंजक है, इसका सम्यक परिचय तो हमें लोकगाथा के अवगहन से ही करते हैं।

सांस्कृतिक तथा धर्म अध्येताओं का ध्यान भारतीय समाज में एक अपना विशिष्ट स्थान रखता है, जो गाथाओं के प्रति आकर्षित करता है। प्राचीन प्राथाओं के माध्यम से पौराणिक जनपदों के इतिहास और संस्कृति का पता चलता है। अनेक पौराणिक गाथाओं, रामायण तथा महाभारत के अनेक लोक संस्करण भी भारतीय समाज में प्रसिद्ध और प्रचलित है।

प्राथाओं को लोक तत्त्व में बदल कर उस गाथा का मूलरूप ही बदला गया। लोकमानसिकता और लोक हृदय इन पौराणिक घटनाओं को एक नवीन दृष्टिकोण से स्वीकार करता है।

मिथिला जनपद में लगभग तीस लोक गाथाएँ प्रचलित हैं। लोक गाथाओं की इन रचनाओं को अज्ञात जनकवियों द्वारा 17वीं शताब्दी के पश्चात् रची की गई। लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगाथाओं का हमेशा विकास होता रहा है। इन गाथाओं का पारम्परिक विषय प्रेम, विवाह, मान, युद्ध, शौर्य, संत आदि की चर्चा है, साथ ही ये ऐतिहासिक तथा देव-विषयक दोनों है।[9]

ग्राम्य समाज में पूर्णत: समादृत पूजा-पाठ में लोकगाथाओं का गायन भगैत कहलाता है।

मिथिला में लोकगाथा के साथ-साथ लोकगीत का भी शुरू से ही चलन रहा है। लोककथा में उनके पात्र एवं घटनाओं को लोक गीत के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। गीत कथाओं और लोकगाथाओं में घटित घटनाओं, में उद्‌भूत वहुलता होती है, उसका महत्व संस्कृति की अपेक्षा साहित्यक अधिक होता है।

मिथिला में लोक गाथाओं का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि सिर्फ मिथिला के प्राचीन या वर्तमान स्थिति, समाजिक संगठन सम्बन्धी निष्कर्ष आदि पर पहुँचना तर्क संगत प्रतित नहीं होगा, इसके विपरीत विभिन्न गाथाएँ और उत्पत्ति-कथाएँ जिनमें जनजातियों के मूलभूत लोक-विश्वास निहित होते हैं, जिसको समझे बिना जनजातियों के सांस्कृतिक अध्याय को पूरा नहीं किया जा सकता है।

प्रो0 ए0 बी0 गुमेर ने इसकी विस्तृत चर्चा की है। उनके अनुसाथ लोकगाथा गाने के लिए लिखी गई ऐसी कविता हैं जो सामुदायिक नृत्य से सम्बन्धित रहती है, पर इसमें मौखिक परम्परा ही प्रधानता है। कई विद्वान लोकगाथा को छोटे-छोटे पदों में रची कविता मानते हैं। जिसमें कोई लोकप्रिय कथा विस्तार से कही गई होती है।[10]

तात्पर्य यह है कि लोकगाथाओं में गीतात्मकता अनिवार्य तत्त्व है। कथानक प्रभावशाली और विस्तृत होता है, पर वह व्यक्तित्वविहीन होती है, अर्थात उनके रचयिताओं का पता नहीं होता है। ये समाज के किसी वर्ग और व्यक्ति विशेष से संबद्ध नहीं है। अपितु सम्पूर्ण समाज की धरोहर है, इसका उद्‌गम जन-साधारण की मौखिक परपंरा से होता है।[11]

काव्यकला के सौंदर्य और गुणों का इसमें अभाव रहता है। यद्यपि मिथिला में अनेक प्रकार की लोकगाथाओं का भंडार हैं। लेकिन उसमें कथा वर्गीकरण विषय के आकार-प्रकार की दृष्टि से तय किया गया है। अपने-अपने क्षेत्रों की लोकगाथा एवं गीतकथा अपने क्षेत्रों का विस्तृत सांस्कृतिक दस्तावेज है। जो अनेक सांस्कृतिक क्षेत्रों में एक ही गाथा को भिन्न-भिन्न परिवर्तनों के साथ गायी जाती है।[12]

अपने-अपने क्षेत्रों की संस्कृति अपनी-अपनी लोक गाथा में विद्यमान रहती है। इसी कारण गीतकथाओं एवं लोगाथाओं में प्राप्त शोभा और महत्ता के वर्णन सौंदर्य और शृंगार के चित्र, युद्ध के अनेक पक्षों के विवरण अधिक पूर्ण सशक्त एवं बलशाली होते हैं। नि:सन्देह काव्य की दृष्टि से लोक साहित्य के इस अंग का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं।

सभी रसो का सुन्दर चित्रण गाथाओं एवं गीतों में थोड़े-बहुत मात्राओं में परिलक्षित होता है। सहज भाव से प्रेम, मान और विरह के विभिन्न आकर्षक उदाहरण देखने को मिलता है। कभी-कभी लोकगाथाओं का व्यंग्य सीधा, सरल तथा स्पष्ट न होकर अत्यन्त तीव्र भी हो जाती है। राजा भरथरी की लोकगाथा में शान्ति और वैराग्य के सुन्दर उपदेश भरे पड़े हैं।[13]

लेकिन रंग-मंच पर इसका स्वरूप बदल जाता है। यह रंग-मंच कई सदियों से निम्न वर्गों के लोगों ने लोकनाट्य और लोगाथाओं को गाँवों एवं कसवे में प्रस्तुत करते हैं। विवाह, पर्व या अन्य विशिष्ट अवसरों पर इन लोकगाथाओं को प्रस्तुत किया जाता है। ठेढ ग्रामीण शब्दावली में इसका गायन होता है। लोक गाथाओं को गाने का भास अलग-अलग होता है। सब जगह सब लोकगाथाओं की अपनी-अपनी पहचान होती है। यानी जिस स्थान से लोकगाथा कही (बोली) जाती है, उस स्थान की भाषा को लोकगाथा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इन लोकगाथाओं में खुलकर उन सब बातों का प्रयोग किया गया है, जो सामन्ती मनोवृत्ति के आभिजात्य वर्ग को स्वीकार नहीं है। वस्तुत: लोक गाथाएँ सदियों से अपने वर्ग विशेष के बल पर जनमानस को हँसाती-रूलाती, उद्वेलित करती, संघर्ष की प्रेरणा देती, भवित भावना तैयार करती हुई अपनी, परम्परा रीति-रिवाज आदि अपने संस्कृतिक परिवेशों में ढ़लती चली आ रही है।[14]

डॉ. ब्रजकिशोर वर्मा मणिपद्म ने लोकगाथा और लोकदेवता पर सबसे अधिक कार्य किया है। मिथिला की लोक गाथाओं में प्रमुख है लोरिक विजय, नैका बनजारा, राजा सल्हेस, लवहरि-कुशहरि रायरणपाल, दुलरा-दयाल, अनंग-कुसमा आदि।[15]

इस तरह अधिकांश लोकदेवता समाज के अनपढ़ और अंत्यज्ञ वर्ग से आते हैं। ये लोकदेवता अपने कर्मों से नायकत्व ग्रहण कर लोकगाथा के रूप में लोक कंठ में बस गये।

रोग-शोक, समृद्धि, हर्ष आदि में इन लोकदेवों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी। लोक कल्याणार्थ इनका जन्म हुआ और लोक कल्याणार्थ ये अपने को समर्पित कर दिया। फलत: लोक कल्याण की भावना इनमें निहित है। अत: इनकी गाथा जनमानस के व्याप्त हो गई, जिसे हम लोकगाथा कहते हैं। मिथिला की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का अभिन्न अंग है, मिथिला की लोकगाथा।[16]

निष्कर्ष

मैथिली साहित्य में कविताएँ, उपन्यास, लघु कथाएँ, दस्तावेज और मैथिली भाषा में लिखी गई अन्य रचनाएँ शामिल हैं। मैथिली साहित्य में सबसे लोकप्रिय कवि विद्यापति (1350-1450) हैं, जिन्होंने आम लोगों की भाषा में कविताएँ लिखीं, उस समय जब संस्कृत राज्य की आधिकारिक भाषा थी। विद्यापति के बाद साहित्य में मैथिली भाषा अधिक प्रचलित हो गई।

भारतीय लोक संस्कृति मे मैथिली साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है। मैथिली अत्यंत मधुर भाषा है, अतएव यहाँ प्रचलित लोकगीत अत्यंत हृदय स्पर्शी है। मैथिली साहित्य के आरंभ से ही लोकसाहित्य की सामग्री प्राप्त होती है। महजातक में ब्राह्मणों द्वारा त्योहारों,मेलों आदि के अवसर पर जन मनोरंजन हेतु उच्च स्वर में गाने की प्रथा थी।

आमजन किसी भी सामाजिक समस्या को सबसे अधिक भोगता और उसके प्रभाव से प्रभावित होता है और इसी कारण वह अपनी भावों की तथा अभिव्यक्ति की सशक्त माध्यम ढूँढ़ती है और वह लोकगीतों के माध्यम से अपना दु:ख, अपनी पीड़ा, अपनी खुशी सभी भावों और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करता है। यही वजह है कि वह सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति तथा उसका हल भी लोकगीतों के माध्यम से तलाशता है। लोक की सर्वहितकारिणी भावना को वातावरण एवं परिस्थितियों के अनुरूप ढालकर जनमानस के बीच लोकहित के संदेश को पहुँचाना भी लोकगीतों का लोकधर्म है। ये लोकगीत निश्चित रूप से किसी भी क्षेत्र, किसी भी समाज की अमूल्य निधि है, जिनका पोषण एवं संवर्धन के साथ ही आने वाले नस्लों में इसका हस्तांतरण हमारा दायित्व है।

वस्तुत: लोक संस्कृति की अवधारणा वैदिक कर्मकाण्ड और आभिजात्य चिंतन के विरूद्ध है। सांस्कृतिक संक्रमण की स्थिति में लोक ने अपना देवाश्रम ग्राम्य गहबरों में स्थापित कर पूजोपासना की अपनी संहिता अपनायी और उसे कलामण्डित किया। फलत: आज मिथिला की लोक संस्कृति अपने भौगोलिक परिवेश, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और जनपदीय चिंतन की परम्परा में लोकधर्म, लोकसाहित्य और लोककला के विभिन्न आयामें में पल्लवित होकर अपनी विशिष्ट पहचान बनायी हुई है।

सन्दर्भ

1. राम महेन्द्र नारायण एवं पासवान फूलो - सल्हेस लोकगाथा साहित्य अकादमी, नई दिल्ली - 2007.
2. राम महेन्द्र नारायण - मैथिली लोकगाथा-कारिक पंजियार।
3. मिश्र (डॉ.) विश्वेश्वर - मैथिली लोकगाथाक विवेचन, मैथिली अकादमी, पटना।
4. मिश्र जे0 के0 - एन इन्ट्रोडक्शन टू द फोक लिटरेचर ऑफ मिथिला, तिरभुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद - 1951.
5. मैथिली लोक साहित्य, सं0 चन्द्र नाथ मिश्र अमर पृ0- 78 से उद्धृत
6. सोहर समदाओन: बंबई पुस्तक मंदिर मधुबनी पृं0- 67
7. जयकान्त मिश्र: इन्ट्रोडक्शन टू दी फोकलिटरेचर ऑफ मिथिला, इलाहाबाद, 1950 ई0
8. तेज नारायण लाल: मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, आगरा 1962 ई0
9. प्रफुल्ल कुमार सिंह मौन: मैथिली लोकसाहित्यक भूमिका, 1976 ई0
10. राजेश्वर झा: लोकगाथा विवेचन, 1974 ई0
11. महेन्द्र राम: मैथिली लोकमहागाथा कारिख पंजियार, 2002ई0
12. शिवमूर्ति सिंह वत्स: मिथिला की लोकगाथाएँ, दिल्ली, 1961 ई0
13. रामलोचन ठाकुर, मैथिली लोककथा, कोलकता, 1390 शाके
14. राम इकबाल सिंह राकेश, मैथिली लोकगीत, इलाहाबाद, 2012 ई0
15. रामप्रवेश सिंह, लोकयत और लोकदेवता, मुजफ्फरपुर, 1986 ई0
16. रामदेव झा, मैथिली लोक साहित्य, स्वरूप ओ सौन्दर्य, दरभंगा, 2002 ई0

विश्वव्यापी आर्थिक मंदी (1929) का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

अक्षय कुमार अंजनी

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, टी.एन.बी. विधि महाविद्यालय, भागलपुर

सार (Abstract)

विश्वव्यापी आर्थिक मंदी, जिसे 1929 की महामंदी भी कहा जाता है, 20 वीं सदी का सबसे विनाशकारी और लंबा चलने वाला आर्थिक संकट था। यह 1929 से शुरु होकर लगभग 1939 तक चला, जिसने पूरी दुनिया को आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से झकझोर कर रख दिया। इस मंदी ने दुनियाँ के लाखों लोगों को बेरोजगार कर दिया। लोगों की क्रय शक्ति खत्म हो गई। असंख्य लोग भोजन को तरस गए और गरीबी अपने चरम पर पहुँच गई। हजारों बैंक बंद हो गए और भारी संख्या में उद्योग-धंधे ठप्प पड़ गए। अंतराष्ट्रीय व्यापार में गिरावट आई और देशों ने अपनी अर्थव्यवस्था को बचाने के लिए भारी आयात-निर्यात शुल्क लगा दिए, जिससे वैश्विक व्यापार में लगभग 50% से अधिक की कमी आ गई। इसने लोकतांत्रिक व्यवस्था को कमजोर किया और तानाशाही सरकारों को बढ़ावा दिया। इसी माहौल में जर्मनी में हिटलर और नाजीवाद का उदय हुआ। भारत पर भी इसका गहरा असर पड़ा। कृषि उत्पादों की कीमतें गिरकर आधी हो गई और किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ गया। वे ऋणजाल में फँस गए। इस स्थिति ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ असंतोष बढ़ाकर स्वतंत्रता संग्राम को तीव्र किया। संक्षेप में यह मंदी सिर्फ शेयर बाजार का गिरना नहीं था, बल्कि यह मानव इतिहास का सबसे गहरा आर्थिक संकट था, जिसने दुनियाँ के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक आवोहवा को व्यापक रुप से प्रभावित किया।

मुख्य शब्द (Keywords):- महामंदी, क्रयशक्ति, गोल्ड स्टैंडर्ड, मार्क, सब्सिडी, मालगुजारी, उपभोक्ता, स्वदेशी, उत्पाद शुल्क, आत्मनिर्भर।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध-पत्र में गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध प्रविच्चि का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन के लिए मुख्यत: द्वितीयक स्त्रोतों (Secondary sources) का उपयोग किया गया है, जिसमें इतिहास संबंधी ग्रंथ, शोध-पुस्तकें एवं प्रमाणिक लेख शामिल है। अध्ययन में वस्तुनिष्ठता (objectivity) बनाए रखते हुए तथ्यों का क्रमबद्ध एवं तार्किक विश्लेषण किया गया है।

इस प्रकार, प्रस्तुत शोध प्रविधि के माध्यम से विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का विश्व एवं भारत, की अर्थव्यवस्या पर पड़ने वाली प्रभावों का सम्यक अध्ययन किया गया है।

भूमिका:- महामंदी से अभिप्राय उत्पादन की अतिशयता और मूल्य, मजदूरी, निवेश, रोजगार, व्यापार में अभूतपूर्व शिथिलता से है। आर्थिक मंदी की शुरूआत, अमेरिका से हुई। 29 अक्टूबर 1929 को वॉल स्ट्रीट शेयर बाजार धाराशायी हो गया।[1] शेयरों की ताबड़तोड़ बिक्री से शेयर बाजार में भारी गिराबट आ गई। बाजार में अनबिके माल का अंबार लग गया और मिल मालिकों को बड़ी संख्या में मजदूरों की छटनी करनी पड़ी। इससे भीषण बेरोजगारी उत्पन्न हो गयी और लोगों की क्रयशक्ति लगभग शून्य हो गई। इससे उद्योगों के साथ-साथ कृषि उत्पादों के मूल्य में और गिरावट आ गई। उत्पादकों ने इसकी भरपाई करने के लिए और ज्यादा से ज्यादा उत्पादन किया परंतु क्रयशक्ति के अभाव में लोग सस्ती चीजें खरीदने की स्थिति में भी नहीं रहा। अमेरिका से प्रारंभ हुए इस आर्थिक मंदी ने शिघ्र ही पूरी दुनिया की अपनी गिरफ्त में ले लिया। इससे अमेरिका के साथ-साथ पूरा विश्व प्रभावित रहा, भारत इसका अपवाद नहीं था।

अमेरिका में महामंदी के कारण लाखों लोग बेरोजगार हो गए, सैकड़ों बैंक बंद हो गए और उसका आयात निर्यात बूरी तरह से प्रभावित हुआ। 1933 में यहाँ बेरोजगारों की संख्या 1 करोड़ 26 लाख 34 हजार थी, जो कुल श्रमशक्ति का 25 प्रतिशत था। यहाँ 1929 में 640 और 1930 में 1553 बैंक बंद होगा। 1929 में अमेरिका का निर्यात 5 अरब 20 करोड़ डॉलर और आयात 4 अरब 40 करोड़ डॉलर का था जो 1932 में घटकर क्रमश: 1 अरव 60 करोड़ डॉलर एवं 1 अरब 30 करोड़ डॉलर रह गया।[2] महामंदी से उबरने के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी० रुजवेल्ट को पूंजीवादी व्यव्यस्था से इतर छमू कमंस लाना पड़ा जिसके तहत Relief (राहत), Recovery (मंदी से बाहर आना) और Reform (सुधार) की बात कही गई।[3] इंगलैण्ड में भयंकर बेरोजगारी से त्रस्त लोगों ने लंदन तक लाँग मार्च निकाला। मंदी के कारण अगस्त 1931 में मैकडोनाल्ड सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद बनी सर्वदलिय सरकार ने सितम्बर 1931 में 'गोल्ड स्टैंडर्ड को त्याग दिया।[4] विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी को एक विशाल राशि हर्जाने के रूप में मित्र राष्ट्रों को देना था। इसके लिए जर्मनी को अपनी मुद्रा 'मार्क' का भारी अवमूल्यन करना पड़ा। इसकी वजब से मार्क के मूल्य में भारी कमी आ गई और जर्मनी को अभूतपूर्व मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा। 1922 में जर्मन मार्क की कीमत 1914 की तुलना में केवल 1 प्रतिशत रह गई थी। इसके बाद डावेस योजना के तहत जर्मनी को

अमेरिका से भारी ऋण प्राप्त हुआ जिससे वह क्षतिपूर्ति भुगतान और अपनी उद्योगों में निवेश कर पाया।[5] 1929 के महामंदी के बाद जर्मन आयात निर्यात ठप्प हो गया और वहाँ भयंकर बेरोजगारी व्याप्त हो गई। 1928 में यहाँ 14 लाख लोग बेरोजगार थे जिसकी संख्या 1932 में बढ़कर 60 लाख हो गई। बढ़ती बेरोजगारी ने जर्मनी में बाइमर गणतंत्र के पतन और हिटलर के उत्थान के मार्ग को प्रशस्त कर दिया।[6] सोवियन रूस की अर्थव्यवस्था पर आर्थिक मंदी का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जापान में मंदी के कारण रेशम और चावल के निर्यात पर बहुत बूरा प्रभाव पड़ा। इन देशों के अलावे मंदी ने दुनिया के विकसित एवं विकासशल देशों को किसी न किसी रूप में आवष्य प्रभावित किया।

भारत पर प्रभावः-

1929 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी का भारत की अर्थव्यवस्था पर बहुत बूरा प्रभाव पड़ा। महामंदी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को मुख्यतः दो रूपों मे प्रभावित किया। प्रथम-मूल्यों में भारी गिरावट, खासकर कृषि उत्पादों के मूल्यों में और दूसरा निर्यात में भारी कमी। अखिल भारतीय सामान्य मूल्य सूचकांक (1873-100) जो 1929 में 203 था क्रमिक रूप से घटते हुए 1934 में मात्र 119 रह गया था। 1929 और 1934 के बीच गेहूँ और अन्य नकदी फसलों की कीमत में 50 फीसदी से अधिक की गिरावट आ गई थी। बंगाल में चावल का मूल्य (1929-100) 1932 में गिरकर 45.9 तक और जूट 1934 मे फिसलकर 43.5 पर आ गया था।[7] कपास की कीमत 1920 के दशक के मध्य में जहाँ 70 पैसा प्रति पाउंड था वह 1930 में घटकर 22 पैसा प्रति पाउंड रह गया। अन्य नकदी फसलों के मूल्य में भी गिरावट का असर देखा गया। कृषि उत्पादों के मूल्य में भारत गिरावट के कारण भारतीय किसानों की आय में कमी आ गई। आय मे कमी के कारण किसानों को राजस्व, लगान और ब्याज के भूगतान में भारी मुसिबतों का सामना करना पड़ा। विकसित देशों की सरकारों ने मंदी के समय अपने किसानों को सब्सिडी देकर राहत पहुँचाने का काम किया। वहीं भारत की औपनिवेशिक सरकार ने सब्सिडी देना तो दूर उल्टे मालगुजारी और लगान की दर को ऊँचा बनाए रखा और उसे सख्ती से वसूल किया। इससे किसानों की स्थिति दयनिय हो गई।[8] अपनी खराब स्थिति के कारण बहुत से किसानों ने खेती करना छोड़ दिया, जिसकी वजह से कृषित भूमि के क्षेत्रफल में कमी आ गई। 1930-31 में जहाँ देश में खाद्य फसलों के अंतर्गत 15 करोड़ 45 लाख एकड़ और अखाद्यय फसलों के अंतर्गत 5 करोड़ 66 लाख एकड़ भूमि थी वह 1935-36 में घटकर क्रमशः 15 करोड़ 32 लाख एकड़ और 5 करोड़ 65 लाख एकड़ ही रह गई। भारतीय किसानों पर मंदी का असर निरपेक्ष और सापेक्ष दोनों तरीके से पड़ा। इस समय कृषि उत्पादों के मूल्य में औद्योगिक उत्पादों के वनिस्पत ज्यादा कमी आई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि किसानों को अपना उत्पाद कम कीमत पर बेचना पड़ा रहा था और उपभोक्ता वस्तुओं की खरीद पर उसे जयादा पैसा खर्च करना पड़ रहा था। अर्थात किसानों को मंदी के कारण दोहरी मार का सामना करना पड़ा।[9]

प्रथम विश्वयुद्ध भारतीय उद्योगों के लिए एक अवसर के समान था। इस समय भारत में यूरोपीय वस्तुओं का आयात लगभग बंद सा हो गया था। इससे भारत में सूती वस्त्र, जूट, लोहा एवं इस्पात, उनी, चमड़ा, शीशा, सीमेंट, कागज, रंग, तेल, रसायन आदि उद्योगों को फलन-फूलने का भरपूर मौका मिला। परंतु, भारतीय उद्योग अपने आधारभूत कमजोरियों की वजह से इस मौके का पूरा-पूरा लाभ उठाने से वंचित रह गय। दरअसल इस समय भारत में ब्रिटेन और जर्मनी से होने वाली वस्तुओं के आयात का स्थान जापानी एवं अमेरिकी उत्पादों ने ले लिया, जिससे भारतीय उद्योग को पूरा लाभ न मिल सका। सरकार ने युद्ध के दौरान महसूस किया कि भारत औद्योगिक दृष्टि से कमजोर है और उसके उद्योगों की संरक्षण की आवश्यकता है। इसके निमित्त सरकार ने अपनी नीतियों में परिवर्तन किया। जिसके बाद भारतीय उद्योगों ने अच्छी प्रगति की।[10] युद्ध के बाद भी कुछ वर्षों तक भारतीय उद्योगों की प्रगति जारी रही। इसे असहयोग आंदोलन के स्वदेशी और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार से भी मदद मिला, खासकर वस्त्र उद्योग को। गांधजी के स्वेदशी और बॉयकॉट का मूल उद्देश्य ग्रामीण् हथकरधा उद्योग को पुनर्जिवित करना था। परंतु, इसका वास्तविक लाभ कपड़ा मिलों को प्राप्त हुआ। असहयोग, स्वेदशी और बॉयकॉट से भारतीय कपड़ा उद्योग को एक सामाजिक समर्थन प्राप्त हुआ था। 1921-22 के दौरान भारतीय उद्योगपतियों ने युद्धकालीन लाभ के फलस्वरूप विदेशों से मशीनों का आयात कर अपने उद्योगों को विस्तारित किया था। इसी समय घनष्याम दास बिड़ला ने कई अंग्रेजी कारखानों को खरीदकर अपने कारोबार को बढ़ाने का काम किया।[11]

1929 के आर्थिक संकट से भारतीय उद्योग भी अछुता नहीं रहा। इस समय भारतीय उद्योगें को मंदी और सस्ती जापानी उत्पादों से तीव्र प्रतिस्प्रधा करना पड़ा रहा था। इससे बचने के लिए मिल मालिकों ने मजदूरी और मजदूरों की संख्या दोनों को कम करने का प्रयास किया। जिसकी वजह से कई बार बड़ी-बड़ी हड़तालों हुई। इससे उत्पादन और लाभांश पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। 1929 से 1933 के दौरान भारतीय निर्यात का मूल्य 339 करोड़ रूपये से घटकर 135 करोड़ रूपया और आयात 260 करोड़ रूपया से घटकर 135 करोड़ रूपये पर आ गया।[12] ऐसी विषम परिस्थितियों में सरकार ने भारतीय उद्योगों को संरक्षण देने का निश्चय किया। इसके तहत सरकार ने दो तरह के कार्य किए। प्रथम, 1925 में उद्योगों के उत्पादन पर लगने वाला विशेष उत्पाद शुल्क को समाप्त कर दिया गया। दूसरा, आयात शूल्क में भारी वृद्धि कर भारतीय उद्योगों को जापान के सस्ते उत्पाद से संरक्षण प्रदान करने का प्रयास किया गया। 1933 में जापान से आयात होने वाली वस्तुओं पर 75 प्रतिशत का भारी आयात शुल्क लगाया गया।[13] मंदी काल में यूरोप में मशीनें सस्ती हो गई थी। इसका लाभ उठाकर भारतीय उद्योगपतियों ने इसका बड़े पैमाने पर आयात कर अपने उद्योगों को विस्तार देने का काम किया। इसका विशेष लाभ सूती वस्त्र उद्योग को मिला। उपरोक्त वहज से सूती मिलों की संख्या 1924-25 में जहाँ 258 थी वह 1939-40 में बढ़कर 389 हो गई। इसी काल अवधि में हथकरधों की संख्या 1.2 लाख से बढ़कर 2 लाख हो गई। परिणामस्वरूप इस समय सूती धागों के उत्पादन में 53 प्रतिशत और सूती वस्त्र के उत्पादन में 93 प्रतिशल की वृद्धि हो गई।[14] लेकिन इस औद्योगिक प्रगति से मजदूरों को कई विशेष लाभ नहीं हुआ। वह अभी भी तंगी और गरीबी में गुजर, बसर करने को मजबूर था। हलांकि मंदी के कारण खाद्यान और अन्य वस्तुओं के सस्ता होने का लाभ उन्हें आवश्यक मिला।

कुल मिलाकर भारतीय अर्थव्यवस्था अन्य देशों की अपेक्षा मंदी के प्रभाव से जल्द बाहर निकल गया क्योंकि कुछ क्षेत्रों में वह आत्मनिर्भर था। भारतीय अर्थव्यस्था कुछ वस्तुओं के आयात एवं निर्यात पर पूरी तरह से दूसरे देशों के उपर निर्भर नहीं था। लेकिन इस महामंदी के दौरान भारत के असंख्य लोगों को अकथनिय पीड़ा का सामना करना पड़ा, जिसकी अभिव्यक्ति राष्ट्रीय आंदोलन के माध्यम से हुई।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. भास्कर, अरविन्द, आधुनिक विश्व इतिहास, कमल पब्लिकेशन, सीकर, राजस्थान, 2022, पृ० 203
2. दात्तार, किरन, अमरीका का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2022, पृ. 236-37.
3. देशपाण्डे, अनिरूद्ध, विश्व इतिहास के प्रमुख मुद्दे: बदलते आयाम, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2022, पृ० 116.
4. महाजन, स्नेह, बीसवीं शताब्दी का विश्व इतिहास: एक झलक, भाग-1, हिन्दी माध्यम कार्यन्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2022, पृ. 170.
5. वहीं, पृ. 158.
6. देशपाण्डे, अनिरुद्ध, विश्व इतिहास के प्रमुख मुद्दे: बदलते आयाम, पूर्वोक्त, पृ० 105-07
7. सरकार, सुमित, आधुनिक भारत 1885-1947, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, 2015, पृ. 277-78.
8. भट्टाचार्य, सब्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, 2019, पृ. 309-10.
9. पाण्डेय, श्रीधर, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2021, पृ. 150.
10. पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017, पृ० 88-89.
11. भट्टाचार्य, सष्यसाची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, पूर्वोक्त, पृ.127
12. पाण्डेय, धनपति, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, पूवोक्त, पृ. 89.
13. भट्टाचार्य, सष्यासची, आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850-1947, पूर्वोक्त, पृ. 136
14. वही, पृ० 136

भारत में वस्तु एवं सेवा कर

शांति पुरती

Assistant Professor Noamundi College Noamundi

भारत में वस्तु एवं सेवा कर की शुरूआत इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष टैक्स सुधारो में से एक है, GSt~ से पहले भारतीय कर प्रणाली बहुत ही जटिल प्रणाली थी जिसमें केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा लगाई गई कई अप्रत्यक्ष कर भी थे। GSt सुव्यवस्थित कर संरचना की शुरूआत करो के कैस्केडींग प्रभाव को कम करना और एक एकीकृत कर प्रणाली का निर्माण करना।

GSt~ से पहले भारत में टैक्सः-

VAt~ _राज्य स्तर का कर):- Value Added Tax एक राज्य के भीतर वस्तुओं की बिक्री पर राज्य स्तर का टैक्स था। इसने अधिकांश राज्यों में बिक्री कर को बदल दिया और उत्पाद क्षेणी के आधार पर अलग-अलग दरों पर लिया गया था। वैट नियम अलग अलग राज्यों के भिन्न-भिन्न होता है।

सेवा करः- टेलीकॉम, बैंकिग, विज्ञापन और कई प्रोफशनल सर्विस में यह एक केन्द्रीय कर था। समय के साथ भारत के सेवा क्षेत्र का विस्तार होता चला गया, चूंकि माल और सेवाओं पर अलग-अलग टैक्स लगाया था इसलिए इनमें विवाद उत्पन्न होना स्वाभाविक था विशेषतौर पर साफ्टवेयर, वर्क कान्टैक्ट्र, रेस्टोरेन्ट आदि क्षेत्र में।

कस्टम डयूटीः- सीमा शुल्क आयात पर लगाया गया था और इसमें मूल्य सीमा शुल्क और अतिरिक्त शुल्क जैसे घटक शामिल थे। जिनका उदेश्य घरेलू करो को संतुलित करना था आयातको को अक्सर डयूटी के कई स्तरो से निपटाया जाता है और क्रेडिट की उपलब्धता, डयूटी के प्रकार और समय पर प्रचालित नियमों पर निर्भर करती है इससे सीमापार खरीद और कीमत अधिक जटिल हो गई है।

केन्द्रीय बिक्री करः- केन्द्रीय बिक्री कर (CST) वस्तुओं की अंतर-राज्यीय बिक्री पर लागू हालांकि यह राज्य द्वारा एकत्र किया जाता था लेकिन इसे केन्द्रीय कानून द्वारा षासित किया गया था इस कर के कारण वेयर हाउस स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित किया गया।

उत्पाद शुल्कः- उत्पाद शुल्क भारत में वस्तुओं के निमार्ण पर एक केन्द्रीय टैक्स था। यह तब लागू होता है जब माल का उत्पादन किया जाता है।

वस्तु एंव सेवा कर के लिए संवैधानिक ढॉचा

- वस्तु एंव सेवा कर को संवैधानिक आधार प्रदान करने के लिए संविधान (122वां संशोधन) विधेयक 2014 में संसद में पेश किया गया था।
- इसी विधेयक को 2016 में (101वां संशोधन) अधिनियम के रूप में पारित किया गया था।
- इस संशोधन के द्वारा संविधान में 3 नए अनुच्छेदों को जोड़ा गयाः

- अनुच्छेद 246 Aः- संसद और राज्य विधानसभाओं को दोनों को GST से संबंधित कानून बनाने की समवर्ती शक्रियां होगी, यद्वपि संसद के पास वस्तुओं का सेवाओं के अंतर-राज्य व्यापार के मामले में कानून बनाने की विशेष शक्रिय बनी रहेगी।
- अनुच्छेद 269 Aः- अंतर-राज्य व्यापार के मामले में ळैज् को केन्द्र सरकार द्वारा आरोपित और संग्रहित किया जाएगा लेकिन वस्तु एवं सेवा कर परिषद की सीफारिशों पर कानून द्वारा निर्धारित तरीके से कर राजस्व को केन्द्र द्वारा केन्द्र और राज्यों के बीच विभाजित किया जाएगा।
- अनुच्छेद 279 Aः- यह भारत के राष्ट्रपति को GST परिषद का गठन करने का अधिकार देता है और इसकी संरचना एवं कार्य प्रणाली को परिभाषित करता है।

वस्तु एंव सेवा कर के लिए कानूनी ढॉचा :-

- संविधान (101वां सशोधन) अधिनियम के पारित होने के बाद वस्तु एंव सेवा कर के लिए कानूनी ढॉचे को परिभाषित करने के लिए संसद द्वारा निम्नलिखित अधिनियम पारित किए गएः
  - केन्द्रीय वस्तु एंव सेवा कर अधिनियम, 2017
  - एकीकृत वस्तु एंव सेवा कर अधिनियम, 2017
  - वस्तु एंव सेवा कर (राज्यों की अतिपूर्ति) अधिनियम, 2017
  - केन्द्र शासित प्रदेश वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम, 2017

- साथ ही प्रत्येक राज्य ने अपना राज्य वस्तु एवं सेवा कर अधिनियम पारित किया।
- ये अधिनियम मिलकर वस्तु एंव सेवा कर को एक कानूनी ढॉचा प्रदान करते है।

GST की चुनौतियां

(1) वस्तु एंव सेवा कर के गंतव्य आधारित कर होने के कारण, विनिर्माण करने वाले राज्यों को बड़े पैमाने पर राजस्व की हानि होती है।

(2) पूर्व में आरोपित किए गए कई करो से जमा किए गए राजस्व के स्तर से संतुलित करने के लिए इसमे कुछ वस्तुओं पर उच्च कर दर की संभवनाओं को जन्म दिया। इसलिए राजस्व तटस्थ कर (RNR) अधिक है।

(4) GST के कारण राज्यों की वितीय स्वायतता में कमी आई है।

बैकों और बीमा कंपनियों द्वारा ळैज् के तहत कई पंजीकरणो की आवश्यकता पर चितां जताई गई है।

(5) SGST और CGST इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) कर पार-उपयोग (Cross-Utilzed) नहीं किया जा सकता है। केवल अंतर-राज्य वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति के मामले में अपवाद है।

GST का महत्वः-

(1) एक साझा राष्ट्रीय बाजार का निर्माणः- यह भारत के लिए एक एकीकृत साझा राष्ट्रीय बाजार बनाने में मदद करेगा। यह विदेशी निवेश और मेक इन इंडिया अभियान को भी बढ़ावा देगा।

(2) काराधान को सुव्यवस्थित करनाः- केन्द्र और राज्यों तथा केन्द्रशासित राज्यों के बीच कानूनों, प्रकियाओं और कर की दरो में सामंजस्य स्थापित होगा।

(3) कर चोरी को हतोत्साहित करनाः- समान SGST और IGST दरे पड़ोसी राज्यों के बीच तथा अंतर राज्यीय बिक्री के बीच दर मध्यस्थत को समाप्त करके चोरी के लिए प्रोत्साहन को कम करेगी।

(4) भष्टाचार में कमी - IT के अधिक उपयोग से करदाता और कर प्रशासन के बीच मानवीय संर्पक कम होगा, जो भष्टाचार को कम करने में एक लंबा रास्ता तय करेगा।

(5) माध्यमिक क्षेत्र को बढ़ावा देना - यह निर्यात और विनिर्माण गतिविधि को बढ़ावा देगा, अधिक रोजगार पैदा करेगा और इस प्रकार लाभकारी रोजगार के साथ सफल घरेलू उत्पाद में वृद्वि करेगा जिसमे वास्ताविक आर्थिक विकास होगा।

निष्कर्षः-

वस्तु एंव सेवा कर से निसंदेह रूप से भारत के आर्थिक परिदृश्य में एक ऐतिहासिक क्षण को चिन्हित किया है। अप्रत्यक्ष कर को सुव्यवस्थित करके, इस प्रणाली ने अधिक कुशल और पारदर्शी कर व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त किया है। शुरूआती चुनौतियों और चल रहे समायोजनों के बावजूद, GST आर्थिक विकास को बढ़ावा देने कर अनुपालन में सुधार करने और सरकार के लिए अधिक मजबूत राजस्व प्रणाली बनाने का वादा करता है। जैसे की भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास जारी है। चुनौतियों का समाधान करने और अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए GST ढॉचे को ठीक किया जाना चाहिए।

संदर्भ सूचीः-

(1) Kaushal Kumar Agrwal & Basic to advance GST Law

(2) वी. के. सिंधानिया - GST: संबंध एवं अनुपालन

(3) नीति भारती और सुमित कुमार -GST समझौते और परामर्श

(4) गौरव कुमार जैन - GST क्या है और इसके फायदे क्या है?

(5) ब्रजेश जायसवाल -The Complete GST Guide

हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों में नाथ-संप्रदायः साधना, समाज और संस्कृति का अंतर्संबंध

दीपिका

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० संजीव कुमार

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सारांश

यह शोध-पत्र हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों में नाथ-संप्रदाय के माध्यम से साधना, समाज और संस्कृति के परस्पर संबंधों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि नाथ-साहित्य पर आधारित उपन्यास केवल ऐतिहासिक या लोककथात्मक आख्यान नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सांस्कृतिक चेतना, आध्यात्मिक अनुभव और सामाजिक संरचना के जटिल अंतर्संबंधों को उद्घाटित करते हैं। नाथ परंपरा में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ और भर्तृहरि जैसे पात्र केवल व्यक्तित्व नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतीक हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य के भीतर चलने वाले द्वंद्व भोग और वैराग्य, प्रवृत्ति और निवृत्ति, तथा इच्छा और संयम को अभिव्यक्ति मिलती है।

इन उपन्यासों में साधना को जीवन से पृथक न मानकर जीवन की आंतरिक प्रक्रिया के रूप में देखा गया है, जहाँ आत्मानुशासन, गुरु-परंपरा, योग और चेतना का विकास प्रमुख तत्त्व बन जाते हैं। साथ ही, नाथ-साहित्य सामाजिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह जाति-भेद, पाखंड, बाह्याडम्बर और असमानता का विरोध करते हुए समता, मानवता और लोकमंगल की स्थापना करता है।

संस्कृति के स्तर पर यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि नाथ-आधारित उपन्यास भारतीय संस्कृति के समन्वयवादी स्वरूप को प्रकट करते हैं, जहाँ योग, तंत्र, लोकविश्वास और दार्शनिक चेतना एक साथ सक्रिय रहते हैं। इस प्रकार ये उपन्यास अतीत का पुनर्पाठ करते हुए वर्तमान समाज के लिए भी वैकल्पिक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि प्रस्तुत करते हैं। अंततः यह कहा जा सकता है कि नाथ-संप्रदाय आधारित जीवनीपरक उपन्यास साधना, समाज और संस्कृति के बीच गहरे अंतर्संबंध को उजागर करते हुए भारतीय साहित्य में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

मुख्य शब्दः नाथ-संप्रदाय, जीवनीपरक उपन्यास, साधना, भारतीय संस्कृति, सामाजिक चेतना, समता, वैराग्य, योग-दर्शन, गुरु-परंपरा, सांस्कृतिक अध्ययन

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में जीवनीपरक उपन्यास ऐसी विधा है जिसमें किसी ऐतिहासिक, लोकप्रसिद्ध, आध्यात्मिक या सांस्कृतिक व्यक्तित्व के जीवन को केवल घटनाओं के क्रम में नहीं, बल्कि उसके युगीन संदर्भ, आत्मसंघर्ष, वैचारिकता और सांस्कृतिक अर्थों के साथ प्रस्तुत किया जाता है। नाथ-संप्रदाय पर आधारित हिंदी के जीवनीपरक उपन्यास इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखते हैं, क्योंकि इनमें जीवन-वृत्त साधारण जीवनी न रहकर साधना-यात्रा, सांस्कृतिक पुनर्पाठ और सामाजिक विमर्श का रूप ग्रहण कर लेता है। नाथ-साहित्य पर आधारित हिंदी के जीवनीपरक उपन्यास भारतीय संस्कृति की बहुस्तरीय संरचना को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं, क्योंकि ये इतिहास, लोककथा और अध्यात्म के त्रिकोण में विकसित होते हैं और व्यक्ति-जीवन को सांस्कृतिक अर्थ प्रदान करते हैं।

नाथ-संप्रदाय भारतीय साधना-परंपरा का ऐसा आयाम है जिसमें योग, तंत्र, शैव, शाक्त, सिद्ध, लोकविश्वास, गुरु-परंपरा और सामाजिक प्रतिरोध एक साथ उपस्थित हैं। इसे केवल योग-साधना का साहित्य मानना उसके व्यापक सांस्कृतिक अर्थ को सीमित करना होगा। नाथ-साहित्य भारतीय चिंतन की उन धाराओं का संगम है जहाँ धर्म, तंत्र, योग, लोकविश्वास, सामाजिक अनुभव, आध्यात्मिक अनुशासन और मानवीय अंतर्द्वंद्व एक साथ सक्रिय रहते हैं। इसीलिए नाथ-संप्रदाय पर आधारित उपन्यासों में कथा और साधना अलग-अलग धरातल नहीं हैं, बल्कि कथा स्वयं साधना की सांकेतिक भाषा बन जाती है।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने जाग मछन्दर गोरख आया के संदर्भ में लोककल्पना की भूमिका स्पष्ट करते हुए लिखा है- "वैज्ञानिक युग में लोक कल्पना का महत्त्व और प्रासंगिकता है क्योंकि उसमें कल्पना से तथ्य को अतिक्रमित किया जाता है। लोक कल्पना तथ्य के परे जाती है और मानवीय संभावनाओं को उजागर करती हैं"। यह कथन नाथ-विषयक उपन्यासों की व्याख्या के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इन उपन्यासों में लोककथा, मिथक और चमत्कार का प्रयोग यथार्थ से पलायन के लिए नहीं, बल्कि मानवीय चेतना की संभावनाओं को उद्घाटित करने के लिए किया गया है।

1. जीवनीपरक उपन्यास

जीवनीपरक उपन्यास वह रचना है जिसमें किसी ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, पौराणिक या लोकप्रसिद्ध व्यक्तित्व के जीवन को कथात्मक रूप में पुनर्सृजित किया जाता है। इसमें तथ्य और कल्पना दोनों का समन्वय होता है, परंतु कल्पना मनमानी नहीं होती; वह सांस्कृतिक सत्य को व्यक्त करने का माध्यम बनती है। नाथ-संप्रदाय आधारित जीवनीपरक उपन्यासों में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ और भर्तृहरि जैसे पात्र केवल जीवन-वृत्त के पात्र नहीं हैं, बल्कि वे मानवीय चेतना के प्रतीक हैं। नाथ-संप्रदाय आधारित उपन्यासों में कथानक केवल घटनाओं का संगठन नहीं, बल्कि साधना-यात्रा का रूप है; संवाद केवल वार्तालाप नहीं, बल्कि उपदेश, चुनौती और आत्मबोध का माध्यम हैं; पात्र केवल व्यक्ति नहीं, सांस्कृतिक प्रतीक भी हैं।

2. नाथ-संप्रदाय

नाथ-संप्रदाय भारतीय योग-साधना की ऐसी परंपरा है जिसमें आदिनाथ शिव, मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ केंद्रीय व्यक्तित्व माने जाते हैं। यह परंपरा केवल धार्मिक संगठन नहीं, बल्कि योग, तंत्र, सिद्धमत, अवधूत परंपरा और लोकधर्मी चेतना का समन्वित रूप है। कौलज्ञान निर्णय की भूमिका में नाथ-संप्रदाय को "गंगा-यमुनी संगम" कहा गया है- "नाथ-सम्प्रदाय एक ऐसा गंगा-यमुनी संगम है जहाँ आकर दो नदियाँ परस्पर मिलकर एक नए तीर्थ का निर्माण करती हैं। इनमें एक नदी तो योग की है और दूसरी तंत्र की है"। इससे स्पष्ट है कि नाथ-संप्रदाय किसी एकध्रुवीय साधना-मार्ग का नाम नहीं, बल्कि विविध साधनात्मक और सांस्कृतिक धाराओं का संश्लेष है।

3. साधना

नाथ-साहित्य में साधना का अर्थ केवल योगाभ्यास, आसन, प्राणायाम या मंत्र-जप नहीं है। यह व्यक्ति की संपूर्ण सत्ता देह, प्राण, मन, चेतना, आहार, व्यवहार, स्मृति, गुरु-श्रद्धा और आत्मबोध का क्रमिक संस्कार है। साधना व्यक्ति को भीतर से रूपांतरित करती है और उसे सामाजिक उत्तरदायित्व की दिशा में भी जाग्रत करती है। नाथ-साहित्य में साधना केवल आध्यात्मिक अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन का केंद्रीय तत्त्व है; यह मनुष्य को भीतर से बदलती है, उसके चित्त को शुद्ध करती है और उसे समाज के प्रति उत्तरदायी बनाती है।

4. समाज

नाथ-साहित्य में समाज केवल जाति, वर्ग, सत्ता या धार्मिक संगठन का नाम नहीं है। यह मनुष्य की गरिमा, समानता, लोकमंगल और नैतिक उत्तरदायित्व का क्षेत्र है। जाग मछन्दर गोरख आया में मत्स्येन्द्रनाथ का कथन "कोई नीच नहीं, कोई ऊंच नहीं परम बंधु!" नाथ-दृष्टि की समतामूलक चेतना को स्पष्ट करता है। यहाँ समाज का आधार जन्म नहीं, बल्कि आचरण, संवेदना और मनुष्यता है।

5. संस्कृति

नाथ-साहित्य में संस्कृति बाहरी आचार-संहिता या परंपरा का स्थिर संग्रह नहीं है। यह मनुष्य के भीतर घटित होने वाली आत्मपरिष्कार, समन्वय, साधना, समता और लोकमंगल की प्रक्रिया है। संस्कृति का अर्थ यहाँ व्यक्ति और समाज के बीच चेतनात्मक संबंध से है। यहाँ संस्कृति को जीवित अनुभव, संघर्ष, रूपांतरण और समन्वय की सक्रिय प्रक्रिया माना गया है, जिसमें लोकस्मृति, साधना, आत्मसंयम, करुणा, समता और वैराग्य एक-दूसरे से जुड़े हैं।

नाथ-संप्रदाय और जीवनीपरक उपन्यासों का संबंध

नाथ-संप्रदाय से जुड़े हिंदी जीवनीपरक उपन्यासों में तीन प्रमुख व्यक्तित्वों का विशेष महत्व है- मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ और भर्तृहरि। ये तीनों नाथ-परंपरा के तीन अलग-अलग आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ में रहस्य, शक्ति और तांत्रिक-योगिक समन्वय का रूप दिखाई देता है; गोरखनाथ में अनुशासन, संगठन, हठयोग और लोकजागरण की शक्ति है; और भर्तृहरि में भोग, सत्ता, प्रेम, मोहभंग और वैराग्य के बीच झूलते मनुष्य का गहरा आंतरिक द्वंद्व प्रकट होता है।

जाग मछन्दर गोरख आया में विश्वम्भरनाथ उपाध्याय मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ को केवल गुरु-शिष्य के रूप में नहीं, बल्कि मानव-मन के दो प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे लिखते हैं- "मनुष्य का मन मत्स्येन्द्र है और अनुशासन या संयम के प्रतीक गोरक्षनाथ हैं"। यह कथन नाथ-संप्रदाय आधारित उपन्यासों के मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक अर्थ को खोलता है। मत्स्येन्द्रनाथ चंचल, आकृष्ट और अनुभवशील मन के प्रतीक हैं, जबकि गोरखनाथ संयम, अनुशासन और जागरण के प्रतीक हैं।

रांगेय राघव के धूनी का धुआँ में गोरखनाथ को केवल योगी नहीं, बल्कि समाज-संशोधक और सांस्कृतिक पुनर्गठक के रूप में देखा गया है। गोरखनाथ ने योग को समाज के लिए उपयोगी बनाया और निम्न जातियों तथा उपेक्षित वर्गों के लिए एक नई साधना-दृष्टि प्रदान की। "गोरख का योगि-मार्ग एक भूमि थी जिस पर असंख्य निम्न जातियों ने त्राण पाया था"। इस कथन से नाथ-संप्रदाय के सामाजिक पक्ष का उद्घाटन होता है।

जोगी मत जा में भर्तृहरि को "प्रतिनिधि भारतीय चरित्र" कहा गया है। उनके भीतर अनुराग और वैराग्य, प्रवृत्ति और निवृत्ति, राजसत्ता और संन्यास का द्वंद्व चलता है। उपाध्याय के अनुसार भर्तृहरि का जीवन इस प्रश्न का प्रतीक है कि "द्वन्द्वग्रस्त जीवन को जिया जाए या उसका अतिक्रमण कर उच्चतर मूल्यों की खोज की जाए"। भर्तृहरि का चरित्र नाथ-साहित्य में उस मनुष्य का प्रतिनिधित्व करता है जो संसार को भोगकर भी उससे ऊपर उठने की आकांक्षा रखता है।

साधना का आयाम: आत्मरूपांतरण और गुरु-परंपरा

नाथ-संप्रदाय में साधना व्यक्ति के भीतर से आरंभ होकर समाज तक विस्तृत होती है। साधना का लक्ष्य केवल निजी मुक्ति नहीं, बल्कि चेतना का ऐसा विकास है जिसमें मनुष्य अपने भीतर के मोह, अहंकार, वासना, अज्ञान और विभाजन-बुद्धि पर विजय प्राप्त करता है। जाग मछन्दर गोरख आया में गोरखनाथ

का "जाग मच्छन्दर गोरख आया" का मंत्र केवल गुरु को जगाने का प्रयास नहीं है, बल्कि साधना-परंपरा के विचलन को ठीक करने का सांस्कृतिक संकेत है। उपन्यास में यह दृश्य इस प्रकार आता है- "जाग! जाग! जाग! जाग मच्छन्दर जाग!... 'जाग' शब्द कभी तो आकाश को गुंजाता, कभी परिवेश को... वह शब्द को मंत्र में बदल रहे थे"।

नाथ-साहित्य में गुरु-परंपरा का केंद्रीय महत्व है। गुरु केवल ज्ञानदाता नहीं, बल्कि चेतना का प्रवर्तक है। वह साधक को आत्मबोध की दिशा देता है, उसकी शक्ति को अनुशासित करता है और आवश्यकता पड़ने पर उसे पतन से बचाता है। गुरु-परंपरा का अर्थ अंधानुकरण नहीं, बल्कि चेतना का उत्तराधिकार है, जिसमें अनुभव और ज्ञान पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होते हैं।

जोगी मत जा में गोरखनाथ भर्तृहरि को आत्मशुद्धि की शिक्षा देते हैं- "अरे अज्ञानी, पहले तू तो अपने को सुधार, तब तू औरों को सुधारना"। यह कथन नाथ-साधना का मूल सूत्र है। नाथ-दृष्टि में सामाजिक सुधार का आधार आत्म-सुधार है। जब तक व्यक्ति अपने भीतर के अज्ञान, मोह और असंतुलन को नहीं पहचानता, तब तक वह समाज को सही दिशा नहीं दे सकता।

समाज का आयाम

नाथ-संप्रदाय आधारित जीवनीपरक उपन्यासों में समाज का अर्थ केवल बाहरी संरचना नहीं है, बल्कि वह मनुष्य की गरिमा और समता का क्षेत्र है। नाथ-साहित्य जातिगत ऊँच-नीच, बाह्याडम्बर, पाखंड और धार्मिक जड़ता का विरोध करता है। जाग मछन्दर गोरख आया में मत्स्येन्द्रनाथ धीवर परमा से कहते हैं- "कोई नीच नहीं, कोई ऊंच नहीं परम बंधु! और तुममें इतना अतिथि सत्कार है, इतना शिष्टाचार है तब तुम नीच कैसे?"। यह कथन नाथ-साहित्य की सामाजिक चेतना का मूल आधार है। यहाँ मनुष्य का मूल्य जन्म से नहीं, बल्कि आचरण और संवेदना से निर्धारित होता है।

गोरखनाथ का चरित्र सामाजिक प्रतिरोध का प्रतीक है। वे वामाचार, यौन-प्रधान साधना, पाखंड, भय और शोषण का विरोध करते हैं। रांगेय राघव ने धूनी का धुआँ में गोरखनाथ को ऐसे साधक के रूप में चित्रित किया है जो धर्म को लोकहित से जोड़ता है। गोरखनाथ का उद्देश्य "धर्म को ठीक करना" और "जनता को राह दिखाना" है। यह धर्म कर्मकांड या संप्रदायगत आग्रह नहीं, बल्कि संयम, न्याय, लोकमंगल और मानवीय पुनर्संरचना का मार्ग है।

नाथ-साहित्य में अत्याचार का उन्मूलन भी समाज-सुधार का केंद्रीय पक्ष है। अत्याचार केवल बाहरी हिंसा नहीं, बल्कि जातिगत दंभ, धार्मिक पाखंड, स्त्री-उत्पीड़न, निम्न वर्गों का अपमान और साधना के विकृतिकरण के रूप में भी सामने आता है। गोरखनाथ के माध्यम से यह संदेश मिलता है कि धर्म सत्य, प्रेम, अहिंसा, संयम और सदाचार का नाम है; यदि धर्म हिंसा, भय और लूट का साधन बन जाए तो वह धर्म नहीं, जुल्म है।

संस्कृति का आयाम

नाथ-संप्रदाय आधारित उपन्यासों में संस्कृति का स्वरूप बहुस्तरीय है। इसमें लोकस्मृति, मिथक, इतिहास, साधना, सामाजिक प्रतिरोध और आध्यात्मिक चेतना का समन्वय है। भारतीय संस्कृति को इन उपन्यासों में किसी एक धर्म, जाति या दर्शन से परिभाषित नहीं किया गया, बल्कि उसे एक ऐसी समन्वयवादी चेतना के रूप में देखा गया है जिसमें विरोधी तत्व भी उच्चतर संतुलन में समाहित हो जाते हैं।

कौलज्ञान निर्णय में नाथ-संप्रदाय को योग और तंत्र का संगम बताया गया है। यह समन्वय केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक है। नाथ-संस्कृति में शिव और शक्ति, योग और तंत्र, लोक और शास्त्र, भोग और वैराग्य, देह और आत्मा इन सभी का संवाद उपस्थित है। नाथ-साहित्य का सांस्कृतिक अर्थ इसी समन्वय से निर्मित होता है।

भर्तृहरि का चरित्र भारतीय संस्कृति के प्रवृत्ति और निवृत्ति के द्वंद्व को मूर्त करता है। डॉ. ब्रह्मानन्द के भर्तृहरि नाटक के आधार पर स्पष्ट होता है कि भर्तृहरि का जीवन प्रवृत्ति मार्ग से निवृत्ति मार्ग की ओर जाता है; पहले वे राजा और भोगी हैं, बाद में योगी और वैरागी हो जाते हैं। इस प्रकार भर्तृहरि का वैराग्य पलायन नहीं, बल्कि अनुभव से उत्पन्न विवेक है। वे जीवन को नकारते नहीं, बल्कि जीवन के भीतर से उसके उच्चतर अर्थ की खोज करते हैं।

नाथ-संस्कृति की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह लोक को शास्त्र से कमतर नहीं मानती। भर्तृहरि की कथा उत्तर भारत की लोकभाषाओं, लोकगीतों और जनश्रुतियों में जीवित रही है। इसी प्रकार गोरखनाथ की वाणी लोकभाषा में व्यक्त हुई। इससे नाथ-साहित्य का लोकतांत्रिक स्वरूप स्पष्ट होता है। यह परंपरा उच्च संस्कृत ग्रंथों से भी जुड़ती है और लोककंठ की सहज अभिव्यक्ति से भी।

तुलनात्मक अध्ययन

जाग मछन्दर गोरख आया में मुख्य केंद्र मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ का संबंध है। यहाँ साधना और भोग, गुरु और शिष्य, मोह और जागरण, मन और अनुशासन का द्वंद्व प्रमुख है। मत्स्येन्द्रनाथ मनुष्य के चंचल और आकर्षित मन का प्रतीक हैं, जबकि गोरखनाथ उसे संयमित और जाग्रत करने वाली शक्ति हैं।

धूनी का धुआँ में गोरखनाथ का समाज-पक्ष अधिक उभरता है। यहाँ वे योगी होने के साथ-साथ सामाजिक पुनर्गठक हैं। वे वामाचार, पाखंड, स्त्री-देह के वस्तुकरण, जातिगत विभाजन और अंधविश्वास का विरोध करते हैं। उनका योगमार्ग लोकमंगल और सामाजिक समता से जुड़ता है।

जोगी मत जा में भर्तृहरि का आंतरिक द्वंद्व केंद्र में है। यहाँ साधना वैराग्य के रूप में आती है, परंतु यह वैराग्य जीवन से पलायन नहीं, बल्कि जीवन की गहरी अनुभूति के बाद उत्पन्न आत्मबोध है। भर्तृहरि भारतीय संस्कृति के उस मनुष्य का प्रतीक हैं जो भोग, सत्ता और प्रेम के अनुभव से गुजरकर निवृत्ति की ओर बढ़ता है।

इन तीनों उपन्यासों को साथ रखकर देखने पर स्पष्ट होता है कि नाथ-संप्रदाय आधारित जीवनीपरक उपन्यास साधना को व्यक्ति से, समाज को लोकमंगल से और संस्कृति को समन्वय से जोड़ते हैं। यही इनका केंद्रीय अंतर्संबंध है।

निष्कर्ष

हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों में नाथ-संप्रदाय साधना, समाज और संस्कृति के त्रिकोण के रूप में उपस्थित है। साधना व्यक्ति के भीतर चलने वाली आत्मपरिवर्तन की प्रक्रिया है; समाज उस साधना की नैतिक और मानवीय अभिव्यक्ति का क्षेत्र है; और संस्कृति इन दोनों को समन्वित कर व्यापक भारतीय चेतना का निर्माण करती है। मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ और भर्तृहरि जैसे पात्र इस त्रिकोण के अलग-अलग आयामों को मूर्त करते हैं। मत्स्येन्द्रनाथ अनुभव और शक्ति के, गोरखनाथ अनुशासन और समाज-संगठन के, तथा भर्तृहरि आत्मसंघर्ष और वैराग्य के प्रतीक हैं।

नाथ-साहित्य पर आधारित हिंदी के जीवनीपरक उपन्यास यह सिद्ध करते हैं कि आध्यात्मिकता और सामाजिकता एक-दूसरे से अलग नहीं हैं। जिस साधना का संबंध समाज से नहीं है, वह अधूरी है; और जो सामाजिक परिवर्तन आत्मानुशासन तथा नैतिकता से रहित है, वह स्थायी नहीं हो सकता। इस दृष्टि से नाथ-संप्रदाय आधारित उपन्यास आधुनिक समय के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। वे व्यक्ति को आत्मचिन्तन, समाज को समता और संस्कृति को समन्वय की दिशा देते हैं। अंततः यह कहा जा सकता है कि इन उपन्यासों में नाथ-संप्रदाय केवल साहित्यिक विषय नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के पुनर्पाठ और सामाजिक-आध्यात्मिक पुनर्निर्माण का सशक्त आधार है।

संदर्भ-सूची

1. उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ, जाग मछन्दर गोरख आया, रचना प्रकाशन, 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर, 2021
2. उपाध्याय, विश्वम्भरनाथ, जोगी मत जा, रचना प्रकाशन, 57 नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चांदपोल बाजार, जयपुर, 2005
3. राघव, रांगेय, धूनी का धुआँ, अनन्य प्रकाशन, ई-17 पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण, 2024
4. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, नाथ संप्रदाय, राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2024
5. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, नाथ-संप्रदाय, हिंदुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1940
6. द्विवेदी, श्यामाकान्त 'आनन्द' व्याख्याकार, योगिराजमत्स्येन्द्रनाथ-प्रणीतः कौलज्ञान निर्णयः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्रथम खण्ड, 2009
7. मत्स्येन्द्रनाथ; व्याख्याः डॉ, श्यामाकान्त द्विवेदी, कौलज्ञान निर्णय, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, प्रथम खण्ड, 2009
8. ब्रह्मानन्द, डॉ, भर्तृहरि (नाटक), नवभारत प्रकाशन, दिल्ली-110094, प्रथम संस्करण, 2014
9. गोरखनाथ; संपादकः डॉ, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरख-बानी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, उत्तर प्रदेश, 1942
10. द्विवेदी, आचार्य हजारीप्रसाद, नाथ सिद्धों की बानियाँ, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भाग 1, 1958
11. उपाध्याय, नागेन्द्रनाथ, नाथ और संत साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1965
12. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1968
13. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, परिवर्धित संस्करण, 1929

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा-शैली: तत्सम, तद्भव और देशज का समन्वय

शान देवी

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० संजीव कुमार

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध-सार

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा-शैली उनके नाट्य-शिल्प की प्रमुख शक्ति है। उनके नाटक पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक-आधारित कथावस्तुओं पर आधारित होते हुए भी भाषा की दृष्टि से सहज, संप्रेषणीय और मंचोपयोगी हैं। उनकी भाषा में एक ओर तत्सम शब्दों की सांस्कृतिक गंभीरता और दार्शनिक ऊँचाई है, दूसरी ओर तद्भव शब्दों की बोलचाल-जन्य सरलता और देशज शब्दों की लोक-जीवन से जुड़ी सजीवता है। इस त्रिस्तरीय शब्द-संयोजन के कारण उनके नाटक न केवल विचारोत्तेजक बनते हैं, बल्कि सामान्य पाठक और दर्शक के लिए भी ग्राह्य रहते हैं। भर्तृहरि नाटक की भाषा "सरल, रोचक और बोधगम्य" है तथा उसमें "तत्सम, तद्भव और देशज शब्दावली का प्रसंगानुकूल प्रयोग" हुआ है; यही विशेषता व्यापक रूप में उनके नाट्य-साहित्य की पहचान बनती है।

यह शोध-पत्र डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा-शैली का विश्लेषण करता है, जिसमें विशेष रूप से तत्सम, तद्भव और देशज शब्दावली के समन्वय को केंद्र में रखा गया है। उनके नाटकों की भाषा खड़ीबोली हिंदी पर आधारित होते हुए भी एकरूप नहीं है, बल्कि प्रसंग, पात्र और भावानुसार अपना रूप बदलती रहती है। राजसभा एवं दार्शनिक प्रसंगों में तत्सम शब्दावली गंभीरता और सांस्कृतिक ऊँचाई प्रदान करती है, जबकि तद्भव शब्द भाषा को सहज, संवादात्मक और जीवन के निकट बनाते हैं। देशज शब्द एवं लोक-प्रयोग नाटकों को सामाजिक यथार्थ, लोकजीवन और सांस्कृतिक धरातल से जोड़ते हैं।

इस शोध-पत्र में यह स्पष्ट किया गया है कि डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा-शैली केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि चरित्र-निर्माण, कथानक-विकास और नाटकीय प्रभाव का प्रमुख आधार है। उनके संवाद सरल, बोधगम्य और पात्रानुकूल हैं, जिससे नाटक मंचोपयोगी बनते हैं। साथ ही मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तिपरक भाषा के प्रयोग से नाटकों की प्रभावशीलता बढ़ती है। इस प्रकार उनकी नाट्य-भाषा में सांस्कृतिक गहराई, लोकधर्मिता और आधुनिक संप्रेषणीयता का संतुलित समन्वय दिखाई देता है, जो हिंदी नाट्य-साहित्य में उनकी विशिष्ट पहचान स्थापित करता है ।

मुख्य शब्द: डॉ. ब्रह्मानन्द, नाट्य-भाषा, भाषा-शैली, तत्सम-तद्भव-देशज, संवादात्मकता, पात्रानुकूलता, लोकधर्मिता, खड़ीबोली हिंदी

भूमिका

नाटक मूलतः दृश्य-श्रव्य विधा है, इसलिए उसकी भाषा केवल पढ़े जाने के लिए नहीं, बोले और सुने जाने के लिए भी होती है। इसी कारण नाटकीय भाषा में भाव, गति, संवाद, पात्र-स्वभाव और मंचीय प्रभाव सबका समन्वय आवश्यक होता है। यदि भाषा अत्यधिक संस्कृतनिष्ठ हो जाए, तो वह जन-संप्रेषण खो सकती है; यदि वह अत्यधिक बोलचाल में सीमित हो जाए, तो नाटक की सांस्कृतिक गंभीरता कम हो सकती है; और यदि उसमें लोक-प्रयोगों का अभाव हो, तो पात्रों की सामाजिक विश्वसनीयता कमजोर हो जाती है। डॉ. ब्रह्मानन्द की विशेषता यह है कि वे इन तीनों स्तरों को संतुलित रूप में साधते हैं।

उनके नाटकों में अज्ञातवास, श्रीकृष्ण सन्देश, भर्तृहरि और महाबलिदान जैसे विविध प्रसंग आते हैं। ये नाटक कभी महाभारत की राजसभा और धर्म-संकट का वातावरण बनाते हैं, कभी भर्तृहरि के वैराग्य और आत्मबोध का, कभी खेजड़ली के लोक-बलिदान और पर्यावरण-संरक्षण का। इन भिन्न-भिन्न प्रसंगों के अनुसार भाषा भी बदलती है। राजसभा में भाषा ओजपूर्ण और तत्समप्रधान हो जाती है; पारिवारिक और भावुक प्रसंगों में तद्भव शब्दों की सहजता आती है; और ग्रामीण या लोक-सम्बद्ध प्रसंगों में देशज शब्द भाषा को सजीव बना देते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा को "बोधगम्यता और लचीलापन" से युक्त है।

भाषा-शैली से आशय केवल शब्दों के चयन से नहीं, बल्कि उस संपूर्ण अभिव्यक्ति-पद्धति से है जिसके माध्यम से लेखक कथ्य, पात्र और वातावरण को रूप देता है। नाटक में भाषा-शैली का महत्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि नाटककार का विचार पात्रों के संवादों से ही व्यक्त होता है। डॉ. ब्रह्मानन्द के यहाँ भाषा कभी वर्णनात्मक, कभी भावात्मक, कभी चित्रात्मक और कभी नाटकीय हो जाती है।

तत्सम शब्द वे शब्द हैं जो संस्कृत से यथावत हिंदी में आए हैं। जैसे "निष्काम", "आध्यात्मिकता", "वैराग्य", "अभ्युदय", "विभीषिका" आदि। तत्सम शब्दों का प्रयोग नाटकों में "वैचारिक गंभीरता और सांस्कृतिक ऊँचाई" लाता है।

तद्भव शब्द वे शब्द हैं जो संस्कृत या प्राकृत-अपभ्रंश परंपरा से लोक-प्रयोग में बदलते हुए आधुनिक हिंदी में आए हैं। जैसे "भैया", "देखो", "डर", "सुख-दुख", "भाग्य" आदि। ये शब्द भाषा को अधिक निकट, आत्मीय और संवादात्मक बनाते हैं। तद्भव शब्दों को पात्रों को "जीवंत और विश्वसनीय" बनाने वाला बताया गया है।

देशज शब्द वे शब्द हैं जो लोक-जीवन, क्षेत्रीय बोली और सामाजिक व्यवहार से आते हैं। ये शब्द शास्त्रीय शब्द-संसार से अधिक लोकानुभव से जुड़े होते हैं। जैसे "धूप में बाल सफेद नहीं किये", "आग लगने से पहले कुआँ खोद लेना चाहिए", "भाग्य का खेल" आदि प्रयोग। देशज शब्द नाटक के पात्रों को उनकी मिट्टी, सामाजिक पृष्ठभूमि और जीवनानुभव से जोड़ते हैं।

समन्वय का अर्थ है- विभिन्न स्तरों का ऐसा संतुलन जिसमें कोई एक तत्व दूसरे को दबाए नहीं, बल्कि सभी मिलकर अभिव्यक्ति को पूर्ण बनाएं। डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा-शैली का मूल आधार यही समन्वय है।

डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा का मूल स्वरूप

डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा खड़ीबोली हिंदी पर आधारित है, पर यह खड़ीबोली एकरूप नहीं है। उसमें प्रसंगानुसार संस्कृतनिष्ठता, लोक-सरलता और देशजता का रूप बदलता रहता है। उनकी भाषा "खड़ीबोली हिन्दी" है, जिसमें राजसभा में गंभीर और औपचारिक रूप, अंत:पुर में मृदुल भावात्मक रूप, ग्राम्य जीवन में लोकधर्मी रूप और युद्ध-प्रसंगों में ओजस्वी रूप दिखाई देता है।

श्रीकृष्ण सन्देश जैसे नाटक में भाषा नीति, धर्म और न्याय के विमर्श को व्यक्त करती है। वहाँ "धर्म", "न्याय", "शान्ति", "अधर्म", "संधि", "विनाश" जैसे शब्द नाटक को वैचारिक ऊँचाई देते हैं। इसके विपरीत अज्ञातवास में द्रौपदी, भीम और अन्य पात्रों के संवादों में भावात्मकता और जीवन-संवाद अधिक है। महाबलिदान में विश्नोई समाज के पात्रों की भाषा ग्रामीण सरलता और लोक-प्रज्ञा से भरी हुई है। भर्तृहरि में भाषा दार्शनिकता, वैराग्य और आत्मचिंतन की दिशा में विकसित होती है।

तत्सम शब्दावली का प्रयोग और प्रभाव

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में तत्सम शब्दावली का प्रयोग विशेष रूप से उन प्रसंगों में होता है जहाँ विचार, धर्म, नीति, वैराग्य, आध्यात्मिकता या सांस्कृतिक मूल्य व्यक्त करने होते हैं। उदाहरण के लिए "निष्काम", "आध्यात्मिकता", "वैराग्य", "अभ्युदय", "विभीषिका" जैसे शब्द नाटक की भाषा को केवल बोलचाल का माध्यम नहीं रहने देते, बल्कि उसे चिंतन की भूमि पर स्थापित करते हैं। इन शब्दों को "दार्शनिक स्वर" देने वाला माना गया है।

भर्तृहरि में तत्सम शब्दावली अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि नाटक का मूल कथ्य भोग से वैराग्य की ओर जाने वाली जीवन-यात्रा है। "वैराग्य", "त्याग", "साधना", "आत्मबोध", "मिथ्या", "नश्वर" जैसे शब्द इस नाटक की दार्शनिक पृष्ठभूमि बनाते हैं। यदि यह नाटक केवल बोलचाल की भाषा में लिखा जाता, तो उसमें वह आध्यात्मिक गहराई संभव न होती जो भर्तृहरि के चरित्र के लिए अपेक्षित है।

श्रीकृष्ण सन्देश में तत्सम शब्द धर्म और राजनीति के बीच संबंध स्थापित करते हैं। "धर्म", "अधर्म", "शान्ति", "संधि", "विनाश", "न्यायोचित अधिकार" आदि शब्द श्रीकृष्ण की नीति-दृष्टि को गंभीरता देते हैं। इस नाटक में युद्ध-विरोध केवल भावुकता नहीं, बल्कि धर्म-सम्मत न्याय की भूमि पर खड़ा विचार बन जाता है।

अज्ञातवास में भी "धैर्य", "धर्म", "विपत्तिकाल", "आस्था" जैसे शब्द पाण्डवों के संघर्ष को केवल जीविका या छिपने की समस्या नहीं रहने देते, बल्कि उसे नैतिक परीक्षा का रूप देते हैं। इस प्रकार तत्सम शब्द डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में सांस्कृतिक और दार्शनिक अर्थ-गंभीरता का निर्माण करते हैं।

तद्भव शब्दावली की सहजता

तद्भव शब्द डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा को आत्मीय, संवादशील और जीवन के निकट बनाते हैं। नाटक में पात्रों को स्वाभाविक बनाने के लिए केवल संस्कृतनिष्ठ भाषा पर्याप्त नहीं होती। सामान्य मानव-स्थितियों में पात्रों को "भैया", "देखो", "डर", "भाग्य", "सुख-दुख" जैसे शब्दों की आवश्यकता होती है।

अज्ञातवास में तद्भव शब्दों की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। पाण्डवों की स्थिति राजसी वैभव से गिरकर सामान्य जीवन की ओर जाती है। ऐसे में भाषा का बदलना भी स्वाभाविक है। जब पात्र अपनी सुरक्षा, भय, भोजन, वेश और जीवन-निर्वाह की चर्चा करते हैं, तो तद्भव शब्द उनके संवादों को मानवीय बनाते हैं। इसी से नाटक का करुण पक्ष अधिक प्रभावी होता है।

द्रौपदी के संवादों में तद्भव शब्द भाव को सीधे हृदय तक पहुँचाते हैं। "भाग्य का खेल", "भैया", "डर" जैसे प्रयोग किसी दार्शनिक अमूर्तन की अपेक्षा अधिक मानवीय लगते हैं। इससे पात्र इतिहास या महाकाव्य से उतरकर मनुष्य बन जाते हैं। यही नाटक की सबसे बड़ी सफलता है।

देशज शब्दावली और लोक-संवेदना

देशज शब्द डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा का वह पक्ष है जो उनके नाटकों को लोक-जीवन से जोड़ता है। विशेष रूप से महाबलिदान में देशज भाषा और लोक-प्रयोगों का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है। देशज और लोक-प्रयोग "भाषा को सहज और जीवंत" बनाते हैं तथा पात्रों की "सांस्कृतिक पृष्ठभूमि" को मूर्त करते हैं।

महाबलिदान में अमृता जी का संवाद "मैंने धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं... आग लगने से पहले कुआं खोद लेना चाहिए" लोकानुभव और व्यावहारिक बुद्धि का सशक्त उदाहरण है। यह वाक्य किसी पुस्तक-ज्ञान का नहीं, बल्कि जीवन-जीए हुए अनुभव का संकेत देता है। ऐसे प्रयोगों से पात्र कृत्रिम नहीं लगते; वे अपने समाज, इतिहास और जीवन-संघर्ष से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

देशज भाषा का प्रभाव केवल शब्दों में नहीं, बल्कि सोचने के ढंग में भी दिखाई देता है। विश्नोई समाज के पात्र प्रकृति को बाहरी वस्तु नहीं, जीवन का अंग मानते हैं। इसलिए उनकी भाषा में वृक्ष, धरती, बलिदान, धर्म और लोकजीवन एक साथ आते हैं। इसी कारण महाबलिदान का पर्यावरण-विमर्श आधुनिक नारा न होकर लोकधर्मी जीवन-दृष्टि बन जाता है।

तत्सम, तद्भव और देशज का समन्वय

डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा-शैली की वास्तविक शक्ति इन तीनों शब्द-स्तरों के संतुलित समन्वय में है। यदि उनके नाटक केवल तत्सम शब्दावली पर आधारित होते, तो वे उपदेशात्मक और दुरूह हो सकते थे। यदि वे केवल तद्भव या देशज शब्दों पर आधारित होते, तो उनकी दार्शनिक और सांस्कृतिक गहराई कम हो सकती थी। परंतु डॉ. ब्रह्मानन्द प्रसंगानुकूल भाषा का चयन करते हैं। भर्तृहरि के संबंध में स्पष्ट कहा गया है कि उसमें "तत्सम, तद्भव और देशज शब्दावली का प्रसंगानुकूल प्रयोग" हुआ है।

श्रीकृष्ण सन्देश में श्रीकृष्ण और विदुर जैसे पात्र नीति और धर्म की भाषा बोलते हैं, इसलिए वहाँ तत्सम शब्द अधिक उपयुक्त हैं। अज्ञातवास में पाण्डवों की मानवीय असुरक्षा और द्रौपदी की पीड़ा के लिए तद्भव शब्द अधिक प्रभावी हैं। महाबलिदान में ग्रामीण समाज और लोकधर्म को व्यक्त करने के लिए देशज शब्द अनिवार्य हो जाते हैं। भर्तृहरि में राजसी विलास और वैराग्य, दोनों की भाषा अलग-अलग स्वर ग्रहण करती है- कहीं सौंदर्य और श्रृंगार, कहीं टूटन और आत्मबोध।

यह समन्वय नाटक को बहुस्तरीय बनाता है। पाठक को भाषा में सांस्कृतिक ऊँचाई भी मिलती है, संवाद की सहजता भी और लोकजीवन की मिट्टी भी। यही कारण है कि डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा साहित्यिक होने के साथ-साथ मंचीय भी है।

मुहावरे, लोकोक्तियाँ और सूक्तिपरकता

डॉ. ब्रह्मानन्द के संवादों में मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को धार देता है। "आग लगने से पहले कुआँ खोद लेना चाहिए" जैसे वाक्य केवल ग्रामीण बुद्धि नहीं, बल्कि संकट-पूर्व तैयारी की जीवन-दृष्टि व्यक्त करते हैं। इस लोकोक्ति को "संकट-बोध और दूरदर्शिता" का संकेत माना गया है।

श्रीकृष्ण सन्देश में "युद्ध सर्वनाश का मूलाधार है" जैसा कथन सूक्तिपरक भाषा का उदाहरण है। इसमें भाषा संक्षिप्त है, पर अर्थ व्यापक है। ऐसी भाषा नाटक को स्मरणीय बनाती है। मंच पर ऐसे संवाद दर्शक के मन में तुरंत बैठ जाते हैं।

भाषा और चरित्र-निर्माण

नाटक में भाषा का सबसे बड़ा कार्य चरित्र को प्रकट करना है। डॉ. ब्रह्मानन्द के पात्र अपनी भाषा से पहचाने जाते हैं। युधिष्ठिर की भाषा संयमपूर्ण है, भीम की भाषा आवेगपूर्ण, द्रौपदी की भाषा पीड़ा और गरिमा से युक्त, श्रीकृष्ण की भाषा संतुलित और नीतिपरक, भर्तृहरि की भाषा परिवर्तनशील और अमृता जैसी लोकपात्रों की भाषा अनुभवजन्य है।

संवाद को नाटक का प्राण बताया गया है- "संवाद नाटक का प्राण होता है, जो कथानक को गति प्रदान करता है"। डॉ. ब्रह्मानन्द के यहाँ संवाद केवल बोलचाल नहीं, बल्कि पात्र-स्वभाव का उद्घाटन है। भाषा के माध्यम से ही पात्रों की सामाजिक पृष्ठभूमि, मानसिक स्थिति और नैतिक दृष्टि सामने आती है।

भाषा और रंगमंचीयता

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा मंच पर बोले जाने योग्य है। यह उनके नाट्य-शिल्प की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भर्तृहरि को "रंगमंच के योग्य" कहा गया है और उसकी भाषा को सरल, रोचक, बोधगम्य माना गया है। महाबलिदान में ग्रामीण पात्रों की भाषा सरल और सुबोध होने के कारण सामूहिक मंचन के लिए उपयुक्त बनती है। श्रीकृष्ण सन्देश में राजसभा-संबंधी संवादों में ओज है, पर वे इतने दुरूह नहीं कि मंच पर अप्राकृतिक लगें।

नाटकीय भाषा की सफलता इसी में है कि वह पढ़ते समय साहित्यिक और सुनते समय स्वाभाविक लगे। डॉ. ब्रह्मानन्द इस संतुलन को साधते हैं। उनकी भाषा में नाटकीयता है, पर अनावश्यक अलंकारिकता नहीं; सरलता है, पर विचारहीनता नहीं; लोकधर्मिता है, पर असावधानी नहीं।

निष्कर्ष

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की भाषा-शैली तत्सम, तद्भव और देशज शब्दावली के संतुलित समन्वय पर आधारित है। तत्सम शब्द उनके नाटकों को सांस्कृतिक, दार्शनिक और नैतिक ऊँचाई देते हैं। तद्भव शब्द भाषा को मानवीय, सहज और संवादात्मक बनाते हैं। देशज शब्द नाटक को लोकजीवन, ग्रामीण अनुभव और सांस्कृतिक धरातल से जोड़ते हैं। इन तीनों का प्रसंगानुकूल संयोजन ही उनकी भाषा को विशिष्ट बनाता है।

उनकी भाषा न तो केवल शास्त्रीय है, न केवल लोकभाषिक; न केवल दार्शनिक है, न केवल व्यवहारिक। वह इन सभी का सम्यक् रूप है। इसीलिए अज्ञातवास में करुणा और धैर्य, श्रीकृष्ण सन्देश में नीति और धर्म, भर्तृहरि में वैराग्य और आत्मबोध तथा महाबलिदान में लोकबलिदान और पर्यावरण-चेतना प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त हो पाते हैं। शोध-प्रबंध के निष्कर्षानुसार उनके नाटकों की भाषा "सरल, स्पष्ट और प्रभावशाली" है तथा उसमें "तत्सम, तद्भव और देशज शब्दों का संतुलित प्रयोग" मिलता है।

अतः कहा जा सकता है कि डॉ. ब्रह्मानन्द की भाषा-शैली उनके नाटकों की आत्मा है। वह कथावस्तु को गति देती है, पात्रों को जीवन देती है, संवादों को प्रभाव देती है और नाटक को मंचीयता प्रदान करती है। तत्सम की गंभीरता, तद्भव की आत्मीयता और देशज की लोक-सजीवता इन तीनों के समन्वय से उनकी नाट्यभाषा हिंदी नाटक की परंपरा में एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है।

संदर्भ-सूची

1. डॉ. ब्रह्मानन्द एवं डॉ. बाबूराम, भर्तृहरि (नाटक), नवभारत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 2014
2. डॉ. ब्रह्मानन्द एवं डॉ. बाबूराम, अज्ञातवास (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 2015
3. डॉ. ब्रह्मानन्द, महाबलिदान (नाटक), ब्राह्माणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 2013
4. डॉ. ब्रह्मानन्द, श्रीकृष्ण सन्देश (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 2016
5. इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी नाटक और रंगमंचः पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 1993
6. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 1997
7. द. भि. कुलकर्णी, नाट्य स्वरूप व समीक्षा, पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 2015
8. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, खंड-1ए 1972
9. डॉ. भोलाशंकर व्यास, व्याख्याकार, धनंजयकृत दशरूपकम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण, एकल खंड, 1962

संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता: एक तुलनात्मक अध्ययन

सोमबीर सिंह

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० बाबू राम

शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

सार

भारतीय संत साहित्य परम्परा में समरसता की अवधारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही है, जिसने समाज को समानता, सह-अस्तित्व और मानवीय एकता का संदेश प्रदान किया। प्रस्तुत शोध-पत्र "संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता: एक तुलनात्मक अध्ययन" इसी दृष्टि से दोनों संतों की वाणी का विश्लेषण करता है। संत गरीबदास और संत ब्रह्मानन्द सरस्वती, दोनों ही ऐसे संत हैं जिन्होंने अपने विचारों और उपदेशों के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक और नैतिक समरसता को स्थापित करने का प्रयास किया। संत गरीबदास की वाणी में लोकधर्मी चेतना, जाति-विरोध, मानव-धर्म की स्थापना और एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन मिलता है। उनकी वाणी समाज के निम्न वर्गों को आत्मगौरव प्रदान करते हुए सामाजिक विषमता के विरुद्ध आवाज उठाती है। दूसरी ओर संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में वैदिक परम्परा, आध्यात्मिक अनुशासन और नैतिक जीवन-मूल्यों का समन्वय दिखाई देता है, जो समाज को संगठित और संस्कारित करने की दिशा में कार्य करता है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो दोनों संतों की वाणी में बाह्य आडम्बर का विरोध, कर्म की प्रधानता, आंतरिक शुद्धि, तथा समदृष्टि का भाव प्रमुख रूप से उभरकर सामने आता है। जहाँ गरीबदास की वाणी अधिक लोकाभिमुख और सरल है, वहीं ब्रह्मानन्द की वाणी दार्शनिक गहराई से युक्त होते हुए भी समरसता के व्यापक संदेश को प्रस्तुत करती है। दोनों संतों की वाणी में समरसता केवल सैद्धान्तिक अवधारणा नहीं, बल्कि व्यवहारिक जीवन का आधार है। वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में, जब विभाजन, असमानता और सांस्कृतिक तनाव बढ़ रहे हैं, तब इन संतों की वाणी समाज को एकता, सहिष्णुता और मानवीय मूल्यों की ओर पुनः उन्मुख करने में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है।

मुख्य शब्द: समरसता, संत साहित्य, संत गरीबदास, संत ब्रह्मानन्द सरस्वती, तुलनात्मक अध्ययन, सामाजिक समरसता, निर्गुण भक्ति, मानवता, भारतीय संत परम्परा

भूमिका

भारतीय साहित्य में संत परम्परा लोक-जीवन, आध्यात्मिकता और सामाजिक चेतना की ऐसी धारा है जिसने समाज के उपेक्षित, पीड़ित और विभाजित वर्गों को आत्मसम्मान और आध्यात्मिक आधार प्रदान किया। संत साहित्य का मूल उद्देश्य केवल ईश्वर-भक्ति नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर ऐसी चेतना जगाना है जिससे वह अहंकार, भेदभाव, रूढ़ि, अंधविश्वास और सामाजिक विषमता से मुक्त हो सके। मध्यकालीन भारतीय समाज में जाति-पाँति, ऊँच-नीच, कर्मकाण्ड, धार्मिक कट्टरता और सामाजिक असमानता ने मनुष्य की सहज मानवीयता को आच्छादित कर दिया था। ऐसे समय में संतों ने लोकभाषा के माध्यम से ऐसी वाणी दी जिसने साधारण जन को आत्मिक, सामाजिक और नैतिक स्तर पर जागृत किया।

प्रस्तुत शोध-पत्र का आधार "संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता: एक तुलनात्मक अध्ययन" है। यह विषय इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि दोनों संत भिन्न काल-परिस्थितियों से जुड़े हुए होते हुए भी सामाजिक समरसता के प्रश्न पर एक-दूसरे के निकट दिखाई देते हैं। संत गरीबदास अठारहवीं शताब्दी की हरियाणवी संत परम्परा के प्रमुख प्रतिनिधि हैं, जिनकी वाणी में निर्गुण भक्ति, जाति-विरोध, कर्मप्रधानता और मानव-धर्म का प्रबल स्वर मिलता है। संत ब्रह्मानन्द सरस्वती आधुनिक युग के ऐसे संत हैं जिन्होंने वैदिक ज्ञान, योग, सेवा, शिक्षा और नैतिकता के माध्यम से समाज को पुनर्गठित करने का प्रयास किया। शोध-प्रबंध में दोनों संतों के जीवन, कृतित्व, वाणी, सामाजिक चिंतन, शिल्प-विधान और आधुनिक उपादेयता का क्रमबद्ध विवेचन मिलता है।

इस शोध-पत्र का उद्देश्य दोनों संतों की वाणी में समरसता के प्रमुख आयामों सामाजिक, धार्मिक, जातिगत, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, नैतिक और भाषायी समरसता का तुलनात्मक अध्ययन करना है। अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि दोनों संतों ने समाज में बाह्य सुधार से पहले आंतरिक परिवर्तन को आवश्यक माना। समरसता उनके लिए नारा नहीं, जीवन-साधना है।

प्रमुख पदों की व्याख्या

1. संत

'संत' शब्द संस्कृत के 'सत्' से व्युत्पन्न माना जाता है। 'सत्' का अर्थ सत्य, शाश्वत सत्ता, पवित्रता और अस्तित्व है। इस दृष्टि से संत वह है जो सत्य में स्थित हो, सत्य का आचरण करे और लोककल्याण को अपना जीवन-धर्म बनाए। संत साहित्य में संत का अर्थ केवल संन्यासी या वेशधारी साधु नहीं है, बल्कि वह व्यक्ति है जो आत्मानुभूति, करुणा, समता और सदाचार से युक्त हो। डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार भक्ति-संबंधी काव्य रचने वाले सभी कवियों को सामान्य अर्थ में संत कहा जा सकता है, पर निर्गुण धारा के कवि विशेष रूप से संत-काव्य की परम्परा से जुड़े हैं। संत शब्द की व्याख्या में यह भी स्पष्ट किया गया है कि संत वह है जिसने परमतत्त्व का अनुभव कर लिया हो और अपने व्यक्तित्व को उस सत्य में रूपांतरित कर लिया हो।

2. वाणी

संत परम्परा में 'वाणी' केवल काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि अनुभूति, साधना और लोकमंगल का माध्यम है। संतों ने अपनी अनुभूतियों को लोकभाषा में इसलिए व्यक्त किया कि उनका संदेश समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचे। संत गरीबदास की वाणी में साखी, सबद, रमैनी, चौपाई आदि रूप मिलते हैं, जबकि संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में नीति-सूक्तियाँ, वैदिक विचार, ब्रह्म-विचार, योग और सदाचार का उपदेश मिलता है। गरीबदास की वाणी लोकगीतात्मक और सरल है, जबकि ब्रह्मानन्द की वाणी शास्त्रीयता और लोकप्रयोजनीयता दोनों को साथ लेकर चलती है।

3. समरसता

'समरसता' शब्द 'सम् + रस + ता' से निर्मित है। 'सम्' का अर्थ है समान, संतुलित या समभाव; 'रस' का अर्थ है सार, भाव या जीवन का मूल तत्त्व; और 'ता' किसी गुण की स्थिति को सूचित करता है। इस प्रकार समरसता का मूल अर्थ है- ऐसी अवस्था जिसमें विविध तत्व विरोध के बजाय सामंजस्य में स्थित हों। शोध-प्रबंध में समरसता को एकरूपता नहीं, बल्कि एकतानता कहा गया है; अर्थात अनेक स्वरों का एक ही लय में मिल जाना।

समरसता की परिभाषा केवल सामाजिक समानता तक सीमित नहीं है। यह दार्शनिक स्तर पर समत्व और अद्वैत, सामाजिक स्तर पर समानता और न्याय, सांस्कृतिक स्तर पर विविधता में एकता तथा नैतिक स्तर पर करुणा, मेलभाव और पारस्परिक सम्मान का व्यवहार है।

संत गरीबदास की वाणी में समरसता

संत गरीबदास की वाणी में समरसता का आधार आध्यात्मिक एकत्व है। वे मनुष्य को जाति, धर्म और संप्रदाय की संकीर्णताओं से ऊपर उठाकर 'जीव' के स्तर पर देखते हैं। उनका प्रसिद्ध कथन है-

"जीव हमारी जाति है, मानव धर्म हमारा।
हिंदू मुस्लिम सिख इसाई, धर्म नहीं कोई न्यारा।।"

इस पद में गरीबदास मनुष्य की पहचान जन्मगत जाति से नहीं, बल्कि चेतन सत्ता से निर्धारित करते हैं। 'जीव हमारी जाति' कहकर वे जाति-व्यवस्था के सामाजिक अहंकार को तोड़ते हैं और 'मानव धर्म' को सर्वोच्च स्थान देते हैं। उनके अनुसार धर्म का वास्तविक अर्थ किसी संप्रदाय की सीमा में बँधना नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर मानवता, दया, सत्य और सदाचार की स्थापना करना है।

गरीबदास की वाणी जातिगत समरसता का अत्यंत प्रभावशाली प्रतिपादन करती है। वे कहते हैं-

कौम छत्तीस एक ही जाति। ब्रह्मबीज सबकी उत्पाती।
एकै कुल एकै परिवार। ब्रह्मबीज का सकल पसारा।।

यहाँ 'कौम छत्तीस' का आशय समाज की विविध जातियों और समुदायों से है। गरीबदास इन सबको एक ही ब्रह्मबीज से उत्पन्न मानते हैं। इस प्रकार उनका समरसता-विचार केवल सामाजिक सुधार नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अद्वैत पर आधारित है।

गरीबदास बाह्य आडम्बर और पाखण्ड का भी विरोध करते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं-

भेष धरै क्या होइ है, मन का मैल न जाय।
भीतर झूठ, बाहर साच, यह संत न कहलाय।।

इस कथन में संतत्व की कसौटी बाहरी वेश नहीं, बल्कि मन की शुद्धि है। गरीबदास के अनुसार मन यदि कपट, लोभ और अहंकार से भरा है तो बाहरी धार्मिक रूप व्यर्थ है। इसी संदर्भ में वे शास्त्रीय ज्ञान की सीमाओं को भी रेखांकित करते हैं-

कहा पढ़ो भागवत गीता, मन जीता तिन त्रिभुवन जीता।
मन जीते बिन झूठा ज्ञाना, चार वेद और अठारह पुराना।।

यहाँ मन-विजय को वास्तविक साधना माना गया है। गरीबदास ज्ञान को नकारते नहीं, बल्कि यह कहते हैं कि ज्ञान का उद्देश्य मन की निर्मलता और जीवन का परिवर्तन होना चाहिए। यही समरसता की पहली शर्त है।

गरीबदास सत्य को भी समरसता का मूल मानते हैं-

"गरीब साचे कूं प्रणाम है, झूठे सिर डंड।
ठौर नहीं तिंहु लोक में, भरमत है नौ खंड।।"

सत्य उनके यहाँ नैतिक और आध्यात्मिक दोनों आधारों पर महत्त्वपूर्ण है। झूठ, छल और कपट व्यक्ति को समाज से भी अलग करते हैं और परमात्मा से भी। अत: सत्य के बिना समरसता संभव नहीं।

संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता

संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता का आधार सदाचार, आत्मानुशासन और वैदिक चेतना है। वे व्यक्ति-निर्माण को समाज-निर्माण की प्रथम शर्त मानते हैं। उनकी वाणी में सामाजिक समरसता नैतिक जीवन से जुड़ती है। वे कहते हैं-

अंतर कपट न राखिए, जब लग शुद्ध न होय।
पाखंडी नर पै नहीं, रब दी दया न होय।।

यह सूक्ति बताती है कि ब्रह्मानन्द के लिए धर्म का अर्थ भीतर की शुद्धि है। पाखण्ड, कपट और बाहरी प्रदर्शन व्यक्ति को ईश्वरीय कृपा से दूर करते हैं। उनके समरसता-विचार में आंतरिक शुद्धि सामाजिक एकता का आधार बनती है।

ब्रह्मानन्द सरस्वती की नीति-सूक्तियों में सत्य, ज्ञान, विनय और सदाचार का अत्यधिक महत्त्व है। उनकी सूक्तियाँ हैं-"सत्य की हमेशा जीत है, झूठ चलै नहीं पैर" और "वाणी की कठोरता आग से भी भीषण होती है"।

ये सूक्तियाँ बताती हैं कि उनके लिए सामाजिक समरसता का संबंध केवल जाति या धर्म से नहीं, बल्कि बोलचाल, व्यवहार और आत्म-संयम से भी है। कठोर वाणी संबंधों को तोड़ती है, जबकि विनम्र वाणी समाज को जोड़ती है। इसलिए ब्रह्मानन्द वाणी-संयम को भी समरसता का साधन मानते हैं।

वे आंतरिक अनुशासन को इस प्रकार व्यक्त करते हैं-

इन्द्रिय जय का मूल विनय, विनय का मूल सदाचार।
मन निर्मल जब होइ है, तब मिटे अंधकार।।

यहाँ एक क्रम दिखाई देता है-सदाचार से विनय, विनय से इन्द्रिय-नियंत्रण और इन्द्रिय-नियंत्रण से मन की निर्मलता। यही निर्मल मन सामाजिक समरसता का वाहक बनता है।

ब्रह्मानन्द की समरसता दार्शनिक स्तर पर भी महत्त्वपूर्ण है। उनकी ओंकार-व्याख्या "अ से उत्पत्ति, उ से पालन, म से संहार" सृष्टि के विविध रूपों को एक ही ब्रह्म-तत्व में समाहित करती है। इससे सगुण और निर्गुण, वैदिक और संतमत, ज्ञान और भक्ति इन सभी के बीच सेतु बनता है।

तुलनात्मक विवेचन

संत गरीबदास और संत ब्रह्मानन्द सरस्वती दोनों की वाणी में समरसता का मूल आधार मनुष्य की आंतरिक शुद्धि है। दोनों संत मानते हैं कि समाज तभी सुधरेगा जब व्यक्ति सुधरेगा। गरीबदास जातिगत विभाजन और बाह्य आडम्बर पर चोट करते हैं, जबकि ब्रह्मानन्द सदाचार, विनय और आत्मानुशासन पर बल देते हैं। दोनों के विचारों में भिन्नता उनकी ऐतिहासिक परिस्थिति और अभिव्यक्ति-शैली में है, लक्ष्य में नहीं।

गरीबदास की भाषा लोकाभिमुख है। उनकी वाणी में हरियाणवी, ब्रज, पंजाबी, फारसी-अरबी और लोक-प्रयुक्त शब्द मिलते हैं। यह भाषायी विविधता स्वयं सांस्कृतिक समरसता का उदाहरण है। शोध-प्रबंध में स्पष्ट किया गया है कि गरीबदास की शब्द-संपदा में दार्शनिक प्रसंगों में संस्कृतनिष्ठ शब्द, लोक-संदेश में तद्भव-देशज शब्द और सांप्रदायिक समन्वय के लिए फारसी-अरबी शब्दों का स्वाभाविक समावेश मिलता है।

इसके विपरीत ब्रह्मानन्द की भाषा में शास्त्रीयता, नीति, वैदिक संकेत और गद्य-पद्य दोनों की शैली दिखाई देती है। उनका उद्देश्य भी कठिन दर्शन को जनसाधारण तक पहुँचाना है। अत: दोनों संत भाषा को विभाजन नहीं, बल्कि संवाद का माध्यम बनाते हैं।

धार्मिक समरसता की दृष्टि से दोनों संत एकेश्वरवाद और मानवता को प्रधान मानते हैं। गरीबदास राम, रहीम, अल्लाह, साहिब आदि नामों में एक ही परम सत्ता को देखते हैं। ब्रह्मानन्द भी सत्य, सच्चिदानन्द और परम ब्रह्म को सभी भेदों से ऊपर मानते हैं। ब्रह्मानन्द का कथन है-

सब दुनिया का एक है भूप, सच्चिदानन्द स्वरूप।
तेरे न्यायालय से सब जग डरता, तू ही परम अनूप।।

यहाँ ब्रह्मानन्द ईश्वर की सार्वभौमिकता स्थापित करते हैं। जब ईश्वर एक है तो मनुष्यों में विभाजन कृत्रिम है। यही भाव गरीबदास के "जीव हमारी जाति" में भी व्यक्त है।

सामाजिक दृष्टि से गरीबदास अधिक प्रतिरोधी और लोक-सुधारक दिखाई देते हैं। वे जाति, पाखण्ड, झूठ, माया और मनोविकारों पर तीखा प्रहार करते हैं। ब्रह्मानन्द अपेक्षाकृत संयमित नीति-सूक्तियों और संस्थागत कार्यों गुरुकुल, गौशाला, पुस्तकालय, शिक्षा और सेवा के माध्यम से समाज-सुधार का मार्ग अपनाते हैं। शोध-प्रबंध में यह भी संकेत है कि ब्रह्मानन्द सरस्वती शिक्षा और सेवा को धार्मिक पुनर्जागरण की अनिवार्य शर्त मानते थे।

आध्यात्मिक दृष्टि से दोनों संतों की वाणी में निर्गुण और अद्वैत चेतना मिलती है। गरीबदास ब्रह्म को निराकार, अगम और सर्वव्यापी मानते हैं-

निरगुण सरगुण दूहं सें न्यारा, गग मंडल गलतानं।
निरगुण कहूं त गुण छिन कीन्हे, सरगुण कहूं तो हानं।।

ब्रह्मानन्द भी ब्रह्म की सर्वव्यापकता और ओंकार की एकात्म चेतना पर बल देते हैं। इस प्रकार दोनों संत धार्मिक पहचान के बाहरी भेदों से ऊपर उठकर परम सत्ता की एकता में विश्वास करते हैं।

पर्यावरणीय समरसता की दृष्टि से भी दोनों की वाणी महत्त्वपूर्ण है। संत परम्परा प्रकृति को केवल भोग की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन-सहचर मानती है। ब्रह्मानन्द की वाणी में प्रकृति का निष्पक्ष व्यवहार सामाजिक आदर्श बनकर आता है-

मेघ बरसत सब पर समान, नाहीं करै विचार।
गंगा जल सब प्यास बुझावै, ऊँच नीच बिन हार।।

यहाँ प्रकृति समता की गुरु बनती है। बादल और गंगा ऊँच-नीच का भेद नहीं करते; मनुष्य को भी ऐसा ही होना चाहिए।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज का समाज तकनीकी विकास के बावजूद मानसिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तनावों से घिरा हुआ है। जातिगत विभाजन, धार्मिक असहिष्णुता, नैतिक पतन, भाषायी अहंकार, पर्यावरणीय संकट और व्यक्ति-केंद्रित जीवन-दृष्टि ने सामाजिक संतुलन को चुनौती दी है। ऐसे समय में संत गरीबदास और संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है।

गरीबदास हमें बताते हैं कि मनुष्य की असली पहचान उसकी जाति या संप्रदाय नहीं, बल्कि उसका जीवत्व और मानवता है। ब्रह्मानन्द बताते हैं कि सामाजिक समरसता का आधार सदाचार, विनय, सत्य और सेवा है। गरीबदास बाह्य आडम्बर की निरर्थकता दिखाते हैं, ब्रह्मानन्द आंतरिक कपट को धर्म-विरोधी मानते हैं। दोनों मिलकर यह संदेश देते हैं कि समरसता न तो केवल राजनीतिक व्यवस्था से आएगी और न केवल धार्मिक उपदेश से; वह व्यक्ति के अंत:करण, भाषा, व्यवहार, कर्म और सामाजिक दृष्टि के परिवर्तन से आएगी।

शोध-प्रबंध में समरसता को "हृदय परिवर्तन की प्रक्रिया" कहा गया है, जो बाह्य व्यवस्थाओं से अधिक आंतरिक चेतना का विषय है। यही विचार दोनों संतों की वाणी में जीवित रूप में दिखाई देता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द सरस्वती की वाणी में समरसता बहुआयामी रूप में अभिव्यक्त होती है। गरीबदास की समरसता लोकधर्मी, जाति-विरोधी, निर्गुण-आध्यात्मिक और प्रतिरोधी है। ब्रह्मानन्द की समरसता वैदिक, नैतिक, अनुशासनात्मक, सेवा-प्रधान और संस्थागत है। दोनों संतों का मूल लक्ष्य एक ही है-मानव जीवन को सत्य, सदाचार, दया, सेवा, आत्मशुद्धि और ईश्वर-एकत्व से जोड़ना।

दोनों की वाणी सिद्ध करती है कि समरसता केवल समाज में बराबरी की घोषणा नहीं, बल्कि जीवन का समग्र अनुशासन है। यह व्यक्ति के भीतर से आरंभ होकर परिवार, समाज, संस्कृति, राष्ट्र और अंतत: विश्व तक विस्तार पाती है। गरीबदास कहते हैं कि मनुष्य की जाति 'जीव' है और धर्म 'मानवता'; ब्रह्मानन्द कहते हैं कि सत्य, विनय और सदाचार से ही मन का अंधकार मिटता है। इस प्रकार दोनों संतों की वाणी आज भी समरस समाज के निर्माण में प्रेरक और मार्गदर्शक है।

संदर्भ-सूची

1. सोमबीर सिंह, संत गरीबदास एवं संत ब्रह्मानन्द की वाणी: समरसता की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन, पीएच.डी. शोध-प्रबंध, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा, खंड: अप्रकाशित शोध-प्रबंध, 2026
2. संत गरीबदास, श्री सतगुरु ग्रन्थ साहिब (अमृतवाणी), लोकनायक प्रकाशन, स्थान उपलब्ध नहीं, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 2013
3. स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, नीति-विचार, स्वतंत्र प्रकाशन, स्थान उपलब्ध नहीं, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1970
4. स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती, ब्रह्म-विचार, स्वतंत्र प्रकाशन, स्थान उपलब्ध नहीं, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1964
5. डॉ. बाबूराम, भारतीय भक्ति काव्य में समरसता, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 2023
6. डॉ. बाबूराम, संत ब्रह्मानन्द सरस्वती ग्रंथावली, नवभारत प्रकाशन, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 2012
7. परशुराम चतुर्वेदी, उत्तरी भारत की संत परंपरा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1981
8. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1982
9. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1957
10. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, हिन्दी में निर्गुण सम्प्रदाय, अग्र पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 2007
11. ज्ञानचंद शर्मा, आचार्य गरीबदास और उनकी वाणी, हरियाणा ग्रंथ अकादमी, पंचकूला, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 2017
12. डॉ. पूनम कौशिक, हरियाणा की देवन-परम्परा और जगद्गुरु ब्रह्मानंद सरस्वती, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, खंड: एक, प्रथम संस्करण, 1997

दलित आत्मकथाओं में सामाजिक यथार्थ और दलित चेतना

डॉ. बबीता काजल

शोध निर्देशिका, हिन्दी विभाग, चौ बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महावद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

प्रियंका

शोधार्थी, चौ. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्री गंगानगर, राजस्थान

सारांश: मानव का जीवन चक्र जड़-चेतन आदि समस्त के संरक्षित रहने पर ही सुरक्षित है। वायु, जल, वसुधा, वृक्ष, पर्वत, आकाश, पशु-पक्षी तथा मनुष्य आदि इन समस्त का सह अस्तित्व परस्पर गुंथा हुआ है। सर्वाधिक खेद का विषय यह है कि मनुष्य समस्त के सुख की कामना करता है परन्तु उसके अन्त: स्थल में स्वार्थ एवं अहंकार की दुष्प्रवृत्तियाँ भी समाहित हैं। इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप वह न केवल प्रकृति का दोहन करता है बल्कि अपनी ही जाति के अन्य मनुष्य का शोषण भी करता है। यह शोषण व अकारण ही करता है। उसके इस शोषण का शिकार बनता है दलित दलित के साथ ही साथ वह जाति का भी शोषण करता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि उत्पीड़न का कहर सर्वाधिक दलित वर्ग पर ही पड़ता है। अकल्याणकारी वृत्तियों के विनाश के लिए आवाज उठाना सर्वथा उचित ही माना जाना चाहिए। यह आवाज चूंकि अर्न्तात्मा से उठती है अत: इसे आत्मकथा नाम देना सर्वथा प्रतीत होता है। दलित आत्मकथा का अर्थ है दलितों के शोषण की आवाज। इस दलित समाज का समावेश सामाजिक यथार्थ के अन्तर्गत माना जा सकता है। दलित वर्ग को अपने उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष करना अर्थात् दलितों को जाग्रत करने का द्योतक है। इसे ही दलित चेतना का भी नाम दिया जा सकता है।

बीज शब्द: जड़-चेतन, पंच तत्व, मानव, विषय, अस्तित्व, दलित, उत्पीड़न, शोषण, अन्त:स्थल, दुष्प्रवृत्ति, स्वार्थ, अहंकार, शिकार, इतिहास, साक्षी, अर्न्तात्मा, आत्मकथा, चेतना, यथार्थ, संघर्ष, जाग्रत, द्योतक तथा कहर आदि।

प्रस्तावना: सृष्टि की उत्पत्ति के कुछ समय पश्चात मानव का अस्तित्व इस संसार में दृष्टिगोचर हुआ। इसके कुछ कालखण्ड के पश्चात् समाज की निर्मिति हुई। समाज की निर्मिति में इस समाज को ही चार वर्णव्यवस्थाओं में विभाजित किया गया। यहीं से ही मनुष्य मनुष्य का ही दुश्मन हो गया।

साहित्य जगत में आत्मकथा विधा का अपना पृथक विशिष्ट स्थान है। आत्मकथा के माध्यम से हम अपने से अन्य के जीवन रहस्यों को ज्ञात कर सकते हैं। दलित आत्मकथाओं में दलित जीवन चित्रण ही प्रमुख होता है।

विश्लेषण: हमारा भारतीय समाज चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) में विभक्त है। ''समाज के तथाकथित ठेकेदारों ने अपने ही शरीर के अंग को शूद्र का नाम देकर उस समुदाय की दलित की संज्ञा प्रदान की है। समाज के इसी वर्ग को सामाजिक, धार्मिक जुलूस एवं दास्य बन्धनों से मुक्त होने की प्रेरणा साहित्यिक विद्या आत्मकथा के माध्यम से प्राप्त हुई है इसीलिए इस विद्या को दलित आत्मकथा के नाम से सम्बोधित किया गया है।''[1]

हिन्दी साहित्य की आत्मकथा विधा के अंतर्गत दलित आत्मकथा का आदिस्रोत हमें मराठी भाषा की दलित आत्मकथा दया पवार कृत से प्राप्त होता है इस दलित आत्मकथा में हिन्दी रूपान्तर 'अछूत' नाम से हुआ है। कुछ साहित्यिक विद्वानों का मत है कि दलित आत्मकथा का प्रारम्भ ओमप्रकाश वाल्मीक कृत 'जूठन' से माना गया है, परन्तु इन साहित्यिक मत-मतान्तर का कोई अंत नहीं है।

दलित आत्मकथा के पूर्व हमें दलित शब्द का अर्थ ज्ञात करना आवश्यक प्रतीत होता है। ''दलित शब्द मसला, मर्दित, दबाया, रौंदा या कुचला हुआ विनष्ट किया हुआ आदि।''[2]

दलितों के जीवन में अस्पृश्यता, भूख और निर्धनता केन्द्रभूत समस्याएँ हैं जो दलितों के सामने आज भी अनवरत घूमने वाली धुरी अर्थात् चक्र की भांति निरन्तर घूम रही हैं। दलित आत्मकथा साहित्य में अनेक दलित आत्मकथाओं का समावेश है परन्तु उनमें से कोई भी एक दलित आत्मकथा नहीं है जो दलित समाज की भूख एवं गरीबी के यथार्थ को समाज के समक्ष प्रस्तुत न करती हो।

प्रोफेसर मुकुंद गायकवाड़ का कथन है कि- ''दलितों के जीवन में जो दु:ख भोग आया है उसमें अस्पृश्यता का बड़ा हिस्सा है। मानव जब मानव के स्पर्श नकार देता है, तब उसमें मानवता की दरिया अनायास ही बढ़ जाती है इसी दूरी के कारण उसी मानव समाज का ही एक अन्य मानव अस्पृश्य ठहराया जाता है। इतना ही नहीं वह सामाजिक दृष्टि से उसे निम्न श्रेणी का दर्जा प्रदान किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रेष्ठत्व का अहंकार बढ़ जाता है इसी अहंकार के कारण दलित व्यक्ति से दलित आत्मकथा का प्रादुर्भाव होता है।''[3]

दलित चेतना को व्यापकता प्रदान करते हैं। साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का कथन है कि- ''दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है दुर्गम पहाड़ों वनों के बीच जीवन यापन करने वाली जनजातियाँ समस्त दलित श्रमिक, आदिवासी समाज, बहुत कम मूल्य पर चौबीस घण्टे काम करने वाले बंधुआ मजदूर आदि की जीवन शैली को दलित आत्मकथा कहा जाता है।''[4]

ईश्वरी प्रकृति और पृथ्वी यह दोनों मानव जीवन की जीवन सम्बन्धी अनेक धारणाएँ समान रूप से प्रदान करता है। दलित चेतना अमानवीयता के प्रतिरोध की चेतना है।

चेतना शब्द का अर्थ स्फूर्ति, जागरुकता, सतर्कता तथा सजगता आदि में सन्निहित है। मनुष्य को अपने परिवेश के प्रति सजग करने वाली प्रवृत्ति (भावबोध) को चेतना संज्ञा प्रदान की जाती है। जब यही चेतना शब्द दलित के साथ जुड़ता है तब वह दलित वर्ग की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक समस्याओं से सम्पृक्त होकर दलित चेतना की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। दलित चेतना उस व्यक्ति की चेतना है जिसे अस्पृश्य मानकर सामाजिक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है।

दलित आत्मकथाएँ जातिगत उत्पीड़न, शोषण, बंधुआ श्रमिकों की अव्यवस्था, सामाजिक भेदभाव तथा मानवीय संघर्ष का जीवंत दस्तावेज हैं। दलित आत्मकथाएं इस प्रकार हैं- दया पवार की बलुतं, सोनकांबले प्र.ई. की आठवणी चे पक्षी, शंकरराव खरात की तराल, लक्ष्मण गायकवाड़ की उचल्या, लक्ष्मण माने की उपरा, बेबी कांबले की जिणं आमचं, शरण कुमार लिंबाले की अक्करमासी, किशोर शांताबाई काले की कोल्हाट्याचे पोर तथा नरेन्द्र जाधव की आमचा बाप आनं आम्ही आदि हैं इनके हिन्दी में भी अनुवाद हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में दलित आत्मकथाएँ निम्न प्रकार हैं-

''ओमप्रकाश वाल्मीकि कृत 'जूठन', मोहनदास नैमिषराय कृत 'पिंजेर' अपने अपने, तुलसीराम कृत 'मुर्दहिया', कौशल्या वैसंत्री कृत 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे कृत 'शिकंजे का दर्द', सूरज पाल चौहान कृत 'तिरस्कृत', रूपनारायण सोनकर कृत 'नागफणी', धर्मवीर भारती कृत मेरी पत्नी और 'भेड़िया', श्योराज सिंह बेचौन कृत 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर' तथा मोहनदास नैमिषराय कृत 'रंग कितने संग मेरे' आदि।''[5]

उपरोक्त दलित आत्मकथाओं में शोषण, उत्पीड़न, दर्दनाक घटनाओं, काण्डों तथा जातिगत विषमताओं की गूंज सुनाई देती है। सवर्ण समाज द्वारा किये जा रहे अमानुषिक व्यवहारों का इन आत्मकथाओं में उल्लेख प्राप्त होता है। इस साहित्य में उच्च जातियों के व्यवहार तथा रवैये का खुलकर तीव्र विरोध किया गया है। हमारे देश के प्रख्यात दलित साहित्यकार आरम्भ से ही अपनी वृत्तियों के माध्यम से घृणित तथा अमानवीय जीवनयापन करने वाले समाज के दलित घटकों की जिजीविषा को जाग्रत करने का प्रयास कर रहे हैं।

आजादी के 79 वर्ष व्यतीत होने के बाद भी आज तक सवर्णों के व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया है। वे पूर्व की ही भांति दलित समाज पर अत्याचार करने से बाज नहीं आ रहे हैं। हाँ इतना परिवर्तन अवश्य हुआ है कि शिक्षा के कारण अब दलित जातियों में स्वाभिमान की चेतना का संचार तथा जागरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है। अब कुछ-कुछ दलित वर्ग भी अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों तथा स्त्रियाँ अपने उत्पीड़न का विरोध करने की हिम्मत जुटा रही हैं। इतना ही नहीं शिक्षा विभाग में नियुक्त दलित प्राध्यापक तथा दलित शोध छात्र दलितों में चेतना जाग्रत करने का सराहनीय कार्य कर रहे हैं परन्तु दलित समाज के उत्थान के लिए यह कृत्य अभी अत्यल्प ही है।

निष्कर्ष: हिन्दी साहित्य में आत्मकथा विधा सर्वाधिक सशक्त विधा मानी गयी है। दलित आत्मकथाओं ने एक प्रकार से दलित समाज में चेतना तथा जागरण का सशक्त एवं स्वागत योग्य कार्य किया है। जनजागरण अभियान एक ऐसा हथियार होता है जिससे सशक्त समाज पराजित होकर अपना व्यवहार बदलने पर मजबूर हो जाता है। हिन्दी साहित्य की दलित आत्मकथाएं एक प्रकार से दलितों का परमाणु बम हैं। सच्ची मानवता वही है जहाँ पर सम्पूर्ण समाज बिना किसी भेदभाव के समान रूप से जीवन यापन करें। इसके लिए सम्पूर्ण समाज को अपने आचरण स्वभाव को परिवर्तत करना अति आवश्यक है। प्रेम ही जीवन का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि का यथार्थ है।

संदर्भ

1. 21वीं सदी का दलित साहित्य- डॉ. शेख शहेनाज बेगम अहेमद, पृ. 20, संस्करण 2019, संकल्प प्रकाशन, कानपुर
2. हिन्दी कोश- सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ. 125, संस्करण 1990, लोकभारती इलाहाबाद
3. मराठी से हिन्दी में अनूदित दलित आत्मकथाएँ, प्रो. मुकुन्द गायकवाड़, पृ. 123, संस्करण 2022, समता प्रकाशन, कानपुर
4. सन्त साहित्य में दलित चेतना- डॉ. हुकुम सिंह, पृ. 14, संस्करण 2014, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा
5. मराठी से हिन्दी में अनूदित दलित आत्मकथाएँ- प्रो गायकवाड़ा, मुकुंद, पृ. 99, संस्करण 2022, समता प्रकाशन, कानपुर

वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ0 धर्मेन्द्र कुमार सोनकर

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महाराजगंज

दया शंकर

शोध छात्र, समाजाशस्त्र विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी0जी0 कालेज, महाराजगंज

सारांश

भारतीय समाज की संरचना का अध्ययन संयुक्त परिवार प्रणाली के बिना अधूरा है, जो सुरक्षा, भावनात्मक समर्थन और आर्थिक सहयोग प्रदान करती है। हालांकि वैश्वीकरण, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण ने इसे प्रभावित किया है, वर्तमान में संयुक्त परिवार एक जटिल और बहुआयामी संस्था बनी हुई है। पारंपरिक मॉडल अब दुर्लभ हो गए हैं, और आभासी एवं आंशिक परिवारों का उदय हुआ है, जिसके चलते व्यक्तिगत स्वतंत्रता, आर्थिक दबाव और पीढ़ीगत अंतर जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं। फिर भी, इसके लाभ जैसे भावनात्मक समर्थन, आर्थिक सुरक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण आज भी प्रासंगिक हैं। यह परिवार हमेशा एक स्थिर और सहायक भूमिका निभाता रहा है। भविष्य में, यह संभव है कि संयुक्त परिवार का स्वरूप विकसित हो, जो आधुनिकता और पारंपरिकता के बीच संतुलन बनाए रखे। इसे विलुप्त होती संस्था के बजाय एक अनुकूलनशील सामाजिक संरचना के रूप में देखना चाहिए, जो भारतीय समाज का अभिन्न अंग बनी रहेगी।

मुख्य शब्दः औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, संयुक्त परिवार, सांस्कृतिक, भावनात्मक।

प्रस्तावना

भारतीय समाज की संरचना का अध्ययन संयुक्त परिवार प्रणाली के बिना अधूरा है। यह न केवल एक सामाजिक इकाई है, बल्कि संस्कृति, परंपराओं और मूल्यों का भी एक महत्वपूर्ण वाहक है। सदियों से, संयुक्त परिवार ने भारतीय सामाजिक जीवन के केंद्र में अपनी जगह बनाए रखी है, जो सदस्यों को सुरक्षा, भावनात्मक समर्थन और आर्थिक सहयोग प्रदान करती है। हालांकि, वैश्वीकरण, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और बदलते सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य ने इस पारंपरिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया है। वर्तमान परिवेश में, संयुक्त परिवार का स्वरूप, कार्यप्रणाली और समाज पर इसका प्रभाव पहले से काफी भिन्न हो गया है। यह अध्ययन वर्तमान समय में संयुक्त परिवार के समाजशास्त्रीय आयामों का विश्लेषण करता है, जिसमें इसके बदलते रूप, इसके सामने आने वाली चुनौतियाँ, इसके लाभ और भारतीय समाज के विकास में इसकी प्रासंगिकता जैसे पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है।

संयुक्त परिवार का पारंपरिक स्वरूप और विघटन की प्रक्रिया

पारंपरिक भारतीय समाज में, संयुक्त परिवार एक विस्तृत व्यवस्था थी जिसमें कई पीढ़ियों के सदस्य एक साथ रहते थे, एक ही रसोई से भोजन करते थे और संपत्ति के मालिक होते थे। मुखिया, आमतौर पर सबसे बड़ा पुरुष सदस्य, परिवार के सभी मामलों का निर्विवाद प्रमुख होता था। इस प्रणाली के कई लाभ थे। यह बुजुर्गों के लिए देखभाल, बच्चों के लिए सुरक्षित वातावरण, आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा का एक मजबूत जाल प्रदान करती थी। यह सामूहिक जीवन शैली ने सदस्यों के बीच सहयोग, त्याग और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा दिया।

हालांकि, 20वीं सदी के उत्तरार्ध और 21वीं सदी की शुरुआत से, इस पारंपरिक संरचना में महत्वपूर्ण विघटनकारी परिवर्तन देखे जा रहे हैं। औद्योगिकीकरण और शहरीकरण ने लोगों को आजीविका की तलाश में अपने पैतृक गांवों से शहरों की ओर पलायन करने के लिए मजबूर किया। शहरों में, रहने की लागत अधिक होती है और स्थान सीमित होता है, जिससे एक बड़े परिवार का एक साथ रहना अव्यावहारिक हो जाता है। इसके अलावा, पश्चिमीकरण के प्रभाव और व्यक्तिवाद के उदय ने पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को चुनौती दी है। शिक्षा के बढ़ते स्तर, विशेषकर महिलाओं में, ने उनकी आकांक्षाओं और स्वतंत्रता की भावना को बढ़ाया है, जिससे वे पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं से हटकर करियर बनाने को प्राथमिकता दे रही हैं।

आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण ने भी इस प्रक्रिया को गति दी है। रोजगार के नए अवसर, विशेष रूप से बहुराष्ट्रीय कंपनियों में, अक्सर युवाओं को परिवार से दूर, दूसरे शहरों या देशों में ले जाते हैं। एकल परिवार का उदय, जिसमें केवल माता-पिता और उनके अविवाहित बच्चे शामिल होते हैं, तेजी

से एक सामान्य घटना बनती जा रही है। यह संक्रमण कई सामाजिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ला रहा है, जैसे कि अकेलेपन में वृद्धि, बुजुर्गों की उपेक्षा और पारंपरिक सामाजिक सुरक्षा तंत्र का कमजोर होना।

वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार के बदलते स्वरूप

आज संयुक्त परिवार का पारंपरिक स्वरूप काफी हद तक बदल गया है। श्विस्तारित संयुक्त परिवारश् का मॉडल, जहाँ तीन या चार पीढ़ियाँ एक ही छत के नीचे रहती हैं, अब दुर्लभ होता जा रहा है। इसके स्थान पर, श्आभासी संयुक्त परिवारश्या श्आंशिक संयुक्त परिवारश् जैसे नए रूप उभरे हैं।

आभासी संयुक्त परिवार में, परिवार के सदस्य शारीरिक रूप से एक साथ नहीं रहते हैं, लेकिन वे अभी भी मजबूत भावनात्मक, सामाजिक और आर्थिक संबंध बनाए रखते हैं। वे नियमित रूप से मिलते हैं, एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होते हैं, और वित्तीय सहायता का आदान-प्रदान करते हैं। प्रौद्योगिकी, जैसे कि मोबाइल फोन और इंटरनेट, इस आभासी जुड़ाव को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वीडियो कॉल और सोशल मीडिया के माध्यम से, दूर रहने वाले सदस्य भी दैनिक जीवन का हिस्सा बने रहते हैं।

आंशिक संयुक्त परिवार में, दो पीढ़ियाँ, जैसे कि माता-पिता और उनके विवाहित बच्चे, एक ही घर में रह सकते हैं, या वे आस-पास के घरों में रह सकते हैं और दैनिक आधार पर एक दूसरे के साथ बातचीत करते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो पारंपरिक संयुक्त परिवार के कुछ लाभों को एकल परिवार की स्वतंत्रता के साथ जोड़ती है। उदाहरण के लिए, एक संयुक्त परिवार में दादा-दादी अपने पोते-पोतियों की देखभाल में मदद कर सकते हैं, जबकि माता-पिता काम पर जाते हैं, जिससे बच्चे की देखभाल की लागत कम हो जाती है और परिवार को भावनात्मक समर्थन मिलता है।

इसके अलावा, एकल-माता-पिता वाले परिवारों की संख्या में वृद्धि भी पारिवारिक संरचनाओं में एक महत्वपूर्ण बदलाव है। तलाक, अलगाव या जीवनसाथी की मृत्यु के कारण ऐसे परिवार बढ़ रहे हैं। ये परिवार अक्सर सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हैं, लेकिन वे भी परिवार के नए रूपों को परिभाषित कर रहे हैं।

संयुक्त परिवार प्रणाली के समक्ष चुनौतियाँ

वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार प्रणाली को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें से कुछ प्रमुख चुनौतियाँ इस प्रकार हैं:

व्यक्तिवाद का उदय: आधुनिक समाज में व्यक्तिवाद पर अत्यधिक जोर दिया जाता है, जिससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता को प्राथमिकता मिलती है। यह पारंपरिक संयुक्त परिवार के सामूहिकवादी लोकाचार के विपरीत है, जहाँ व्यक्तिगत इच्छाओं को अक्सर परिवार की आवश्यकताओं के अधीन किया जाता है। युवा पीढ़ी अपनी पसंद की जीवनशैली, करियर और जीवनसाथी चुनने की स्वतंत्रता चाहती है, जो कभी-कभी परिवार के बड़े सदस्यों के पारंपरिक विचारों से टकरा सकती है।

आर्थिक दबाव और निवास की समस्यारू शहरों में बढ़ती जनसंख्या घनत्व और सीमित आवास स्थान संयुक्त परिवार के लिए एक बड़ी बाधा है। परिवार के सभी सदस्यों के लिए पर्याप्त आवास प्रदान करना अक्सर मुश्किल होता है, जिससे एकल परिवारों को प्राथमिकता मिलती है। इसके अलावा, परिवारों को अपनी वित्तीय स्थिति बनाए रखने और बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिक व्यक्तिगत वित्तीय स्वतंत्रता की आवश्यकता महसूस होती है।

पीढ़ीगत अंतराल: आधुनिक जीवनशैली, विचारों और मूल्यों में पीढ़ीगत अंतर भी संयुक्त परिवार में तनाव का कारण बन सकता है। युवा पीढ़ी नवीनतम तकनीकों, फैशन और सामाजिक रुझानों से अधिक परिचित होती है, जबकि पुरानी पीढ़ी पारंपरिक रीति-रिवाजों और मूल्यों को अधिक महत्व देती है। यह अंतर गलतफहमी और संघर्ष को जन्म दे सकता है।

महिलाओं की बदलती भूमिका: शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता ने महिलाओं की भूमिका को घर तक सीमित रहने से बाहर निकाला है। वे अब करियर बनाने, परिवार की आय में योगदान करने और सामाजिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने की इच्छा रखती हैं। संयुक्त परिवार में, महिलाओं को अक्सर घर के कामों और बच्चों की देखभाल की अतिरिक्त जिम्मेदारी उठानी पड़ती है, जो उनके व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास में बाधा डाल सकती है।

संचार की कमी: भौतिक दूरी और व्यक्तिगत व्यस्तताओं के कारण, परिवार के सदस्यों के बीच प्रभावी संचार की कमी भी एक चुनौती है। इससे गलतफहमी, अलगाव और भावनात्मक दूरियां पैदा हो सकती हैं।

संसाधनों का असमान वितरण: कभी-कभी, संयुक्त परिवार में संसाधनों, विशेष रूप से धन और संपत्ति के वितरण को लेकर आंतरिक संघर्ष उत्पन्न हो सकते हैं। यह परिवार के सदस्यों के बीच असंतोष और तनाव का कारण बन सकता है।

वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार के लाभ और प्रासंगिकता

इन चुनौतियों के बावजूद, वर्तमान परिवेश में भी संयुक्त परिवार प्रणाली के अपने महत्वपूर्ण लाभ और प्रासंगिकता बनी हुई है।

भावनात्मक समर्थन और सुरक्षारू संयुक्त परिवार अपने सदस्यों को एक मजबूत भावनात्मक समर्थन प्रणाली प्रदान करता है। कठिन समय में, परिवार के सदस्य एक दूसरे को सहारा देते हैं, जिससे अकेलेपन और तनाव का सामना करने में मदद मिलती है। विशेष रूप से बच्चों और बुजुर्गों के लिए, एक सहायक पारिवारिक वातावरण सुरक्षा और अपनापन प्रदान करता है।

आर्थिक सहयोग: भले ही सभी सदस्य एक ही घर में न रहें, वे अक्सर आर्थिक रूप से एक दूसरे का समर्थन करते हैं। यह संकट के समय में महत्वपूर्ण वित्तीय सुरक्षा प्रदान करता है, जैसे कि बेरोजगारी, बीमारी या अप्रत्याशित खर्चे।

बच्चों का विकासः संयुक्त परिवार में रहने वाले बच्चों को दादा-दादी और अन्य रिश्तेदारों से अधिक प्यार, ध्यान और मार्गदर्शन मिलता है। वे विभिन्न आयु वर्ग के लोगों के साथ बातचीत करना सीखते हैं, जो उनके सामाजिक और भावनात्मक विकास के लिए फायदेमंद है। उन्हें बचपन से ही सहयोग, साझा करने और जिम्मेदारी जैसे मूल्य सिखाए जाते हैं।

बुजुर्गों की देखभालः आधुनिक समाज में, बुजुर्गों की देखभाल एक बड़ी चिंता का विषय है। संयुक्त परिवार प्रणाली स्वचालित रूप से बुजुर्गों के लिए देखभाल और सम्मान सुनिश्चित करती है, जो अक्सर एकल परिवारों में एक चुनौती होती है।

सांस्कृतिक और पारंपरिक मूल्यों का संरक्षणः संयुक्त परिवार पीढ़ियों से चले आ रहे रीति-रिवाजों, परंपराओं और सांस्कृतिक मूल्यों को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। यह सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखने में मदद करता है।

घरेलू जिम्मेदारियों का बंटवाराः यदि परिवार के सदस्य एक साथ रहते हैं या निकटता में, तो घरेलू जिम्मेदारियों को साझा किया जा सकता है, जिससे व्यक्तिगत सदस्यों पर बोझ कम होता है।

सामुदायिक भावना का विकासः संयुक्त परिवार एक ऐसी इकाई है जहाँ सहयोग और सामूहिक भावना को प्रोत्साहन मिलता है। यह सदस्यों को अधिक सामाजिक और समुदाय उन्मुख बनने में मदद करता है।

तकनीक का उपयोगः आधुनिक तकनीक ने संयुक्त परिवार को अपनी दूरी को पाटने और जुड़ाव बनाए रखने में मदद की है। वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग, सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल माध्यमों से, दूर रहने वाले सदस्य भी परिवार की गतिविधियों और महत्वपूर्ण घटनाओं में भाग ले सकते हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान परिवेश में संयुक्त परिवार प्रणाली एक जटिल और बहुआयामी सामाजिक संस्था बनी हुई है। इसने शहरीकरण, वैश्वीकरण और व्यक्तिवाद के बढ़ते प्रभाव के कारण महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे हैं। पारंपरिक संयुक्त परिवार का मॉडल दुर्लभ हो गया है, और इसके स्थान पर आभासी और आंशिक संयुक्त परिवार जैसे नए रूप उभरे हैं। इन बदलावों ने कई नई चुनौतियाँ पेश की हैं, जैसे कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता की बढ़ती मांग, आर्थिक दबाव और पीढ़ीगत अंतर।

हालांकि, इन चुनौतियों के बावजूद, संयुक्त परिवार प्रणाली के लाभ, जैसे भावनात्मक समर्थन, आर्थिक सुरक्षा, बच्चों और बुजुर्गों की देखभाल, और सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण, आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। भारतीय समाज के विकास में, संयुक्त परिवार ने हमेशा एक स्थिर और सहायक भूमिका निभाई है। भविष्य में, यह संभव है कि संयुक्त परिवार का स्वरूप और भी अधिक अनुकूलित होगा, जो आधुनिक जीवन की मांगों और पारंपरिक मूल्यों के बीच संतुलन बनाए रखेगा। यह परिवार का एक ऐसा रूप होगा जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बनाए रखता है, जबकि सदस्यों के बीच मजबूत सामाजिक और भावनात्मक बंधन को भी बढ़ावा देता है। इस प्रकार, वर्तमान परिवेश में, संयुक्त परिवार को एक विलुप्त होती संस्था के बजाय, एक विकसित और अनुकूलनशील सामाजिक संरचना के रूप में देखा जाना चाहिए, जो भारतीय समाज की ताने-बाने का एक अभिन्न अंग बनी रहेगी।

संदर्भ

1. Cote, J. E. (2000). The rise of post-modern youth. Rowman & Littlefield Publishers, p. 54.
2. Giddens, A. (1992). The transformation of intimacy: Sexuality, love and eroticism in modern societies. Stanford University Press, p. 42.
3. Gore, M. S. (1968). Urbanization and family changes. Popular Prakashan.
4. Kapoor, S. (2009). The changing family: Challenges and opportunities in the new millennium. Sage Publications, p. 89.
5. Lal, R. B. (2002). Family in India: Structure and change. Rawat Publications, p. 75.
6. Madhan, J. (1969). Indian family and marriage. Hind Pocket Books, p. 32.
7. Mitra, A. (1990). The nature of development of family structure in India. Indian Journal of Social Science, 3(4), 491-510.
8. Pandey, R. (2015). Impact of globalization on family structure in India. International Journal of Social Science & Humanities Research, 3(12), p. 45-52.
9. Srinivas, M. N. (1942). Marriage and family in Mysore. New Book Company, p. 34.
10. Vatuk, S. (1990). Wives, mothers, and the great outdoors: Femininity and the domestic sphere in North India. In Sociology of family in India: Studies in change and continuity, Rawat Publications, p. 200-224.

"राजपूत चित्रकला और मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्य धारा के सम्बन्धों का विवेचनात्मक अध्ययन"

ज्योति सिन्हा

(शोधार्थी) विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

प्रो० उमेश कुमार

(शोध निर्देशक) अध्यक्ष, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

राजपूत चित्रकला भारतीय लघुचित्र परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण धारा है, जिसका विकास मुगलकालीन युग में विभिन्न राजपूत रियासतों-मेवाड़, मारवाड़, बूंदी, किशनगढ़, बीकानेर तथा पहाड़ी अंचलों-में हुआ। यह चित्रकला केवल राजदरबारी सौन्दर्यबोध की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, धर्मानुभूति और लोकानुराग का दृश्य रूप है। मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा ने इस चित्र परम्परा को विषय, भाव और प्रतीक प्रदान किए। सूरदास, मीराबाई, नंददास, रसखान तथा जयदेव जैसे कवियों के काव्य में व्यक्त बाललीला, रास, विरह, माधुर्य तथा भक्ति के विविध रूप राजपूत चित्रों में सजीव हो उठते हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में राजपूत चित्रकला और मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा के अंतर्सम्बन्धों का विवेचनात्मक अध्ययन है, जिससे स्पष्ट होता है कि शब्द और रंग, दोनों ने मिलकर भारतीय सौन्दर्यपरक भक्ति-संवेदना को स्थायित्व प्रदान किया।

शब्दकुंजी: राजपूत चित्रकला, श्रीकृष्ण काव्यधारा, मध्यकाल, भक्ति आंदोलन, लघुचित्र, राधा-कृष्ण, सौन्दर्यबोध, भारतीय संस्कृति

परिचय

भारतीय कला परम्परा में साहित्य और चित्रकला का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ रहा है। जहाँ साहित्य भावों को शब्दों में व्यक्त करता है, वहीं चित्रकला उन्हीं भावों को दृश्य रूप प्रदान करती है। मध्यकालीन भारत में जब भक्ति आंदोलन ने व्यापक सांस्कृतिक चेतना का निर्माण किया, तब श्रीकृष्ण उसके सर्वाधिक लोकप्रिय आराध्य रूप में प्रतिष्ठित हुए। कृष्ण के बालरूप, गोवर्धनधारी, मुरलीमनोहर, रासविलासी तथा विरही नायक-इन सभी रूपों ने कवियों और चित्रकारों दोनों को समान रूप से आकर्षित किया।

राजपूत चित्रकला का विकास लगभग सोलहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य विभिन्न राजपूत राज्यों में हुआ। यद्यपि इस पर मुगल चित्रशैली का आंशिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, तथापि इसकी मूल चेतना भारतीय रही। इसमें उज्ज्वल रंग, प्रतीकात्मक प्रकृति, अलंकरण, भावप्रधान मुद्रा तथा आध्यात्मिक सौन्दर्य की प्रधानता मिलती है। दूसरी ओर मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा में भक्ति और श्रृंगार का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। इस प्रकार दोनों धाराएँ परस्पर पूरक रूप में विकसित हुईं-काव्य ने चित्रकला को कथ्य दिया और चित्रकला ने काव्य को दृश्य आयाम।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य राजपूत चित्रकला और मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा के पारस्परिक सम्बन्धों का आलोचनात्मक परीक्षण करना है। इसके अंतर्गत राजपूत चित्रकला की प्रमुख शैलियों एवं विशेषताओं का विवेचन, भावभूमि का विश्लेषण, तथा भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में इनके योगदान का मूल्यांकन निहित है।

शोध पद्धति

शोध-पत्र में मुख्यत: वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक पद्धतियों का प्रयोग किया गया है। ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से राजपूत चित्रकला और कृष्ण काव्यधारा की विकास-यात्रा का अनुशीलन किया गया है।

राजपूत चित्रकला : स्वरूप एवं विकास

राजपूत चित्रकला भारतीय लघुचित्र परम्परा की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण धारा है, जिसका विकास मुख्यत: उत्तर-पश्चिम भारत तथा हिमालयी राजवंशीय अंचलों में हुआ। इसे सामान्यत: राजस्थान और पहाड़ी चित्रकला की व्यापक परम्पराओं में विभाजित किया जाता है, किन्तु दोनों का सांस्कृतिक आधार राजपूत शासकों का संरक्षण और भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक चेतना रही है। राजपूत चित्रकला का उद्‌भव पूर्ववर्ती जैन, अपभ्रंश तथा आरम्भिक हिन्दू पाण्डुलिपि-चित्रण परम्पराओं से सम्बद्ध माना जाता है, जिनमें रेखा की तीक्ष्णता, समतल रंग योजना और प्रतीकात्मक रूपांकन विद्यमान थे।

मुगलकालीन युग में राजपूत राज्यों के राजनीतिक सुदृढ़ीकरण के साथ कला-संरक्षण को नया आयाम प्राप्त हुआ। यद्यपि मुगल चित्रकला से सूक्ष्म रेखांकन, परिप्रेक्ष्य-बोध और दरबारी विन्यास जैसी प्रवृत्तियाँ ग्रहण की गईं, तथापि राजपूत चित्रकारों ने अपनी मौलिक भारतीय संवेदना को अक्षुण्ण रखा।

राजपूत चित्रकला की विविध शैलियाँ इसकी क्षेत्रीय समृद्धि को प्रकट करती हैं तो दूसरी ओर मेवाड़ शैली अपने उज्ज्वल लाल, पीले और हरे रंगों, लोकधर्मी संरचना तथा धार्मिक आख्यानों के लिए प्रसिद्ध है।[4] मारवाड़ शैली में राजसी जीवन, युद्धदृश्य और सजावटी विन्यास का वैभव दृष्टिगोचर होता है। बूंदी और कोटा शैली में वर्षा, वन्यजीवन, उद्यान तथा गतिशील प्राकृतिक दृश्यों का अद्‌भुत अंकन सन्निहित है। किशनगढ़ शैली राधा-कृष्ण के आध्यात्मिक श्रृंगार, ललित देह-रेखाओं और स्वप्निल सौन्दर्य के कारण विशेष प्रतिष्ठित है; यहाँ बनी 'बानी-ठनी' छवि भारतीय कला इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती है।[6] बीकानेर शैली में मुगल प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है, जहाँ सूक्ष्मता, कोमल रंग-संयोजन और परिष्कृत दरबारी संस्कृति का प्रभाव देखा जा सकता है।

राजपूत चित्रकला का प्रमुख स्वर भावप्रधानता है। इसमें दृश्य यथार्थ की नकल नहीं, बल्कि अनुभूति की अभिव्यक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण है। वृन्दावन, यमुना तट, कुंज, मेघ, चन्द्रमा, मोर, कमल और वनप्रदेश जैसे प्राकृतिक उपादान केवल सजावटी तत्व नहीं, बल्कि मनोभावों के प्रतीक हैं। संयोग में वसन्त, विरह में वर्षा, प्रतीक्षा में रात्रि तथा मिलन में पुष्प-वाटिका का प्रयोग भाव-संवेदना को सघन करता है।[7] इसीलिए जब श्रीकृष्ण काव्यधारा के प्रसंग-रासलीला, गोपी-उद्धव संवाद, माखन-चोरी, कालिय-दमन, राधा-विरह-चित्रित किए गए, तब वे केवल कथात्मक दृश्य न रहकर भारतीय मानस की सामूहिक स्मृति बन गए।

अठारहवीं शताब्दी राजपूत चित्रकला का उत्कर्षकाल मानी जाती है। इस समय क्षेत्रीय कार्यशालाओं में भागवत पुराण, गीतगोविन्द, रसिकप्रिया, सूरसागर तथा बिहारी सतसई पर आधारित असंख्य चित्रमालाएँ निर्मित हुईं। उन्नीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक प्रभाव, फोटोग्राफी और दरबारी संरचनाओं के क्षय के कारण इसकी परम्परा शिथिल हुई, किन्तु भारतीय कला-संवेदना में इसका महत्व आज भी अक्षुण्ण है।

मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा में चित्रकला का विकास

राजपूत चित्रकला को विषयवस्तु, भाव-संरचना और प्रतीक-तत्व मुख्यत: इसी काव्यधारा से प्राप्त हुए। यदि कृष्ण काव्यधारा न होती, तो राजपूत चित्रकला में राधा-कृष्ण लीला, ब्रज-संस्कृति, विरह, रास और माधुर्य भक्ति का इतना व्यापक रूपांकन सम्भव न था।

मध्यकालीन भारत में राजनीतिक विघटन, सामाजिक विषमता, जातिगत संकीर्णता तथा कर्मकाण्डप्रधान धार्मिक जीवन के कारण जनमानस में असंतोष व्याप्त था। ऐसी परिस्थिति में भक्ति आंदोलन ने सरल साधना, प्रेम, समता और ईश्वर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध का मार्ग प्रस्तुत किया। वैष्णव भक्ति परम्पराओं-विशेषत: वल्लभ सम्प्रदाय, निम्बार्क सम्प्रदाय, चौतन्य सम्प्रदाय तथा राधावल्लभ परम्पराख्ने श्रीकृष्ण को प्रेम और आनन्द के परम केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि ने कृष्ण-भक्ति साहित्य को जन्म दिया, जिसका प्रभाव आगे चलकर राजपूत दरबारों की चित्रकला पर भी स्पष्ट दिखाई देता है।

इस काव्यधारा का प्रमुख माध्यम ब्रजभाषा रही, क्योंकि ब्रजभूमि स्वयं कृष्ण-लीला की सांस्कृतिक भूमि मानी जाती थी। इस धारा में वात्सल्य, श्रृंगार, माधुर्य, विरह और आत्मसमर्पण जैसे भावों की प्रधानता है। इस काव्यधारा ने राजपूत चित्रकला को कथ्य, चरित्र, भाव और प्रतीक सभी स्तरों पर समृद्ध किया। कवियों ने जिन अनुभूतियों को शब्दों में व्यक्त किया, चित्रकारों ने उन्हें रंग, रेखा और रूप में मूर्त किया। यही कारण है कि राजपूत चित्रकारों ने भी कृष्ण को केवल धार्मिक देवता के रूप में नहीं, बल्कि भावमय और सौन्दर्यपूर्ण नायक के रूप में चित्रित किया।

राजपूत चित्रकला और कृष्ण काव्यधारा के पारस्परिक सम्बन्ध

मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा और राजपूत चित्रकला का सम्बन्ध भारतीय कला-संस्कृति में शब्द और दृश्य के समन्वित रूप का प्रतिनिधित्व करता है। दोनों कलाएँ पृथक माध्यम होते हुए भी एक ही सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्तियाँ हैं।

राजपूत चित्रकला के अनेक विषय सीधे कृष्ण काव्य से ग्रहण किए गए। सूरसागर से बालकृष्ण की माखन-चोरी, उखल-बन्धन, कालिय-दमन, गोचारण और यशोदा-स्नेह जैसे प्रसंग लिए गए। गीतगोविन्द से राधा-कृष्ण संयोग-वियोग, मान, अभिसार और मिलन के प्रसंग चित्रित हुए। रसिकप्रिया से नायिका-भेद, दूतिका, संकेत-स्थल तथा प्रेम-व्यवहार के सूक्ष्म दृश्य विकसित हुए।

काव्य में जो भाव शब्दों द्वारा व्यक्त होते हैं, चित्रकला में वही भाव रंगों और मुद्राओं द्वारा व्यक्त किए गए। उदाहरणत: विरहिणी राधा के लिए अंधकारमय आकाश, वर्षा, रिक्त शय्या और एकाकी नायिका का चित्रण किया गया; संयोग के लिए उद्यान, पुष्प, चन्द्रप्रकाश और समीपस्थ युगल का प्रयोग हुआ। वात्सल्य के लिए यशोदा की झुकी हुई देह-भंगिमा और बालकृष्ण की चपल मुद्रा अत्यन्त प्रभावी रही।

राजपूत शैलियों में कृष्ण काव्य का प्रभाव

मेवाड़ शैली में भागवत पुराण और सूरसागर के धार्मिक तथा लोकजीवन से जुड़े प्रसंग अधिक मिलते हैं। बूंदी शैली में प्रकृति, वर्षा और विरह प्रसंगों का सजीव अंकन मिलता है। किशनगढ़ शैली में राधा-कृष्ण का आध्यात्मिक श्रृंगार सर्वोच्च रूप में अभिव्यक्त हुआ। जयपुर शैली में रागमाला, भागवत तथा दरबारी संस्कारयुक्त कृष्ण-चित्र अधिक मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त राजपूत चित्रों में कृष्ण काव्य के बिम्ब प्रतीक बनकर उपस्थित होते हैंख्मोर -प्रेम का, मेघ- विरह का, कमल- सौन्दर्य का, यमुना- भक्ति का, कुंज- मिलन का और वंशी- आध्यात्मिक आकर्षण का प्रतीक है। चित्रकारों ने इन प्रतीकों के माध्यम से काव्यगत अनुभूति को दृश्य संवेदना में रूपान्तरित किया। जहाँ काव्य का आस्वादन श्रवण और पठन से होता है, वहीं चित्रकला उसी अनुभूति को दर्शन के माध्यम से सुलभ बनाती है।

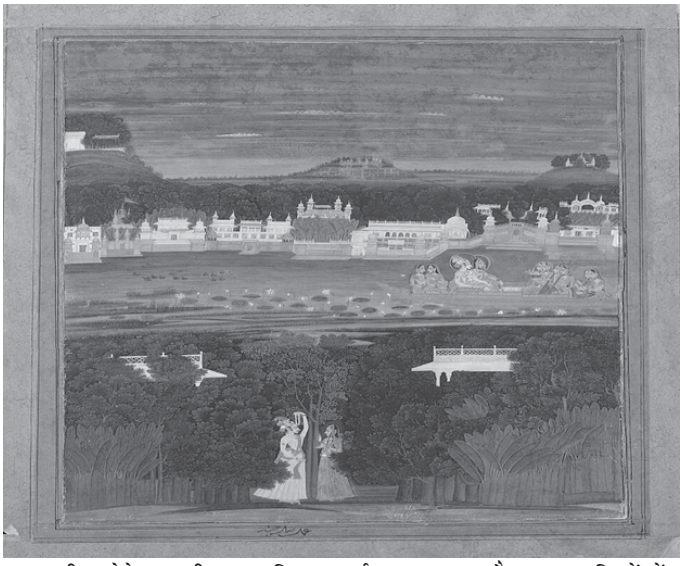

कृष्ण काव्य में राधा-कृष्ण का प्रेम लौकिक प्रतीत होते हुए भी आध्यात्मिक अर्थ ग्रहण करता है। राजपूत चित्रों में यही प्रेम रंगों की कोमलता, दृष्टि-संवाद, समीपस्थ मुद्राओं और प्राकृतिक वातावरण के माध्यम से व्यक्त होता है। प्रस्तुत चित्र शैली इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है-

इसी प्रकार वात्सल्य रस के स्तर पर कृष्ण काव्य में यशोदा और बालकृष्ण का सम्बन्ध अत्यन्त मार्मिक रूप में मिलता है। बाललीला, माखन-चोरी और मातृ-स्नेह के प्रसंग काव्य को लोकजीवन से जोड़ते हैं।

भक्ति रस दोनों माध्यमों का प्राणतत्त्व है। मीरा, सूर और रसखान के काव्य में कृष्ण आराध्य, प्रियतम और जीवन-सार के रूप में उपस्थित हैं। राजपूत चित्रों में मंदिर, आरती, अनुष्ठान और कृष्ण-मूर्ति के माध्यम से यही भाव मूर्त होता है।

विरह सौन्दर्य कृष्ण काव्यधारा की केन्द्रीय अनुभूति है। राधा की प्रतीक्षा, विरहिणी नायिका की व्यथा, वर्षा-रात्रि, उदास प्रकृति और स्मृति-वेदनाख्रये सभी प्रसंग काव्य को करुण माधुर्य प्रदान करते हैं। चित्रकला में यह अनुभूति एकाकी नायिका, झुकी दृष्टि, रिक्त आकाश और संयत रंगों द्वारा व्यक्त की जाती है।

अत: कहा जा सकता है कि कृष्ण काव्यधारा ने भाव, कथा और रस दिए, जबकि राजपूत चित्रकला ने उन्हें दृश्य देह प्रदान की। दोनों मिलकर भारतीय सौन्दर्य, भक्ति और सांस्कृतिक स्मृति की संयुक्त परम्परा का निर्माण करते हैं।

भारतीय लोकजीवन पर प्रभाव

श्रीकृष्ण भारतीय लोकजीवन के सर्वाधिक लोकप्रिय सांस्कृतिक नायक रहे हैं। ब्रज, राजस्थान, गुजरात, उत्तर भारत तथा पर्वतीय क्षेत्रों के लोकगीतों, लोकनाट्यों, पर्व-उत्सवों और लोकचित्रण में कृष्ण-लीला के प्रसंग व्यापक रूप से मिलते हैं। राजपूत चित्रकला ने इन लोकविश्वासों को दृश्य रूप देकर उन्हें स्थायित्व प्रदान किया। होली, झूला, जन्माष्टमी, रासोत्सव, गोवर्धन पूजा आदि उत्सवों की जनप्रियता में कृष्ण काव्य और चित्रकला दोनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इस सन्दर्भ में चित्र लोक-उत्सव, रंग-परम्परा और राजसी सहभागिता का सशक्त उदाहरण है।

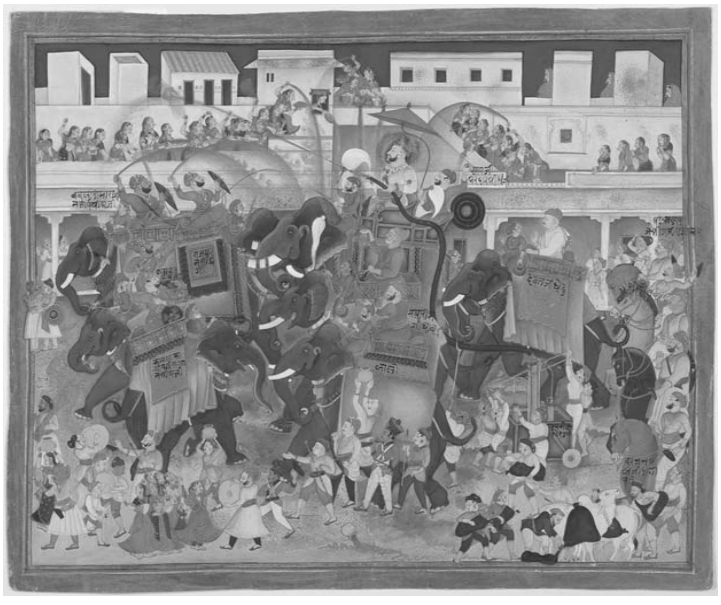

राजदरबारों में कला संरक्षण

राजपूत राज्यों ने भारतीय चित्रकला को संरक्षण देने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। मेवाड़, बूंदी, किशनगढ़, जयपुर, बीकानेर, कोटा और मारवाड़ जैसे राज्यों में कलाकारों को आश्रय, कार्यशालाएँ और विषयवस्तु प्राप्त हुई। राजाओं ने कृष्ण-भक्ति से सम्बद्ध ग्रन्थों का सचित्र निर्माण कराया, जिससे साहित्य और चित्रकला का अद्‌भुत समन्वय संभव हुआ। यह संरक्षण केवल राजवैभव का प्रदर्शन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक संरक्षण की चेतना भी थी।

आधुनिक कला एवं साहित्य पर प्रभाव

आधुनिक काल में भी राजपूत चित्रकला और कृष्ण काव्यधारा की परम्परा समाप्त नहीं हुई। आधुनिक चित्रकारों ने राधा-कृष्ण विषयक रचनाओं में किशनगढ़ और मेवाड़ शैली से प्रेरणा ग्रहण की। हिन्दी कविता, नाटक, उपन्यास, संगीत, नृत्य और चलचित्रों में कृष्ण आख्यान निरन्तर पुनर्सृजित होता रहा है। पर्यटन, संग्रहालयों, कला-प्रदर्शनियों तथा अकादमिक शोध में भी इन दोनों परम्पराओं की निरन्तर उपस्थिति देखी जाती है। इस प्रकार यह विरासत अतीत की धरोहर मात्र नहीं, वर्तमान की सृजनात्मक शक्ति भी है।

निष्कर्ष

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि, भारतीय संस्कृति में साहित्य और चित्रकला का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ, सहजीवी और परस्पर पूरक रहा है। मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा ने जिस भाव-जगत, भक्ति-संवेदना, प्रेम-सौन्दर्य और लोकानुभूति को शब्दों में व्यक्त किया, राजपूत चित्रकला ने उसी संसार को रंगों, रेखाओं और रूपों में साकार किया। राजपूत चित्रकला और मध्यकालीन श्रीकृष्ण काव्यधारा भारतीय सांस्कृतिक चेतना के अमूल्य स्रोत हैं। दोनों मिलकर भारतीय सौन्दर्यबोध, भक्ति-परम्परा और सृजनात्मकता की ऐसी संयुक्त विरासत निर्मित करते हैं, जो कालजयी, प्रेरणादायी और विश्वमानवता के लिए महत्त्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, वासुदेव शरण। (1963). भारतीय कला. वाराणसी: पृथ्वी प्रकाशन।
- द्विवेदी, हजारीप्रसाद। (1952). हिन्दी साहित्य की भूमिका. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- जयदेव। (2004). गीत गोविन्द (संपा./अनु.). नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी। (मूल रचना 12वीं शताब्दी)
- गोस्वामी, बी. एन. (2016). भारतीय चित्रकला की आत्मा: 1100-1900 की 101 महान कृतियाँ. लंदन: थेम्स एंड हडसन।
- बीच, मिलो क्लीवलैंड। (1992). मुगल एंड राजपूत पेंटिंग. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बीच, मिलो क्लीवलैंड। (2008). बूंदी की भित्ति-चित्रकला: टिप्पणियाँ और एक नवीन खोज। आर्टिबस एशिए, 68(1), 101-143।
- कूमारस्वामी, आनंद केंटिश। (1916). राजपूत पेंटिंग: राजस्थान और पंजाब हिमालय की हिन्दू चित्रकला का अध्ययन. लंदन: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- देसाई, विशाखा एन. (1990). सत्रहवीं शताब्दी के उत्तर भारत में चित्रकला और राजनीति: मेवाड़, बीकानेर और मुगल दरबार। आर्ट जर्नल, 49(4), 370-378।
- गोस्वामी, बी. एन., एवं फिशर, एबरहार्ड। (1992). पहाड़ी चित्रकला के आचार्य: उत्तर भारत के दरबारी चित्रकार. ज्यूरिख: आर्टिबस एशिए प्रकाशन।
- काणे, पी. वी. (1961). संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास. मुंबई: भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
- केशवदास। (2001). रसिकप्रिया. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन। (मूल रचना लगभग 1591)
- कोसाक, स्टीवन एम., एवं हैदर, नविना नजात। (2016). दिव्य आनंद: भारत के राजपूत दरबारों की चित्रकला. न्यूयॉर्क: मेट्रोपोलिटन म्यूजियम ऑफ आर्ट।
- लॉस्टी, जे. पी. (2003). भारतीय उपमहाद्वीप। ग्रोव आर्ट ऑनलाइन. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- मेहता, आर. एन. (1993). भारतीय चित्रकला पर अध्ययन. बड़ौदा: महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- मिश्र, विश्वनाथ। (1998). मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भक्ति और सौन्दर्यशास्त्र. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
- नगेन्द्र। (1985). भक्ति काव्य की प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
- नीरज, जय सिंह। (1991). राजस्थानी चित्रकला का वैभव. नई दिल्ली: अभिनव पब्लिकेशन्स।
- रसखान। (2002). रसखान ग्रंथावली. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी।
- शुक्ल, रामचन्द्र। (1968). हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा।
- शर्मा, एस. के. (2005). राजस्थानी चित्रकला और संस्कृति. जयपुर: राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी।
- सूरदास। (2003). सूरसागर. नई दिल्ली: साहित्य अकादेमी। (मूल रचना 16वीं शताब्दी)
- टॉप्सफील्ड, एंड्रयू। (2002). उदयपुर दरबारी चित्रकला: मेवाड़ के महाराणाओं के संरक्षण में कला. ज्यूरिख: आर्टिबस एशिए प्रकाशन।
- वॉडविल, शार्लोट। (1974). भारत की परम्पराओं में कृष्ण. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवन दर्शन एवं योग शिक्षा दर्शन की उपयोगिता

अखिलेश चन्द्र यादव

शोध-छात्र, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा हरपाल सिह पी. जी.कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर,, उ. प्र.

डॉ० विभा सिंह

(शोध निर्देशिका) राजा हरपाल सिंह पी. जी. कालेज, सिंगरामाऊ, जौनपुर, उ. प्र.

सारांश (Abstract):

श्रीराम शर्मा आचार्य एक महान संत, विचारक एवं समाज सुधारक थे, जिन्होंने मानव जीवन के समग्र विकास के लिए आध्यात्मिकता, नैतिकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समन्वय प्रस्तुत किया। उनके जीवन दर्शन का मूल उद्देश्य व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान है।

इस शोध-पत्र में उनके जीवन दर्शन तथा योग शिक्षा के सिद्धांतों का अध्ययन करते हुए उनकी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपयोगिता का विश्लेषण किया गया है। यह पाया गया कि योग शिक्षा के माध्यम से शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन विकसित किया जा सकता है, जबकि उनके जीवन दर्शन से नैतिक मूल्यों, आत्मअनुशासन और सामाजिक जिम्मेदारी का विकास होता है। अतः यह अध्ययन वर्तमान शिक्षा प्रणाली में योग एवं नैतिक शिक्षा के समावेशन की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्दावली: श्रीराम शर्मा आचार्य, जीवन दर्शन, योग शिक्षा दर्शन आदि

प्रस्तावना :

पंडित श्रीराम शर्मा का जन्म 20 सितम्बर 1911 को उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में ऑवलखेड़ा नामक गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री पंण्डित रूप किशोर जी शर्मा था जो आस पास के दूरदराज के राजघरानों के राजपुरोहित, भगवत् कथाकार थे। उनका वाल्यकाल व किशोरकाल ग्रामीण परिसर में ही बीता। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा था जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराड्यों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्म विधा का शिक्षण दिया करते थे। 15 वर्ष की आयु में बसन्त पंचमी की बेला में सन् 1926 ई0 में उनकी गुरू सत्ता का अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में आगमन हुआ। 1935 के बाद उनके जीवन का नया दौर आरम्भ हुआ। जब वे स्वाध्याय रहकर 'अखण्ड ज्योति' नामक पत्रिका का पहला अंक 1938 की बसन्त पंचमी पर प्रकाशित किया। अध्यात्म एवं संस्कृति, गायत्री और यज्ञ, युग निर्माण, सांख्य एवं योग दर्शन, वेद पुराण और दर्शन, गायत्री महाविद्या, युग परिवर्तन कब और कैसे, शिक्षा ही नहीं विद्या भी आदि।

वेदमूर्ति श्रीराम शर्मा आचार्य जी मनुष्य को श्रेष्ठ जीवन जीने की कला बताते हुए कहते हैं कि अगर किसी को जीवन में महान बनना है तो उसके लिए उसे बड़ी से बड़ी कठिनाई का सामना भी करने के लिए तैयार रहना चाहिए। साथ ही महान बनने के बाद उस महानता को उसे हजम करने की कला भी आना चाहिए। क्योंकि जो व्यक्ति अपने आपको महान समझता है। अन्तर्मन से असंतुष्ट रहता है। उसके मन में भारी अन्दवन्द्व होता रहता है। वह संसार को ही गलत मार्ग पर चलते हुए देखता है और उसको सुधार करने की धुन में लग जाता है।

उनका विचार था कि 'जीवन में सफलता पाने के लिए आत्म विश्वास उतना ही जरूरी है जितना जीने के लिए भोजन।' अर्थात कोई भी सफलता बिना आत्म विश्वास के मिलना असम्भव है।

योग दर्शन :

योग दर्शन के अनुसार मनुष्य प्रकृति पुरुष और ईश्वर का योग है। जब पुरुष अर्थात आत्मा प्रकृति की ओर आकृष्ट या जुड़ाव रखती है तब वह प्रकृति के सुख दुःख भोगती है और जब वह ईश्वर की ओर आकृष्ट होती है तब वह परमानन्द का अनुभव करती है। वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य की आत्मा को प्राकृतिक तत्व से विलखकर ईश्वर तत्व की ओर उन्मुख करे और परमानन्द की अनुभूति कराये शिक्षा ही बालक को प्राकृति, पुरुष और ईश्वर के सम्बन्ध का बोध कराती है

श्रीराम शर्मा आचार्य ने योग साधना की असंख्य विधियों में से गायत्री विधा से विधि को सर्वश्रेष्ठ विधि माना है। प्रधान योगों की साधना गायत्री द्वारा हो सकती है, योग साधना के अनेकों मार्ग हैं पर आगे चलकर वे सभी मार्ग एक ही उद्देश्य पर जा पहुँचते हैं। योग शिक्षा का लक्ष्य स्वास्थ्य में सुधार से लेकर मोक्ष प्राप्त करने तक है जो सभी सांसारिक कष्ट एवं जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त करना है। उस क्षण में परम ब्रह्म के साथ समरूपता का एक एहसास है।

शिक्षा का अर्थ:

पंडित आचार्य को शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली (वैदिक शिक्षा) में दृढ़ आस्था थी। शिक्षा की प्राचीन गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा और विद्या दोनों का समन्वय था। शिक्षा के प्रारम्भिक भाग में एक शिक्षार्थी को अपने परिवार के भरण-पोषण के लिए सांसारिक ज्ञान सीखना पड़ता था और बाद के भाग में जीवन जीने की महान कला प्रदान की जाती थी। उनका मानना था कि उच्चतम सत्य वेदों में निहित हैं। उनका विचार था कि शिक्षा ज्ञान के लिए नहीं बल्कि मनुष्य के मानवीकरण के लिए है। उनका मानना था कि शिक्षा मानव व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को बढ़ावा दे सकती है।

शिक्षा न तो फैशन है और न ही मनोरंजन। यह जीवन की सबसे जरूरी आवश्यकता है जिसके बिना आंतरिक गुणों का विकास असंभव है। प्रत्येक बच्चा कुछ जन्मजात गुणों और क्षमताओं के साथ पैदा होता है। शिक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से इन गुणों का विकास होता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मानवीय मूल्यों के विकास के साथ-साथ विचार, व्यवहार और चरित्र का परिश्करण करना है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार, श्शिक्षा वह है जो एक व्यक्ति को अच्छा, वास्तविक और पूर्ण मनुष्य बनाती हैष।

सर्वांगपूर्ण शिक्षा (सम्पूर्ण या पूर्ण शिक्षा):

देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रशासनिक अवल श्रीराम भवन देव संस्कृति विश्वविद्यालय में शोध भ्रमण के दौरान शोधार्थी ने सर्वांगपूर्ण शिक्षा के विभिन्न आयामों का अध्ययन किया। प्रख्यात विद्वानों के विचारों को समेकित करते हुए हम 'सर्वांगपूर्ण शिक्षा' (पूर्ण शिक्षा) को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं- 'शिक्षण, सीखने और ज्ञान देने की प्रणाली है जो पूर्ण आत्मनिर्भरता, व्यक्तित्व के उत्कृष्ट विकास और सदाचारी प्रवृत्तियों के निरंतर विकास की ओर ले जाती है।

पंडित आचार्य ने श्संपूर्ण या पूर्ण शिक्षा को शिक्षा और विद्या (ज्ञान) के संयोजन के रूप में परिभाषित किया है'। शिक्षा विद्यालयी शिक्षा से संबंधित है, जो साक्षरता से शुरू होती है और जीवन की बाहरी गतिविधियों और दृश्य दुनिया के बारे में ज्ञान प्रदान करती हैं, बल्कि कहे कि जानकारी के साथ संपन्न होती है। यह व्यक्ति को जीविकोपार्जन और कुशल प्रतिभाओं के विकास में आत्मनिर्भरता के 'योग्य' बनाता है और सांसारिक ज्ञान के विशिष्ट विषयों में विशेषज्ञता प्रदान करता है। इस परिभाषा से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में विद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा का जो घटक पढ़ाया जाता है, वह शिक्षा के अनुरूप है।

आचार्य के विचार वर्तमान परिस्थिति में अधिक प्रासंगिक है। उनके उद्देश्य मानव जीवन को और अधिक समृद्ध करने में कारगर साबित हो रही है, इसलिए गुरुदेव का संदेश उनके अवतार के दिव्य उद्देश्य को उजागर करता है और हमें उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन भी देता है।

विद्या (ज्ञान) का सरोकार एक ऐसे ज्ञान से है जिन्हें आंतरिक दुनिया के ज्ञान और प्राप्ति के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। यह मानव मन के व्यवहार विज्ञान से कहीं अधिक गहराई तक जाता है और आत्म-विश्लेषण, परिष्करण और चरित्र की अखंडता के साथ व्यक्तित्व के विकास को सक्षम बनाता है, और सद्गुणों को जागृत करता है, जो मानव गरिमा की नींव रखता है, जैसा कि ऋषियों द्वारा वर्णित विद्या 'समग्र शिक्षा' का वह घटक है जो गुणकारी प्रवृत्तियों को जन्म देती है, मन और हृदय की बौद्धिक और नैतिक रोशनी के साथ-साथ स्वतंत्र सोच और चरित्र के पूर्ण शोधन और व्यक्तित्व के विकास में मदद करता है। विद्या, एक आध्यात्मिक रूप से एक श्रेष्ठ व महान गुरु द्वारा शुरू की जाती है और एक समर्पित शिष्य द्वारा जीवन के हर क्षेत्र में ईमानदारी से अपनाई जाती है, जो सच्चे ज्ञान के एक सतत विस्तार स्रोत और आदर्श प्रवृत्तियों के क्रमिक विकास को जन्म देती है। मन के आतंरिक भाग में विद्या के गहरे संस्कार अगले जन्मों में भी संस्कारों (आंतरिक प्रवृत्तियों) के रूप में स्थांतरित होते हैं।

शिक्षा और विद्या एक दूसरे के पूरक हैं और एक साथ मिलकर पूर्ण शिक्षा की एक आदर्श प्रणाली का आयोजन करते हैं। हालांकि उत्कृष्टता के कई केंद्रों ने उदार सोच तथा बौद्धिक खोजों को शामिल करने के साथ-साथ शिक्षा के उच्च मानकों को बनाए रखा है, लेकिन आज दुनिया में कहीं भी विद्या के प्रचार-प्रसार के लिए शायद ही कोई विद्यालय या धार्मिक संस्थान मिल सकता है। यहां तक कि भारत में भी, जहां इसकी उत्पत्ति हुई और ऋषियों द्वारा स्थापित 'गुरुकुल' प्रणाली के माध्यम से वैश्विक विस्तार के प्रेरक आयामों में, यह भारतीय दर्शन और वैदिक शिक्षा के कुछ पारंपरिक विद्यालयों में प्राचीन शास्त्रों के गूढ़ीकरण तक ही सीमित प्रतीत होता है। सामान्य रूप से लोग विद्या का सही अर्थ भी नहीं जानते हैं और उनकी आस्था के अनुसार अक्सर या तो प्राचीन विषयों की शिक्षा के रूप में या किसी धार्मिक गुरु या गुरु की प्रेरणा से जुड़े किसी प्रकार के गूढ़ ज्ञान या आध्यात्मिक शक्ति के रूप में गलत व्याख्या करते हैं।''

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा दिव्य भारतीय संस्कृति के पुनरुद्धार का एक साधन है। शिक्षा और विद्या के बीच के अंतर को निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है।

संजीवनी विद्या:

संजीवनी विद्या जीवन जीने की महान कला की कुंजी है। जीवन एक कला है और कला जीवन का आदर्श है। जो जीने की कला नहीं जानते वे मृत जीवन जी रहे हैं। उनके लिए जीवन अर्थहीन है। इसलिए स्वस्थ और समृद्ध जीवन जीने की युक्ति सभी को जाननी होगी अन्यथा जीवन नीरस हो जाएगा।

रचनात्मक सोच और नेक व्यवहार के बीच सामंजस्य ने एक दिव्य जीवन का पथ प्रशस्त किया। यह जीवन दु:ख में मनुष्य के हृदय और मन की कायरता को दूर कर सकता है और अनंत सुख में हृदय कमल बना सकता है। जो इस प्रक्रिया को स्वीकार करता है तथा प्रगति करता है वही सच्चा कलाकार है। पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने अपने अनवरत प्रयत्न, विचित्र संकल्प और कठिन तपस्या के बल पर प्राचीन ऋषि संस्कृति से इस अमृत की खोज की।

गुरुदेव श्रीराम शर्मा आधुनिक युग के अधिकांश लोगों को आत्म-सम्मोहित अवस्था में रहने वाले लोगों के रूप में देखते हैं जो स्वयं के बारे में अनभिज्ञ हैं। उनके शब्दों में 'यदि कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना भी विद्वान और प्रतिभाशाली क्यों न हो, सही दिशा में सोच नहीं सकता है और साथी प्राणियों के साथ समायोजन या सहयोग नहीं कर सकता है, समाज की व्यवस्थित उन्नति के लिए अपनी बुद्धि या प्रतिभा का रचनात्मक योगदान नहीं दे सकता है और प्रतिकूलताओं के खिलाफ लड़ भी नहीं सकता है। वे नहीं कह सकते कि उसका जीवन अपने दम पर है। फिर उसकी शिक्षा किस काम की? उनकी शिक्षा पर खर्च किए गए संसाधन और समय भी अपव्यय को समाप्त कर देंगे। इन तथाकथित शिक्षित लोगों को, संजीवनी विद्या की आवश्यकता है जो उन्हें झूठे छापों और बौद्धिक रूप से थोपे गए भ्रमों की स्थिति से जगा सकती है और बाद में उनकी प्रतिभा को उन्मुख कर सकती है और सामाजिक कल्याण और बौद्धिक व नैतिक विकास के रचनात्मक उद्देश्यों के लिए क्षमता विकसित कर सकती है।

उनकी दृष्टि वास्तव में हमें आशा की चाँदी की किरण दिखाती है जब वे कहते हैं प्सच्चे ज्ञान के नए युग में मनुष्य की जैविक प्रकृति समान रहेगी, उनके विश्वासों, भावनाओं, दृष्टिकोणों, विचारधाराओं, मानसिक प्रवृत्तियों, चरित्र आदि में भारी परिवर्तन देखा जाएगा। उनके विचारों में शिक्षा के एक अभिन्न अंग के रूप में विद्या का पुनरुद्धार अब तक के अकल्पनीय परिवर्तन के उद्देश्य को पूरा करेगा और आने वाले वर्षों में उज्ज्वल युग के अवतरण को एक व्यावहारिक वास्तविकता बना देगा और फिर आध्यात्मिकता एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को आकार देने में और शिक्षा की इस नई प्रणाली के तहत एक समाज के विकास में एक प्रमुख भूमिका निभाएगी।

1 शिक्षा का उद्देश्य अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, पशुबलि, अश्लीलता (अश्लीलता), लैंगिक असमानता, बाल विवाह, दिखावटी विवाह, गहनों के अत्यधिक उपयोग आदि को समाप्त करके एक सुसंस्कृत समाज (सभ्य समाज) की स्थापना करना है।

2 शिक्षा का उद्देश्य बच्चे के व्यक्तित्य का विकास करना है। पंडित आचार्य के अनुसार मनुष्य चार प्रकार के होते हैं अर्थात 1-नर पिशाच (राक्षस पुरुष) 2-नर पशु (पशु पुरुष) 3 नर मानव (श्रेष्ठ) और 4-देव मानय (दैवीय पुरुष)। शिक्षा बच्चे को देव मानव (दिव्य पुरुष) बनने में सक्षम बनाना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य चरित्र का विकास है। चरित्र निर्माण के बिना शिक्षा कोई शिक्षा नहीं है।

4 शिक्षा बच्चों में युग धर्म के गुणों को विकसित करना चाहिए, जैसे-1 स्पष्टता (शालिनता) 2 दूरदर्शिता 3 जिज्ञासा (तैयारी) 4 ईमानदारी 5 जिम्मेदारी 6 समझ (समझदारी) 7 साहस (बहादुरी) 8 आस्तिकता 9 परोपकार का पालन (परमार्थ परायणता) 10 आत्मसंयम (संयमशीलत) 11 घनिष्ठता का विस्तार और अपनेपन का भाव (उदार आत्मीयता) 12 निकटता, आत्मीयता (सहकारिता) 13 कुशाग्रता (प्रखरता)

5 वे मातृभाषा के प्रबल समर्थक थे। आचार्य के अनुसार शिक्षा को मातृभाषा के विकास का प्रयास करना चाहिए। इसलिए उन्होंने कम से कम हाई स्कूल तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा को करने को प्राथमिकता दी।

6 उनके अनुसार-शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसलिए शिक्षा सभी को दी जानी चाहिए। यह मुफ्त और अनिवार्य होना चाहिए। निरक्षरों के लिए प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र की स्थापना की जाए।

7 शिक्षा जीवन से संबंधित होनी चाहिए दूसरे शब्दों में वह जीवन विद्या (जीवन केन्द्रित शिक्षा) पर बल देती है। इसलिए शिक्षा को जीवन की लड़ाई (चुनौतियों) का सामना करने में सक्षम बनाना चाहिए।

8 इसके अलावा, उनका उद्देश्य स्वावलंबन विद्या प्रदान करना है। इससे छात्रों को रोजगार का अवसर मिलेगा।

9 काम ही पूजा है। उन्होंने श्रम की गरिमा पर बल दिया है। उन्होंने सीखते हुए कमाई पर जोर दिया।

पाठ्यक्रम:

व्यक्तित्त्व विकास के लिए आवश्यक पाठ्यचर्या को ठीक से परिभाषित नहीं किया गया है। जैसा कि सुझाव दिया गया है कि अधिकांश व्यक्तिगत लक्षण मनुष्य के विकास की पूर्वकिशोरावस्था अवधि के दौरान प्राप्त किए जाते हैं। इसलिए अपनाई गई विशेषताएँ गहरी जड़ें जमाती रहती हैं और समय के साथ-साथ सुधार के लिए बहुत अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। बचपन और किशोरावस्था के दौरान सक्रिय जीवन का प्रमुख हिस्सा स्कूलों और कॉलेजों के परिसर में व्यतीत होता है जहां शिक्षक का वर्ग आम तौर पर एक औसत अभिभावक की तुलना में अधिक योग्य होता है। अत: यह आशा की जाती है कि विद्यार्थी सफलतापूर्वक अपनी शिक्षा पूरी करने के साथ-साथ सभ्य व्यवहार के गुणों से भी भली-भांति परिचित होंगे। जिसके आत्मसात करने के अवसर घर की अपेक्षा विद्यालय के सामुदायिक वातावरण में अधिक उपलब्ध होते हैं।

यदि शिक्षक इन अतिरिक्त जिम्मेदारियों को स्वेच्छा से और ईमानदारी से लेते हैं, तो अभिभावकों की इस अपर्याप्तता से उत्पन्न शून्य को शिक्षा के मंदिरों में भरा जा सकता है। यह वास्तव में शिक्षा की समग्रता होगी जो अन्यथा व्यापार शिक्षा के अभ्यास के रूप में आज भी जारी है। 14 वास्तव में पाठ्यचर्या शिक्षक और छात्र के बीच एक सेतु की भूमिका निभाती है। इसलिए संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम एक महत्वपूर्ण और मूल्यवान पहलू है। पाठ्यक्रम का प्राथमिक उद्देश्य पूर्व निर्धारित प्रणाली के आधार पर एक विशिष्ट विषय की समझ प्रदान करना है, छात्र को विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और विषय में विशेषज्ञता हासिल करनी चाहिए। पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो छात्र की छिपी प्रतिभा को उजागर करे।

पाठ्यक्रम में नकारात्मकता और संकीर्णता नहीं होनी चाहिए किसी भी तरह से किसी विशेष धर्म, जाति या समूह पर नकारात्मक विचारों को पाठ्यक्रम के हिस्से नहीं किया जाना चाहिए।

इसका उद्देश्य ऐसे नागरिकों को तैयार करना होना चाहिए जो वहां के प्रति अपरा को समझें। समाज और राष्ट्र में उदारता, सहनशीलता, सहयोग, उच्च विचार और सद्गुणों को आत्मसात करते हुए पाठ्यचर्या निर्माण करते समय समता का सर्वव्यापक भाव, सद्इच्छा और वैज्ञानिक मनोवृत्ति हो, यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि सभी प्रतिष्ठित वैज्ञानिक और प्रसिद्ध हस्तियां इस साँचे के उत्पाद हैं जिन्हें पाठ्यक्रम कहा जाता है। इसलिए इसे बनाते समय काफी सावधानी बरतनी चाहिए।

पाठ्यचर्या शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए है। पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य ने वकालत की कि पाठ्यक्रम को मानव जीवन के सभी पहलुओं को संदर्भित करना चाहिए। यानी शारीरिक, मानसिक, नैतिक सामाजिक और आध्यात्मिक। उन्होंने बच्चे की आवश्यकता और रुचि को ध्यान में रखते हुए की जाने वाली कुछ गतिविधियों के संदर्भ में पाठ्यक्रम की व्याख्या की। पंडित आचार्य की वांग्मय शिक्षा और विद्या का सुझाव है कि पाठ्यक्रम को इतनी सारी पुस्तकों से नहीं बल्कि कुछ उपयोगी पुस्तकों से अधिभारित किया जाना चाहिए। भाषा, साहित्य, गणित, शरीर विज्ञान, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, गृह विज्ञान, यौगिक विज्ञान, जीवन विज्ञान, संस्कृति, अर्थशास्त्र, प्रकृति अध्ययन आदि से उपयोगी पाठ शामिल किए जाने चाहिए। अंग्रेजी अनिवार्य नहीं होनी चाहिए। पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य शिक्षा, नैतिक शिक्षा, यात्रा, बैंकिंग, रेलवे, डाक, व्यवसाय, राजनीति भी शामिल होनी चाहिए, ताकि छात्र अपने दैनिक गतिविधियों में जागरूक हो सकें। उन्होंने जीवन प्रबंधन (जीवन विद्या), स्वावलंबन विद्या, संस्कृति विद्या, वाद-विवाद, चर्चा, खेल, खेल, व्यायाम, स्काउट, कला, संगीत, वन एक्ट प्ले पर भी जोर दिया है। प्रार्थना सभा, कवि सम्मेलन जयंती, उत्सव, अंताक्षरी सम्मेलन निर्धारित किए।

परीक्षा प्रणाली:

शिक्षा की वर्तमान प्रणाली में व्यक्तित्व विकास की प्राचीन समग्रता के अवयवों का अभाव है। आजकल छात्रवृति का समय और उद्देश्य केवल एक निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर परीक्षा उत्तीर्ण करने तक सिमट कर रह गया है। जहां एक ओर छात्र इसे अपनी संस्थागत जिम्मेदारी मानता है. वहीं शिक्षक अपने अभिभावकों से अलग होने की अवधि से उत्पन्न भावनात्मक शून्य को नहीं भरते हैं।

आचार्य शर्मा के अनुसार वर्तमान परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है। यांत्रिक परीक्षा बच्चे की सर्वांगीण प्रगति का मूल्यांकन नहीं कर सकती है। एक ऐसी परीक्षा की सिफारिश की जाती है जो स्वत:स्फूर्त हो और जो बच्चे की आवश्यकताओं को पूरा करती हो। परीक्षा साप्ताहिक या मासिक होनी चाहिए। मौखिक कार्य पर अधिक बल देना चाहिए। परीक्षा में भ्रष्टाचार की भी जांच होनी चाहिए।

शिक्षा की उपयोगिता केवल परीक्षा में अच्छा अंक प्राप्त करने और उसके बाद जीविका का सम्मानजनक साधन प्राप्त करने से ही समाप्त नहीं हो जाती। बहुत से अनपढ़ और अशिक्षित व्यक्ति भी धन संचय करते पाए जाते हैं। शिक्षा तभी न्यायोचित है जब वह एक व्यक्ति में एक सुसंस्कृत, प्रतिभाशाली और कुशल व्यक्तित्व के विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनाती है।

शिक्षण की पद्धति:

शिक्षा की प्राचीन गुरुकुल पद्धति पंडित आचार्य द्वारा पसंद की गई थी। शिक्षण की गुरुकुल पद्धति शिक्षक और शिष्य के सहकारी प्रयास पर आधारित है। यह स्वस्थ शिक्षक द्वारा सिखाए गए संबंधों का मार्ग प्रशस्त करता है जो दोनों के लिए फायदेमंद है। वह सार्वजनिक लाभ के लिए वस्तु उद्यमिता शिक्षा कार्यक्रम का भी समर्थन करता है जो लोगों की शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं को पूरा करता है। उन्होंने शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा पर जोर दिया। इसके अलावा वह चर्चा पद्धति, करके सीखने, जीवन से सीखने, अनुभव से सीखने, स्वाध्याय, सत्संग, सामाजिक भागीदारी आदि के पक्षधर हैं।

गुरु (शिक्षक):

श्गुश का अर्थ है अंधकार और श्रुश् का अर्थ है प्रकाश। यानी जो अंधकार से प्रकाश या आत्मज्ञान की ओर ले जाए वह गुरु है। आत्म- उन्नति के क्षेत्र में गुरु-धारण (मार्गदर्शन के लिए गुरु का आलिंगन) के महत्व को हमेशा सराहा और अनुशंसित किया गया है। यह इस वर्णित छंद से स्पष्ट हो जाता है 'गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरुदेव महेश्वरा गुरु साक्षात परम ब्रह्मा तस्मै श्री गुरुबे नम:' 'अखंड मंडलकारं बयप्तजेनम् चराचरं तत्पदं दर्शितम् जेनम् तस्माल श्री गुरुबे नम:

गुरु-शिष्य संबंध:

प्राचीन काल में 'निगुरा' (जिसका कोई गुरु नहीं है) के रूप में संबोधित किया जाना अपमानजनक माना जाता था। इस प्रकार इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक सक्षम सुपर व्यक्ति के साथ गुरु के रूप में संबंध स्थापित करना एक परम आवश्यकता है और इसकी तलाश की जानी चाहिए। प्राचीन भारत में जब भारतीय संस्कृति पूरी तरह से परिपक्व हो गई थी तो बच्चों को कुछ परिपक्वता प्राप्त करने के तुरंत बाद गुरुकुल के बोर्डिंग स्कूलों में भेज दिया जाता था। ये संस्थान मनुष्य में प्रतिभा और सांस्कृतिक उत्कृष्टता के बीज बोने के केंद्र थे। यह विशिष्ट कार्य जिसे माता-पिता अपनी अक्षमताओं के कारण पूरा नहीं कर सकते थे, आध्यात्मिक रूप से उन्नत गुरु के कुशल मार्गदर्शन में आसानी से पूरा किया जा रहा था। बचपन में निर्धारित बुनियादी शिक्षा पूरी करने के बाद भी उच्च लक्ष्य के लिए गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। जीवन की दिनचर्या के दौरान गुरु के साथ बातचीत की आवश्यकता हो या न हो, फिर भी वह शिष्य की आवश्यकता के आधार पर समय-समय पर उसकी मदद करता रहता है, गुरु के निकट संपर्क और समर्थन ने साधारण क्षमता के कई व्यक्तियों को असाधारण बनने में मदद की है।

आजकल गुरु और शिष्य के संबंधों में अक्षमता और अविश्वास के तत्व हावी हो रहे हैं। तथाकथित गुरु स्वयंभू शिष्य के आध्यात्मिक विकास के बारे में कम से कम चिंतित हैं, जबकि बाद वाले को शायद ही कभी गुरु के निर्धारित अनुशासन और निर्देशों के अनुसार व्यवहार करने की आवश्यकता महसूस

होती है। गुरु-शिष्य की गौरवशाली परंपरा के तेजी से लोप होने का यही कारण है। आचार्य के ये विचार अध्यापक शिक्षा और अध्यापक को गुरु की तरह प्रशिक्षित करने की तरफ इशारा करता है।

अभिभावकों की भूमिका:

शिक्षा की प्रक्रिया पिता-माता या अभिभावकों से शुरू होती है। बच्चे को जन्म देना ही काफी नहीं हैय महत्वपूर्ण यह है कि ऐसे बच्चे को जन्म दिया जाए जो संस्कारों से ओतप्रोत हो। पक्षी और जानवर भी बच्चों को जन्म देते हैं लेकिन वे अपने बच्चों के व्यक्तित्व को संवारने में विफल रहते हैं। यदि माता-पिता अच्छे चरित्र, अच्छे संस्कारों के साथ दीप्तिमान हैं और उनके व्यक्तित्व में शांति और पवित्रता का संचार होता है तो स्वाभाविक रूप से ये गुण उनकी संतानों में भी दिखाई देंगे। पुराणों में एक कहानी है कि भगवान श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी ने एक योग्य पुत्र की प्राप्ति के लिए हिमालय में भगवान शिव की घोर तपस्या की थी। देवी अंजना ने वीर हनुमान को पाने के लिए तपस्या भी की थी। 158 इस विषय पर इस संदर्भ में चर्चा की जा रही है क्योंकि माता-पिता को बच्चे के जन्म से पहले ही उसकी शिक्षा की जिम्मेदारी उठानी पडती है। उन्हें बच्चे के वांछित विकास के अनुकूल खुद को और अपने परिवार को ढालना होता है।

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य की पहचान है-परिवार, पहले प्रशिक्षण विद्यालय के रूप में और माँ, एक बच्चे की पहली शिक्षक के रूप में। वे प्रथम गुरु की उपाधि माता को देते हैं और इसलिए इस महान उत्तरदायित्व को कुशलतापूर्वक निभाने के लिए उनकी स्थिति को ऊपर उठाने की आवश्यकता पर बल देते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य प्रौढ़ शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं। उनके अनुसार प्रौढ़ शिक्षा बच्चों से अधिक महत्वपूर्ण है। वे शिक्षकों और प्रभावी पाठ्यक्रम द्वारा अशिक्षा, अज्ञानता, असामाजिकता, जातिवाद, सांप्रदायिकता आदि को जनता से दूर करना चाहते थे। वयस्कों के लिए उनके द्वारा पाठ्यपुस्तकें लिखी और प्रकाशित की जाती हैं। वे केवल 3आर (पढ़ना, लिखना, अंकगणित) का ज्ञान प्रदान करना नहीं चाहते थे बल्कि पूरे व्यक्तित्व को साक्षरता प्रदान करना पसंद करते थे। उनकी वांग्मय शिक्षा और विद्या के अनुसार निम्नलिखित विषयों को प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों में शामिल किया जाना चाहिए।

नारी शिक्षा:

महिलओं के खिलाफ पुरुषों के तानाशाही और अभिजात्य रवैये से उपजे जघन्य प्रतिबंधों का नंगा नाच हम साफ देख सकते हैं। घूंघट की क्या आवश्यकता है? गाय, भैंस, भेड़ बकरियां घूंघट नहीं करती हैं और जब चाहें आवाज खोल सकती हैं। स्वाधीनता से वंचित स्त्रियाँ, अपने चेहरे को प्राप्तियों की तरह ढकने के लिए विवश होना और किसी से एक शब्द भी न कहना मानवता का अपमान माना जाता है। अपनी अस्पृश्य स्थिति के कारण शिक्षा और स्वावलम्बन के क्षेत्र में महिलाएँ बैकफुट पर रहीं। समयबद्ध नियंत्रण और जबरदस्ती ने महिलाओं को काफी हद तक हतोत्साहित किया। जबरन गर्भधारण के कारण उसका स्वास्थ्य भी बिगड गया। दहेज की मांग महिलाओं का घोर अपमान है। हमारे समाज में महिलाओं की स्थिति जेल में बंद कैदियों से भी बदतर है। अगर स्थिति नहीं बदली तो हमारी आधी आबादी बेकार बैठी रहेगी और किसी काम की नहीं रहेंगी। इस परिदृश्य को समाप्त करने के लिए साहसिक कदम उठाने का समय आ गया है।

पंडित आचार्य स्त्री शिक्षा के प्रणेता थे। वह महिलाओं को गुरुलक्ष्मी (घर की देवी) मानते थे। स्त्री सुख का साधन न बने। नारी देवत्य का रूप है। जैसे हर एक में दोष होते हैं, केवल परमेश्वर ही सर्वथा निर्दोष और दोष रहित होता है। स्त्री की आध्यात्मिक गतिविधि उसकी आत्मा की विशेष प्रकृति का हिस्सा है।

जिस प्रकार वह बेटी, बहन, पत्नी और माँ के रूप में उच्च आदर्शों का जीवन व्यतीत करती है. कह सकते हैं कि पुरुष अपने उद्यमशील स्वभाव के साथ अपनी जगह ठीक हो सकता है, लेकिन आध्यात्मिक धन की दृष्टि से वह हमेशा महिलाओं के पीछे रहा है। नेपोलियन बोनापार्ट ठीक ही कहते हैं, ष्मुझे एक अच्छी माँ दो मैं तुम्हें एक अच्छा राष्ट्र दूंगाष। पं नेहरू का भी कहना है कि यदि आप एक लड़के को शिक्षित करते हैं तो आप केवल एक व्यक्ति को शिक्षित कर सकते हैं और यदि आप एक लड़की को शिक्षित करते हैं तो आप पूरे परिवार को शिक्षित कर सकते हैं।

महिलाएं मानव जाति की जननी हैं। आज की बेटी कल की मां है। माँ प्रथम शिक्षक है और घर बच्चों की प्रथम प्राकृतिक पाठशाला है। इसलिए उन्हें उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ताकि वे अपनी जिम्मेदारी का अच्छे से निर्वहन कर सकें। पंडित आचार्य ने कन्या शिष्य (देवकन्या) के लिए शांतिकुंज आश्रम, हरिद्वार में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की व्यवस्था की। उन्होंने आँवलखेड़ा (आगरा जिले में उनका जन्म स्थान) गाँव में गर्ल्स हायर सेकेंडरी स्कूल (अब एक पूर्ण डिग्री कॉलेज) खोलने के लिए अपनी सभी पैतृक संपत्ति दान कर दी।

निष्कर्ष :

गुरुदेव ने वैदिक युग के अग्रणी ऋषियों के सुधारात्मक और रचनात्मक प्रयासों के एक साथ पुनर्जागरण और विस्तार के माध्यम से ऋषि संस्कृति के पुनरुत्थान का बीड़ा उठाया। उन्होंने शेष विश्व के लिए भारत की दैवीय संस्कृति के अमर योगदान की समीक्षा की और गायत्री परिवार की अनेक गतिविधियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों और इसके दैवीय स्वरूप की जड़ों को नई वैज्ञानिक रोशनी में पोषित और पुनरू स्थापित करने का प्रयास किया। आचार्य भक्ति योग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि सभी योग पद्धितियों को सम्मिलित रूप प्रदान करते हुए समग्र योग के माध्यम से आने वाले सभी साधकों को यौगिक जीवन जीने की ओर अग्रसर करते रहे। माँ गायत्री की भक्ति के माध्यम से भक्ति योग, प्रवचनों एवं गोष्ठियों के माध्यम से ज्ञान योग की अविरल धारा इनके माध्यम से बहती रही जो आज भी किसी न किसी रूप में सुनी सुनाई जाती है।

उन्होंने हिंदू धर्म में वर्णित उच्चतम प्रकार की साधनाओं का सफलतापूर्वक अभ्यास किया और उनमें महारत हासिल की। उन्होंने गायत्री मंत्र और योग के दर्शन और विज्ञान का सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त किया। संक्षेप में कहें तो, उन्होंने आध्यात्मिक विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला को सिद्ध किया।

उनके द्वारा प्रज्ज्वलित ज्ञान और मानवीय गौरव की दिव्य रोशनी शांतिकुंज के तत्वावधान में उनके महान मिशन के उत्कृष्ट पथ को रोशन कर रही है और आने वाले वर्षों में ष्सत्य के युगष् की शुरुआत का भरोसा प्रदान करती है। उन्होंने धर्म, जाति, पंथ, लिंग या सामाजिक स्थिति के किसी भी भेदभाव के बिना लाखों लोगों के आध्यात्मिक और बौद्धिक परिष्कार के कार्यक्रम शुरू किए।

भारतीय संस्कृति और धार्मिक दर्शन के अपने गहन अध्ययन के एक भाग के रूप में, उन्होंने तीर्थयात्रा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक महत्व को फिर से खोजा। उन्होंने हमें सिखाया कि जनता के कल्याण के लिए वर्तमान समय में तीर्थों के प्राचीन गौरव और वास्तविक उद्देश्य को कैसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। गुरुदेव का मानना था कि आधुनिक मनुष्य को प्राचीन आध्यात्मिकता द्वारा संरक्षित जीवन मूल्यों को स्वीकार करने के लिए तब तक राजी नहीं किया जा सकता जब तक कि ये व्यक्ति व समाज के कल्याण के लिए वैज्ञानिक रूप से व्यवहार्य साबित न हो जाएं।

यदि हम आचार्य के शिक्षा संबंधी विचारों का समग्रता में अवलोकन करें तो यह निष्कर्ष सहज निकलता है कि आचार्य के शैक्षिक विचार आदर्शवाद, प्रकृतिवाद एवं प्रयोजनवाद का मिला-जुला रूप है। एक तरफ तो वे उन्मुक्त शैक्षिक वातावरण के माध्यम से अपने को प्रकृ तिवादी साबित करते हैं तो दूसरी तरफ चरित्र निर्माण एवं आदर्श विचार के प्रस्फुटन को शिक्षा का उद्देश्य बताकर स्वतरू आदर्शवादी बन जाते हैं। स्वावलंबन, उद्योग शिक्षा, श्रम की महत्ता, आर्थिक उपार्जन में शिक्षा की भूमिका के माध्यम से तीसरी तरफ वो प्रयोजनवादी दिखाई देते हैं। वे गाँधी की तरह ही शिक्षा को अर्जन से जोड़कर देखते हैं और मानते हैं कि शिक्षा वह है जो व्यक्ति को सबल एवं सशक्त बनाती है। उनके शिक्षा संबंधी विचार न केवल प्रासंगिक है, बल्कि उपयोगी एवं आवश्यक भी है। शिक्षण विधि एवं पाठ्यक्रम निर्माण की पाठ्य-वस्तु के चुनाव में उनके विचारों का समावेशन होना ही चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः

1 भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा शिक्षक गरिमा मार्गदर्शिका, हरिद्वार, उत्तराखंड, तीर्थ, शांतिकुंज, पृष्ठ सं. 12-13. गायत्री।

2 षडंगी, आर.के. (2006), मन केमिटी देवता हेबा, हरिद्वार, उत्तराखंड, देवसंस्कृति विश्वविद्यालय, पृ. 35. .

3 जोशी, आर. (2005). स्पेक्ट्रम ऑफ नॉलेज की टू द आर्ट ऑफ लिविंग, युग निर्माण योजना, मथुरा, यू.पी., पृष्ठ सं. 255-259, 298.

4 प्रांतीय युवा प्रकोष्ठ (2011). व्यक्तित्व निर्माण युवा शिविर कार्यकर्ता मार्गदर्शिका, अंचल कार्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़ पृष्ठ सं. 86.।

5 सहाय, टी.एन. (2010). प्रोब्लेम्स ऑफ टुडे, सोल्यूशन फॉर टुमारो (पंडित श्रीराम शर्मा की हिंदी पुस्तक ष्समस्याएँ आज की समाधान कलकष का अंग्रेजी अनुवाद) मथुरा, लोक-युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, पृष्ठ सं. 9-11, 42-43.1

6 शर्मा, श्रीराम (1998). शिक्षा और विद्या (वांग्मय खंड संख्या 49), मथुरा, अखंड ज्योति संस्थान, पृष्ठ सं. 40-43.

“ईश्वर और बाजार”: जसिंता केरकेट्टा की रचना का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० ज्योति गौतम

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्र राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

सार

जसिंता केरकेट्टा समकालीन हिंदी और आदिवासी साहित्य की प्रमुख कवयित्री हैं, जिनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन, प्रकृति, शोषण और बाजारवाद के दुष्प्रभावों का सशक्त चित्रण मिलता है। “ईश्वर और बाजार” कविता में उन्होंने आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था और उसके कारण मानवीय मूल्यों के क्षरण को उजागर किया है। यह शोध-पत्र इस कविता के माध्यम से बाजारवाद, धार्मिक प्रतीकों के उपयोग और आदिवासी जीवन के संकट का आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक सशक्त और वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में उभरा है, जिसने मुख्यधारा के साहित्यिक परिदृश्य में उपेक्षित समुदायों की अस्मिता, संघर्ष और सांस्कृतिक चेतना को केंद्र में स्थापित किया है। इस परिप्रेक्ष्य में जसिंता केरकेट्टा की कविता “ईश्वर और बाजार”अत्यंत महत्वपूर्ण काव्य-पाठ के रूप में सामने आती है, जो आधुनिक पूंजीवादी समाज की संरचनाओं की आलोचना करते हुए मानवीय मूल्यों के ह्रास और धार्मिक आस्थाओं के वस्तुकरण की प्रक्रिया को उजागर करती है।

यह शोध-पत्र इस कविता के बहुआयामी विश्लेषण के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास करता है कि किस प्रकार वैश्वीकरण और बाजारवाद ने न केवल आर्थिक ढांचे को प्रभावित किया है, बल्कि मनुष्य की चेतना, आस्था और सांस्कृतिक संरचनाओं को भी गहरे स्तर पर परिवर्तित किया है। कविता में “ईश्वर” और “बाजार” के द्वंद्वात्मक संबंध के माध्यम से कवयित्री ने उस विडंबना को रेखांकित किया है, जिसमें आध्यात्मिकता भी उपभोक्तावादी तंत्र का हिस्सा बनती जा रही है। ईश्वर, जो परंपरागत रूप से नैतिकता, करुणा और विश्वास का प्रतीक रहा है, वह आधुनिक समय में बाजार के प्रभाव में एक उत्पाद के रूप में रूपांतरित होता दिखाई देता है।

इस अध्ययन में यह भी विश्लेषित किया गया है कि बाजारवाद की यह प्रक्रिया विशेष रूप से आदिवासी समाज के लिए कितनी विनाशकारी सिद्ध हुई है। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, सांस्कृतिक विरासत का क्षरण, तथा विस्थापन की समस्या ने आदिवासी जीवन को गहरे संकट में डाल दिया है। जसिंता केरकेट्टा की कविता इन सभी यथार्थों को संवेदनात्मक और प्रतीकात्मक स्तर पर अभिव्यक्त करती है, जिससे यह कविता केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति न रहकर सामाजिक-राजनीतिक दस्तावेज का रूप ग्रहण कर लेती है।

शोध-पत्र में पाठ-विश्लेषण की गुणात्मक पद्धति अपनाई गई है, जिसके अंतर्गत कविता के विषय-वस्तु, प्रतीक-योजना, भाषा-शिल्प और वैचारिक आधारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही, मार्क्सवाद, उत्तर-आधुनिकता और उपनिवेशोत्तर दृष्टिकोणों के माध्यम से कविता के अंतर्निहित अर्थों को समझने का प्रयास किया गया है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण से यह कविता वस्तुकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है, जबकि उत्तर-आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह मूल्य-व्यवस्था के विघटन और सत्य की सापेक्षता को उद्घाटित करती है।

“ईश्वर और बाजार” कविता समकालीन समाज में व्याप्त उपभोक्तावादी मानसिकता और उसके दुष्परिणामों की गहन आलोचना करती है। यह कविता पाठक को न केवल सामाजिक यथार्थ से परिचित कराती है, बल्कि उसे अपने समय की जटिलताओं पर पुनर्विचार करने के लिए भी प्रेरित करती है। इस प्रकार, जसिंता केरकेट्टा की यह रचना हिंदी कविता में आदिवासी विमर्श को सशक्त रूप से स्थापित करने के साथ-साथ वैश्विक पूंजीवाद के विरुद्ध एक वैचारिक प्रतिरोध के रूप में भी महत्वपूर्ण सिद्ध होती है।

कुंजी शब्दः जसिंता केरकेट्टा, ईश्वर और बाजार, आदिवासी साहित्य, बाजारवाद, पूंजीवाद, प्रकृति।

प्रस्तावना

समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श एक महत्वपूर्ण धारा के रूप में उभरा है। इस धारा में जसिंता केरकेट्टा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी कविताएँ केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक हस्तक्षेप भी हैं।“ईश्वर और बाजार” कविता में कवयित्री यह प्रश्न उठाती हैं कि आज का समाज किस प्रकार धार्मिक आस्था को भी बाजार के अधीन कर चुका है। यहाँ ईश्वर और बाजार के बीच एक गहरा अंतर्विरोध प्रस्तुत किया गया है। इक्कीसवीं सदी का वैश्विक समाज तीव्र परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है, जहाँ आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक संरचनाएँ निरंतर पुनर्गठित हो रही हैं। वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की प्रक्रियाओं ने न केवल उत्पादन और उपभोग के तरीकों को प्रभावित किया है, बल्कि मनुष्य के

जीवन-मूल्यों, आस्थाओं और संवेदनात्मक संरचनाओं को भी गहरे स्तर पर परिवर्तित किया है। इस बदलते परिदृश्य में साहित्य, विशेषकर कविता, समाज के इन जटिल परिवर्तनों का साक्ष्य प्रस्तुत करने के साथ-साथ उनकी आलोचना का भी माध्यम बनता है। समकालीन हिंदी साहित्य में उभरता हुआ आदिवासी विमर्श इसी परिवर्तनशील सामाजिक यथार्थ का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। लंबे समय तक मुख्यधारा के साहित्य में आदिवासी समुदाय की उपेक्षा की जाती रही, जिसके परिणामस्वरूप उनकी संस्कृति, जीवन-दृष्टि और संघर्षों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया। किंतु बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में आदिवासी साहित्य ने एक स्वतंत्र और सशक्त आवाज के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। इस साहित्य का उद्देश्य केवल अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता और अस्तित्व के प्रश्नों को सामने लाना भी है। इसी संदर्भ में जसिंता केरकेट्टा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वे समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी चेतना की प्रतिनिधि स्वर हैं, जिनकी रचनाओं में प्रकृति, विस्थापन, शोषण, स्त्री-अनुभव और बाजारवाद के प्रभावों का अत्यंत संवेदनशील और यथार्थपरक चित्रण मिलता है। उनकी कविताएँ केवल सौंदर्यात्मक अनुभव प्रदान नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक हस्तक्षेप का कार्य भी करती हैं।

जसिंता केरकेट्टा की कविता "ईश्वर और बाजार" आधुनिक समय की उन विडंबनाओं को उजागर करती है, जहाँ मनुष्य की आस्था और आध्यात्मिकता भी बाजार की शक्तियों के अधीन होती जा रही है। यह कविता एक गहरे द्वंद्व को सामने लाती है—एक ओर "ईश्वर" है, जो परंपरागत रूप से विश्वास, नैतिकता, करुणा और आध्यात्मिकता का प्रतीक रहा है; और दूसरी ओर "बाजार" है, जो उपभोक्तावाद, पूंजीवाद और लाभ-केन्द्रित मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वर्तमान समय में यह देखा जा सकता है कि धार्मिक आस्थाएँ और अनुष्ठान भी बाजार के प्रभाव से अछूते नहीं रहे हैं। मंदिरों, तीर्थस्थलों और धार्मिक आयोजनों का व्यावसायीकरण एक सामान्य प्रवृत्ति बन चुकी है। पूजा-पाठ, व्रत, और आध्यात्मिक साधनाएँ अब "पैकेज" के रूप में उपलब्ध कराई जा रही हैं, जहाँ श्रद्धा की जगह प्रदर्शन और लाभ ने ले ली है। इस प्रकार, ईश्वर भी एक "उत्पाद" में परिवर्तित होता प्रतीत होता है।

यह स्थिति केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक जीवन के हर पहलू में दिखाई देती है। आज मनुष्य की पहचान एक "उपभोक्ता" के रूप में अधिक स्थापित हो रही है, जहाँ उसकी आवश्यकताओं और इच्छाओं को बाजार द्वारा नियंत्रित किया जाता है। संबंधों, भावनाओं और मूल्यों का भी वस्तुकरण हो रहा है, जिससे मानवीय संवेदनाएँ धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही हैं। इस संदर्भ में "ईश्वर और बाजार" कविता अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि यह केवल एक साहित्यिक रचना नहीं, बल्कि समकालीन समाज की एक आलोचनात्मक व्याख्या है। यह कविता पाठक को यह सोचने के लिए विवश करती है कि क्या आधुनिक विकास वास्तव में मानवता के हित में है, या यह केवल पूंजी के विस्तार का साधन बनकर रह गया है। आदिवासी दृष्टिकोण से देखा जाए तो बाजारवाद का प्रभाव और भी गंभीर है। आदिवासी समाज का जीवन प्रकृति के साथ गहरे जुड़ाव पर आधारित रहा है, जहाँ संसाधनों का उपयोग संतुलित और सामुदायिक हित में किया जाता था। किंतु आधुनिक विकास मॉडल ने इस संतुलन को भंग कर दिया है। खनन, औद्योगीकरण और वनों की कटाई के कारण आदिवासी समुदायों को अपने पारंपरिक निवास स्थानों से विस्थापित होना पड़ा है। इससे न केवल उनकी आर्थिक स्थिति प्रभावित हुई है, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक संरचना भी संकट में पड़ गई है।

जसिंता केरकेट्टा की कविता इस यथार्थ को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। वे बाजारवाद के उस चेहरे को उजागर करती हैं, जो विकास के नाम पर शोषण और विनाश को बढ़ावा देता है। उनकी कविता में प्रकृति केवल एक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत इकाई के रूप में उपस्थित होती है, जो आदिवासी जीवन का अभिन्न हिस्सा है। सैद्धांतिक दृष्टि से यह कविता कई महत्वपूर्ण विमर्शों से जुड़ती है। मार्क्सवाद के अनुसार, पूंजीवादी व्यवस्था में सब कुछ वस्तु में परिवर्तित हो जाता है, और मनुष्य की श्रम-शक्ति भी एक वस्तु बन जाती है। "ईश्वर और बाजार" कविता इसी वस्तुकरण की प्रक्रिया को उजागर करती है, जहाँ धार्मिक आस्था भी बाजार के अधीन हो जाती है। इसके अतिरिक्त, उत्तर-आधुनिक दृष्टिकोण से यह कविता उन स्थिर मूल्यों और सत्य की अवधारणाओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है, जो आधुनिकता के साथ जुड़े हुए थे। यहाँ सत्य और नैतिकता सापेक्ष हो जाते हैं, और उनका निर्धारण बाजार की शक्तियाँ करने लगती हैं।

उपनिवेशोत्तर दृष्टिकोण से देखा जाए तो आदिवासी समाज का शोषण एक प्रकार का "आंतरिक उपनिवेशवाद" है, जहाँ विकास के नाम पर उनके संसाधनों का दोहन किया जाता है। यह कविता इस शोषण के विरुद्ध एक प्रतिरोधात्मक स्वर के रूप में उभरती है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य "ईश्वर और बाजार" कविता के माध्यम से समकालीन समाज में व्याप्त बाजारवाद, धार्मिकता के वस्तुकरण और आदिवासी अस्मिता के संकट का आलोचनात्मक अध्ययन करना है। इसके अंतर्गत कविता के विषय-वस्तु, प्रतीकात्मकता, भाषा-शिल्प और वैचारिक आधारों का विश्लेषण किया जाएगा।

अंततः यह कहा जा सकता है कि जसिंता केरकेट्टा की "ईश्वर और बाजार" कविता समकालीन हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में सामने आती है। यह कविता न केवल आदिवासी विमर्श को सशक्त बनाती है, बल्कि आधुनिक पूंजीवादी समाज की उन विसंगतियों को भी उजागर करती है, जो मानवता और प्रकृति के अस्तित्व के लिए चुनौती बन चुकी हैं। इस प्रकार, यह कविता एक चेतावनी, एक प्रतिरोध और एक वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती है।

जसिंता केरकेट्टा: परिचय

जसिंता केरकेट्टा एक आदिवासी कवयित्री हैं, जो झारखंड के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी हैं। उनकी रचनाओं में आदिवासी समाज का यथार्थ, प्रकृति के साथ उनका संबंध, और विकास के नाम पर हो रहा शोषण प्रमुख विषय हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श को सशक्त और प्रखर स्वर प्रदान करने वाली कवयित्रियों में जसिंता केरकेट्टा का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे केवल एक कवयित्री ही नहीं, बल्कि एक संवेदनशील सामाजिक कार्यकर्ता, पत्रकार और आदिवासी अस्मिता की मुखर प्रतिनिधि भी हैं। उनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन का यथार्थ, प्रकृति के साथ उसका आत्मीय संबंध, तथा आधुनिक विकास मॉडल के कारण उत्पन्न संकटों का सजीव और मार्मिक चित्रण मिलता है।

जन्म, पृष्ठभूमि और प्रारंभिक जीवन

जसिंता केरकेट्टा का जन्म झारखंड के आदिवासी क्षेत्र में हुआ, जहाँ की प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व और रचनात्मक दृष्टि को गहराई से प्रभावित किया। वे उरांव जनजाति से संबंधित हैं, जो अपनी समृद्ध लोक-संस्कृति, परंपराओं और प्रकृति-आधारित जीवन-शैली के लिए जानी जाती है। उनका बचपन जंगलों, पहाड़ों और ग्रामीण परिवेश में बीता, जहाँ उन्होंने आदिवासी समाज की जीवन-शैली, संघर्ष, सामुदायिक संबंध और सांस्कृतिक परंपराओं को निकट से देखा और अनुभव किया। यही अनुभव उनके साहित्य का आधार बने।

शिक्षा और बौद्धिक विकास

जसिंता केरकेट्टा ने अपनी प्रारंभिक शिक्षा स्थानीय परिवेश में प्राप्त की और आगे चलकर उच्च शिक्षा अर्जित की। शिक्षा के दौरान उन्होंने सामाजिक-राजनीतिक मुद्दों, विशेषकर आदिवासी अधिकारों, पर्यावरण और स्त्री-विमर्श से संबंधित विषयों में गहरी रुचि विकसित की। उनकी बौद्धिक चेतना केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित नहीं रही, बल्कि उन्होंने सामाजिक आंदोलनों और जनसंघर्षों से भी सक्रिय रूप से जुड़कर अपने अनुभवों को समृद्ध किया।

साहित्यिक यात्रा

जसिंता केरकेट्टा की साहित्यिक यात्रा कविता से आरंभ होती है, जो धीरे-धीरे एक सशक्त वैचारिक हस्तक्षेप का रूप ले लेती है। उनकी कविताएँ केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय और शोषण के विरुद्ध एक प्रतिरोध हैं।

उनकी प्रमुख कृतियाँ

अंगोर,जंगल के गीत, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताएँ, जिनमें "ईश्वर और बाजार" विशेष रूप से उल्लेखनीय है.उनकी रचनाएँ हिंदी के साथ-साथ अन्य भाषाओं में भी अनूदित हुई हैं, जिससे उनकी पहचान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्थापित हुई है।

लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

(क) आदिवासी जीवन का यथार्थ चित्रण

उनकी कविताओं में आदिवासी जीवन की सादगी, संघर्ष और सांस्कृतिक समृद्धि का सजीव चित्रण मिलता है। वे आदिवासी समाज को "पीड़ित" के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त और जीवंत समुदाय के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

(ख) प्रकृति के साथ गहरा संबंध

जसिंता केरकेट्टा की कविताओं में प्रकृति केवल एक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक जीवंत पात्र के रूप में उपस्थित होती है। जंगल, नदी, पहाड़ और मिट्टी उनके काव्य में जीवन, संतुलन और अस्तित्व के प्रतीक हैं।

(ग) बाजारवाद और पूंजीवाद की आलोचना

उनकी रचनाओं में आधुनिक पूंजीवादी व्यवस्था की तीखी आलोचना मिलती है। वे यह दिखाती हैं कि कैसे विकास के नाम पर आदिवासी समाज के संसाधनों का दोहन किया जा रहा है और उनकी सांस्कृतिक पहचान को खतरा हो रहा है।

(घ) स्त्री-विमर्श और संवेदनशीलता

उनकी कविताओं में आदिवासी स्त्री के अनुभव, पीड़ा और संघर्ष का भी सशक्त चित्रण मिलता है। वे स्त्री को केवल पीड़िता के रूप में नहीं, बल्कि संघर्षशील और आत्मनिर्भर रूप में प्रस्तुत करती हैं।

(ङ) प्रतिरोध और संघर्ष की चेतना

उनका लेखन एक प्रकार का "प्रतिरोध साहित्य" है, जिसमें अन्याय, शोषण और असमानता के विरुद्ध आवाज उठाई जाती है।

वैचारिक आधार

जसिंता केरकेट्टा का लेखन कई वैचारिक धाराओं से प्रभावित है-

1. आदिवासी विमर्श → अस्मिता, संस्कृति और अधिकारों की रक्षा
2. मार्क्सवादी दृष्टिकोण वर्ग-संघर्ष और पूंजीवाद की आलोचना
3. उपनिवेशोत्तर दृष्टिकोण आंतरिक उपनिवेशवाद और संसाधनों का शोषण
4. पर्यावरणीय चेतना प्रकृति संरक्षण और संतुलन

इन सभी दृष्टिकोणों का समन्वय उनके साहित्य को बहुआयामी बनाता है।

पत्रकारिता और सामाजिक सक्रियता

जसिंता केरकेट्टा केवल साहित्यकार ही नहीं, बल्कि एक सक्रिय पत्रकार भी हैं। उन्होंने विभिन्न मीडिया प्लेटफॉर्म्स पर कार्य करते हुए आदिवासी मुद्दों, मानवाधिकारों और सामाजिक न्याय से जुड़े प्रश्नों को उठाया है। वे जमीनी स्तर पर आदिवासी समुदायों के संघर्षों से जुड़ी रही हैं, जिससे उनके लेखन में वास्तविकता और प्रामाणिकता का गहरा प्रभाव दिखाई देता है।

भाषा और शैली

सरलता और प्रभावशीलता

उनकी भाषा सरल, सहज और संप्रेषणीय है, जो सीधे पाठक के मन को प्रभावित करती है।

लोकभाषा का प्रयोग

उनकी कविताओं में स्थानीय शब्दों और लोकभाषा का प्रयोग उनकी रचनाओं को अधिक प्रामाणिक बनाता है।

साहित्य में योगदान और महत्व

जसिंता केरकेट्टा का योगदान कई स्तरों पर महत्वपूर्ण है–उन्होंने हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श को सशक्त बनाया, मुख्यधारा के साहित्य में उपेक्षित आवाजों को स्थान दिया, बाजारवाद और विकास मॉडल की आलोचना प्रस्तुत की, प्रकृति और पर्यावरण के प्रति चेतना को बढ़ाया.

कविता का विषय-वस्तु विश्लेषण

कविता में "ईश्वर" आस्था, नैतिकता और मानवीय मूल्यों का प्रतीक है, जबकि "बाजार" उपभोक्तावाद और लालच का प्रतिनिधि है। कवयित्री दिखाती हैं कि–बाजार ने ईश्वर को भी "वस्तु" बना दिया है, आस्था अब व्यापार का हिस्सा बन चुकी है, धार्मिकता का स्थान दिखावे ने ले लिया है.

ईश्वर और बाजार: क्रमवार व्याख्या

कविता में जसिंता केरकेट्टा ने ईश्वर और बाजार के द्वंद्व को बहुत प्रतीकात्मक और यथार्थपूर्ण तरीके से प्रस्तुत किया है। नीचे पूरी कविता का भाव क्रम से समझाया गया है:

1. प्रारंभिक पंक्तियाँ : ईश्वर की बदलती स्थिति

कविता की शुरुआत में कवयित्री यह संकेत देती हैं कि ईश्वर अब अपनी पारंपरिक जगह (मंदिर, प्रकृति, आस्था) में नहीं रह गया है।

व्याख्या:

पहले ईश्वर मनुष्य के भीतर और प्रकृति में बसता था
अब वह धीरे-धीरे "दिखावे" और "प्रदर्शन" का हिस्सा बन रहा है
आस्था का निजी अनुभव सार्वजनिक प्रदर्शन में बदल गया है

2. ईश्वर का बाजार में प्रवेश

अगली पंक्तियों में यह दिखाया गया है कि ईश्वर अब बाजार में दिखाई देने लगा है।

व्याख्या:

पूजा की सामग्री, मूर्तियाँ, धार्मिक वस्तुएँ सब बिक रही हैं, ईश्वर का "मूल्य" तय होने लगा है, श्रद्धा अब "खरीदी" जा सकती है. यहाँ कवयित्री व्यंग्य करती हैं कि ईश्वर अब "दुकानों में उपलब्ध" है।

3. धार्मिकता का व्यापार में बदलना

कविता आगे बताती है कि धार्मिक क्रियाएँ भी बाजार के अनुसार ढल गई हैं।

व्याख्या:

पूजा-पाठ पैकेज बन गए हैं, पैसे देकर "विशेष पूजा" करवाई जाती है, धर्म सेवा नहीं, बल्कि सेवा उद्योग बन गया है। यह आस्था का व्यावसायीकरण है।

4. मनुष्य की मानसिकता में परिवर्तन

कविता में आगे यह दिखाया गया है कि मनुष्य की सोच भी बदल चुकी है।

व्याख्या:

लोग ईश्वर को भी "लाभ" के लिए पूजते हैं, भक्ति में निस्वार्थ भाव कम हो गया है, धर्म अब "सौदे" की तरह हो गया है। जैसे–"इतनी पूजा = इतना लाभ"

5. बाजार की शक्ति का विस्तार

अब कविता यह दिखाती है कि बाजार केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं है, बल्कि–

व्याख्या:

विचार, भावनाएँ और विश्वास भी बिकने लगे हैं, बाजार मनुष्य की चेतना को नियंत्रित कर रहा है, हर चीज का मूल्य तय किया जा रहा है। यहाँ बाजार एक सर्वव्यापी शक्ति बनकर उभरता है।

6. आदिवासी दृष्टिकोण का संकेत

कविता में अप्रत्यक्ष रूप से आदिवासी जीवन का संदर्भ भी आता है।

व्याख्या:

आदिवासी समाज में ईश्वर प्रकृति में बसता है, वहाँ आस्था का कोई बाजार नहीं होता, लेकिन आधुनिक व्यवस्था ने इस सरल आस्था को भी प्रभावित किया है।यानी–बाजार ने "प्राकृतिक धर्म" को भी बदल दिया है।

7. प्रकृति और ईश्वर का संबंध टूटना

कविता में यह भी संकेत मिलता है कि–

व्याख्या:

पहले ईश्वर प्रकृति से जुड़ा था, अब प्रकृति का दोहन हो रहा है, ईश्वर का "स्थानांतरण" बाजार में हो गया है। यह पर्यावरणीय संकट की ओर भी संकेत करता है।

8. व्यंग्य और विडंबना

कविता के कई हिस्सों में गहरा व्यंग्य है।

व्याख्या:

ईश्वर "महँगा" और "सस्ता" हो सकता है. अधिक पैसे वाले को अधिक "आशीर्वाद" मिल सकता है, धर्म भी वर्ग-भेद पैदा कर रहा है। यह स्थिति अत्यंत विडंबनापूर्ण है।

9. मानवीय संवेदनाओं का ह्रास

कविता आगे बताती है कि–

व्याख्या:

मनुष्य की संवेदनाएँ कम होती जा रही हैं, रिश्ते भी स्वार्थ पर आधारित हो गए हैं, करुणा और प्रेम की जगह लाभ ने ले ली है। यह आधुनिक समाज का नैतिक संकट है।

10. अंतिम भाव : चेतावनी और प्रश्न

कविता के अंत में एक गहरी चिंता और चेतावनी छिपी है।

व्याख्या:

यदि सब कुछ बाजार में बिकेगा, तो ईश्वर भी "सिर्फ वस्तु" बन जाएगा, मनुष्य अपनी आत्मा और आस्था खो देगा, समाज पूरी तरह उपभोक्तावादी हो जाएगा। कवयित्री अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्न करती हैं– क्या हम सच में यही समाज चाहते हैं?

पूरी कविता का सार यह है कि–ईश्वर = आस्था, नैतिकता, मानवता, बाजार = लाभ, उपभोक्तावाद, शोषण. जब बाजार हावी होता है, तो आस्था वस्तु बन जाती है, मनुष्य संवेदनहीन हो जाता है, समाज में असंतुलन पैदा होता है। कविता यह स्पष्ट करती है कि आधुनिक समाज में–रिश्ते भी बाजार की शर्तों पर आधारित हो गए हैं, मनुष्य की संवेदनशीलता कम होती जा रही है, लाभ-हानि की मानसिकता ने नैतिकता को कमजोर किया है. जसिंता केरकेट्टा विशेष रूप से यह दिखाती हैं कि–बाजारवाद ने आदिवासी समाज को विस्थापित किया, उनकी संस्कृति और प्रकृति से संबंध कमजोर हुआ, विकास के नाम पर शोषण बढ़ा.

सकारात्मक पक्ष

समकालीन यथार्थ का सशक्त चित्रण, आदिवासी दृष्टिकोण की प्रस्तुति, बाजारवाद की तीखी आलोचना।

समकालीन प्रासंगिकता

आज के समय में ऑनलाइन पूजा, धार्मिक ब्रांड, आध्यात्मिक व्यवसाय, इन सबके संदर्भ में यह कविता अत्यंत प्रासंगिक है। जब–धर्म भी व्यावसायिक हो रहा है, उपभोक्तावाद समाज पर हावी है, पर्यावरण संकट बढ़ रहा है, ऐसे में "ईश्वर और बाजार" कविता अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। आज के समय में जब–पर्यावरण संकट बढ़ रहा है, आदिवासी समुदाय विस्थापन का सामना कर रहे हैं, बाजारवाद समाज पर हावी है, ऐसे में जसिंता केरकेट्टा की रचनाएँ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती हैं। उनका साहित्य हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि विकास का वास्तविक अर्थ क्या है और किसके लिए है।

निष्कर्ष

"ईश्वर और बाजार" कविता के माध्यम से जसिंता केरकेट्टा ने यह सिद्ध किया है कि आधुनिक विकास मॉडल मानवता और प्रकृति के लिए खतरनाक हो सकता है। यह कविता केवल साहित्यिक रचना नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का आह्वान है। जसिंता केरकेट्टा समकालीन हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली कवयित्री हैं, जिनका लेखन केवल साहित्यिक सौंदर्य तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी है। उनकी कविताएँ

आदिवासी जीवन की संवेदनाओं, संघर्षों और आकांक्षाओं का सजीव दस्तावेज हैं। उनका साहित्य हमें यह समझने में सहायता करता है कि आधुनिकता और विकास के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जा सकता है, और किस प्रकार मानवता, प्रकृति और संस्कृति को बचाया जा सकता है।

"ईश्वर और बाजार" कविता समकालीन समाज की एक गहन आलोचना प्रस्तुत करती है। यह दिखाती है कि–बाजारवाद ने आस्था को वस्तु बना दिया है, मानवता संकट में है, आदिवासी दृष्टिकोण एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत करता है.अंततः, यह कविता केवल साहित्य नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का दस्तावेज है।

संदर्भ सूची

1. केरकेट्टा, जसिंता. अंगोर. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2016.
2. केरकेट्टा, जसिंता. जंगल के गीत. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन, 2019.
3. एक्का, रमेश. आदिवासी साहित्य और संस्कृति. रांची: झारखंड प्रकाशन, 2015.
4. कुमार, संजय. समकालीन हिंदी कविता. दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन, 2018.
5. शर्मा, रामविलास. हिंदी साहित्य का इतिहास. दिल्ली: राजकमल, 2001.
6. सिंह, नामवर. आलोचना के बहाने. दिल्ली: राजकमल, 2005.

नगरीय सुशासन व्यवस्था उत्तर प्रदेश के सन्दर्भ में

प्रो० नन्द लाल भारती

शोध निर्देशक, प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

मुदित कुमार सिंह

शोधार्थी, लोक प्रशासन विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

सारांश

उत्तर प्रदेश, भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य, तीव्र शहरीकरण का अनुभव कर रहा है, जिससे नगरीय सुशासन की प्रभावशीलता महत्वपूर्ण हो गई है। नगरीय सुशासन में निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ, स्थानीय निकाय, नागरिक समाज संगठन, और नागरिक सक्रियता शामिल हैं। यह व्यवस्था संविधान की 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 के तहत स्थापित स्थानीय सरकारों द्वारा संचालित होती है। हालाँकि, राज्य को वित्तीय संसाधनों की कमी, मानव संसाधनों की कमी, भ्रष्टाचार और राजनीतिक हस्तक्षेप जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। स्मार्ट सिटी मिशन, अमृत योजना और आवास परियोजनाओं जैसी पहलों के माध्यम से राज्य सरकार जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने का प्रयास कर रही है। नगरीय सुशासन को सुदृढ़ करने के लिए, वित्तीय संसाधनों का विस्तार, मानव क्षमता का विकास, प्रौद्योगिकी का उपयोग, और सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देना आवश्यक है। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना और अंतर-एजेंसी समन्वय को मजबूत करने से भी सुधार होगा। सतत विकास और डेटा-संचालित निर्णय लेने पर जोर देकर, उत्तर प्रदेश अपने शहरी क्षेत्रों को अधिक समावेशी बना सकता है। नगरीय सुशासन में सुधार न केवल आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, बल्कि नागरिकों के कल्याण के लिए भी महत्वपूर्ण है, जिससे राज्य को एक बेहतर शहरी जीवन का प्रतीक बनने में मदद मिलेगी।

मुख्य शब्द: नगरीय सुशासन, नगरपालिका, सार्वजनिक भागीदारी, शहरी।

प्रस्तावना

उत्तर प्रदेश, भारत का सबसे अधिक आबादी वाला राज्य होने के नाते, तीव्र शहरीकरण का अनुभव कर रहा है। इस तीव्र शहरीकरण के साथ, नगरीय सुशासन की प्रभावशीलता राज्य के विकास पथ के लिए एक महत्वपूर्ण कारक बन गई है। नगरीय सुशासन से तात्पर्य उन प्रक्रियाओं, संस्थानों और प्रथाओं के समूह से है जिनके द्वारा शहरी क्षेत्रों में निर्णय लिए जाते हैं और उन निर्णयों को लागू किया जाता है। इसमें नागरिक सेवाओं का वितरण, शहरी नियोजन, बुनियादी ढांचे का विकास, वित्तीय प्रबंधन और सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देना शामिल है। उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन की व्यवस्था बहुआयामी है, जिसमें विभिन्न स्तरों पर सरकार, स्थानीय निकाय, नागरिक समाज संगठन और नागरिक स्वयं शामिल हैं। इस व्यवस्था की सफलता न केवल प्रभावी नीतियों और कार्यक्रमों के निर्माण पर निर्भर करती है, बल्कि उनके कुशल कार्यान्वयन और निरंतर निगरानी पर भी निर्भर करती है। राज्य में, नगरीय निकायों को संविधान की 74वें संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा सशक्त किया गया है, जिसने शहरी स्थानीय सरकारों को संवैधानिक दर्जा और अधिक स्वायत्तता प्रदान की है। फिर भी, उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिनमें अपर्याप्त वित्तीय संसाधन, मानव संसाधन की कमी, भ्रष्टाचार, राजनीतिक हस्तक्षेप और सार्वजनिक जागरूकता का अभाव शामिल हैं। इन चुनौतियों के बावजूद, राज्य सरकार ने नगरीय क्षेत्रों में जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए कई पहलों की शुरुआत की है, जैसे स्मार्ट सिटी मिशन, अमृत (अटल मिशन फॉर रिजुवेनेशन एंड अर्बन ट्रांसफॉर्मेशन) योजना, और विभिन्न आवास परियोजनाएं। यह निबंध उत्तर प्रदेश के संदर्भ में नगरीय सुशासन व्यवस्था का एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें इसकी संरचना, कार्यप्रणाली, चुनौतियों और सुधार के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

नगरीय सुशासन की संरचना और कार्यप्रणाली

उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन की संरचना मुख्य रूप से शहरी स्थानीय निकायों के इर्द-गिर्द घूमती है, जिन्हें अधिनियमित कानूनों के अनुसार विभिन्न श्रेणियों में बांटा गया है। इन श्रेणियों में नगर निगम, नगरपालिका परिषद्, और नगर पंचायतें शामिल हैं। नगर निगम सबसे बड़े शहरी क्षेत्रों के लिए होते हैं, जबकि नगरपालिका परिषद् मध्यम आकार के शहरों के लिए और नगर पंचायतें छोटे शहरी या संक्रमणकालीन क्षेत्रों के लिए होती हैं। प्रत्येक निकाय में निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं, जिनमें महापौर और पार्षद शामिल हैं, जो स्थानीय शासन के लिए जिम्मेदार होते हैं। महापौर नगर निगम का प्रमुख होता है, जबकि नगरपालिका परिषद् और नगर पंचायतों का नेतृत्व अध्यक्ष करता है।

इन निकायों के मुख्य कार्य विभिन्न नागरिक सेवाओं का प्रावधान करना है, जिसमें जल आपूर्ति, सीवेज निपटान, सड़क निर्माण और रखरखाव, प्रकाश व्यवस्था, कचरा प्रबंधन, जन्म और मृत्यु पंजीकरण, और सार्वजनिक स्वास्थ्य से संबंधित सेवाएं शामिल हैं। वे स्थानीय करों, जैसे संपत्ति कर, जल कर, और अन्य शुल्क वसूल कर अपने वित्तीय संसाधनों को जुटाते हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य और केंद्र सरकारों से प्राप्त अनुदान भी उनके वित्त का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है।

उत्तर प्रदेश सरकार की विभिन्न एजेंसियां भी नगरीय सुशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शहरी विकास विभाग, नीति निर्माण योजना और नगरीय निकायों के पर्यवेक्षण के लिए जिम्मेदार है। इसके अलावा, टाउन एंड कंट्री प्लानिंग विभाग शहरी नियोजन और विकास के लिए मास्टर प्लान तैयार करता है। विभिन्न विशिष्ट एजेंसियों, जैसे उत्तर प्रदेश जल निगम और उत्तर प्रदेश आवास विकास परिषद, भी अपने-अपने क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

डिजिटल इंडिया और ई-गवर्नेंस की पहल ने उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन की कार्यप्रणाली को आधुनिक बनाने में मदद की है। कई नगरीय निकायों ने ऑनलाइन सेवाओं की शुरुआत की है, जैसे संपत्ति कर का ऑनलाइन भुगतान, भवन निर्माण अनुमति के लिए आवेदन, और शिकायत निवारण तंत्र। इससे पारदर्शिता बढ़ी है और नागरिकों के लिए सेवाओं तक पहुंच आसान हुई है।

नगरीय सुशासन के समक्ष प्रमुख चुनौतियाँ

उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन व्यवस्था को कई जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो इसके प्रभावी संचालन में बाधा उत्पन्न करती हैं। इन चुनौतियों का समाधान राज्य के शहरी विकास और नागरिकों के जीवन स्तर में सुधार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

एक प्रमुख चुनौती वित्तीय अस्थिरता है। नगरीय निकायों के पास अक्सर अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधन नहीं होते हैं। संपत्ति कर जैसे स्थानीय राजस्व स्रोतों का संग्रह अक्सर अप्रभावी होता है, जिसका मुख्य कारण कर चोरी, पुरानी मूल्यांकन प्रणाली और संग्रह तंत्र की अक्षमता है। राज्य और केंद्र सरकारों से प्राप्त अनुदानों पर निर्भरता अधिक होने से उनकी स्वायत्तता और योजना बनाने की क्षमता सीमित हो जाती है। यह वित्तीय कमी बुनियादी ढांचे के विकास, सेवाओं के विस्तार और रखरखाव को सीधे तौर पर प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, लखनऊ जैसे बड़े शहर में भी, कुछ क्षेत्रों में जल आपूर्ति और सीवेज निपटान की व्यवस्था अभी भी अपर्याप्त है, जो सीधे तौर पर वित्तीय बाधाओं से जुड़ी है।

मानव संसाधन की कमी और क्षमता निर्माण का अभाव एक और गंभीर समस्या है। नगरीय निकायों में अक्सर योग्य और कुशल कर्मचारियों की कमी होती है। तकनीकी विशेषज्ञता, योजना कौशल और प्रबंधन क्षमता का अभाव योजना के प्रभावी कार्यान्वयन और सेवाओं के वितरण में बाधा डालता है। कर्मचारियों का बार-बार स्थानांतरण भी संस्थागत ज्ञान और निरंतरता को बाधित करता है। प्रशिक्षण कार्यक्रमों की कमी और क्षमता निर्माण के लिए अपर्याप्त निवेश के कारण कर्मचारी अक्सर बदलते परिवेश और प्रौद्योगिकियों के साथ तालमेल बिठाने में असमर्थ रहते हैं।

राजनीतिक हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार नगरीय सुशासन की प्रभावशीलता को गंभीर रूप से कमजोर करते हैं। निर्णय लेने की प्रक्रिया अक्सर राजनीतिक लाभ से प्रभावित होती है, जिससे विकास परियोजनाओं का प्राथमिकता क्रम गड़बड़ा जाता है। भ्रष्टाचार, जो सार्वजनिक धन के दुरुपयोग और संसाधनों के असमान वितरण का कारण बनता है, जनता के विश्वास को कम करता है और सेवाओं की गुणवत्ता को घटाता है। निविदा प्रक्रियाओं में अनियमितताएं, नियुक्तियों में पक्षपात और वित्तीय कुप्रबंधन इसके सामान्य उदाहरण हैं।

योजना और कार्यान्वयन में समन्वय की कमी भी एक बड़ी चुनौती है। विभिन्न सरकारी विभागों, एजेंसियों और स्थानीय निकायों के बीच समन्वय का अभाव अक्सर परियोजनाओं में देरी, संसाधनों की बर्बादी और लक्ष्यों की प्राप्ति में विफलता का कारण बनता है। उदाहरण के लिए, शहरी विकास, परिवहन और पर्यावरण संबंधी परियोजनाओं के बीच सामंजस्य की कमी से अनियोजित विकास और पर्यावरणीय गिरावट हो सकती है।

सार्वजनिक भागीदारी का निम्न स्तर भी नगरीय सुशासन को प्रभावित करता है। कई नागरिक अपने स्थानीय मुद्दों में सक्रिय रूप से भाग लेने या स्थानीय निकायों की गतिविधियों पर नजर रखने में रुचि नहीं लेते हैं। इस निष्क्रियता के कारण, निर्णय लेने की प्रक्रिया पूरी तरह से निर्वाचित प्रतिनिधियों और नौकरशाही पर निर्भर हो जाती है, जिससे जवाबदेही कम हो जाती है। सार्वजनिक जागरूकता की कमी और सूचना तक सीमित पहुंच भी इस भागीदारी को सीमित करती है।

बुनियादी ढांचे का बढ़ता दबाव भी एक महत्वपूर्ण चुनौती है। तीव्र शहरीकरण के कारण, शहरों पर जनसंख्या का दबाव बढ़ रहा है, जिससे मौजूदा बुनियादी ढांचे, जैसे सड़कें, सार्वजनिक परिवहन, आवास, और सीवेज सिस्टम पर अत्यधिक भार पड़ रहा है। इस बढ़ते दबाव को पूरा करने के लिए पर्याप्त निवेश और योजना की कमी से भीड़भाड़, प्रदूषण और जीवन की गुणवत्ता में गिरावट जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

पर्यावरणीय चिंताएं, जैसे वायु और जल प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या, और हरित क्षेत्रों का सिकुड़ना, उत्तर प्रदेश के शहरी क्षेत्रों में गंभीर हो गई हैं। प्रभावी पर्यावरणीय नीतियों और उनके कार्यान्वयन की कमी इन मुद्दों को और बढ़ा देती है।

अंत में, डेटा की अनुपलब्धता और विश्लेषण का अभाव भी एक बाधा है। शहरी विकास और सेवा वितरण की योजना बनाने के लिए सटीक और अद्यतन डेटा की कमी के कारण, नीतियां अक्सर प्रभावी नहीं हो पाती हैं। डेटा-संचालित निर्णय लेने के बजाय, निर्णय अक्सर अनुमानों या राजनीतिक प्राथमिकताओं पर आधारित होते हैं।

सुधार के उपाय और भविष्य की दिशा

उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन व्यवस्था को मजबूत बनाने और उपरोक्त चुनौतियों का समाधान करने के लिए कई सुधार उपायों को अपनाने की आवश्यकता है। इन उपायों का उद्देश्य न केवल सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना है, बल्कि शहरी क्षेत्रों में नागरिकों के जीवन स्तर को भी बढ़ाना है।

वित्तीय सुदृढ़ीकरण के लिए, नगरीय निकायों की राजस्व जुटाने की क्षमता को बढ़ाना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें संपत्ति कर प्रणाली का आधुनिकीकरण, कर आधार का विस्तार, और कर संग्रह तंत्र में सुधार शामिल है। लीजेंडरी टैक्स, यूज़र चार्जेस और विज्ञापन शुल्क जैसे वैकल्पिक राजस्व स्रोतों का पता लगाना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, केंद्रीय वित्त आयोग और राज्य वित्त आयोग द्वारा नगरीय निकायों को अधिक वित्तीय संसाधन आवंटित किए जाने चाहिए, ताकि उनकी स्वायत्तता बढ़े। सार्वजनिक निजी भागीदारी मॉडल को अपनाने से बुनियादी ढांचे के विकास के लिए निवेश जुटाने में मदद मिल सकती है।

मानव संसाधन विकास पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। नगरीय निकायों में योग्य पेशेवरों की भर्ती, प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण के लिए एक मजबूत रणनीति बनाई जानी चाहिए। इसमें प्रबंधन, शहरी नियोजन, वित्त और इंजीनियरिंग जैसे क्षेत्रों में विशेषज्ञता वाले कर्मचारियों को आकर्षित करना शामिल है। नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम, प्रौद्योगिकी के उपयोग को बढ़ावा देना, और प्रदर्शन-आधारित प्रोत्साहन प्रणाली लागू करना कर्मचारियों की दक्षता और प्रेरणा को बढ़ा सकता है।

ई-गवर्नेंस और प्रौद्योगिकी का उपयोग नगरीय सुशासन में पारदर्शिता, दक्षता और जवाबदेही बढ़ाने के लिए एक शक्तिशाली माध्यम है। सेवाओं के ऑनलाइन वितरण, शिकायत निवारण प्रणाली को सुदृढ़ करने, और डेटा प्रबंधन के लिए डिजिटल प्लेटफॉर्म का विस्तार किया जाना चाहिए। स्मार्ट सिटी मिशन

और अन्य डिजिटल पहलों के तहत विकसित प्रौद्योगिकियों का अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, जीआईएस (भौगोलिक सूचना प्रणाली) का उपयोग शहरी नियोजन, संपत्ति प्रबंधन और सेवा वितरण में सुधार के लिए किया जा सकता है।

सार्वजनिक भागीदारी को बढ़ावा देना सुशासन का एक अभिन्न अंग है। नागरिकों को स्थानीय शासन की प्रक्रियाओं में सक्रिय रूप से शामिल करने के लिए तंत्र स्थापित किए जाने चाहिए। इसमें वार्ड समितिय को सशक्त बनाना, सार्वजनिक परामर्श आयोजित करना, और सूचनाओं को आसानी से उपलब्ध कराना शामिल है। सोशल मीडिया और मोबाइल ऐप का उपयोग नागरिकों को जोड़ने और फीडबैक प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

योजना और समन्वय में सुधार के लिए, विभिन्न सरकारी विभागों और एजेंसियों के बीच एकीकरण और सहयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। मास्टर प्लान और विकास योजनाओं का कार्यान्वयन एक एकीकृत दृष्टिकोण के साथ किया जाना चाहिए, जिसमें सभी हितधारकों को शामिल किया जाए। शहरी विकास, परिवहन, पर्यावरण और आवास जैसे क्षेत्रों के बीच स्पष्ट समन्वय तंत्र स्थापित करने की आवश्यकता है।

भ्रष्टाचार विरोधी उपायों को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए। सार्वजनिक खरीद प्रक्रियाओं में अधिक पारदर्शिता, नियमित ऑडिट, और सूचना के अधिकार अधिनियम का प्रभावी कार्यान्वयन भ्रष्टाचार को कम करने में मदद कर सकता है। नागरिकों को भ्रष्टाचार की रिपोर्ट करने के लिए एक सुरक्षित और सुलभ तंत्र उपलब्ध कराया जाना चाहिए।

बुनियादी ढांचे का सतत विकास सुनिश्चित करने के लिए, जनसांख्यिकीय रुझानों और भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए दीर्घकालिक योजनाएं बनाई जानी चाहिए। इसमें हरित भवन निर्माण, टिकाऊ परिवहन प्रणाली, और कुशल अपशिष्ट प्रबंधन प्रथाओं को बढ़ावा देना शामिल है।

पर्यावरण संरक्षण को नगरीय विकास योजनाओं में एकीकृत किया जाना चाहिए। हरित अवसंरचना का विकास, जल निकायों का संरक्षण, और प्रदूषण नियंत्रण के लिए कड़े उपाय आवश्यक हैं।

अंत में, डेटा-संचालित निर्णय लेने की संस्कृति को विकसित करना महत्वपूर्ण है। शहरी डेटा के संग्रह, विश्लेषण और उपयोग के लिए एक मजबूत प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए। यह नीतियों के निर्माण, कार्यक्रमों के कार्यान्वयन, और सेवाओं के वितरण को अधिक प्रभावी बनाने में मदद करेगा।

निष्कर्ष

उत्तर प्रदेश में नगरीय सुशासन व्यवस्था एक जटिल और गतिशील प्रणाली है, जो राज्य के शहरी विकास और नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करती है। तीव्र शहरीकरण की चुनौतियों का सामना करते हुए, स्थानीय निकायों को वित्तीय अस्थिरता, मानव संसाधन की कमी, राजनीतिक हस्तक्षेप, और समन्वय की कमी जैसी कई बाधाओं से निपटना पड़ता है। इन चुनौतियों के बावजूद, स्मार्ट सिटी मिशन, अमृत योजना, और ई-गवर्नेंस जैसी पहलों के माध्यम से सुधार की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं।

सुशासन को प्रभावी बनाने के लिए, वित्तीय संसाधनों को बढ़ाना, मानव क्षमता का विकास करना, प्रौद्योगिकी का लाभ उठाना, और सार्वजनिक भागीदारी को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना और अंतर-एजेंसी समन्वय को सुदृढ़ करना भी महत्वपूर्ण कदम हैं। सतत विकास, पर्यावरण संरक्षण, और डेटा-संचालित निर्णय लेने पर ध्यान केंद्रित करके, उत्तर प्रदेश अपने शहरी क्षेत्रों को अधिक रहने योग्य, आर्थिक रूप से व्यवहार्य और सामाजिक रूप से न्यायसंगत बना सकता है। नगरीय सुशासन में निरंतर सुधार न केवल राज्य के आर्थिक विकास के लिए बल्कि अपने नागरिकों के कल्याण के लिए भी अनिवार्य है। भविष्य में, एक सुदृढ़ और समावेशी नगरीय सुशासन व्यवस्था उत्तर प्रदेश को एक ऐसे राज्य के रूप में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी जहां शहरी जीवन गुणवत्ता और अवसर का प्रतीक हो।

संदर्भ

1. Government of Uttar Pradesh. (n.d.). Urban Development Department. Retrieved from [Relevant government website, e.g., https://urban.up.nic.in/].
2. The Constitution of India. (1950). Part IX-A The Municipalities.
3. Datta, A. (2012). The New Local Government System in India: A Critical Study. Deep & Deep Publications, p. 51.
4. Hasan, Z. (2007). Urban Local Governance and the Politics of Reforms in India. Orient Blackswan, p. 72.
5. Jain, A. K. (2013). Urban Governance in India: Reforms and Challenges. New Century Publications, p. 65.
6. Kapoor, P. (2018). Urban Governance in India: Issues and Prospects. Serials Publications, p. 23.
7. Pandey, A. (2015). Urbanization and Urban Governance in India: A Study of Selected Cities. Lambert Academic Publishing, p. 78.
8. Planning Commission of India. (Various Years). Reports on Urban Development and Local Governance.
9. Saxena, N. C. (2001). Urban Planning in India. Concept Publishing Company, p. 46.
10. Various news articles and reports from reputable sources regarding urban development initiatives in Uttar Pradesh. (e.g., The Hindu, Times of India, Economic Times, Livemint)

स्त्री पक्ष की प्रभावशाली दलील है 'तिरियाचरित्तर'

डॉ० पंकज कुमार झा

विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, L.N.M.U. दरभंगा

'तिरियाचरित्तर' कहानी जून 1987 में छपी थी 'हंस' में। सर्वश्रेष्ठ कहानी पुरस्कार से नवाजी गयी है यह कहानी। एक औरत को कितना असहाय बनना पड़ता है, बहता पानी कारणवश रुक जाता है। तो वह गंदा बनता है। वैसे तो पानी स्वच्छ ही होता है। जब पानी ठहरता है, वहां की गंदगी से उसमें गंदापन आता है।

हिन्दी कथा साहित्य में शिवमूर्ति की कहानियों को स्त्री की दशा-दिशा के परिचायक कहा जा सकता है। शिवमूर्ति अपनी कहानियों में स्त्रीपात्रों को गढ़ते नहीं हैं वरन वे पात्र स्वयं उनकी कहानियों में अपनी जगह बना लेती हैं, मानो वे मुखर होकर स्वयं के बारे में बताना चाहती हों। चूँकि शिवमूर्ति का लेखन क्षेत्र ग्राम्य्य जीवन से रहा है इसलिए उनकी कहानियों की स्त्री पात्र ग्रामीण परिवेश से ही आती है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पात्र लेखक के कलम से साकार होते हैं। अतएव कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति विषय के चयन में जो जोखिम उठाते हैं। जो लेखक को पुरुष की दोहरी मानसिकता के विरुद्ध खड़ा करता है, चाहे विमली हो या गुनी पंडित की पतोहू या फिर केसर हो, ये सभी स्त्री पात्र विविध परिवेश में रहते हुए भी एकख्र सी त्रासदी झेलती हुई दिखाई देती हैं, यह त्रासदी हैख्र पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के अधिकारों का निर्ममता से दमन।

भारतीय ग्रामीण स्त्रियों को लेखक ने संघर्षरत तथा मेहनती दिखलाया है। उनकी सभी कहानियों में स्त्री के संघर्षरत सौंदर्य को दिखाया है। विमली जिसका कोई भाई नहीं है वह अपने माता-पिता व समाज को एक संदेश देती है कि मैं किसी लड़के से कम नहीं। वह अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण करने के लिए जी तोड़ मेहनत करती है। औरत होकर भी ईंट-भट्ठे पर काम करती है। यही कारण है कि लेखक कहते हैं- "दरअसल माँ-बाप के लिए लड़का बनकर रहती है विमली! माँ-बाप क्या-क्या नहीं सहा- सुना उसके माँ-बाप ने उसके लिए! वह नहीं चाहती है कि उसके माँ-बाप लड़के के अभाव को लेकर दुखी हों। किस लड़के से कम है वह? 15-16 रूपये रोज कमाती है।"[1]

दरअसल इस पूरी समाज व्यवस्था में स्त्रियों को सिर्फ और सिर्फ मादा के रूप में ही देखा जाता है। इसलिए जब कोई स्त्री इस वास्तविकता को तोड़ने का प्रयास करती है तो उसे हर तरफ से प्रताड़ित करने की कोशिश की जाती है। इस कहानी के पात्र ममता, सुरजी सब एक मादा भर हैं जिस पर कोई भी सिकरेटरी अपना अधिकार समझता है। कुछ रियायतें, कुछ मान-मनौवल और फिर पूरा मामला। स्त्री का यह शोषण सिर्फ बाहरी लोगों द्वारा या कुछ लालच में ही नहीं किया जाता बल्कि कभी-कभी तो कुछ और भी कारण होते हैं। 'तिरिया चरित्तर' की विमली इसी तरह के शोषण का शिकार होती है। वह अपने पति जिसके साथ उसकी शादी बहुत छुटपन में ही की गई थी को अपने जीवन में एक गाँठ की तरह बाँधे हुए है। भट्ठे पर काम करते समय कुइसा मिस्त्री से लेकर डरेवर बाबू सभी उससे शादी करने को तैयार हैं। डरेवर बाबू ने तो यहाँ तक कहा था कि अबकी बार तुमको बिना लिए नहीं जाएंगे झरिया-धनबाद। कुइसा तो कई बार विमली के पिता के पास चिलम पीने के बहाने गया था लेकिन विमली का पिता नजरों से ही खल्लास कर देता है।

भट्ठे पर वह कैसे-कैसे लोगों से अपने को बचाती आई है। माँ उसके हर अंग की बहुत का हिसाब रखती है। "रतौंधी होने से क्या हुआ? बुढ़िया विमली को मन की आँखों से देखती है। मन की आँख बहुत तेज है बुढ़िया की।... पराया धन। जब तक जिसकी अमानत उसको न सौंप दी जाय... बुढ़िया विमली के एक-एक अंग को टटोलकर पढ़ रही हैख्र सीना! पेट! कूल्हे! आखिर दुनिया भर के लोंडे-लपाड़ों के बीच दिन काटती है उसकी बेटी...।"[2]

स्त्री यदि अपना जीवन साथी अपनी इच्छा से चुनना चाहे तो अनुचित है, यदि वह दूसरे समाज या जाति के लड़के को अपनाना चाहे तो अपराध है, वह अपने ऊपर लादे जाने वाले 'गैर कानूनी' कानून का विरोध करे तो उसका 'तिरिया चरित्तर' है। 'तिरिया चरित्तर' प्रतिष्ठित वरिष्ठ कहानीकार शिवमूर्ति की कहानी भी है। शिवमूर्ति ने 'तिरिया चरित्तर' के प्रपंची शब्द की तह तक पहुँच कर उस कटु सत्य को दुनिया के सामने रखा जो स्त्री के प्रति पुरुषवादी समाज के दृष्टिकोण को जानने में सहायता करती है। लेखक पुरुष होकर भी उस सच तक पहुँच गये जहाँ से स्त्री का यथार्थ शुरू होता है। कहानीकार का सोच भारतीय आम भारतीय स्त्री की सच्चाई को उजागर करती है। एक लड़की है जो बचपन से अपने अपंग पिता का स्थान लेकर घर चलाती है। पिताजी एक दुर्घटना से घायल हो गया था और अपना पैर गंवा बैठा था। भरण-पोषण की समस्या मुंह बाए खड़ी हो जाती है। विमली की माँ सरपंच की बीवी से सहायता माँगती है किंतु सरपंच की बीवी कुछ गिरवी लिए सहायता देने से मना कर देती है। परिवार के पेट की भूख विमली को समय से पहले समझदार बना देती है। मात्र नौ साल की उम्र में उसे यह सोचना पड़ता है कि वह अपने माता-पिता का पेट कैसे भरे? अवयस्क विमली पहले तो सबसे आसान रास्ता चुनती है, रोटी चुराने का। "लेकिन पहर रात बीते आई थी, विमली! नौ साल की बच्ची! फराक में दोपहर की बनी दो सूखी मोटी रोटियाँ छिपाए हुए। एक विमली का हिस्सा और एक सरपंच जी की दोनों भैंसों का। भैंसों के हौदे में न डालकर वह रोटियाँ लेकर माँ के पास दौड़ी आई थी और किसी को सन्देह न हो इसलिए उसे दौड़ते हुए ही वापस भाग जाना था।"[3] फिर विमली को यह इस बात का अहसास हो गया कि दो रोटियों से उन तीन लोगों की क्षुधा नहीं मिट सकती है। सुबह से वह तीन लोगों की क्षुधा नहीं मिट सकती। सुबह घर लौटकर अपनी माँ से कहती है- "नहीं करना उसे ऐसी जगह पर गोबर-झाड़ू, जहाँ माँगने पर भीख भी नहीं मिल सकती।"[4] यहीं से विमली अपने नये अवतार में लड़के की भाँति घर का दायित्व सम्भालने के लिए कमर कस लेती है। यहाँ

पर उसे टूटे पिता को जवान होती बेटी का बोझ एवं सामाजिक भेड़ियों से डर लगने लगता है और भभक उठा। उसने विमली की माँ को डांटते हुए कहा- "नाक कटवाने पर तुल गई है दोनों मॉ बेटी..... नहीं करवाना उसे हाथ पर पलस्तर। खुला ही रहेगा। भूखा ही मरेगा... लेकिन हाथ ठीक होता तो गला दबा देता माँ-बेटी दोनों का।"[5] अपनी हेठी को बनाए रखने का प्रयास करता हुआ विमली का पिता विमली को काम पर जाने से नहीं रोक पाता है। उसकी मौन सहमति उसकी बेटी के लिए जीवन संघर्ष का द्वार खोल देती है जिसके बाद उसे तमाम कठिनाईयों से अकेले ही लड़ना है। पिता जो मेहनत, मजदूरी की पीड़ा को भली भाँति जानता था, फिर भी अपनी बेटी को सदा संदेह की दृष्टि से देखता था। माँ अपनी बेटी के साथ थी क्योंकि वह स्त्री थी और एक लड़की की संघर्ष को समझ सकती थी। लड़की का दुर्भाग्य कि उसे बचपन में ही एक ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह के बंधन में बांध दिया गया था जिसने कभी पलट कर उसकी सुध नहीं ली।

ईंट भट्ठे पर काम करते विमली का पुरुषों की लोलुप दृष्टि से पाला पड़ा और वह शीघ्र ही भले-बुरे की पहचान करना सीख जाती है। विमली की निकटता पाने की इच्छा रखने वाले पुरुष अपने-अपने ढंग से रिझाने का असफल प्रयास करते हैं। ये तीन पुरुष हैंख्र ट्रैक्टर ड्राइवर बिल्लर, ईंट भट्ठे का मिस्त्री कुइसा और ट्रक ड्राइवर 'डरेवर जी'।

विमली युवा है, उसकी देह की अपनी माँग है, मन में किसी को पा लेने की आकुलता। किन्तु मस्तिष्क उसे स्मरण कराता रहता है कि उसका विवाह उससे बहुत दूर कलकत्ता में उसकी प्रतीक्षा कर रहा होगा। उसका विवाह बचपन में ही बिसराम के लड़के से करा दिया गया था। विवाह के कई वर्ष बीत जाने के बाद भी उसका पति उसे विदा कराने नहीं आया न ही उसका ससुर बिसराम। परंतु विमली का स्त्री मन अपने विवाह के प्रति समर्पित हो चुका था। उसे बिल्लर का बोनट से उछलकर नदी के दह में कूद पड़ता है ऊपर टीले पर चढ़ते-चढ़ते विमली को बिल्लर का गीत सुनाई पड़ता है।

"अरे टुटही मड़इया के हम है राजा करीला गुजार थोड़े में,
तोर मन लागे न लागे पतरकी,
मोर मन लागल बा तोरे में...."[6]

विमली को बिल्लर का रिझाना ओछापन लगता था। एक दिन अवसर पाकर बिल्लर विमली के साथ छेड़खानी भी करता है। जिसके उत्तर में विमली उसके हाथ को दाँतों से काट कर स्वयं को बचाती है।

बिल्लर ताना मारता हुआ कहता है- "डरेवर बाबू की देह महकती है और मेरी देह गंधाती है?"[7] बिल्लर का विमली को ताना देना यह दर्शाता है कि स्त्री सौतन के साथ निर्वाह करें परंतु पुरुष नहीं कर सकता। सभी ताने, इज्जत, प्रतिष्ठा, कष्ट एवं कठिनाई केवल स्त्री ही समाज में झेलती है। यानि स्त्री अपनी सामाजिक नियति से डरे और पति पाने की इच्छा को प्रगट करने से पहले सौ बार सोचे। यही घुट्टी तो ग्रामीण अंचलों में कथावाचक पिलाते रहते हैं। इसलिए यदि शतिरियाचरित्तरश की विमली डरेवर के प्रति आकर्षित दिखाई देती है तो बिल्लर उन्मुक्तता से उसे ताना मारता है।

ईंट भट्ठे का 'मिसतरी' कुइसा भी विमली को अपनी जीवन संगिनी बनाना चाहता है। कुइसा कहता है कि- "विमली के आने से भट्ठे पर उजियारा हो जाता है और जाते ही अंधियारा... और अंधियारा होते ही रतौंधी शुरू हो जाती है कुइसा की।"[8]

इसलिए जब विमली के विदाई का समय आता है तो कुइसा को समूचा गाँव निस्सार लगने लगता है। "कुइसा मिस्त्री ने सुना तो अबोला रह गया। अँधियार करके चली जाएगी विमली भट्ठे पर। पांच सौ रुपये तनख्वाह पाता है वह। पाँच बिगहा खेत। विमली का आदमी तो झिल्ली ढ़ोता है कलकत्ते में। क्या सुख देगा जनाना को?"[9]

'तिरियाचरित्तर' के कथानक से ही स्पष्ट है कि कहानीकार शिवमूर्ति ने इस तथ्य को बहुत करीब से अनुभव किया है कि ग्रामीण अंचल में प्रत्येक स्त्री को किसी न किसी रूप में पुरुषों की 'सरपंची' झेलनी पड़ती है। जो स्त्री दबाव में आने से इनकार करती है उसे श्दागाश जा सकता है। विमली 'तिरिया जनम' का दुख ही तो भुगतने अपने ससुराल जा रही थी। ससुर बिसराम उसे अपने गाँव, अपने घर ले आया। बिसराम के बेटे का पता नहीं, इससे बिसराम को क्या? वह स्वयं प्रस्तुत है अपनी बहू के साथ अपनी देह की आग बुझाने के लिए। विमली ने सपने में भी नहीं सोचा था। वह अपने पिता के घर लौटने की जिद में ही लगी है। वह अपने पति का पता भी ढूंढ निकालती है और उसके नाम चिट्ठी भेजती है किन्तु पिता के आने से पहले धर्म के नाम पर छल-कपट का सहारा लेकर ससुर अपने कुत्सित प्रयास में सफल हो जाता है। पिता को पता चलता है तो वह विमली को साथ लिए बिना ही अकेले लौट जाता है।

पिता कलंकित बेटी को अपने साथ कैसे ले जाता? उसे भी तो विश्वास था उसकी बेटी ईंट भट्टा जाने के नाम पर आवारागर्दी करती है। पिता के अंदर बैठा पुरुष बेटी द्वारा कमर तोड़ मेहनत कर दो समय की रोटी के साथ इसकी निर्मलता को नहीं देख पाता है। ऐसा पिता अपनी यार के साथ भागती हुई पकड़ी गई बेटी को अपने साथ, अपने गाँव कैसे लाता? हाँ, यदि बेटा होता और उसने किसी लड़की के साथ दुष्कर्म किया होता, तो उस बेटे को अपनी ममता की छाया में ढक कर अपने साथ घर ले आता। विमली बेटा नहीं बेटी थी।

ससुर ने कहा कि विमली अपने यार के साथ भाग गई है उसे पकड़ लाओ। और गाँव के बूढ़े जवान और बच्चे सब निकल पड़े उसे पकड़ने। युवाओं ने विमली को पकड़कर वापस लाने में अपनी विजय समझ बैठा किन्तु सच्चाई जानने का प्रयास नहीं किया। स्त्री का सच तो सच होता ही नहीं है, यह धारणा पंचायत के पंच सरपंच पुदेखा के मन में इस तरह जड़ जमाए हुए है कि वे स्त्री को ही दण्ड का भागी मानते हैं, चाहे स्त्री निरपराध ही क्यों न हो।

लेखक ने इसमें ग्रामीण समाज की जटिलताओं को बखूबी बेपर्द किया है। भूख, गरीब और शोषण आज के स्वतंत्र भारत का यथार्थ है। जहाँ विमली जैसी कोई स्त्री यदि मेहनत-मजदूरी करके सम्मान का जीवन जीना भी चाहे तो हमारे पितृसत्तात्मक पुरुष प्रधान समाज को यह स्वीकार नहीं है। उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। विमली इन प्रवंचनों को धत्ता बताती हुई पेट की आग बुझाने हेतु भट्टे पर काम करने लगती है जिससे पुरुषों की छाती पर सांप लौटने लगता है। मर्द के खाल में कूत्ते व भेड़िये जो हर क्षण स्त्री-मांस के लिए घात लगाए बैठे हैं। पुरुष प्रधान समाज का यह चेहरा हम वर्षों से देखते आ रहे हैं और यह आज भी उतनी ही दृढ़ता से खड़ी ही है। हाँ, कुछ धार में कमी देखी जा रही है। भारत में सबसे पहले हमारे राज्य बिहार के मुखिया

नीतीश कुमार ने बिहार पंचायती राज अधिनियम, 2006 के तहत महिलाओं को पंचायत चुनाव में 50% आरक्षण देकर पुरुष प्रधान समाज के धार को कुछ हद तक कम करने का प्रयास किया है।

'तिरियाचरित्तर' कहानी में महत्वपूर्ण मोड़ विमली का ससुर बिसराम के प्रवेश से आता है। बिसराम जब उसे गौना लिवा जाता है। ससुर होते हुए भी विमली पर बुरी नजर रखता है। विमली अपने स्तर से इस मौन प्रताड़ना का विरोध करती है। लेखक उसकी मनोदशा का चित्रण करते हुए लिखता है- "जान सांसत में पड़ी है विमली की। किसी तरह पत-पानी के साथ मायके पहुँच जाती अगर!... या उसका आदमी आ पहुँचता अचानक... नहीं तो हर रात जंगल की रात।" एक रात एक युग किसी से कहे भी तो क्या? क्या करेगा को सुनकर हंसने के सिवा? भरी पंचायत में खड़ा होना पड़ेगा अलग। और ऐसे-ऐसे नंगा कर देने वाले सवाल पंचायत के चौधरी लोग रस ले-ले कर पूछते हैं कि... उसे खूब पता। नैहर तक बदनामी अलग से।... बप्पा और श्आदमीश की राह देखती विमली।"[10]

अन्ततः विमली की आबः बिसराम खराब कर ही देता है। और स्वयं पर कोई आंच नहीं आए, इसलिए बिसराम उसकी चारित्रिक हनन के उद्देश्य से उसे पंचायत में घसीट लाता है। विमली का पिता सबकुछ जानते हुए भी खड़े नहीं हो पाता है। लेखक यहाँ यह भी बताना चाहते हैं कि एक स्त्री अब भी कितनी असुरक्षित है? पुरुष अपनी कामुकता और मौन तृप्ति की पूर्ति हेतु पुत्री समान पतोहू से बलात्कार कैसे कर सकता है? क्या हवस उसे इतना अंधा बना देती है कि वह रिश्तों का भी परवाह न करे? फिर स्त्रियां कैसे सुरक्षित रह सकती हैं? यह अकाट्य प्रश्न लेखक समाज पर छोड़ता है। ऐसी परिस्थिति में एक लाचार और बेबस स्त्री के लिए क्या रास्ता रह जाता है वह करे तो क्या करे? वह भी ऐसे वक्त जब उसका बाप भी उसका साथ छोड़कर तटस्थता का मुखौटा ओढ़ ले। आखेटक समय का प्रतिपक्ष शीर्षक आलेख में राकेश बिहारी सामाजिक विडम्बनाओं को रेखांकित करते हुए लिखते हैं, "एक तरफ पिता और भाई जैसे पुरुष जो अपनी बेटी या बहन की जिंदगी की तमाम त्रासदियों को जानते हुए भी बार-बार अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की दुहाई देते हुए बेटी को सब कुछ निभा जाने की नसीहतें देते हैं।"[11]

कहानी में लेखक शिवमूर्ति ने औरत के यौन शोषण को हृदयविदारक ढंग से प्रस्तुत किया है जो पाठक को गहरे आक्रोश और चिंता से भर देने में पूर्णतः सफल है। और यही कहानी को सफलता के चरमोत्कर्ष तक पहुँचाती है। पाठक एक ओर विमली के प्रति करुणा से तो दूसरी ओर बिसराम के प्रति घृणा से भर उठता है।

इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि कथाकार शिवमूर्ति कि रचना 'तिरिया चरितर' स्ष्त्री पक्ष को प्रभावशाली तर्क रखने में शत प्रतिशत कामयाब रही है।

सन्दर्भ

१. शिवमूर्तिः केसर कस्तूरी (कहानी संग्रह), दूसरा संस्करण- 2015, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली - 110002
२. वही, पृष्ठ सं. 111
३. वही, पृष्ठ सं. 85
४. वही, पृष्ठ सं. "
५. वही, पृष्ठ सं. 86
6. वही, पृष्ठ सं. 84
7. वही, पृष्ठ सं. 94
8. वही, पृष्ठ सं. 82
9. वही, पृष्ठ सं. 82
10. वही, पृष्ठ सं. 124
11. 'हंस', मार्च 2013, पृष्ठ सं. 79, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

महिला शिक्षा और कौशल आधारित आत्मनिर्भरता : राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा (SDGs) के संदर्भ में एक अध्ययन

अनु शर्मा

नोएडा अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

सारांश

महिला सशक्तिकरण किसी भी राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास का महत्वपूर्ण आधार है। वर्तमान समय में शिक्षा और कौशल विकास महिलाओं को आत्मनिर्भर, जागरूक और नेतृत्वक्षम बनाने के सबसे प्रभावी साधन माने जाते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के सतत विकास लक्ष्य (SDGs) विशेष रूप से महिला शिक्षा, लैंगिक समानता और कौशल विकास को प्रोत्साहित करते हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में महिला शिक्षा के ऐतिहासिक विकास, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, SDG-4 एवं SDG-5 की भूमिका, कौशल विकास, डिजिटल शिक्षा, महिला उद्यमिता, उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी तथा सरकारी योजनाओं की प्रभावशीलता का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शिक्षा और कौशल विकास महिलाओं को आर्थिक स्वतंत्रता, आत्मविश्वास और सामाजिक सम्मान प्रदान करते हैं, किंतु ग्रामीण-शहरी असमानता, डिजिटल विभाजन, सामाजिक रूढ़ियाँ और आर्थिक बाधाएँ अब भी बड़ी चुनौतियाँ हैं। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि जब शिक्षा, कौशल विकास, तकनीकी सशक्तिकरण और नीतिगत समर्थन का समन्वय होगा, तभी वास्तविक महिला सशक्तिकरण और सतत विकास संभव हो सकेगा।

प्रमुख शब्दः महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, कौशल विकास, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, सतत विकास लक्ष्य, लैंगिक समानता, डिजिटल शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, आत्मनिर्भरता, महिला उद्यमिता, नेतृत्व क्षमता, सामाजिक न्याय

प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में महिला सशक्तिकरण केवल सामाजिक न्याय का विषय नहीं रह गया है, बल्कि यह सतत विकास, आर्थिक प्रगति, लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की स्थापना का आधार बन चुका है। किसी भी राष्ट्र की प्रगति का वास्तविक आकलन इस बात से किया जा सकता है कि वहाँ की महिलाएँ शिक्षा, रोजगार, निर्णय-निर्माण और सामाजिक सहभागिता में कितनी सक्रिय एवं सशक्त हैं। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति ऐतिहासिक रूप से अनेक उतार-चढ़ावों से गुजरी है। वैदिक काल में जहाँ महिलाओं को शिक्षा एवं सामाजिक सम्मान प्राप्त था, वहीं मध्यकालीन परिस्थितियों तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने उनकी स्वतंत्रता एवं अधिकारों को सीमित कर दिया। आधुनिक भारत में शिक्षा के प्रसार, सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा संवैधानिक प्रावधानों ने महिलाओं की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने का प्रयास किया है।

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक रूप से इतना सक्षम बनाना है कि वे अपने जीवन से संबंधित निर्णय स्वतंत्र रूप से ले सकें तथा समाज में समान अवसर प्राप्त कर सकें। शिक्षा इस सशक्तिकरण का सबसे प्रभावी माध्यम है। शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, तार्किक सोच, नेतृत्व क्षमता, जागरूकता एवं आत्मनिर्भरता का विकास करती है। एक शिक्षित महिला न केवल स्वयं का विकास करती है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है।

21वीं सदी ज्ञान, तकनीक और कौशल आधारित अर्थव्यवस्था की सदी है। केवल पारंपरिक शिक्षा अब पर्याप्त नहीं मानी जाती, बल्कि कौशल विकास भी उतना ही आवश्यक हो गया है। आज के प्रतिस्पर्धात्मक युग में महिलाओं को रोजगार, उद्यमिता और आत्मनिर्भरता से जोड़ने के लिए व्यावसायिक शिक्षा, डिजिटल साक्षरता, तकनीकी दक्षता और नवाचार आधारित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। कौशल विकास महिलाओं को आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनाता है तथा उन्हें सामाजिक एवं पारिवारिक निर्णयों में प्रभावी भूमिका निभाने के लिए सक्षम करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन लाने का प्रयास करती है। यह नीति समावेशी, बहुआयामी, कौशल-आधारित एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा पर बल देती है। नीति में "Gender Inclusion Fund" जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से महिलाओं एवं बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। दूसरी ओर, संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य (SDGs) विशेष रूप से SDG-4 और SDG-5 महिला शिक्षा एवं लैंगिक समानता को वैश्विक विकास की अनिवार्य शर्त मानते हैं।

हालाँकि भारत में महिला शिक्षा एवं कौशल विकास के क्षेत्र में अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं, फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की कमी, बाल विवाह, लैंगिक भेदभाव, डिजिटल विभाजन, आर्थिक असमानता एवं सामाजिक रूढ़ियाँ महिलाओं के समग्र विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। इस संदर्भ में महिला सशक्तिकरण, शिक्षा एवं कौशल विकास का राष्ट्रीय शिक्षा नीति और सतत विकास लक्ष्यों के आलोक में आलोचनात्मक अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है।

1. महिला शिक्षा का ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय समाज में महिला शिक्षा का इतिहास सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक मान्यताओं तथा राजनीतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा एवं ज्ञानार्जन का अधिकार प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी और लोपामुद्रा जैसी विदुषी महिलाओं ने दार्शनिक एवं वैचारिक विमर्शों में सक्रिय भागीदारी निभाई। उस समय शिक्षा को केवल पुरुषों तक सीमित नहीं माना जाता था।

मध्यकालीन काल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था, पर्दा प्रथा, बाल विवाह और सामाजिक रूढ़ियों ने महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया। परिणामस्वरूप महिला शिक्षा का क्षेत्र लंबे समय तक उपेक्षित बना रहा। औपनिवेशिक काल में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले जैसे समाज सुधारकों ने स्त्री शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का आधार माना। सावित्रीबाई फुले द्वारा बालिकाओं के लिए विद्यालय स्थापित करना भारतीय महिला शिक्षा के इतिहास में क्रांतिकारी कदम था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने महिलाओं को समानता एवं शिक्षा का अधिकार प्रदान किया। संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 21। ने महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने का संवैधानिक आधार तैयार किया। इसके पश्चात् सर्व शिक्षा अभियान, राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ और समग्र शिक्षा अभियान जैसी योजनाओं ने महिला शिक्षा के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

फिर भी आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, लैंगिक भेदभाव, बाल विवाह, घरेलू दायित्व और सामाजिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ बालिकाओं की शिक्षा में बाधा उत्पन्न करती हैं। डिजिटल युग में तकनीकी संसाधनों की असमान उपलब्धता भी महिला शिक्षा के लिए नई चुनौती बनकर उभरी है। उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी बढ़ने के बावजूद रोजगार और नेतृत्व के अवसरों में अभी भी असमानता दिखाई देती है।

इसके बावजूद वर्तमान समय में महिला शिक्षा केवल साक्षरता तक सीमित नहीं रह गई है, बल्कि यह आत्मनिर्भरता, सामाजिक जागरूकता और आर्थिक सशक्तिकरण का माध्यम बन चुकी है। आज महिलाएँ विज्ञान, प्रशासन, न्यायपालिका, सेना, राजनीति और उद्यमिता जैसे विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त कर रही हैं।

2. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन लाने वाली एक दूरदर्शी नीति है। यह नीति शिक्षा को सामाजिक न्याय, समान अवसर और मानव विकास से जोड़ती है। महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में यह नीति विशेष महत्व रखती है, क्योंकि इसमें लैंगिक समानता, समावेशिता, कौशल विकास और आत्मनिर्भरता को शिक्षा के मूल उद्देश्यों में सम्मिलित किया गया है।

NEP-2020 की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता "Gender Inclusion Fund" है, जिसका उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित बालिकाओं को शिक्षा से जोड़ना है। इसके माध्यम से विद्यालयी सुविधाओं का विस्तार, सुरक्षित शिक्षण वातावरण, छात्रवृत्ति तथा आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है।

नीति समावेशी शिक्षा की अवधारणा को केंद्र में रखती है। जाति, वर्ग, लिंग, भाषा या आर्थिक असमानता के कारण कोई भी बालिका शिक्षा से वंचित न रहे, यह इसका प्रमुख उद्देश्य है। बालिकाओं के लिए सुरक्षित एवं संवेदनशील विद्यालयी वातावरण तैयार करने तथा लैंगिक भेदभाव को कम करने पर विशेष बल दिया गया है।

NEP-2020 महिलाओं को केवल पारंपरिक शिक्षा तक सीमित नहीं रखती, बल्कि उन्हें कौशल आधारित एवं रोजगारोन्मुख शिक्षा से जोड़ने का प्रयास करती है। व्यावसायिक शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण एवं उद्यमिता विकास को बढ़ावा देकर महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में कार्य किया गया है। नीति में आलोचनात्मक चिंतन, रचनात्मकता, संचार कौशल और तकनीकी दक्षता जैसे 21वीं सदी के कौशलों पर विशेष बल दिया गया है।

डिजिटल शिक्षा के क्षेत्र में भी यह नीति महिलाओं के लिए नए अवसर प्रस्तुत करती है। ऑनलाइन शिक्षण, वर्चुअल लर्निंग एवं तकनीकी संसाधनों के माध्यम से दूरस्थ क्षेत्रों की महिलाओं को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। हालांकि डिजिटल असमानता अब भी एक बड़ी चुनौती है, फिर भी यह नीति महिलाओं की तकनीकी भागीदारी बढ़ाने की दिशा में सकारात्मक कदम मानी जा सकती है।

फिर भी नीति के सफल क्रियान्वयन के सामने अनेक चुनौतियाँ मौजूद हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी, सामाजिक रूढ़ियाँ, आर्थिक असमानता तथा डिजिटल सुविधाओं का अभाव नीति के उद्देश्यों को प्रभावित कर सकते हैं। अत: आवश्यक है कि नीति के साथ सामाजिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आए।

3. सतत विकास लक्ष्य (SDGs) और महिला शिक्षा

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्य (SDGs) वैश्विक स्तर पर समावेशी और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का प्रयास हैं। इनमें SDG-4 "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" तथा SDG-5 "लैंगिक समानता" विशेष रूप से महिला शिक्षा और सशक्तिकरण से संबंधित हैं।

SDG-4 का उद्देश्य सभी के लिए समावेशी एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करना है। इसके अंतर्गत केवल विद्यालयों में प्रवेश बढ़ाने पर बल नहीं दिया गया है, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता, सीखने के अवसरों की समानता तथा जीवन कौशल के विकास को भी महत्व दिया गया है। यह लक्ष्य विशेष रूप से उन महिलाओं और बालिकाओं पर केंद्रित है जो गरीबी, सामाजिक भेदभाव या सांस्कृतिक बाधाओं के कारण शिक्षा से वंचित रह जाती हैं।

SDG-5 महिलाओं को समान अवसर प्रदान करने और उन्हें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से सशक्त बनाने पर बल देता है। लैंगिक समानता का अर्थ केवल महिलाओं को अवसर देना नहीं, बल्कि ऐसी सामाजिक संरचना का निर्माण करना है जिसमें महिलाएँ बिना भेदभाव के शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और निर्णय-निर्माण में समान भागीदारी कर सकें।

महिला शिक्षा और महिला सशक्तिकरण का संबंध अत्यंत गहरा है। शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, जागरूकता और अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करती है। शिक्षित महिलाएँ स्वास्थ्य, पोषण, परिवार नियोजन, आर्थिक प्रबंधन और सामाजिक सहभागिता जैसे विषयों पर अधिक प्रभावी निर्णय लेने में सक्षम होती हैं।

डिजिटल युग में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का स्वरूप भी बदल रहा है। ऑनलाइन शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण और डिजिटल संसाधनों ने महिलाओं के लिए नए अवसर उत्पन्न किए हैं। हालांकि डिजिटल विभाजन अब भी एक बड़ी चुनौती है, विशेषकर ग्रामीण एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की महिलाओं के लिए।

सतत विकास की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि महिला शिक्षा केवल सामाजिक कल्याण का विषय नहीं, बल्कि आर्थिक प्रगति और लोकतांत्रिक स्थिरता का भी आधार है। शिक्षित और सशक्त महिलाएँ कार्यक्षेत्र में भागीदारी बढ़ाती हैं, जिससे राष्ट्रीय उत्पादकता और आर्थिक विकास को गति मिलती है।

4. कौशल विकास एवं आत्मनिर्भर महिला निर्माण

वर्तमान समय में आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक सम्मान, निर्णय क्षमता और आत्मविश्वास से भी जुड़ी हुई है। महिलाओं के संदर्भ में आत्मनिर्भरता का विशेष महत्व है, क्योंकि यह उन्हें पारंपरिक निर्भरता की सीमाओं से बाहर निकालकर समाज की सक्रिय भागीदार बनाती है।

कौशल विकास का उद्देश्य व्यक्तियों को ऐसे व्यावहारिक ज्ञान और तकनीकी दक्षताओं से संपन्न करना है, जो उन्हें रोजगार, स्वरोजगार और उद्यमिता के अवसर प्रदान कर सकें। महिलाओं के लिए यह प्रक्रिया विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। सिलाई, हस्तशिल्प, खाद्य प्रसंस्करण, कंप्यूटर प्रशिक्षण, डिजिटल मार्केटिंग, ई-कॉमर्स और स्वास्थ्य सेवाओं जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी लगातार बढ़ रही है।

डिजिटल तकनीक ने महिला सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान की है। इंटरनेट और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से महिलाएँ घर बैठे शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार के अवसर प्राप्त कर रही हैं। ऑनलाइन बैंकिंग, डिजिटल भुगतान और सोशल मीडिया मार्केटिंग ने महिलाओं की आर्थिक भागीदारी को बढ़ाया है।

व्यावसायिक शिक्षा महिलाओं को रोजगारोन्मुख बनाती है। "स्किल इंडिया मिशन", "राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन" तथा विभिन्न स्वरोजगार योजनाओं ने महिलाओं को प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता प्रदान कर आत्मनिर्भरता की दिशा में प्रेरित किया है।

हालाँकि ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण केंद्रों की कमी, तकनीकी संसाधनों का अभाव, सामाजिक प्रतिबंध तथा पारिवारिक जिम्मेदारियाँ महिलाओं की भागीदारी को सीमित करती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक महिलाएँ प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद भी रोजगार के पर्याप्त अवसरों से वंचित रह जाती हैं।

फिर भी यह स्पष्ट है कि कौशल विकास महिलाओं के जीवन में व्यापक परिवर्तन ला सकता है। आर्थिक रूप से सक्षम महिलाएँ परिवार और समाज में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाती हैं तथा बच्चों की शिक्षा और स्वास्थ्य में भी सकारात्मक योगदान देती हैं।

5. उच्च शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी एवं चुनौतियाँ

पिछले कुछ दशकों में महिलाओं की उच्च शिक्षा में भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों और शोध संस्थाओं में महिलाओं की उपस्थिति पहले की अपेक्षा अधिक दिखाई देती है। यह परिवर्तन सामाजिक जागरूकता, सरकारी नीतियों और शिक्षा के प्रति सकारात्मक सोच का परिणाम है।

उच्च शिक्षा महिलाओं में आत्मनिर्भरता, नेतृत्व क्षमता और निर्णय लेने की योग्यता विकसित करती है। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रबंधन, विधि और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी भारतीय समाज की बदलती मानसिकता को दर्शाती है।

फिर भी अनेक महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा तक पहुँचना आज भी आसान नहीं है। सामाजिक स्तर पर पितृसत्तात्मक सोच एक बड़ी बाधा है। अनेक परिवारों में लड़कियों की शिक्षा को विवाह तक सीमित दृष्टि से देखा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह समस्या और अधिक दिखाई देती है।

आर्थिक असमानता भी महिलाओं की उच्च शिक्षा में गंभीर अवरोध उत्पन्न करती है। सीमित संसाधनों के कारण प्रायः लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है। उच्च शिक्षा में बढ़ती फीस, छात्रावास और परिवहन व्यय अनेक परिवारों के लिए चुनौती बन जाते हैं।

सुरक्षा संबंधी चिंताएँ, सामाजिक नियंत्रण और पारिवारिक दबाव भी महिलाओं की स्वतंत्रता को सीमित करते हैं। उच्च शिक्षा संस्थानों में लैंगिक असमानता और उत्पीड़न जैसी समस्याएँ भी कभी-कभी सामने आती हैं।

इसके बावजूद महिलाएँ शोध, नवाचार, प्रशासन, राजनीति, विज्ञान और उद्यमिता जैसे क्षेत्रों में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त कर रही हैं। अतः आवश्यक है कि उच्च शिक्षा को महिलाओं के लिए अधिक सुरक्षित, सुलभ और समावेशी बनाया जाए।

6. डिजिटल शिक्षा और महिला सशक्तिकरण

डिजिटल क्रांति ने शिक्षा के स्वरूप और पहुँच में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किया है। इंटरनेट, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और वर्चुअल कक्षाओं ने ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया को अधिक सुलभ और व्यापक बना दिया है। महिलाओं के संदर्भ में डिजिटल शिक्षा विशेष महत्व रखती है, क्योंकि यह उन्हें सामाजिक और भौगोलिक सीमाओं से बाहर निकलकर शिक्षा और कौशल विकास के नए अवसर प्रदान करती है।

ऑनलाइन शिक्षा ने उन महिलाओं के लिए नए अवसर उत्पन्न किए हैं, जो पारिवारिक जिम्मेदारियों या सामाजिक प्रतिबंधों के कारण नियमित शिक्षण संस्थानों तक नहीं पहुँच पाती थीं। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल पाठ्यक्रमों ने महिलाओं को घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्रदान की है।

डिजिटल साक्षरता महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने के बाद महिलाएँ डिजिटल बैंकिंग, ऑनलाइन व्यवसाय, ई-कॉमर्स और सोशल मीडिया के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त बन रही हैं।

कोविड-19 महामारी के दौरान डिजिटल शिक्षा का महत्व और अधिक स्पष्ट हुआ। जब पारंपरिक शिक्षण संस्थान बंद हो गए, तब ऑनलाइन शिक्षा ही अध्ययन का प्रमुख माध्यम बनी। हालांकि इस अनुभव ने यह भी स्पष्ट किया कि तकनीकी संसाधनों तक समान पहुँच अभी भी सुनिश्चित नहीं हो सकी है।

ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट की सीमित उपलब्धता, तकनीकी उपकरणों की कमी और डिजिटल प्रशिक्षण का अभाव महिलाओं की भागीदारी को प्रभावित करते हैं। साइबर सुरक्षा और ऑनलाइन उत्पीड़न जैसी समस्याएँ भी महिलाओं के लिए चिंता का विषय हैं।

फिर भी यह स्पष्ट है कि डिजिटल शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है। यदि महिलाओं को समान डिजिटल अवसर और सुरक्षित ऑनलाइन वातावरण उपलब्ध कराया जाए, तो डिजिटल शिक्षा महिला सशक्तिकरण की दिशा में अत्यंत प्रभावी माध्यम सिद्ध हो सकती है।

7. ग्रामीण एवं शहरी महिलाओं की शिक्षा में असमानताएँ

भारतीय समाज में शिक्षा तक समान पहुँच आज भी एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। विशेष रूप से ग्रामीण और शहरी महिलाओं के बीच शैक्षिक अवसरों, संसाधनों और कौशल विकास की उपलब्धता में स्पष्ट असमानताएँ दिखाई देती हैं।

शहरी क्षेत्रों में महिलाओं को शिक्षा एवं कौशल विकास के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। महानगरों और विकसित शहरों में विद्यालयों, महाविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों और डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता अधिक होती है। परिणामस्वरूप महिलाएँ इंजीनियरिंग, चिकित्सा, प्रबंधन और सूचना प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में सक्रिय भागीदारी कर रही हैं।

इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की शिक्षा अनेक प्रकार की बाधाओं से प्रभावित होती है। विद्यालयों और उच्च शिक्षा संस्थानों की सीमित संख्या, परिवहन सुविधाओं का अभाव और सुरक्षा संबंधी चिंताएँ उनकी शिक्षा में अवरोध उत्पन्न करती हैं। ग्रामीण समाज में पितृसत्तात्मक सोच के कारण लड़कियों की शिक्षा को प्राथमिकता नहीं मिल पाती।

कौशल विकास के क्षेत्र में भी ग्रामीण और शहरी महिलाओं के बीच स्पष्ट अंतर दिखाई देता है। शहरी क्षेत्रों में डिजिटल प्रशिक्षण, ऑनलाइन शिक्षा और रोजगारोन्मुख कार्यक्रम अधिक सुलभ हैं, जबकि ग्रामीण महिलाओं के लिए आधुनिक तकनीकी और डिजिटल कौशल की पहुँच अपेक्षाकृत कम है।

डिजिटल विभाजन इस असमानता को और अधिक गहरा करता है। कोविड-19 महामारी के दौरान अनेक ग्रामीण छात्राएँ ऑनलाइन शिक्षा से वंचित रह गईं। हालांकि सरकार और विभिन्न सामाजिक संस्थाओं द्वारा ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा देने के प्रयास किए जा रहे हैं, फिर भी क्षेत्रीय असमानता पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी है।

अत: आवश्यक है कि ग्रामीण महिलाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, डिजिटल संसाधन, सुरक्षित वातावरण और आधुनिक कौशल प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जाए।

8. महिला उद्यमिता और कौशल आधारित शिक्षा

वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था में उद्यमिता को आर्थिक विकास और रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है। महिलाओं के संदर्भ में उद्यमिता आत्मनिर्भरता, सामाजिक पहचान और आर्थिक स्वतंत्रता का सशक्त माध्यम है।

कौशल आधारित शिक्षा महिलाओं को व्यावहारिक ज्ञान, तकनीकी दक्षता और व्यवसायिक समझ प्रदान करती है। इससे वे स्वरोजगार तथा छोटे और मध्यम स्तर के उद्योग स्थापित करने में सक्षम बनती हैं।

आज महिलाओं की भागीदारी डिजिटल उद्यमिता, ई-कॉमर्स, ऑनलाइन सेवाएँ, खाद्य प्रसंस्करण, फैशन डिजाइनिंग और स्टार्टअप संस्कृति तक पहुँच चुकी है। इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफॉर्म ने महिलाओं के लिए व्यवसाय शुरू करने की प्रक्रिया को अधिक सरल बना दिया है।

सरकारी योजनाओं जैसे "स्टार्टअप इंडिया", "मुद्रा योजना" और "राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन" ने महिलाओं को प्रशिक्षण, ऋण सुविधा और बाजार से जुड़ने के अवसर प्रदान किए हैं। इससे ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग की महिलाएँ भी स्वरोजगार की दिशा में आगे बढ़ रही हैं।

हालाँकि सामाजिक पूर्वाग्रह, वित्तीय संसाधनों की कमी, बाजार तक सीमित पहुँच और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ महिलाओं की उद्यमशील क्षमता को प्रभावित करती हैं। इसके बावजूद कौशल आधारित शिक्षा महिलाओं को निर्भरता से आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने में प्रभावी भूमिका निभा रही है।

महिला उद्यमिता महिलाओं में नेतृत्व क्षमता, आत्मविश्वास और सामाजिक सम्मान का विकास करती है। आर्थिक रूप से सक्षम महिलाएँ परिवार और समाज में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाती हैं तथा सामाजिक परिवर्तन की वाहक बनती हैं।

9. कार्य प्रेरणा, नेतृत्व क्षमता एवं निर्णय लेने में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति की सोच, व्यवहार, दृष्टिकोण और निर्णय क्षमता को भी विकसित करती है। महिलाओं के संदर्भ में शिक्षा उन्हें सामाजिक निर्भरता से बाहर निकालकर आत्मविश्वासी और नेतृत्वक्षम नागरिक के रूप में विकसित करती है।

कार्य प्रेरणा का संबंध व्यक्ति की आंतरिक ऊर्जा और लक्ष्यबोध से होता है। जब महिलाएँ शिक्षा प्राप्त करती हैं, तब वे केवल रोजगार के अवसरों तक ही नहीं पहुँचतीं, बल्कि अपने जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण भी विकसित करती हैं।

नेतृत्व क्षमता का विकास भी शिक्षा का महत्वपूर्ण परिणाम है। शिक्षा महिलाओं में संवाद कौशल, तार्किक चिंतन और समस्या समाधान की क्षमता विकसित करती है। विद्यालयों और महाविद्यालयों में सहभागिता के माध्यम से महिलाएँ नेतृत्व के व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करती हैं।

निर्णय लेने की क्षमता महिलाओं के सशक्तिकरण का अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षित महिलाएँ परिवार नियोजन, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और आर्थिक प्रबंधन से संबंधित निर्णय अधिक आत्मविश्वास के साथ लेती हैं।

शिक्षा महिलाओं की सामाजिक सहभागिता को भी बढ़ाती है। शिक्षित महिलाएँ सामाजिक संगठनों, स्वयं सहायता समूहों और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में अधिक सक्रिय रूप से भाग लेती हैं।

हालाँकि शिक्षा के बावजूद अनेक महिलाएँ सामाजिक रूढ़ियों और लैंगिक भेदभाव जैसी चुनौतियों का सामना करती हैं। फिर भी यह स्पष्ट है कि शिक्षा महिलाओं में आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और निर्णय लेने की शक्ति विकसित करने का सबसे प्रभावी साधन है।

10. महिला सशक्तिकरण हेतु सरकारी योजनाएँ एवं उनकी प्रभावशीलता

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर अनेक योजनाएँ और कार्यक्रम संचालित किए गए हैं, जिनका लक्ष्य महिलाओं को शिक्षा, कौशल, स्वास्थ्य, तकनीक और रोजगार से जोड़कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना है।

"बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ" योजना का उद्देश्य बालिकाओं के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करना तथा उनकी शिक्षा को बढ़ावा देना है। इस योजना के माध्यम से बालिका शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथा विद्यालयों में बालिकाओं के नामांकन में सुधार देखा गया है।

"कौशल भारत मिशन" महिलाओं को तकनीकी और व्यावसायिक कौशल सिखाकर आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करता है। कंप्यूटर प्रशिक्षण, डिजिटल सेवाएँ और स्वरोजगार आधारित कार्यक्रमों ने अनेक महिलाओं को आर्थिक अवसर प्रदान किए हैं।

"डिजिटल इंडिया" कार्यक्रम ने महिलाओं की डिजिटल भागीदारी को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इंटरनेट, डिजिटल बैंकिंग और ऑनलाइन शिक्षा तक पहुँच ने महिलाओं के जीवन में नए अवसर उत्पन्न किए हैं।

"राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन" और स्वयं सहायता समूहों ने ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों से जोड़कर आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दिया है। इससे महिलाओं की सामाजिक पहचान और आत्मविश्वास में वृद्धि हुई है।

हालाँकि अनेक योजनाओं के क्रियान्वयन में व्यावहारिक कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं। कई बार योजनाओं की जानकारी महिलाओं तक प्रभावी रूप से नहीं पहुँच पाती। ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशासनिक कमजोरी, संसाधनों की कमी और सामाजिक रूढ़ियाँ योजनाओं के प्रभाव को सीमित कर देती हैं।

फिर भी यह स्पष्ट है कि सरकारी योजनाओं ने महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण आधार तैयार किया है। जब योजनाओं को शिक्षा, कौशल विकास और सामाजिक परिवर्तन के साथ समन्वित रूप से लागू किया जाएगा, तभी महिलाओं का वास्तविक और स्थायी सशक्तिकरण संभव हो सकेगा।

निष्कर्ष

महिला सशक्तिकरण आधुनिक समाज की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक है। शिक्षा और कौशल विकास महिलाओं को केवल आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं बनाते, बल्कि उनमें आत्मविश्वास, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक जागरूकता का भी विकास करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तथा सतत विकास लक्ष्य महिला शिक्षा, लैंगिक समानता और कौशल विकास को वैश्विक एवं राष्ट्रीय विकास की आधारशिला के रूप में स्थापित करते हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत में महिला शिक्षा और सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। बालिका शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, कौशल विकास, महिला उद्यमिता और उच्च शिक्षा में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी सामाजिक परिवर्तन के सकारात्मक संकेत हैं। फिर भी ग्रामीण-शहरी असमानता, डिजिटल विभाजन, सामाजिक रूढ़ियाँ, आर्थिक बाधाएँ और सुरक्षा संबंधी समस्याएँ अब भी बड़ी चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

महिला सशक्तिकरण की प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा को कौशल विकास, तकनीकी प्रशिक्षण और रोजगारोन्मुख अवसरों से जोड़ा जाए। महिलाओं के लिए सुरक्षित एवं समावेशी शैक्षिक वातावरण, डिजिटल संसाधनों की समान उपलब्धता, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा सामाजिक जागरूकता अत्यंत आवश्यक हैं।

जब महिलाएँ शिक्षित, कुशल और आत्मनिर्भर होंगी, तभी समाज में वास्तविक समानता, सामाजिक न्याय और सतत विकास संभव होगा। इसलिए शिक्षा, कौशल विकास, राष्ट्रीय शिक्षा नीति और सतत विकास लक्ष्यों के मध्य समन्वय स्थापित करना वर्तमान समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, जे. सी. (2021). भारतीय शिक्षा व्यवस्था एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: शिप्रा पब्लिकेशन्स।
- शर्मा, आर. ए. (2022). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : सिद्धांत और व्यवहार. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर।
- सिंह, वी. पी. (2021). महिला सशक्तिकरण और शिक्षा. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
- यादव, एस. के. (2022). कौशल विकास एवं आत्मनिर्भर भारत. नई दिल्ली: एपीएच पब्लिशिंग कॉर्पोरेशन।
- मिश्रा, एम. (2021). नई शिक्षा नीति और भारतीय शिक्षा का भविष्य. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- तिवारी, आर. एन. (2020). समावेशी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
- चौधरी, पी. (2022). महिला शिक्षा, लैंगिक समानता और सतत विकास. नई दिल्ली: राधा पब्लिकेशन्स।
- भारत सरकार. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. नई दिल्ली: शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार।
- संयुक्त राष्ट्र संघ. (2015). सतत विकास लक्ष्य : 2030 एजेंडा. न्यूयॉर्क: संयुक्त राष्ट्र प्रकाशन।
- वर्मा, एस. (2021). डिजिटल शिक्षा और महिला सशक्तिकरण. जयपुर: पॉइंटर पब्लिशर्स।
- Aggarwal, J. C. (2019). *Women education in India: Historical perspectives and future challenges*. Shipra Publications.
- Desai, N., & Krishnaraj, M. (2018). *Women and society in India*. Ajanta Publications.
- Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Education.
- Government of India. (2021). *Skill India mission report*. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship.
- Nayar, U. S. (2017). *Women's empowerment in South Asia: Issues and perspectives*. Global Vision Publishing House.

सूचना क्रांति तथा दूरस्थ शिक्षा बिहार के सन्दर्भ में: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० अरविन्द कुमार पूर्वे

समाजशास्त्र विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांश

दूरस्थ शिक्षा का साधारण अर्थ है दूर से दी जाने वाली शिक्षा अर्थात वह शिक्षा जो दूर से दी जाती है। दूरस्थ शिक्षा कहलाती है। यह एक ऐसी शिक्षा है जिसमे अध्यापक तथा विद्यार्थी आमने-सामने नहीं होते, बल्कि यह शिक्षा अध्यापक द्वारा अपने विद्यार्थियों को दूर से दी जाती है। विभिन्न देशों में इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे - Open-Learning, Independent Study, Eñtended Degree, Programme, off campus

दूरस्थ शिक्षा में विभिन्न जनसाधारण साधनों का प्रयोग किया जाता। इसके अंतर्गत पाठ्यक्रम का निर्माण, साधनों का तैयार करना, पठन सामग्री भेजने के विभिन्न तरीके तथा मूल्यांकन प्रक्रिया आदि आते हैं। इन पाठों की प्रकृति स्वयं सीखने के लिए भी प्रेरित करते हैं। 1985 में नई दिल्ली में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय स्थापित किया गया, जिससे देश की जनता को शिक्षा मिल सकें।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) के वादों ने खुली दूरस्थ शिक्षा को रूपांतरित करने और ज्ञान अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने में ई-लर्निंग को गति प्रदान की है।

मूल शब्द: सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी विकास; ज्ञान अर्थव्यवस्था; ई-लर्निंग; दूरस्थ शिक्षा; खुली शिक्षा; उच्च शिक्षा; नवोन्मेषी चक्र।

प्रस्तावना

दूरस्थ शिक्षा भविष्य की शिक्षा प्रणाली है, और इसकी शुरुआत हो चुकी है! दूरस्थ शिक्षा का तात्पर्य उन पाठ्यक्रमों से है जो पूरी तरह से ऑनलाइन उपलब्ध हैं। ये पाठ्यक्रम मान्यता प्राप्त, निजी पाठ्यक्रम हो सकते हैं, और इनके लिए कॉलेज क्रेडिट, हाई स्कूल क्रेडिट या बिना क्रेडिट के भी भुगतान किया जा सकता है।

कई ऐसी विशेषताएं हैं जो दूरस्थ शिक्षा को पारंपरिक आमने-सामने की शिक्षा, रिमोट लर्निंग और हाइब्रिड कक्षाओं सहित अन्य प्रकार की शिक्षा से विशिष्ट रूप से अलग बनाती हैं।

यदि छात्र ऑनलाइन सीखता है और शिक्षक ऑनलाइन पढ़ाता है, तो शिक्षा को दूरस्थ शिक्षा माना जाता है। यह किसी संस्थान द्वारा दी जाने वाली शिक्षा है - यह ऑनलाइन स्व-अध्ययन या इंटरनेट का उपयोग करके स्वयं शोध करना नहीं है।

छात्र और प्रशिक्षक के बीच ऑनलाइन संवाद दूरस्थ शिक्षा की भी एक विशेषता है, और यह ईमेल, वेबसाइटों या अन्य ऑनलाइन प्लेटफार्मों के माध्यम से हो सकता है।

इसके अलावा, दूरस्थ शिक्षा में एक शिक्षण समुदाय स्थापित किया जाता है। यह एक केंद्रीय स्थान है जहाँ छात्र अपनी शैक्षिक सामग्री तक पहुँच सकते हैं, असाइनमेंट जमा कर सकते हैं, चर्चा कर सकते हैं और बहुत कुछ कर सकते हैं।[1]

दूरस्थ शिक्षा का इतिहास

मानो या ना मानो, दूरस्थ शिक्षा की शुरुआत सन् 1800 के दशक में हुई थी। यह इंटरनेट के आने से पहले की बात है, और इन संस्थानों को पत्राचार विद्यालय कहा जाता था।

पत्राचार स्कूलों की शुरुआत 1800 के दशक की शुरुआत में यूरोप में और 1800 के दशक के अंत में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुई। यूरोप में, यात्रा की उच्च लागत और प्रयास के कारण, विश्वविद्यालय के छात्रों को एक फॉर्म भरकर डाक से भेजने के बाद स्कूल की सामग्री डाक द्वारा भेजी जाती थी।[2]

दूरस्थ विश्वविद्यालय की शिक्षा पूरी तरह से डाक सेवा के माध्यम से संचालित की गई। संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी इसका अनुसरण किया और पत्राचार स्कूलों को लागू करना शुरू कर दिया।

आधुनिक दूरस्थ शिक्षा

1950 के दशक में टेलीविजन आधारित पाठ्यक्रम शुरू हुए। इनका प्रसारण विश्वविद्यालयों और सामुदायिक कॉलेजों द्वारा किया जाता था और इनमें सभी प्रकार के विषय शामिल थे।

अब लगभग सभी दूरस्थ शिक्षा ऑनलाइन ही संचालित की जाती है, जिससे सभी प्रकार की शिक्षा पहले की तुलना में कहीं अधिक सुलभ हो गई है।

दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन शिक्षा में कोई अंतर

दूरस्थ शिक्षा और ऑनलाइन शिक्षा के बीच कुछ बहुत महत्वपूर्ण अंतर हैं, जिनमें शामिल हैं:

1. स्थान

ऑनलाइन शिक्षा में, छात्र और शिक्षक एक ही ऑनलाइन मंच साझा करते हैं, और छात्र शिक्षक की उपस्थिति में डिजिटल असाइनमेंट और पाठों पर काम कर सकते हैं। दूरस्थ शिक्षा में, छात्र असाइनमेंट और पाठों को अपने समय के अनुसार पूरा कर सकते हैं।

2. अंत:क्रिया

ऑनलाइन शिक्षा में शिक्षक और छात्र के बीच नियमित संपर्क होता है, क्योंकि यह मिश्रित शिक्षण अनुभव का एक हिस्सा है। दूरस्थ शिक्षा में संवाद लचीले और असमकालिक तरीके से किया जा सकता है।

3. इरादा

ऑनलाइन शिक्षा अन्य प्रकार की प्रत्यक्ष शिक्षण विधियों का पूरक हैख़्रदिनचर्या में बदलाव लाने का एक तरीका। वहीं, दूरस्थ शिक्षा का उद्देश्य पूरी तरह से ऑनलाइन शिक्षा प्रदान करना है।

शिक्षा के क्षेत्र में ऑनलाइन शिक्षा और दूरस्थ शिक्षा दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है।

ऑनलाइन शिक्षा उन शिक्षकों और छात्रों के लिए सबसे उपयुक्त है जो पढ़ाने का एक नया तरीका और नई विधि अपनाना चाहते हैं। दूरस्थ शिक्षा उन छात्रों के लिए सबसे अच्छी है जिनमें बिना ज्यादा मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के सारा काम पूरा करने का अनुशासन है।

समकालिक बनाम असमकालिक शिक्षण

दूरस्थ शिक्षा दो प्रकार की होती है: समकालिक और असमकालिक। समकालिक शिक्षा का अर्थ है कि सभी शिक्षार्थी एक ही समय में शिक्षक के साथ एक ही माध्यम से जुड़ते हैं। इसके उदाहरणों में वेब, वीडियो और ऑडियो कॉन्फ्रेंसिंग शामिल हैं।

अतुल्यकालिक अधिगम तब होता है जब छात्र और शिक्षक अलग-अलग समय पर संवाद करते हैं। उदाहरण के लिए, एक शिक्षक व्याख्यान का वीडियो पोस्ट कर सकता है और एक छात्र उसे बाद में देख सकता है। वे अलग-अलग समय पर ईमेल के माध्यम से ऑनलाइन भी संवाद कर सकते हैं।

ज्ञान, नवाचार और सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) ने सूचना विज्ञान एवं संचार, वित्त एवं परिवहन जैसे कई आर्थिक क्षेत्रों पर गहरा प्रभाव डाला है। आईसीटी ने शिक्षा पर भी प्रभाव डाला है। उदाहरण के लिए, ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था शिक्षा के लिए एक नया परिदृश्य तैयार करती है और शिक्षा क्षेत्र के लिए नई चुनौतियाँ और संभावनाएँ प्रस्तुत करती है। सर्वप्रथम, शिक्षा ज्ञान-आधारित अर्थव्यवस्था की एक पूर्व शर्त है और नए ज्ञान के उत्पादन एवं उपयोग दोनों के लिए अधिक शिक्षित जनसंख्या और कार्यबल की आवश्यकता होती है। द्वितीय, आईसीटी ज्ञान और सूचना के प्रसार का एक अत्यंत शक्तिशाली साधन है, जो शिक्षा प्रक्रिया का एक मूलभूत पहलू है। इस रूप में, वे एक ऐसी शैक्षणिक भूमिका निभाते हैं जो सैद्धांतिक रूप से शिक्षा क्षेत्र की पारंपरिक पद्धतियों का पूरक (या उनसे प्रतिस्पर्धा भी) हो सकती है। अत:, शिक्षा क्षेत्र के समक्ष दो चुनौतियाँ हैं यदि उसे सीखने के नए रूपों की सहायता (या दबाव) से निरंतर विस्तार करना है। तृतीय, आईसीटी कभी-कभी शिक्षा क्षेत्र में व्यवसाय संचालन के तरीकों में नवाचारों को प्रेरित करती है।

उदाहरण के लिए, ग्लोबल पोजिशनिंग सिस्टम (जीपीएस) के आविष्कार के बाद से नेविगेशन में पहले जैसी संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं शामिल नहीं रह गई हैं। साथ ही, सूचना के डिजिटलीकरण से लेकर रिकॉर्डिंग, सिमुलेशन और डेटा प्रोसेसिंग की नई संभावनाओं तक, कई क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान में भी सूचना संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) द्वारा प्रदान की गई नई संभावनाओं से क्रांतिकारी बदलाव आया है। ऐसे में एक और सवाल उठता है, "क्या आईसीटी शिक्षा में भी इसी तरह क्रांतिकारी बदलाव ला सकती है, खासकर जब शिक्षा सीधे तौर पर ज्ञान और सूचना के संहिताकरण और प्रसारण से संबंधित हो?" आईसीटी क्रांति ने इन दोनों गतिविधियों (संहिताकरण और प्रसारण) को प्रभावी रूप से अलग कर दिया है।[3]

दूरस्थ शिक्षा के लाभ

दूरस्थ शिक्षा के कई फायदे हैं। यह लचीली होती है, अक्सर अपनी गति से सीखने की सुविधा देती है, और इसे किसी भी समय पूरा किया जा सकता है - यानी आपके शेड्यूल के अनुसार।

दूरस्थ शिक्षा से छात्रों को स्थान पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं होती और यात्रा या स्थानांतरण से भी उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। दूरस्थ शिक्षा से पैसे की भी बचत हो सकती है - क्योंकि दूरस्थ शिक्षा की लागत आमतौर पर कम होती है और आने-जाने में लगने वाला पैसा भी बचता है।[4]

भारत में सूचना क्रांति और दूरस्थ शिक्षा

भारत में सूचना क्रांति ने इंटरनेट, स्मार्टफोन और डिजिटल मीडिया के माध्यम से दूरस्थ शिक्षा (Distance Education) का कायाकल्प कर दिया है। इसने भौगोलिक दूरियों को मिटाकर शिक्षा को 'सभी के लिए, कहीं से भी' सुलभ बना दिया है। यह शिक्षा प्रणाली सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) पर पूरी तरह से निर्भर हो चुकी है।[5]

दूरस्थ शिक्षा पर सूचना क्रांति के प्रभाव और इसके प्रमुख आयामों को निम्नलिखित बिंदुओं से समझा जा सकता है:

- लचीलापन और वैयक्तिकृत शिक्षा (Fleñibility): सूचना क्रांति ने शिक्षार्थियों को अपनी गति और सुविधा के अनुसार अध्ययन करने की स्वतंत्रता दी है। अब कामकाजी पेशेवर और दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले लोग भी आसानी से उच्च शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं।
- ई-लर्निंग और मल्टीमीडिया सामग्री (E-Learning): मुद्रित (printed) अध्ययन सामग्री के स्थान पर अब डिजिटल कंटेंट, ई-बुक्स, पॉडकास्ट और एनिमेटेड वीडियो का उपयोग हो रहा है।
- वर्चुअल क्लासरूम और लाइव वेबिनार: जूम (Zoom), गूगल मीट (Google Meet) और अन्य वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से छात्र घर बैठे शिक्षकों के साथ सीधे संवाद कर सकते हैं और वास्तविक समय (real-time) में अपनी शंकाओं का समाधान कर सकते हैं।
- लर्निंग मैनेजमेंट सिस्टम (LMS): विभिन्न शैक्षणिक संस्थान और विश्वविद्यालय (जैसे- इग्नू या अन्य ऑनलाइन विश्वविद्यालय) स्डै का उपयोग करते हैं। इसके जरिए छात्र अपने असाइनमेंट जमा कर सकते हैं, परीक्षाएं दे सकते हैं और अपने प्रदर्शन की ट्रैकिंग कर सकते हैं।

इस क्रांति के बावजूद, भारत जैसे विशाल देश में डिजिटल डिवाइड (Digital Divide) एक बड़ी चुनौती है। सुदूर और ग्रामीण इलाकों में निर्बाध इंटरनेट कनेक्टिविटी और डिजिटल उपकरणों (जैसे लैपटॉप या स्मार्टफोन) की कमी के कारण सभी छात्र इसका पूरा लाभ नहीं उठा पा रहे हैं।[6]

बिहार में दूरस्थ शिक्षा

बिहार के संदर्भ में सूचना क्रांति और दूरस्थ शिक्षा का संगम राज्य के सुदूर और वंचित क्षेत्रों तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम है। डिजिटल तकनीक और ऑनलाइन लर्निंग प्लेटफॉर्म्स की मदद से, बिहार की शिक्षा व्यवस्था में भौगोलिक दूरियों को मिटाकर समावेशी शिक्षा (Inclusive Education) का मार्ग प्रशस्त किया जा रहा है।

बिहार में दूरस्थ शिक्षा और सूचना क्रांति का प्रभाव

1. सरकारी डिजिटल पहल और ई-लर्निंग:

बिहार शिक्षा विभाग (BEPC) ने दूरस्थ शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए कई सफल और प्रभावी कदम उठाए हैं।

- मेरा दूरदर्शन - मेरा विद्यालय: कोविड महामारी और उसके बाद के दौर में, दूरदर्शन के माध्यम से बिहार के छात्रों के लिए कक्षा आधारित शैक्षिक प्रसारण की शुरुआत की गई, जिसने सुदूर गाँवों तक शिक्षा की निरंतरता बनाए रखीघ
- विद्यावाहिनी बिहार ऐप: इस डिजिटल प्लेटफॉर्म पर कक्षा 1 से 12 तक की सभी ई-पाठ्यपुस्तकें (e-Teñtbooks) और शिक्षण सामग्री नि:शुल्क उपलब्ध हैं।
- ICT लैब्स: बिहार सरकार द्वारा राज्य के हजारों स्कूलों में आधुनिक ICT लैब्स और स्मार्ट क्लासरूम विकसित किए जा रहे हैं, ताकि छात्रों को डिजिटल और तकनीकी वातावरण में सीखने का अवसर मिले।

2. उच्च शिक्षा और दूरस्थ विश्वविद्यालय (ODL):

पारंपरिक विश्वविद्यालयों के अलावा, दूरस्थ शिक्षा बिहार के कामकाजी युवाओं और उच्च शिक्षा से वंचित रह गए लोगों के लिए एक वरदान साबित हो रही है।

- नालंदा खुला विश्वविद्यालय (NOU): पटना स्थित यह विश्वविद्यालय राज्य में मुक्त और दूरस्थ शिक्षा का प्रमुख केंद्र है, जो विभिन्न स्नातक, स्नातकोत्तर और डिप्लोमा पाठ्यक्रम प्रदान करता है।
- इग्नू (IGNOU): इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के क्षेत्रीय केंद्र (पटना और दरभंगा) बिहार के छात्रों को अपने घर बैठे उच्च गुणवत्ता वाली उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा प्राप्त करने में मदद कर रहे हैं।

3. कौशल विकास और डिजिटल साक्षरता:

सूचना क्रांति के युग में शिक्षा केवल किताबी ज्ञान तक सीमित नहीं है। बिहार सरकार द्वारा युवाओं को तकनीकी रूप से कुशल बनाने के लिए विभिन्न योजनाओं का संचालन किया जा रहा है, जिससे उन्हें रोजगार के बेहतर अवसर मिल सकें।[7]

चुनौतियाँ (Challenges)

सूचना क्रांति के बावजूद, बिहार के संदर्भ में अभी भी कुछ बाधाएँ मौजूद हैं:[8]

- डिजिटल डिवाइड (Digital Divide): राज्य के ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी और स्मार्टफोन/कंप्यूटर जैसे स्मार्ट उपकरणों की अनुपलब्धता एक बड़ी समस्या है।
- बुनियादी ढाँचा: सुदूर और बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में निर्बाध विद्युत आपूर्ति और मजबूत डिजिटल इंफ्रास्ट्रक्चर का अभाव दूरस्थ शिक्षा की राह में बाधा बनता है।

भविष्य की संभावनाएँ

बिहार में डिजिटल शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल है। जैसे-जैसे बिहार में इंटरनेट की पहुँच बढ़ेगी और ब्रॉडबैंड सेवाओं का विस्तार होगा, दूरस्थ शिक्षा राज्य में एक क्रांतिकारी बदलाव लाएगी। यह शिक्षा के लोकतिकीकरण (Democratization of Education) में मील का पत्थर साबित हो रही है, जिससे ज्ञान की खोज में बिहार का कोई भी योग्य शिक्षार्थी पीछे न छूटे।

सूचना प्रौद्योगिकी के साथ-साथ व्यवसायिक शिक्षा का दूरस्थ शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान रहेगा तथा नए-नए व्यवसाय एवं व्यवसाय से जुडे शिक्षार्थी प्रशिक्षण को दूरस्थ शिक्षा में शामिल किया जाएगा।[9]

निष्कर्ष

दूरस्थ शिक्षा (Distance education), शिक्षा की वह प्रणाली है जिसमें शिक्षक तथा विद्यार्थी को स्थान-विशेष अथवा समय-विशेष पर मौजूद होने की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रणाली, अध्यापन तथा शिक्षण के तौर-तरीकों तथा समय-निर्धारण के साथ-साथ गुणवत्ता संबंधी अपेक्षाओं से समझौता किए बिना प्रवेश मानदंडों के संबंध में भी उदार है।

भारत की मुक्त तथा दूरस्थ शिक्षा प्रणाली में राज्यों के मुक्त विश्वविद्यालय, शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाएं तथा विश्वविद्यालय शामिल है तथा इसमें दोहरी पद्धति के परंपरागत विश्वविद्यालयों के पत्राचार पाठयक्रम संस्थान भी शामिल हैं। यह प्रणाली, सतत शिक्षा, सेवारत कार्मिकों के क्षमता-उन्नयन तथा शैक्षिक रूप से वंचित क्षेत्रों में रहने वाले शिक्षुओं के लिए गुणवत्तामूलक व तर्कसंगत शिक्षा के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

सूचना क्रांति दूरस्थ शिक्षा के लिए एक वरदान साबित हुई है। यह एक सशक्त माध्यम है जो यह सुनिश्चित कर रहा है कि ज्ञान की खोज में कोई भी योग्य शिक्षार्थी पीछे न छूट जाए। भारत सरकार भी 'डिजिटल इंडिया' और स्वयं (SWAYAM) जैसे प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से इस दिशा में लगातार प्रयास कर रही है।

उच्च शिक्षा में ई-लर्निंग से जुड़े कई महत्वपूर्ण मुद्दे हैं जिनका समाधान ई-लर्निंग के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक है। इनमें शामिल हैं: शैक्षिक अवसरों तक पहुंच बढ़ाना; सीखने की गुणवत्ता में सुधार करना; और उच्च शिक्षा की लागत को कम करना।

सन्दर्भ

1. पी.डी.पाठक: भारतीय बिक्षा और उसकी समस्यायें, पृष्ठ- 14-16
2. रामनरेश त्यागी: भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं।
3. मिश्रा, पी. एंड कोहलर, एम.जे. (2006). तकनीकी शैक्षणिक ज्ञान सामग्री: शिक्षक ज्ञान में एकीकरण प्रौद्योगिकी के लिए एक रूपरेखा. शिक्षकों के कॉलेज रिकॉर्ड, 108(6), 1017-1054.
4. मोनाहन, टोरिन (2005). वैश्वीकरण, तकनीकी परिवर्तन और सार्वजनिक अध्ययन. न्यूयॉर्क रूटलेज: ISBN 0-415-95103-8.
5. शेरेर, एम.जे. (2004). अध्ययन के लिए संयोजक: विकलांग लोगों के लिए शैक्षिक और सहायक प्रौद्योगिकी. वॉशिगंटन, डीसी: अमेरिकन साइकोलॉजिकल एसोशिएशन पुस्तकें (एपीए (APA)): ISBN 1-55798-982-6.
6. शुर्विले, एस., ब्राउन, एच. और व्हिटेकर, एम. (2008). "अध्ययन प्रौद्योगिकिविदों को नियोजित करना: सबूत बदलाव के लिए एक कॉल". इन हेलो
7. कर्शनर, पी. ए. स्वेलर, जे. और क्लार्क, आर. ई. (2006) अनुदेशन के दौरान न्यूनतम मार्गदर्शन क्यों काम नहीं करता है: रचनावादी, खोज, समस्या-आधारित, अनुभवात्मक और पूछताछ के आधार पर शिक्षण की विफलता का विश्लेषण. शैक्षिक मनोवैज्ञानिक 41 (2) 75-86
8. Greg Kearsley, Michael G. Moore (1996)L Distance Education: a systems view, second edition, wadsworth Pub. Co.
9. Sharma, Dinesh C. (2006). Management of Distance Education, First Editional, New Delhi: Anmol Publisher.

उच्च शिक्षा में छात्राओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं मनोवैज्ञानिक चुनौतियों और समाधान का समाजशास्त्रीय अध्ययन (कौशाम्बी जिले के सन्दर्भ में)

डॉ० सन्तेश्वर कुमार मिश्र

शोध निर्देशक, सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

क्रीती सिंह

शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

उच्च शिक्षा मानव विकास का आवश्यक हिस्सा है, पर कौशाम्बी जैसे जिलों में लड़कियाँ कई चुनौतियों का सामना करती हैं। पितृसत्तात्मक संरचना और लैंगिक रूढ़िवादिता उन्हें शादी और घर संभालने के लिए प्रेरित करती हैं, जिससे उच्च शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। परिवारों को डर होता है कि कॉलेज भेजने से विवाह में देर होगी या आर्थिक स्थिति खराब होगी। सुरक्षा समस्याएँ भी अहम हैं; दूरदराज के इलाकों में यात्रा करना असुरक्षित लगता है। पारंपरिक विवाह प्रथाएँ भी कम उम्र में शादी को मजबूर करती हैं। अर्ध-शिक्षित माताएँ बेटियों को शिक्षा से वंचित रखती हैं। इन चुनौतियों के बावजूद शिक्षा से समाज के विकास की संभावनाएँ बढ़ती हैं।

मुख्य शब्द: उच्च शिक्षा, पितृसत्तात्मक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, मानसिक स्वास्थ्य, व्यावहारिक कौशल।

प्रस्तावना

उच्च शिक्षा मानव विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू है, विशेषकर कौशाम्बी जैसे ग्रामीण जिलों में छात्राओं के लिए, जहाँ उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सामाजिक बाधाएँ, जैसे कि पितृसत्तात्मक संरचना और लैंगिक रूढ़िवादिता, उन्हें उच्च शिक्षा की अपेक्षा विवाह और घर संभालने में प्राथमिकता देने के लिए प्रेरित करती हैं। अभिभावक चिंतित रहते हैं कि लड़कियों को कॉलेज भेजने से विवाह में देरी हो सकती है या यह आर्थिक रूप से व्यावहारिक नहीं होगा, जिससे परिवार का सामाजिक दबाव भी शिक्षा के निर्णयों में बाधा डालता है।[1]

सुरक्षा की चिंता महत्वपूर्ण है, खासकर दूरदराज के क्षेत्रों में रहते हुए छात्राओं को कॉलेज जाने में असुरक्षा महसूस करनी पड़ती है। सार्वजनिक परिवहन में उत्पीड़न की संभावना से डरकर कई परिवार लड़कियों को घर से बाहर नहीं भेजते। पारंपरिक विवाह प्रथाएँ भी एक बाधा हैं, क्योंकि कम उम्र में विवाह लड़कियों को अपने शैक्षणिक लक्ष्यों से दूर कर देती है। विवाह के बाद नए पारिवारिक दायित्वों के चलते पढ़ाई पूरी करना मुश्किल हो जाता है।[2]

रूढ़िवादी सांस्कृतिक मान्यताएँ भी चुनौती पेश करती हैं। छात्राओं को विवाह के बाद अध्ययन की स्वतंत्रता नहीं दी जाती या उन्हें ऐसे विषयों से रोका जाता है जो ष्महिलाओं के लिए उपयुक्तष् नहीं माने जाते। इससे दूर रहने वाला समुदाय भी छात्राओं की शिक्षा में रुकावट डालता है। यदि उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या कम है, तो अन्य लड़कियाँ भी उस दिशा में बढ़ने से हिचकिचाती हैं। इन बाधाओं को दूर कर छात्राओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने में सहायता करना समग्र समाज के विकास के लिए आवश्यक है।[3]

आर्थिक चुनौतियाँ

कौशाम्बी जिले में छात्राओं के लिए उच्च शिक्षा में आर्थिक असमानता और गरीबी एक महत्वपूर्ण बाधा है। निम्न आय वर्ग के कई परिवारों के लिए बेटियों की शिक्षा का खर्च, जिसमें फीस, किताबें, वर्दी और परिवहन शामिल हैं, एक भारी बोझ बन जाता है। ऐसे में, परिवार अक्सर लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं।

छात्रवृत्तियों और वित्तीय सहायता की कमी भी समस्या को बढ़ाती है। जबकि सरकारें और संस्थाएं छात्राओं को प्रेरित करने के लिए सहायता प्रदान करती हैं, कौशाम्बी जैसे जिलों में इन योजनाओं की जागरूकता, आवेदन प्रक्रिया की जटिलता, और सीमित सीटों के कारण जरूरतमंद छात्राओं तक लाभ नहीं पहुंच

पाता। आर्थिक जिम्मेदारियों में योगदान देने के दबाव के कारण कई लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती हैं और परिवार के लिए आय अर्जित करने के लिए काम करने लगती हैं।

अच्छी गुणवत्ता वाली पुस्तकें, कंप्यूटर, इंटरनेट कनेक्शन और अध्ययन का शांत वातावरण जैसी आवश्यकताओं का अभाव भी आर्थिक बाधाओं का नतीजा है। गरीब परिवारों की छात्राएँ अक्सर इन सुविधाओं से वंचित रहती हैं, जिससे उनकी शैक्षणिक प्रदर्शन प्रभावित होता है।

कौशाम्बी जिले के गरीब और कृषि प्रधान परिवारों को उच्च शिक्षा के लिए जरूरी खर्च, जैसे प्रवेश शुल्क, ट्यूशन फीस, और अन्य दैनिक खर्च, एक भारी बोझ के रूप में दिखाई देता है। सीमित संसाधनों के चलते लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है और लड़कियों की शिक्षा को 'अतिरिक्त' व्यय माना जाता है।[4]

अपर्याप्त जानकारी या वित्तीय सहायता योजनाओं तक पहुँच न होना एक अन्य आर्थिक चुनौती है। कई योग्य छात्राएँ जो वित्तीय कठिनाइयों से गुजर रही हैं, छात्रवृत्तियों के बारे में जानकारी नहीं रख पातीं या आवेदन प्रक्रिया को जटिल समझती हैं। इसके अलावा, जागरूकता की कमी भी एक समस्या है, परिवार शिक्षा को एक अल्पकालिक व्यय मानते हैं और इसके दीर्घकालिक लाभ की अनदेखी करते हैं। इस आर्थिक बाधा को समाप्त करने के लिए सरकार और छळठे को बेहतर और सुलभ वित्तीय सहायता योजनाएँ विकसित करनी होंगी और उनका प्रचार बढ़ाना होगा।

शैक्षणिक चुनौतियाँ

कौशाम्बी जैसे जिलों में छात्राएँ उच्च शिक्षा के दौरान कई शैक्षणिक चुनौतियों का सामना करती हैं, जो प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता से संबंधित हैं। इन क्षेत्रों में स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता राष्ट्रीय औसत से कम होती है। योग्य शिक्षकों की कमी, शिक्षण सामग्री का अभाव, और पुरानी शिक्षण पद्धतियाँ छात्राओं की नींव को कमजोर बना देती हैं। जब वे उच्च शिक्षा में आती हैं, तो अक्सर उन्हें आवश्यक मूलभूत ज्ञान और कौशल की कमी का सामना करना पड़ता है।

पाठ्यक्रम का अव्यवहारिक होना या स्थानीय संदर्भों से जुड़ाव की कमी भी समस्याएं उत्पन्न करती हैं। छात्राएँ ऐसे पाठ्यक्रमों में रुचि रखती हैं जो उन्हें रोजगार के अवसर प्रदान करें। पारंपरिक शिक्षण विधियाँ, जो सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित नहीं करतीं, सीखने को उबाऊ बना सकती हैं। छात्राएँ ऐसे वातावरण में बेहतर प्रदर्शन करती हैं जहाँ उन्हें प्रश्न पूछने और चर्चाओं में भाग लेने का मौका मिलता है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव, जैसे पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ, छात्राओं की शैक्षणिक प्रगति में बाधा डाल सकता है। संसाधनों की कमी उन्हें राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने में कठिनाई देती है। इसके अलावा, शिक्षा में गुणवत्ता की कमी, योग्य शिक्षकों की व्यवस्था, और पुराने शिक्षण तरीकों के चलते छात्राएँ कॉलेज या विश्वविद्यालय में विषयों को समझने में असमर्थ होती हैं, जिससे उनका आत्मविश्वास कम होता है।

पाठ्यक्रम की औद्योगिक आवश्यकताओं से तालमेल न बिठाने की समस्या भी निरंतर बनी रहती है। कई पाठ्यक्रम सैद्धांतिक रूप से मजबूत होते हैं परंतु व्यावहारिक कौशल पर ध्यान नहीं दिया जाता, जिसके परिणामस्वरूप छात्राएँ डिग्री प्राप्त करने के बाद भी रोजगार के योग्य नहीं हो पातीं। संस्थानों में आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी सुविधाओं की कमी भी सीखने की प्रक्रिया को बाधित करती है।

अंततः, कौशाम्बी जैसे क्षेत्रों में छात्राओं के लिए अनुकूल वातावरण का अभाव भी महत्वपूर्ण चुनौती है, जिससे वे अध्ययन में अरुचि महसूस करती हैं। व्यावसायिक प्रशिक्षण और कैरियर परामर्श सेवाओं की कमी के कारण, वे अपना भविष्य सुनिश्चित करने में भी समस्याओं का सामना करती हैं, अक्सर अप्रत्याशित सलाह पर निर्भर रहती हैं।

मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ

छात्राओं को उच्च शिक्षा के दौरान कई मनोवैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जो उनके आत्म-सम्मान, आत्मविश्वास और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। सामाजिक दबाव, परिवार और साथियों की अपेक्षाएँ, शिक्षा छोड़ने का दबाव, और आत्म-संदेह जैसी समस्याएँ आम हैं। लैंगिक रूढ़िवादिता के चलते कई छात्राएँ स्वयं को पुरुषों की तुलना में कम योग्य मानती हैं, जिससे उनकी भागीदारी और प्रश्न पूछने में अड़चन आती है।

भेदभाव, उपहास और यौन उत्पीड़न का सामना करने पर उनका आत्मविश्वास टूट जाता है और वे असुरक्षित महसूस करने लगती हैं। ऐसे अनुभव अवसाद, चिंता और सामाजिक अलगाव को जन्म दे सकते हैं। परीक्षा के तनाव और भविष्य की अनिश्चितताओं का दबाव भी छात्राओं को मानसिक रूप से प्रभावित करता है। उन्हें न केवल शैक्षणिक सफलता का बोझ उठाना होता है, बल्कि सामाजिक अपेक्षाएँ और परिवार की उम्मीदों को भी पूरा करना पड़ता है।

घर और कॉलेज के बीच संतुलन बनाना भी मानसिक तनाव का कारण बन सकता है, क्योंकि छात्राओं को घर की जिम्मेदारियों के साथ अपनी पढ़ाई पर ध्यान केंद्रित करना होता है। इससे उन्हें व्यक्तिगत समय की कमी होती है, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है।

छात्राओं का आत्म-संदेह, भेदभाव, और सामाजिक अपेक्षाएँ उनके आत्मविश्वास को कमजोर कर देती हैं। अतीत के नकारात्मक शैक्षणिक अनुभव जैसे खराब परिणाम या शिक्षकों की उपेक्षा भी मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा एसर डालते हैं। नए माहौल में ढलने में कठिनाई, अकेलापन और घर की याद भी उनकी मानसिक स्थिति को प्रभावित करती हैं।

परीक्षा का दबाव, आर्थिक निर्भरता और भविष्य की अनिश्चितता चिंता और तनाव का स्रोत बनते हैं। कैरियर की अनिश्चितता और नौकरी छोड़ने का दबाव भी मानसिक स्वास्थ्य पर असर डालता है। कई संस्थानों में छात्राओं के लिए मानसिक स्वास्थ्य सहायता का अभाव उन्हें और भी अकेला महसूस कराता है, जिससे उनकी हताशा बढ़ जाती है।

पितृसत्तात्मक समाज में 'अच्छा आचरण' का दबाव छात्राओं को अपनी इच्छाओं को दबाने पर मजबूर करता है, जिससे उनकी व्यक्तित्व विकास में बाधा आती है और कुंठा बढ़ती है। इन चुनौतियों के बीच, छात्राओं के मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए।[5]

समाधान के समाजशास्त्रीय उपाय

कौशाम्बी जिले में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही छात्राओं को सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिससे निपटने के लिए बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। सामाजिक चुनौतियों में, लैंगिक रूढ़िवादिता को तोड़ने के लिए जागरूकता अभियान चलाने की आवश्यकता है। इसमें सामुदायिक नेताओं, धार्मिक गुरुओं, और प्रभावशाली व्यक्तियों को शामिल कर लड़कियों की शिक्षा के महत्व को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में लैंगिक संवेदीकरण कार्यक्रम आयोजित करके छात्रों और शिक्षकों को लैंगिक समानता का महत्व समझाना होगा। छात्राओं की सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सुरक्षित परिवहन, कॉलेज परिसरों में बेहतर सुरक्षा और हेल्पलाइन जैसी सेवाओं की स्थापना जरूरी है।

आर्थिक मोर्चे पर, सरकार को छात्रवृत्ति और वित्तीय सहायता योजनाओं को अधिक सुलभ बनाना होगा। आवेदन प्रक्रिया को सरल करने और जागरूकता बढ़ाने की जरूरत है, ताकि अधिक छात्राएँ इनका लाभ उठा सकें। स्थानीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम चालू किए जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनाने के लिए अंशकालिक अध्ययन और वित्तीय साक्षरता कार्यक्रम मदद कर सकते हैं।[6]

शैक्षणिक सुधारों की दिशा में, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार पर ध्यान केंद्रित करना जरूरी है। योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, आधुनिक शिक्षण सामग्री का उपयोग और व्यक्तिगत सहायता प्रणाली को मजबूत करना आवश्यक है। उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रम को अधिक प्रासंगिक और स्थानीय संदर्भों के अनुरूप बनाना चाहिए। प्रौद्योगिकी-आधारित संसाधनों का समावेश जरूरी है। शिक्षकों को छात्र-केंद्रित शिक्षण विधियों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

मनोवैज्ञानिक चुनौतियों के समाधान के लिए, समर्पित परामर्श सेवाएँ आवश्यक हैं। प्रशिक्षित परामर्शदाता छात्राओं को तनाव और आत्म-संदेह जैसी परेशानियों का सामना करने में मदद कर सकते हैं। सहायक और समावेशी वातावरण का निर्माण कर छात्राओं का आत्मविश्वास बढ़ाया जा सकता है। सहकर्मी सहायता समूह और मेंटरशिप कार्यक्रम भी प्रभावी हो सकते हैं।

समुदाय की सक्रिय भागीदारी, अभिभावकों को शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूक करना और सरकारी नीतियों का प्रभावी कार्यान्वयन जरूरी है। शिक्षा से संबंधित सभी कानूनों और नीतियों में लैंगिक समानता को सुनिश्चित करना और ग्रामीण छात्राओं को विशेष प्रोत्साहन देने वाली लक्षित नीतियाँ बनाना आवश्यक है। इन सभी उपायों के समुचित कार्यान्वयन से कौशाम्बी में छात्राओं की चुनौतियों का समाधान संभव है।

निष्कर्ष-

कौशाम्बी जिले में उच्च शिक्षा में छात्राओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक चुनौतियाँ जटिल हैं। पितृसत्तात्मक संरचनाएँ, आर्थिक समस्याएँ, शिक्षा की गुणवत्ता और मनोवैज्ञानिक दबाव, छात्राओं की उच्च शिक्षा में बाधक बनते हैं। इन चुनौतियों से सम्मानित मार्ग की आवश्यकता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, जागरूकता, आर्थिक सहायता, शैक्षणिक सुधार और मनोवैज्ञानिक समर्थन मिलकर परिणामकारक उपाय कर सकते हैं। आवश्यक है कि छात्राओं के लिए सुरक्षित वातावरण तैयार किया जाए ताकि वे बिना रुकावट के शिक्षा प्राप्त कर सकें। कौशाम्बी जैसे जिलों में लड़कियों की शिक्षा को सामाजिक आवश्यकता और राष्ट्रीय प्राथमिकता समझा जाना चाहिए।

फलस्वरूप, जब महिलाएँ शिक्षा और सशक्तिकरण के जरिए अपनी क्षमता का उपयोग करती हैं, तभी एक समृद्ध और न्यायपूर्ण राष्ट्र का निर्माण संभव है। कई छात्राएँ, बावजूद चुनौतियों के, उत्कृष्टता को प्राप्त करती हैं, जो प्रेरणादायक है।

सरकारी योजनाओं के साथ-साथ समाज के सभी वर्गों, जैसे परिवार, समुदाय, शिक्षक और नीति प्रवर्धक के सामूहिक प्रयास आवश्यक हैं। लिंग समानता, आर्थिक सहायता, शिक्षा की गुणवत्ता और मनोवैज्ञानिक समर्थन के लिए समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक है। जब छात्राओं को समान शिक्षात्मक अवसर मिलते हैं, तो उनके द्वारा परिवार, समुदाय और राष्ट्र की प्रगति में योगदान दिया जाता है। कौशाम्बी में छात्राओं के सशक्तिकरण में निवेश एक न्यायसंगत और समृद्ध भविष्य के निर्माण को प्रोत्साहित करेगा। यह अध्ययन समाधान की आवश्यकता और दिशा को रेखांकित करता है।

संदर्भ

1. Kumar, S., & Singh, R. (2018). Challenges to Higher Education for Girls in Rural India: A Sociological Study. Journal of Education and Social Development, 5(2), 45-58.
2. Kumar, S., & Singh, S. (2019). Socio-economic barriers to higher education for girls in rural India. Journal of Rural Development, 38(4), 537-552.
3. Verma, P. (2015). The role of socio-cultural factors in girls' higher education access in North India. Asian Journal of Women's Studies, 21(3), 234-251.
4. Kumar, S., & Singh, S. (2019). Socio-economic barriers to higher education for girls in rural India. Journal of Rural Development, 38(4), 537-552.
5. Pandey, A. (2020). Psychological challenges of female students in higher education. Journal of Education and Practice, 11(20), 78-85.
6. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Human Resource Development.

"समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था का रूपांतरण: उभरती चुनौतियाँ एवं संभावनाओं का विश्लेषण"

डॉ० अजीत सिंह

राजनीति विज्ञान, डॉ० पी० द० ब० हि० रा० स्ना० महाविद्यालय, कोटद्वार (पौड़ी गढ़वाल), उत्तराखंड

शोध-सार

समकालीन वैश्विक एवं भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में लोकतांत्रिक व्यवस्था तीव्र वैचारिक, संस्थागत, तकनीकी तथा सामाजिक रूपांतरणों से गुजर रही है। लोकतंत्र, जो कभी नागरिक सहभागिता, सार्वजनिक विमर्श तथा प्रतिनिधिक राजनीतिक संरचनाओं पर आधारित शासन-पद्धति के रूप में स्थापित हुआ था, आज डिजिटल संप्रेषण, एल्गोरिद्मिक जनमत-निर्माण, मीडिया-संचालित राजनीतिक विमर्श, पहचान-आधारित लामबंदी, वैश्विक पूँजी तथा वैचारिक ध्रुवीकरण की जटिल प्रक्रियाओं से प्रभावित होकर नए स्वरूप में पुनर्गठित हो रहा है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था में घटित इन संरचनात्मक परिवर्तनों का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है, ताकि यह समझा जा सके कि आधुनिक लोकतंत्र किस प्रकार अपनी पारंपरिक उदार-प्रतिनिधिक संरचनाओं से आगे बढ़कर बहुस्तरीय राजनीतिक-संचारात्मक व्यवस्था में रूपांतरित हुआ है।

शब्द-कुंज: लोकतंत्र, लोकतांत्रिक रूपांतरण, डिजिटल राजनीति, जनमत-निर्माण, ध्रुवीकरण, लोकलुभावनवाद, सहभागी लोकतंत्र, मीडिया-राजनीति, नागरिक सक्रियता, प्रतिनिधिक राजनीति, सार्वजनिक विमर्श।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

लोकतंत्र की अवधारणा का विकास मानव सभ्यता के राजनीतिक इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक माना जाता है। प्राचीन यूनानी नगर-राज्यों में नागरिक सहभागिता पर आधारित शासन-व्यवस्था की जो प्रारंभिक संरचना विकसित हुई थी, वही आधुनिक लोकतंत्र के वैचारिक आधार का प्रारंभिक रूप मानी जाती है। अरस्तु ने मनुष्य को "राजनीतिक प्राणी" की संज्ञा देते हुए यह प्रतिपादित किया था कि, राज्य का वास्तविक उद्देश्य नागरिकों के नैतिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करना है। इसी आधार पर लोकतंत्र को ऐसी व्यवस्था के रूप में देखा गया जिसमें शासन की वैधता जनता की सहभागिता से निर्मित होती है।

आधुनिक युग में सामाजिक संविदा सिद्धांतकारों-विशेषत: जाँ-जाक रूसो-ने लोकतंत्र को जनसत्ता की अवधारणा से जोड़ते हुए यह प्रतिपादित किया कि राज्य की वास्तविक संप्रभुता जनता में निहित होती है। रूसो के अनुसार "सामान्य इच्छा" (General Will) लोकतांत्रिक वैधता का आधार है, क्योंकि वही नागरिकों की सामूहिक राजनीतिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है (The Social Contract, पृ. 54)। जे. एस. मिल ने लोकतंत्र को केवल शासन-पद्धति नहीं, बल्कि नागरिक बौद्धिकता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व के विकास का माध्यम माना (Of Nationality, पृ. 3)।

18वीं और 19वीं शताब्दी में फ्रांसीसी क्रांति, औद्योगिक क्रांति तथा आधुनिक राष्ट्र-राज्य के उदय ने लोकतंत्र को नई वैचारिक और संस्थागत दिशा प्रदान की। नागरिक अधिकार, समानता, प्रतिनिधिक शासन तथा संवैधानिकता आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के केंद्रीय तत्व बनकर उभरे। रॉबर्ट डाहल ने आधुनिक लोकतंत्र को "बहुलतावादी प्रतिस्पर्धा" की व्यवस्था बताते हुए यह स्पष्ट किया कि लोकतंत्र का वास्तविक आधार राजनीतिक सहभागिता और संस्थागत बहुलता है (Democracy and Its Critics, पृ. 221)।

भारतीय संदर्भ में लोकतांत्रिक चेतना का विकास औपनिवेशिक शासन, स्वतंत्रता आंदोलन और सामाजिक पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में हुआ। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, जनसक्रियता तथा नैतिक राजनीति के साथ जोड़ा। गांधी ने लोकतंत्र को ग्राम-आधारित जनशक्ति और नैतिक स्वशासन की व्यवस्था के रूप में देखा, जबकि डॉ. अम्बेडकर ने संवैधानिक लोकतंत्र को सामाजिक समानता और प्रतिनिधिक न्याय से जोड़ा।

21वीं शताब्दी में वैश्वीकरण, सूचना-प्रौद्योगिकी, डिजिटल संचार तथा मीडिया-राजनीति ने लोकतांत्रिक संरचनाओं को अभूतपूर्व रूप से प्रभावित किया है। समकालीन लोकतंत्र अब केवल संस्थागत शासन-व्यवस्था न रहकर संचार-आधारित शक्ति-संरचना में रूपांतरित हो चुका है, जहाँ जनमत, राजनीतिक पहचान और नागरिक सक्रियता का निर्माण डिजिटल माध्यमों, दृश्य अभियानों तथा एल्गोरिद्मिक नियंत्रणों के माध्यम से होने लगा है। यही परिवर्तन आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था के अध्ययन को अत्यंत महत्वपूर्ण बनाता है।

सैद्धांतिक धरातल

समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था के रूपांतरण को समझने के लिए विभिन्न राजनीतिक सिद्धांतों और वैचारिक प्रतिमानों पर सूक्ष्म दृष्टिपात आवश्यक है, क्योंकि आधुनिक लोकतंत्र केवल संवैधानिक संस्थाओं से संचालित नहीं होता, बल्कि वह मीडिया, संचार, पूँजी, तकनीक तथा पहचान-राजनीति की जटिल संरचनाओं से भी निर्मित होता है।

सहभागी लोकतंत्र के सिद्धिसद्धांतानुसार लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति नागरिकों की सक्रिय भागीदारी में निहित होती है। कैरोल पेटमैन के अनुसार लोकतंत्र तभी जीवंत रह सकता है जब नागरिक निर्णय-निर्माण की प्रक्रियाओं में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी हों। दूसरी ओर हैबरमास का "सार्वजनिक क्षेत्र" (Public Sphere) सिद्धांत लोकतंत्र को संवाद और तर्कपूर्ण विमर्श की प्रक्रिया के रूप में देखता है। हैबरमास के अनुसार लोकतंत्र की वैधता तभी संभव है जब नागरिकों को स्वतंत्र सार्वजनिक विमर्श का अवसर प्राप्त हो (The Structural Transformation of the Public Sphere, पृ. 89)।

समकालीन मीडिया-राजनीति के संदर्भ में नोम चॉम्स्की का "Manufacturing Consent" सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण है। चॉम्स्की के अनुसार आधुनिक मीडिया केवल सूचना का माध्यम नहीं, बल्कि सत्ता-संरचनाओं द्वारा जनमत-निर्माण का उपकरण बन चुका है (Manufacturing Consent, पृ. 18)। यह दृष्टिकोण समकालीन लोकतंत्र में मीडिया-नियंत्रण और राजनीतिक प्रचार की बढ़ती प्रवृत्तियों को समझने में सहायक है।

मैनुअल कैस्टेल्स ने "नेटवर्क समाज" की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि डिजिटल संचार संरचनाएँ आधुनिक सत्ता-संबंधों को पुनर्गठित कर रही हैं। डिजिटल राजनीति के संदर्भ में शोशाना जुबॉफ का "निगरानी पूँजीवाद" सिद्धांत विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिसके अनुसार डिजिटल प्लेटफॉर्म नागरिकों के व्यवहार, डेटा और राजनीतिक प्राथमिकताओं को नियंत्रित करने की क्षमता प्राप्त कर चुके हैं (The Age of Surveillance Capitalism, पृ. 94)।

भारतीय लोकतांत्रिक संदर्भ में रजनी कोठारी, पार्थ चटर्जी तथा योगेंद्र यादव जैसे विचारकों ने लोकतंत्र की भारतीय संरचनाओं का विश्लेषण करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति उसकी सामाजिक बहुलता, जातीय संरचनाओं तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व की जटिलताओं से निर्मित होती है।

शोध-अंतराल

लोकतंत्र पर उपलब्ध अधिकांश अध्ययन या तो संवैधानिक संस्थाओं और चुनावी प्रक्रियाओं के विश्लेषण तक सीमित रहे हैं अथवा लोकतांत्रिक सिद्धांतों की पारंपरिक व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। समकालीन राजनीतिक परिदृश्य में डिजिटल संचार, एल्गोरिद्मिक राजनीति, मीडिया-नियंत्रण, लोकलुभावनवाद, निगरानी पूँजीवाद तथा वैचारिक ध्रुवीकरण के कारण लोकतंत्र की जो नई संरचनाएँ विकसित हुई हैं, उनका समेकित अध्ययन अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देता है।

विशेष रूप से भारतीय लोकतंत्र के संदर्भ में लोकतांत्रिक रूपांतरण को सामाजिक प्रतिनिधित्व, डिजिटल राजनीति, राजनीतिक केंद्रीकरण तथा नागरिक सक्रियता के अंतर्संबंधों के भीतर समझने का प्रयास अभी भी पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हुआ है। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी अंतराल की पूर्ति करते हुए समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था के संकटों और संभावनाओं का बहुआयामी विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य धरातल

1. लोकतांत्रिक व्यवस्था का संरचनात्मक रूपांतरण

समकालीन लोकतंत्र अपनी पारंपरिक उदार-प्रतिनिधिक संरचनाओं से आगे बढ़कर जटिल संचार-आधारित सत्ता-व्यवस्था में रूपांतरित हो चुका है। पूर्ववर्ती लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में राजनीतिक भागीदारी मुख्यतः चुनाव, राजनीतिक दलों तथा सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से संचालित होती थी, किंतु वर्तमान समय में लोकतंत्र का चरित्र डिजिटल नेटवर्कों, मीडिया अभियानों तथा तात्कालिक जनमत-निर्माण की प्रक्रियाओं से गहराई से प्रभावित हो रहा है।

रॉबर्ट डाहल ने लोकतंत्र को बहुलतावादी प्रतिस्पर्धा की प्रणाली कहा था, किंतु समकालीन परिस्थितियों में लोकतांत्रिक बहुलता अनेक बार वैचारिक ध्रुवीकरण और राजनीतिक ब्रांडिंग में रूपांतरित होती दिखाई देती है। चुनावी राजनीति अब केवल नीतिगत विमर्श का क्षेत्र नहीं रही, बल्कि दृश्य-राजनीति, डेटा-विश्लेषण तथा मनोवैज्ञानिक संप्रेषण की रणनीतियों से संचालित होने लगी है।

2. मीडिया-राजनीति और जनमत-निर्माण की नई संरचनाएँ

समकालीन लोकतंत्र में मीडिया जनमत-निर्माण की केंद्रीय शक्ति बन चुका है। प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया तथा सोशल मीडिया केवल सूचना-संचार के माध्यम नहीं रहे, बल्कि वे राजनीतिक वास्तविकताओं के निर्माण और वैचारिक धारणाओं के पुनर्संयोजन में सक्रिय भूमिका निभाने लगे हैं।

नोम चॉम्स्की के अनुसार आधुनिक मीडिया "सहमति निर्माण" की ऐसी संरचना बन चुका है, जिसके माध्यम से सत्ता-संबंधों को वैधता प्रदान की जाती है (Manufacturing Consent, पृ. 18-21)। उत्तर-सत्य राजनीति (Post-Truth Politics) के युग में तथ्यात्मक विमर्श की अपेक्षा भावनात्मक संप्रेषण और सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रभाव अधिक दिखाई देता है।

समकालीन राजनीतिक अभियानों में डेटा-विश्लेषण, ट्रेंड-निर्माण, एल्गोरिद्मिक प्राथमिकता तथा दृश्य अभियानों का उपयोग लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को प्रभावित कर रहा है। इससे लोकतंत्र अधिक संप्रेषणीय अवश्य हुआ है, किंतु जनमत की स्वायत्तता पर गंभीर प्रश्न भी उत्पन्न हुए हैं।

3. राजनीतिक दलों का वैचारिक एवं संगठनात्मक संक्रमण

आधुनिक लोकतंत्र में राजनीतिक दल नागरिकों और राज्य के मध्य सेतु का कार्य करते हैं, किंतु समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों में दलगत संरचनाओं में व्यापक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। वैचारिक राजनीति का स्थान धीरे-धीरे व्यक्तित्व-केंद्रित राजनीति, चुनावी ब्रांडिंग तथा संसाधन-आधारित राजनीतिक अभियानों ने ग्रहण कर लिया है।

रजनी कोठारी ने भारतीय राजनीति में दलगत संरचना को सामाजिक प्रतिनिधित्व की केंद्रीय प्रणाली माना था, किंतु वर्तमान समय में राजनीतिक दलों में केंद्रीकरण और नेतृत्व-प्रधान प्रवृत्तियाँ अधिक स्पष्ट दिखाई देती हैं (Politics in India, पृ. 67)। निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया सीमित नेतृत्व समूहों तक केंद्रित होती जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप आंतरिक लोकतंत्र कमजोर पड़ रहा है।

इसके अतिरिक्त चुनावी राजनीति में कॉर्पोरेट संसाधनों और डिजिटल प्रचार की बढ़ती भूमिका ने लोकतांत्रिक प्रतिस्पर्धा को असमान बनाया है।

4. लोकलुभावनवाद, राष्ट्रवाद और वैचारिक ध्रुवीकरण

समकालीन लोकतंत्र का एक महत्वपूर्ण आयाम लोकलुभावन राजनीति और वैचारिक ध्रुवीकरण का तीव्र विस्तार है। लोकलुभावनवाद सामान्यतः स्वयं को "जनता की वास्तविक आवाज" के रूप में प्रस्तुत करता है और राजनीतिक अभिजनवाद के विरुद्ध जनभावनाओं को संगठित करता है। किंतु अनेक बार यही प्रवृत्ति लोकतांत्रिक संस्थाओं और संवादपरक राजनीति को चुनौती देने लगती है।

यूरोप, अमेरिका तथा भारत सहित अनेक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में राष्ट्रवाद और पहचान-आधारित राजनीति ने चुनावी लामबंदी को नई दिशा प्रदान की है। पार्थ चटर्जी के अनुसार आधुनिक राष्ट्रवादी राजनीति अनेक बार सांस्कृतिक पहचान और राजनीतिक शक्ति के अंतर्संबंधों के माध्यम से स्वयं को पुनर्गठित करती है (The Nation and Its Fragments, पृ. 112)।

वैचारिक ध्रुवीकरण लोकतांत्रिक बहस को संवाद से संघर्ष की ओर स्थानांतरित करता है। सोशल मीडिया की एल्गोरिद्मिक संरचनाएँ इस ध्रुवीकरण को और अधिक तीव्र बनाती हैं, क्योंकि नागरिक प्रायः उन्हीं वैचारिक समूहों तक सीमित हो जाते हैं जो उनकी पूर्वनिर्धारित धारणाओं की पुष्टि करते हैं।

5. डिजिटल नागरिकता और आभासी जनसक्रियता

21वीं शताब्दी में डिजिटल राजनीति ने नागरिक सहभागिता की प्रकृति को मूलभूत रूप से परिवर्तित किया है। सोशल मीडिया मंचों ने नागरिकों को त्वरित राजनीतिक अभिव्यक्ति और लामबंदी का अवसर प्रदान किया है। अरब स्प्रिंग, किसान आंदोलन, पर्यावरण आंदोलनों तथा युवा अभियानों में डिजिटल मंचों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

मैनुअल कैस्टेल्स के अनुसार नेटवर्क आधारित समाज में सत्ता और प्रतिरोध दोनों संचार नेटवर्कों के माध्यम से संचालित होते हैं (The Rise of the Network Society, पृ. 32)। डिजिटल सक्रियता ने लोकतंत्र को अधिक सहभागी बनाया है, किंतु इसके साथ ही आभासी सक्रियता अनेक बार प्रतीकात्मक राजनीति तक सीमित रह जाती है।

शोशाना जुबॉफ का "निगरानी पूँजीवाद" सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म केवल संवाद के माध्यम नहीं हैं, बल्कि वे नागरिक व्यवहार और राजनीतिक प्राथमिकताओं का डेटा-संचालित नियंत्रण भी करते हैं। इससे लोकतांत्रिक स्वतंत्रता और निजता के प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो उठते हैं।

6. लोकतंत्र, पूँजी और कॉर्पोरेट प्रभाव

समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में वैश्विक पूँजी और कॉर्पोरेट संरचनाओं का प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। चुनावी वित्त, मीडिया स्वामित्व, कॉर्पोरेट लॉबिंग तथा नीति-निर्माण में आर्थिक शक्तियों की भूमिका लोकतंत्र की स्वायत्तता को प्रभावित कर रही है।

कोलिन क्राउच ने "उत्तर-लोकतंत्र" (Post-Democracy) की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया कि आधुनिक लोकतंत्र औपचारिक रूप से सक्रिय दिखाई देते हैं, किंतु वास्तविक नीतिगत नियंत्रण सीमित आर्थिक और राजनीतिक अभिजन समूहों के हाथों में केंद्रित होता जा रहा है (Post-Democracy, पृ. 4-7)।

नवउदारवादी आर्थिक संरचनाओं ने लोकतंत्र को बाजार-आधारित राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में परिवर्तित कर दिया है, जहाँ नागरिक अनेक बार उपभोक्ता-सदृश राजनीतिक इकाई में रूपांतरित होते दिखाई देते हैं। यह प्रवृत्ति लोकतांत्रिक समानता और सार्वजनिक उत्तरदायित्व के सिद्धांतों के समक्ष गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है।

7. भारतीय लोकतंत्र का समकालीन रूपांतरण

भारतीय लोकतंत्र विश्व की सबसे व्यापक लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में से एक है, किंतु समकालीन भारतीय राजनीति भी तीव्र संरचनात्मक परिवर्तनों से गुजर रही है। गठबंधन राजनीति से केंद्रीकृत राजनीतिक संरचनाओं की ओर संक्रमण, राष्ट्रीय बनाम क्षेत्रीय दलों की प्रतिस्पर्धा, डिजिटल चुनावी अभियानों का विस्तार तथा पहचान-आधारित लामबंदी भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति को पुनर्गठित कर रहे हैं।

योगेंद्र यादव के अनुसार भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी शक्ति उसका सामाजिक प्रतिनिधित्व है, क्योंकि लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने हाशिए के समुदायों को राजनीतिक भागीदारी का अवसर प्रदान किया है (Making Sense of Indian Democracy, पृ. 143)। किंतु दूसरी ओर राजनीतिक केंद्रीकरण, वैचारिक ध्रुवीकरण तथा संस्थागत तनाव लोकतंत्र के संवादात्मक स्वरूप को प्रभावित कर रहे हैं।

भारतीय लोकतंत्र की विशिष्टता उसकी बहुलतावादी सामाजिक संरचना में निहित है। यही विविधता किसी भी स्थायी वैचारिक प्रभुत्व को सीमित करती है और लोकतंत्र को निरंतर पुनर्संतुलन की प्रक्रिया में बनाए रखती है।

लोकतांत्रिक चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ

समकालीन लोकतंत्र अनेक गंभीर चुनौतियों से घिरा हुआ है, जिनमें राजनीतिक ध्रुवीकरण, मीडिया-नियंत्रण, लोकतांत्रिक संस्थाओं का क्षरण, निगरानी-आधारित तकनीकी संरचनाएँ, भावनात्मक राष्ट्रवाद तथा नागरिक निष्क्रियता प्रमुख हैं। लोकतांत्रिक प्रक्रियाएँ जितनी अधिक दृश्यात्मक और तात्कालिक हुई हैं, उतना ही सार्वजनिक विमर्श का स्तर भावनात्मक और प्रतिक्रियात्मक होता गया है।

हन्ना अरेन्ट ने चेतावनी दी थी कि जब राजनीतिक समाज संवाद और विवेक के स्थान पर भावनात्मक सामूहिकता पर आधारित होने लगता है, तब लोकतंत्र की संस्थागत स्थिरता संकट में पड़ जाती है (The Origins of Totalitarianism, पृ. 317)। इसी प्रकार शेल्डन वोलिन ने आधुनिक लोकतंत्रों में "Inverted

Totalitarianism" की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए यह संकेत किया कि लोकतांत्रिक संस्थाएँ औपचारिक रूप से विद्यमान रहते हुए भी सत्ता-संरचनाएँ अत्यधिक केंद्रीकृत हो सकती हैं (Democracy Incorporated, पृ. 42)।

इसके बावजूद समकालीन लोकतंत्र में संभावनाओं का क्षेत्र समाप्त नहीं हुआ है। डिजिटल नागरिकता, विकेंद्रीकृत शासन, सहभागी नीति-निर्माण, युवा राजनीतिक चेतना तथा संवैधानिक नैतिकता लोकतंत्र के पुनरुत्थान की संभावनाएँ प्रस्तुत करते हैं। नागरिक समाज, सामाजिक आंदोलन और वैकल्पिक मीडिया मंच लोकतंत्र को संवादपरक और उत्तरदायी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। अस्तु समकालीन लोकतंत्र एक द्वंद्वात्मक स्थिति में स्थित है, जहाँ एक ओर लोकतांत्रिक संकुचन की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, वहीं दूसरी ओर नागरिक सक्रियता और सार्वजनिक संवाद के नए आयाम भी उभर रहे हैं।

समग्र आलोचनात्मक विवेचन

उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था गहन संरचनात्मक रूपांतरण के दौर से गुजर रही है। लोकतंत्र अब केवल प्रतिनिधिक राजनीतिक व्यवस्था न रहकर संचार-आधारित, तकनीकी रूप से नियंत्रित तथा वैचारिक रूप से बहुस्तरीय सत्ता-संरचना में रूपांतरित हो चुका है। डिजिटल माध्यमों, मीडिया-राजनीति, वैश्विक पूँजी, पहचान-आधारित लामबंदी तथा लोकलुभावन विमर्शों ने लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को पुनर्परिभाषित किया है।

समकालीन लोकतंत्र का सबसे बड़ा अंतर्विरोध यही है कि वह औपचारिक रूप से अधिक सहभागी और तकनीकी रूप से अधिक विस्तृत दिखाई देता है, किंतु अनेक बार उसकी संस्थागत स्वायत्तता और संवादपरकता कमजोर होती जाती है। नागरिकों को अभिव्यक्ति के अधिक मंच प्राप्त हुए हैं, किंतु जनमत-निर्माण की प्रक्रियाएँ एल्गोरिद्मिक नियंत्रण और मीडिया-निर्भरता से प्रभावित हो रही हैं।

इसके बावजूद लोकतंत्र की शक्ति उसकी आत्म-संशोधन क्षमता में निहित है। लोकतंत्र स्थिर संरचना नहीं, बल्कि निरंतर संवाद, प्रतिरोध और पुनर्संयोजन की प्रक्रिया है। अतः समकालीन लोकतांत्रिक व्यवस्था की वास्तविक सफलता इसी तथ्य पर निर्भर करेगी कि वह तकनीकी विस्तार और लोकतांत्रिक नैतिकता, राजनीतिक शक्ति और नागरिक स्वतंत्रता तथा प्रतिनिधिक शासन और सहभागी संवाद के मध्य संतुलन किस सीमा तक स्थापित कर पाती है।

संदर्भ-सूची

1. Rousseau, Jean Jacques. The Social Contract. London: Penguin Classics.
2. Mill, J.S. Of Nationality. In: Nation and Nationality: Three Essays. Delhi: Critical Quest; 2010.
3. Dahl, Robert. Democracy and Its Critics. New Haven: Yale University Press; 1989.
4. Habermas, Jurgen. The Structural Transformation of the Public Sphere. MIT Press; 1989.
5. Chomsky N, Herman E. Manufacturing Consent. New York: Pantheon Books; 1988.
6. Castells M. The Rise of the Network Society. Oxford: Blackwell; 1996.
7. Zuboff S. The Age of Surveillance Capitalism. New York: Public Affairs; 2019.
8. Arendt H. The Origins of Totalitarianism. New York: Harcourt; 1951.
9. Wolin S. Democracy Incorporated: Managed Democracy and the Specter of Inverted Totalitarianism. Princeton University Press; 2008.
10. Crouch C. Post-Democracy. Cambridge: Polity Press; 2004.
11. Kothari R. Politics in India. New Delhi: Orient Longman.
12. Chatterjee P. The Nation and Its Fragments. Princeton University Press; 1993.
13. Yadav Y. Making Sense of Indian Democracy. New Delhi: Permanent Black.
14. Ambedkar B.R. Annihilation of Caste. New Delhi: Navayana.
15. Gandhi M.K. Hind Swaraj. Ahmedabad: Navajivan Publishing House.
16. Byung-Chul Han. The Burnout Society. Stanford University Press; 2015.
17. Pateman C. Participation and Democratic Theory. Cambridge University Press; 1970.
18. Guha R. India After Gandhi. New Delhi: HarperCollins; 2007.
19. Jayal N.G. Citizenship and Its Discontents. Harvard University Press; 2013.
20. Sen A. The Argumentative Indian. Penguin Books; 2005.